मालवी लोकगीत

एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय

मं ग ल प्र का श न

गोविन्दराजियों का रास्ता, जयपुर

अर्पण

लोकयात्रा की सहधर्मिणी

मेरी पत्नी

श्रीमती सूर्यकुमारी उपाध्याय

को

जो सामान्य भारतीय नारी की तरह अन्ध-विश्वास,
अज्ञान, मूढ़ता, परम्परा से पोषित-पारिवारिक
गर्व, गुमान, ईर्ष्या, कुढ़न, आत्म-पीड़न,
ममता, मोह, जिद्द, उदारता और
संकीर्णता से ग्रस्त है ।

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना करने के पूर्व मौखिक परम्परा में प्रचलित मालवी के लोकगीतो की लिपिबद्ध सामग्री का अभाव था। श्री श्याम परमार के कुछ स्फुट लेखों का संग्रह मालवी 'लोकगीत' शीर्षक से अवश्य प्रकाशित हो चुका था। किन्तु उक्त संग्रह में मालवी के लगभग ६५–७० गीत प्राप्त हो सके थे। अपर्याप्त सामग्री के अभाव में मालवी लोकगीतों का विस्तृत अध्ययन करना सम्भव नही था। अतः सर्व-प्रथम मुझे अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ गीतों के संकलन करने में जुट जाना पड़ा। संकलन के कार्य में अनुलब्ध की उपलब्धि एवं उपलब्ध सामग्री के शोधन के पश्चात् मालवी लोकगीतों की सांगोपांग विवेचना करने की चेष्टा की गई है। वैसे तो लोकगीतों का क्षेत्र अनन्त है और उनका जितना भी संग्रह किया जावे वह अपर्याप्त ही लगता है। फिर भी मेरा ऐसा विश्वास है कि मालव के लोक-जीवन से सम्बन्धित सर्वप्रचलित गीतों का संकलन करने में मुझे आंशिक सफलता अवश्य मिली है। प्राप्त लोक-गीतों को चार पुस्तकाओं में लिपिबद्ध कर प्रस्तुत प्रबन्ध के लिये प्रामाणिक आधार तैयार किया गया है। गीतों में बालक, स्त्री और पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले लोकगीतों का समावेश किया है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ मालवी लोकगीतों को सन्दर्भ के रूप में ग्रहण किया है।

यह तो कहने की आवश्यकता ही नहीं कि यह प्रयास मालवी लोकगीतों के अध्ययन की दृष्टि से मौलिक महत्व रखता है। भारतीय लोक-संस्कृति की अक्षुण्ण एवं निरन्तर प्रवाहित होने वाली धारा को व्रत, उत्सव और त्योहार एवं परम्पराओं ने शाश्वत जीवन प्रदान किया है। मानवी भाव-धारा और धर्म-भावना के अविच्छिन्न समन्वय से भारतीय लोक-जीवन में मन और बुद्धि का, हृदय और मस्तिष्क की एकात्मक सत्ता का प्रभाव इतनी गहराई से जम गया है कि वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने के लिये समाज-शास्त्र, जाति-तत्व, नृतत्व, भाषा-विज्ञान एवं लोक-साहित्य से सम्बन्धित मनोविज्ञान, इतिहास, धर्म दर्शन, आदि विषयों के सिद्धान्तो का ज्ञान बहुत आवश्यक है। लोकगीतों के मर्म को समझने के लिये जहां तक वैज्ञानिक पद्धति के चिन्तन का प्रश्न है, मैंने भ्रमपूर्ण निष्कर्षों से बचने की चेष्टा की है और आवश्यक तानुसार परम्परा का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक विवेचन भी किया है। किन्तु लोकगीतोका विषय ऐसा है जहां तथ्य-ग्रहण करने के लिये केवल वैज्ञानिक मस्तिष्क ही काम नहीं देता वरन् जन-भावना के मर्म को समझने के लिये एक भावनाशील हृदय की आवश्यकता होती है। मैंने इस ग्रन्थ मे वैज्ञानिक पद्धति के साथ ही रसात्मक शैली को भी अपनाया है और उसका उद्देश्य भी स्पष्ट है कि मालवी लोकगीतों की सामान्य जानकारी प्रस्तुत करने के अतिरिक्त जन-जीवन मे व्याप्त भावनाओं का मूल्यांकन करना।

उक्त ग्रन्थ का प्रथम अध्याय ऐसा है जिसके वर्ण्य-विषय का मालवी लोकगीतों से सीधा सम्बन्ध नहीं आता। किन्तु लोकगीतों की सामान्य प्रवृत्तियों के साथ ही भारतीय परम्परा को समझने में सहायता अवश्य मिलती है। ग्रन्थ के शेष सभी अध्याय मालवी लोकगीतों से सम्बन्धित है। उनमें मैंने अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं। प्रसंग वश जिन विद्वानों के विचारों का मार्ग-दर्शन लेकर प्रतिपाद्य विषय के विवेचन में जहां सहायता ली गई है, उनका सन्दर्भ में उल्लेख कर दिया गया है। सार रूप में यही कहा जा सकता है कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर मालवी लोकगीतों के विश्लेषण में इतिहास और परम्पराओं की परतों का उद्घाटन कर लोक-हृदय के स्पन्दन का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। जहां तक मेरी जानकारी है मालवी लोकगीतों का व्यापक और विस्तृत विवेचन अभी तक किसी व्यक्ति ने प्रस्तुत नहीं किया है। इस दिशा में वैज्ञानिक अध्ययन का यह शुभारम्भ है, इति नहीं। आशा है इस अध्ययन से लोक-साहित्य और लोकगीतों के अध्ययन-कर्त्ताओं को कुछ सन्तोष होगा।

अन्त में ज्ञात-अज्ञात प्रेरणाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये मैं परमश्रद्धेय आदरणीय डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन' का आभार मानता हूं, जिन्होंने समय-समय पर मार्ग-दर्शन देकर, मेरी लेखनी और भावना को उत्साह का सम्बल प्रदान कर साधना-पथ से विचलित नहीं होने दिया। मेरे लिये यह गर्व की बात है कि पद्मभूषण पं० सूर्यनारायणजी व्यास की ममता और प्यार-दुलार ने भारत की ऋषि-परम्परा की मनीषा का सत्व प्रदान किया। महाराजकुमार डॉ० रघुबीरसिंह की तथ्यान्वेषी सूझ ने इतिहास की दृष्टि दी। मैं इन दोनों आदरणीय गुरुजनों का उपकार मानता हूं।

भाई उमरावसिंह जी मंगल को किन शब्दों में धन्यवाद दूं? ज्ञान-पण्य के वणिकों की लोभी वृत्ति से कोसों दूर रहकर उनका 'मंगल-प्रकाशन' साहित्य और साहित्यकार की निर्विकार निष्ठा के साथ सेवा कर रहा है। उनकी 'सह-हितं' की मंगल-दृष्टि साहित्य-स्रष्टा को जीने का सम्बल जुटाती रहे, यही कामना है। वस्तुतः इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने का श्रेय मंगलजी को है। मेरा मन बरबस ही उनकी संकल्प-सिद्धि के प्रति गौरव और कृतज्ञता का अनुभव व्यक्त करने को मचल पड़ा है।

माधव कालेज,
हिन्दी विभाग,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०)

चिन्तामणि उपाध्याय

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

१ लोकगीतों का उद्गम
२ लोकगीत की परिभाषा
३ लोकगीत-ग्रामगीत
४ जनगीत कला-गीत
५ लोकगीतों का प्रकृत स्वरुप
६ लोकगीतों में परम्परा-निर्वाह
७ लोकगीतों की कुछ रुढ़ियाँ
८ लोकगीतों की मनोभूमि
९ मानव जीवन और लोकगीत
१० लोकगीतों की अभिव्यक्ति-में कला का स्वरूप
११ भारतीय लोकगीतों की प्राचीन परम्परा

लोकगीतों का उद्गम

लोकगीतो की स्रोतस्विनी के उद्गम-स्थल को जानने की जिज्ञासा जन-सामान्य की अपेक्षा अध्ययनशील मस्तिष्क को अधिक सोचने और छानबीन करने के लिये प्रेरित करती है। जिन लोकगीतों की सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक सत्ता हैं, जिनके आकर्षण की छाया में मानव-जीवन आन्दोलित होता रहता है, उनकी सृष्टि का आदि-स्रोत कहाँ छिपा हुआ है यह निश्चित एवं निभ्रान्त रूप से कहना कठिन है। मानवीय ज्ञान के अनन्त भंडार इतिहास के अनेक पृष्ठों की उलट-फेर के पश्चात् भी लोकगीतों के सृजन की तिथि को खोज निकालना किसी भी अन्वेषक के लिये सम्भव नहीं है। अतीत के सहस्त्र-युगों के अनावरण के पश्चात् भी लोकगीतों की उत्पत्ति के क्षणों को किसी काल-विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। मानव-हृदय जब कभी भी स्वानुभूति से प्रेरित सुख-संवेदना से आन्दोलित हुआ होगा; गीतो के अज्ञात स्वर मनुष्य के अधरों पर गूँज उठे होगें। आनन्द की भावना से मानव-जीवन सर्वदा ही पोषित होता रहता है। अतः आनन्द-भावना को मानव-जीवन के विकास की प्रमुख प्रवृत्ति ही माना जायेगा। इसकी मूल प्रेरणा है-मानव-हृदय की रसात्मक अनुभूति! इस रसात्मक अनुभूति का उद्वेलन हृदय की संकुचित सीमा को तोड़कर जब वाणी द्वारा मुखरित होने की स्थिति में पहुंच जाता है, तभी लोकगीतों का स्रोत उमड़ पड़ता है; इस प्रकार लोकगीत आनन्द-प्रेरित मानव-हृदय की रसात्मक अनुभूति की रागमय अभिव्यक्ति है। पश्चिम के लोकगीत-चिन्तिकों ने लोकगीतों को 'मानव हृदय का उद्वेलित एवं स्वतः स्फूर्जित संगीत कहा है।[1] मनुष्य के हृदय में-चाहे वह सभ्य हो या असभ्य, पठित हो या अपढ़, स्वयं की भावनाओं को प्रकट करने की इच्छा और क्षमता अवश्य रहती है। वह उनके उद्भव को उद्गीत करने की चेष्टा करता है। इस प्रयास में उसकी रागात्मक प्रवृत्ति लयपूर्ण होकर गीत का स्वरूप धारण कर लेती है। महादेवी वर्मा द्वारा दी गई गीत की परिभाषा में भी लोकगीतों के उद्गम की इस सहज स्थिति का उद्घाटन हो जाता है।[2] सुख-दुःखमयी भावावेश की अवस्था के चित्रण का माध्यम अश्रुपात, दीर्घनिश्वास, पुलक और मुस्कान आदि आनुभाविक, आंगिक-चेष्टाओं तक ही सीमित न रहकर हर्ष और वेदना का स्वरूप जब कण्ठ के द्वारा साकार हो उठता है, तभी गीतों के

---

१. The primitive spontaneous music has been called folk Songs Encyclopaedia Britanica, vol. 9, page 447.

२. सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है —विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ १४१।

स्वर फूट पड़ते है। ये गीत किसी कवि के नही, व्यक्ति-विशेष के नहीं, अपितु सामान्य जनमानस की अज्ञात सृष्टि हैं। लोकगीतों के उद्‌गम से सम्बन्धित जिज्ञासा का देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा प्रस्तुत समाधान भावनात्मक होते हुए भी यथातथ्य विश्लेषण के अधिक निकट है।

"कहां से आते हैं इतने गीत ? स्मरण विस्मरण की आँख-मिचोनी से, कुछ अट्टहास से और कुछ उदास हृदय से। जीवन के खेत मे ये गीत उगते हैं....कल्पना भी अपना काम करती है; रागवृत्ति भी, भावना भी और नृत्य का हिलोरा भी।"[१]

मानव-हृदय में स्पन्दित होने वाले विविध भाव ही लोक-गीतो के प्रेरणादाता सिद्ध होते हैं। मनुष्य के अर्धचेतन मन में जीवन की छोटी-छोटी परिस्थितियाँ भावना की हल्की अभिव्यक्ति का स्पर्श पाकर कण्ठ-माधुर्य से सिक्त होकर मुक्त हो उठती हैं, तभी वे लोकगीतों का स्वरूप धारण कर लेती हैं। लोक-मानस का रचनात्मक पक्ष सर्वदा ही रहस्योद्‌घाटन का इच्छुक रहता है, और इसके द्वारा अपरिमेय मनोरंजन भी सम्भव है। जीवन में मनुष्य को अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य मे होकर गुजरना पड़ता है। अनुकूल परिस्थितियों से हृदय में उल्लास छलकने लगता है। लहलहाती हुई फसलों में अपने श्रम की सार्थकता को देख उसका हृदय आत्म-विभोर हो नृत्य करने लगता है। आत्मा का आनन्द आंगिक चेष्टाओं में व्यक्त होकर नृत्य बन जाता है और 'वाचिक' होकर लोकगीत ! ऋतुओं के उत्सवों के समय नृत्य और गान का समन्वय हो जाता है। नृत्य और गान मानव-हृदय के आनन्द की अभिव्यक्ति के इस प्रकार माध्यम बन गये। आदिमानव के युग से लेकर आजतक मनुष्य की इस प्रवृति में कोई अन्तर नहीं आया है। गान मनुष्य-जीवन का एक स्वाभाविक अंग है। उसके लिये प्रकृति की यह एक शाश्वत देन है। सुख में गाकर वह उल्लसित होता है किन्तु केवल सुख ही गीतों की प्रेरणा को मुखर नहीं करता कष्ट एवं पीड़ाओं की अनुभूति भी लोकगीतों को जन्म देती है। लोकगीतों का निर्माण तो प्रायः कुछ ही व्यक्तियों के द्वारा होता है, किन्तु उनकी अनुभूति की व्यापकता जन-सामान्य के हृदय से मेल खाकर सार्वजनिक वस्तु बन जाती है। मानव-हृदय का यह शाश्वत सत्य प्रायः देखने में आया है कि प्रणय-सम्बन्धी सहजवृत्ति की तरह गीत-सृजन की सहज वृत्ति भी जन-मानस में समान रूप से स्पन्दित होती है।[२]

इस प्रकार लोकगीतों के उद्‌गम का स्रोत ज्ञात होते हुए भी अज्ञात है। भारतीय लोकगीतों के प्रति सर्वप्रथम आकर्षण उत्पन्न करने वाले गुजरात के लोकगीत-संग्राहक स्वर्गीय झवेरचन्द मेघाणी ने लोकगीतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है:-

"धरतीना कोई अन्धारां पड़ोमांथी वह्यां आवतां झरणानुं मूल जेम कोई कदापि शोधी शकयुं नथी, तेम आ लोकगीतोनां उत्पत्ति-स्थान पण अणशोध्यां ज रह्यां छे"[३]

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भी उक्त कथन का भावानुवाद हिन्दी में प्रस्तुत कर लोकगीतों के उद्‌गम-स्थल पर अपने विचार प्रकट किये :—

१. धरती गाती है........................पृष्ठ १७८।
२. Humour in American Songs, preface, page-7.
३. रढ़ियाली रात; भाग १, भूमिका, पृष्ठ ६।

"जैसे कोई नदी किसी घोर अन्धकारमयी गुफा से बहकर आती हो और किसी को उसके उद्गम का पता न हो; ठीक यही दशा गीतों की है ।"[1]

लोकगीतों की परिभाषा

लोकगीतों के उद्गम एवं सृजन-सम्बन्धी मान्यताओं के आधार पर लोकगीतों के अध्येता एवं विवेचनकर्ताओं ने लोकगीत-सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाएँ निर्धारित की हैं। व्यक्ति के मनोभाव लोक से सम्बन्धित होकर सामूहिक तत्वों के अनुरूप ढल जाते है; अतः लोकगीतों के निर्माण का कारण व्यक्ति नहीं, जन-समूह है। पुरातत्वशास्त्र एवं समाज-विज्ञान के विशेषज्ञों ने आदिम समाज की मानसिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करते समय आदिवासियो द्वारा गेय गीतों को लोकगीतो की संज्ञा प्रदान की है। 'लोक' शब्द का पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द 'फोक' को ग्रहण कर विवेचना करना सुविधामय रहेगा। सभ्य राष्ट्रो में बसने वाली असभ्य, जंगली एवं आदिम जातियों की परम्परा रीति–रिवाज एवं अन्ध-विश्वास आदि के लिये डब्ल्यू० जे० थाम्स ने सन् १८४६ में सर्व प्रथम 'फोक-लोअर' का प्रयोग किया था।[2] उस समय से आदिम जातियों के गीत एवं नृत्य आदि के लिये 'फोक-म्यूजिक' या 'फोक सांग्स' एवं 'फोक डान्स' शब्द प्रयोग में आने लगे। अंग्रेजी का 'फोक' शब्द जर्मन भाषा के Volkslied का भाषान्तर जान पड़ता है। उक्त शब्द को लोकगीत के पर्यायवाची शब्द के रूप में ग्रहण करने में अनेक पाश्चात्य लोकगीत–प्रेमियों को भी कुछ संकोच और अरुचि है। वे इसे असुन्दर एवं भद्दा शब्द मानने के साथ ही यह अनुभव करने लगे हैं कि इस शब्द से अप्रिय संकीर्णता ध्वनित होती है।[3] इसका कारण भी स्पष्ट है। गीतों के निर्माण की अन्तःप्रेरणा सभ्य एवं असभ्य व्यक्तियों में समान रूप से पाई जाती है। अतः आदिम जातियों के गीतों के लिये ही 'फोक सांग्स' की अर्थसत्ता को सीमित रखना संकीर्णता एवं अभिजात्य वर्ग के अभिमान का परिचायक हो सकता है। हिन्दी में प्रचलित ग्राम-गीत एवं लोक-गीत आदि शब्दों पर भी इसी दृष्टिकोण को लेकर विचार करना है।

यूरोप के लोकगीतों के अध्ययनकर्ता विद्वानों द्वारा निर्धारित लोकगीत की परिभाषा विचारणीय है। उन्होंने असभ्य एवं आदिम स्थिति के लोगों के सहज–स्फूर्जित संगीत को लोकगीतों की परिभाषा दी है। किन्तु यह परिभाषा संकुचित है। मानव हृदय में अपने-आप उमड़ कर संगीत में प्रकट होने वाली भाव-धारा को हम आदिम और आधुनिक, सभ्य और असभ्य, ग्राम और नगर आदि विभेदों में रखकर विचार नही कर सकते। लोकगीत केवल आदिम जातियों की वस्तु नहीं हैं। आधुनिक विश्व के जन–मानस में भी गीतों के रूप में अनन्त भाव–धाराओं की अभिव्यक्ति होती रहती है। अपने आप को सभ्य समझने वाले यूरोपीय देशों के नगर-निवासियों की अभिजात्य परम्परा में, सांस्कृतिक गर्व के दम्भ और

१. कविता-कौमुदी; भाग ५, ग्रामगीत प्रकरण, पृष्ठ ११।
२. Encyclopaedia Britanica; vol 9, page446.
३. Humour in American Songs; preface, Page 8.

अहं में नारी–हृदय की भावनाएं कुंठित होकर रह सकती हैं, किन्तु भारत में तो क्या ग्राम, क्या नगर; सभी जगह उत्सव–त्यौहार एवं मंगलमय प्रसंगों पर गीतों का स्वर रुक ही नही सकता। पश्चिम के विद्वानों का अन्धानुकरण करने वाले भारतीय अध्येताओं ने भी लोकगीतों की परिभाषा देते हुए भारी भूल की है।[1] भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में उक्त परिभाषा को स्वीकार नहीं किया जा सकता। लोकगीतों के सम्बन्ध में भारतीय लोक साहित्य के मर्मज्ञों ने कलात्मक ढंग से अपने विचार प्रकट किये हैं। इन विचारो में लोकगीतों की परिभाषा का कुछ आभास अवश्य मिल जाता है। किसी निश्चित परिभाषा का निर्धारण करने के पहिले लोकगीतों के सम्बन्ध में प्रकट किये गये कतिपय विचारों का विश्लेषण कर लेना आवश्यक है :—

❀ "आज तो एवां गीतनी वात थाय छे के जेनां रचनारांएं कदी कागल ने लेखण पकडयां नहीं होय, ए रचनारां कोण तेनीज कोई ने खबर नहि होय। अने प्रेमानन्द के नरसिंह महेतानी पूर्वे केटलो काल वीधीं ने ए स्वरो चाल्या आवे छे तेनीये कोई कल्पना करी नहि शक्युं होय, एनु नाम लोकगीत।"[2]
—मेघाणी

❀ "ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है! छन्द नहीं, केवल लय है!! लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है!!! ग्रामीण मनुष्यों के, स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम- गीत है"........[3]
—रामनरेश त्रिपाठी

❀ "आदिम मनुष्य–हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त सुख-दुख की.........कहानी इनमें चित्रित है।

........न जाने कितने काल को चीर कर ये गीत चले आ रहे हैं।

........काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पड़ता।

........किसी की कलम ने इन्हें लेखवद्ध नहीं किया पर ये अमर हैं"[4]

—स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तम स्वामी

❀ "गीत लोकगीत भी होते हैं और साहित्यिक भी। लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं। और कुछ में वह व्यक्त भी रखता है। वे लोक-भावना में अपने भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किन्तु उनके साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है"[5]
—गुलाबराय

---

१. 'A follk Song is a spontaneous out-flow of the life of the people who live in a more or less primitive conditons.' A Study in Orrison Folk-lore.–K. B. Das. Intd. page I.

२. रढियाली रात; भाग १, भूमिका, पृष्ठ ६ (गुजराती)।

३. कविता-कौमुदी; भाग ५, ग्रामीणगीतों का परिचय प्रकरण, प्रस्तावना, पृष्ठ १:२।

४. राजस्थान के लोक-गीत; (पूर्वार्द्ध) प्रस्तावना, पृष्ठ १:२।

५. काव्य के रूप..........पृष्ठ १२३।

"लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र है" ।[१] —देवेन्द्र सत्यार्थी

"गीत मानो कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं" ।[२] —वासुदेवशरण अग्रवाल

❀ "ग्रामगीत सभम्वतः वह जातीय आशुकवित्व है, जो कर्म या क्रीड़ा के ताल पर रचा गया है । गीत का उपयोग जीवन के महत्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरंजन भी है"........[३]

—सुधांशु

❀ "लोकजीवन में लोकगीतों की एक चिरन्तर धारा अनादिकाल से चली आ रही है । मेरे अपने विचार से ये लोकगीत मानव-हृदय की प्रकृत भावनाओ की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है, जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन (ध्वनि) प्रधान होते है"........[४]

—शान्ति अवस्थी

"ग्रामगीत आर्येतर सभ्यता के वेद है"[५] —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

❀ लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नही । वे मानों अकृत्रिम निसर्ग के श्वास—प्रश्वास हैं । सहजानन्द में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सच्चिादानन्द में विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफाएं है ।"[६]

—डॉ० सदाशिवकृष्ण फड़के

उपरोक्त उद्धरणों में लोकगीतों के सामान्य लक्षण एवं अन्य विशेषताओं के विविध विचार प्रकट किये गये हैं । इन विचारों का मन्थन करने पर लोकगीतो के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं:—

१. लोकगीतों में मानव-हृदय की प्रकृत भावनाओं एवं विभिन्न रागवृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है ।
२. भावों को प्रकट करने के लिए वाणी का जो आश्रय लिया जाता है वह लयात्मक होता है ।
३. गान में सामूहिक प्रवृत्ति अधिक व्यापक है ।
४. लोकगीतों का रचयिता अज्ञात होता है, व्यक्ति-विशेष की रचनाएं भी सामूहिक भावनाओं में ढलकर सामान्य हो जाती हैं ।
५. लोकगीतों में मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित रहते हैं ।
६. लोकगीतों से मनोरंजन भी होता है ।

---

१. आजकल (दिल्ली) संख्या ७, नवम्बर १९५१ का अंक ।
२. देवेन्द्र सत्यार्थी; धीरे बहो गंगा, भूमिका, पृष्ठ ९ ।
३. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त........पृष्ठ १७५ ।
४. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका; लोक-संस्कृति-अङ्क, संवत् २०१०, पृष्ठ ३७ ।
५. छतीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय; भूमिका, पृष्ठ ५ ।
६. सम्मेलन-पत्रिका........लोक-संस्कृति अंक........पृष्ठ २५०–५१ ।

लोकगीतों के सम्बन्ध में तथ्यों का जो विश्लेषण किया गया है, उनमें आत्मानुभूति एवं उसकी अभिव्यक्ति के तत्व ही प्रधान रूप से व्याप्त हैं। समस्त विश्व में मनुष्य को भौगोलिक एवं प्राकृतिक विभिन्नताओं के कारण जाति, विवध रूप-रंग एवं शरीरगत बाह्य आकृतियों में ढल जाना पड़ा हो, किन्तु प्रकृति की इस विविधता में भी मानवता के हृदय मे भावनाओ का जो प्रकृत एवं स्वाभाविक स्पन्दन हुआ है, उसमें एक-रूपता का पाया जाना मानव-हृदय के शाश्वत एवं शुद्ध रूप को प्रकट करता है। लोकगीतों की मूल प्रेरणा का कारण समस्त रागात्मक प्रवृत्तियों को ही माना जावेगा जहाँ आदिम मानव की चेतन एवं अर्ध-चेतन स्वानुभूति भी सहज ही अपने आप व्यक्त हो गई। पाश्चात्य विद्वानों ने लोकगीतों के लिये जो Spontaneous music की संज्ञा दी है, वह अत्यन्त ही सार्थक है एवं तथ्य-चिन्तन की गम्भीरता को प्रकट करती है। किन्तु मनोभावों के स्वतः स्फूर्जित होने का प्रभाव भी अपना महत्व रखता है। अतः लोकाभिव्यक्ति में संस्कार एवं परम्पराओं का आधार भी विचारणीय है। वर्ग विशेष अथवा जाति-विशेष के संस्कार प्राकृतिक परिस्थियो के कारण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। भारतीय लोकगीतों का अध्ययन करते समय इस तथ्य को लेकर ही विचार करना पड़ेगा। धार्मिक, आनुष्ठानिक एवं विभिन्न प्रसंगों पर गाये जाने वाले गीतों में जो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं, उनमें मानव की आदिम रागात्मक भावनाओ के साथ ही भारतीय प्रदेश में पल्लवित एवं पुष्पित संस्कारों की छाया को भी स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है। लोकगीतों की सुनिश्चित परिभाषा निर्धारित करते समय, उसके ठीक-ठीक लक्षण का निर्देशन करते समय लोक-परम्परा को अवश्य ध्यान में रखना होगा लोकजीवन एवं लोकरीति की सामान्य और समष्टिगत पार्श्व-भूमि में लोकगीतों को पहिचान के लिये तमिल एवं सिंहाली विचारकों की निम्नलिखित मान्यताएं लोकगीतों के सर्वमान्य लक्षणों स्वीकार करने सहायक सिद्ध होंगीः—

लोकगीतों का व्याकरण यही कहता है कि—

१. गीतकर्ता अज्ञेय हो।
२. गीत तुक आदि नियमों का उल्लंघन अवश्य करे।
३. अनादि काल से जनता जिसे अपनाती चली आ रही हो।
४. लय के साथ गाने योग्य हो.........[१]।

उपरोक्त उद्धरण में तुक आदि के लिये निर्धारित शास्त्रीय नियमों के उल्लंघन की अनिवार्यता भी लोकगीत का एक लक्षण मानी गई है। लोकगीतों की भावना और उसकी अभिव्यक्ति का आधार ही सरलता एवं सहजता है, जहाँ किसी भी प्रकार के कृत्रिम बंधनों के लिये कोई स्थान नहीं होता। व्यक्तित्व-प्रधान रचनाओं में भी भाषा, भाव, शैली आदि के संबंध में बन्धनों की अनिवार्यता अनावश्यक समझी जाती है अतः सामूहिक-चेतना और लोक-भावना पर आधारित गीतों की अभिव्यक्ति में छन्द या रचना-विधान की रूढ़िगत परम्परा को लेकर चलना संभव भी नही है। स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त वातावरण तो लोकगीत

---

१. तामिल कान्फ्रेन्स के वार्षिक अंक सोवनीर में प्रकाशित अंश का 'दिनमणि' साप्ताहिक में दिया गया उद्धरण।

के निर्माण की प्रथम एवं आवश्यक स्थिति है। लोकभावना जहाँ सभ्यतागत मिथ्या आडम्बरों और बन्धनों की चिन्ता नहीं करती, वहाँ अभिव्यक्ति-संबंधी भाषा एवं छन्द के शास्त्रीय नियमो के बन्धनो की ओर ध्यान देने की चेष्टा होगी, वह आशा करना भी व्यर्थ है। लोकगीतो के सम्बन्ध मे दिये गये विभिन्न विचारों के मन्थन से परिभाषा का निर्धारण किया जा सकता है। संक्षिप्त में लोकगीत की परिभाषा यही हो सकती है:—

" सामान्य लोकजीवन की पाश्र्वभूमि में अचिन्त्य रूप से अनायास ही फूट पड़नेवाली मनोभावो की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।"

'लोक' और 'ग्राम' शब्द का प्रयोग,

लोक–गीत की परिभाषा के साथ ही अंग्रेजी शब्द Folk फोक के हिन्दी समानार्थी शब्द पर विचार करना भी आवश्यक है। उक्त शब्द के लिये हिन्दी में ग्राम, जन और लोक इन तीनों शब्दो का प्रयोग किया गया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी के लोकगीतों का संकलन करने के क्षेत्र में अग्रणी रहे है। उन्होने अंग्रेजी के 'फोक सांग' शब्द का अनुवाद ग्रामगीत ही किया है। त्रिपाठीजी की तरह हिन्दी के अन्य विद्वानो ने भी ग्रामगीत शब्द का प्रयोग कर त्रिपाठीजी का अनुकरण किया है। त्रिपाठीजी ने उक्त शब्द का प्रयोग सन् १६२६ के लगभग किया था।[1] और इसके पश्चात् देवेन्द्र सत्यार्थी और सुधांशु ने ग्रामगीत शब्द को ही अपनाया।[2] 'ग्राम' शब्द को अपनाने में जहाँ तक भावुकता प्रश्न है उसका प्रयोग करना व्यक्ति–विशेष के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर है, किन्तु वैज्ञानिक अध्ययन एवं भाषा-विज्ञान की दृष्टि से किसी भी शब्द के प्रयोग में उसकी एकरूपता का रहना आवश्यक है। ग्रामगीत शब्द में लोकगीत शब्द की सी व्यापकता का अभाव है। ग्राम के अतिरिक्त ऐसा भी एक विस्तृत समाज है जिसकी अपनी धारणाएं है, विश्वास हैं, गीत हैं। भारत की सम्पूर्ण मानवता को ग्राम और नगर की सीमा में बाँधना उचित नहीं है। क्योंकि साधारण जनता केवल ग्राम तक ही सीमित नहीं है। लोक की सीमा बड़ी व्यापक है, व उसमें ग्राम और नगर का समन्वय अविच्छिन्न है। 'लोक' शब्द ही 'फोक' का सम्यक् पर्यायवाची शब्द हो सकता है। इस शब्द की व्यापकता एवं प्रामाणिक प्रयोग के आधार के लिये पृष्ठभूमि भी है। भरत मुनि ने लोकधर्मीय परम्पराओं एवं रूढ़ियों को अपनाने का विशेष आग्रह किया है।[3] लोक हमारे जीवन का महा-समुद्र है, लोक एवं लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव है।[4] लोकगीतों में मानव ने भूमि और जन दोनो की संहति पर ही अपनी भावनाओं

१ कविता-कौमुदी, भाग ५ का उपशीर्षक—ग्रामगीत

२ अ--सत्यार्थी का लेख—हमारे ग्रामगीत, हंस, फरवरी ३६।
ब--सुधांशु, जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त; ग्रामगीत का मर्म-शीर्षक, आठवां अध्याय, (१६४२)।

३ लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्....अध्याय १, श्लोक ११२; (नाट्य शास्त्र)
महापुण्यं प्रशस्तम् लोकानाम् नयनोत्सवम्....३०।६५०।३८।३३ (वही)

४ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का 'लोक का प्रत्यक्ष दर्शन', शीर्षक लेख।

को सार्वभौमिक रूप में मुखरित किया है। अतः लोकशब्द की व्यापक सत्ता को अस्वीकार कर देने में भावावेशमयी मन-स्थिति के साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण को न अपनाने का आग्रह भी प्रकट होता है। इस संकुचित दृष्टिकोण की ओर स्वर्गीय सूर्यकरण पारीख का ध्यान पहले गया और उन्होंने हिन्दी में ग्रामगीत शब्द की अपेक्षा लोकगीत शब्द का प्रयोग करना ही उपयुक्त माना।[१] आज उक्त शब्द के प्रयोग की समस्या का समाधान प्रायः हो चुका है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'लोक' शब्द के प्रयोग की स्थिरता को स्वीकार किया है। आचार्य द्विवेदी जी ने लोककला, लोकसंस्कृति, लोक-साहित्य, लोकशिल्प आदि शब्दो का प्रयोग कर ग्राम और नगर के भेद को अस्वीकार किया है।[२] भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाएँ इस दिशा में अधिक जागरूक दिखाई देती हैं। स्वर्गीय झवेरचन्द मेघाणी ने गुजराती में 'लोकगीत' शब्द का ही प्रयोग किया है, यद्यपि उन्होने इस दिशा में त्रिपाठी जी से पूर्व ही सन् १९२५ तक पर्याप्त कार्य सम्पन्न कर लिया था।[3] मराठी में लोकसाहित्य के अध्ययन-कर्ताओं ने भी 'लोक-शब्द' का प्रयोग करना ही उपयुक्त समझा है। लोक साहित्याचें लेणें।[४] वर्हाड़ी लोकगीत आदि [५] पुस्तको के शीर्षक एवं लोक-साहित्य के सम्बन्ध में दी गई परिभाषा इसका ज्वलन्त उदाहरण है।[६] किन्तु त्रिपाठीजी तो आज भी 'ग्रामगीत' शब्द के प्रयोग को नही छोड़ने के आग्रह पर अटल हैं।[७]

जनगीत एवं कला-गीत

'जन' शब्द भी लोक शब्द का पर्यायवाची माना जाता है। डॉ० मोतीचन्द ने कुछ स्थलों पर फोक के लिये जन शब्द का प्रयोग किया है। किन्तु जन शब्द में लोक जैसी व्यापकता नहीं है, और इस शब्द की व्युत्पत्ति पर यदि विचार किया जाय तो उसकी

---

१ कुछ लोगों ने लोकगीतों को ग्रामगीत भी कहा है, परन्तु हमारे ख्याल से लोकगीतों को ग्राम की संकुचित सीमा में बांधना, उनके व्यापकत्व को कम करना है। ग्राम और नगर के भेद अर्वाचीन काल में बढ़े हैं। गीतों की रचना में ग्राम और नगर का इतना हाथ नहीं है जितना कि सर्वसाधारण जनता....लोक का। —राजस्थानी लोकगीत—पृष्ठ १, फुट नोट।

२ जनपद खण्ड १, अंक १; पृष्ठ ६६।

३ रढियाली रात, भाग १, परिचय शीर्षक प्रस्तावना; पृष्ठ ५–६।

४ सौ० मालती दाण्डेकर द्वारा लिखित।

५ पा० श्र० गोरे द्वारा लिखित।

६ लोकाचें लोकसांठीच रचले गेलले व लोकानींच रचलेले तें लोक साहित्य।
—लोकसाहित्याचें लेणें, पृष्ठ १।

७ मैंने गीतों का नामकरण ग्रामगीत शब्द से किया है। क्योंकि गीत तो ग्रामों की सम्पत्ति हैं। शहरों में तो ये गये हैं, जन्मे नहीं....इससे मैं उचित समझता हूँ कि ग्रामों की यह यादगार ग्रामगीत शब्द द्वारा स्थायी हो जाय।
—जनपद; अंक १, पृष्ठ ११।

अर्थ-सत्ता इतनी व्यापक हो जाती है कि विश्व में उत्पन्न होने वाले सभी जड़ और चेतन तत्वों का इसमें समावेश हो जाता है, क्योंकि संस्कृत में 'जन्' धातु का अर्थ उत्पन्न होना होता है।

अतः 'फोक' शब्द की वांछनीय अर्थ-सत्ता से 'जन' शब्द शून्य है, जिस प्रकार 'ग्राम' शब्द में अर्थ की उसके विपरीत 'जन' शब्द में भी अतिव्याप्ति है। फिर प्रयोग के कारण 'जन' शब्द में ग्राम जैसी संकीर्णता का भी बोध होने लगा है। प्राचीन काल में प्रदेश विशेष के लिये जनपद शब्द का प्रयोग होता रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों के लिये 'जनपद' एवं नगर के लिये 'पुर' शब्द भी विभेदोत्मक स्थिति को प्रकट करते है।[1] आधुनिक हिन्दी साहित्य में जनगीत और जनवादी साहित्य की बड़ी चर्चा है। पूंजीवादी समाज व्यवस्था के विरूद्ध साम्यवादी विचारधारा को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य जनसाहित्य के अन्तर्गत आता है। नामवरसिंह ने जन एवं जन-साहित्य के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए लिखा है.... 'जनसाहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज-व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाला सामान्य-जन का साहित्य है, और इसीलिये जन-साहित्य लोक-साहित्य से इसी अर्थ में भिन्न है कि लोक-साहित्य जहाँ जनता के लिये जनता द्वारा रचित साहित्य है, वहाँ जन-साहित्य जनता के लिये व्यक्ति के द्वारा रचित साहित्य है'।[2] यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि 'जन' शब्द भी औद्योगिक क्षेत्र के श्रमिको का पर्याय बन गया है और 'जन' शब्द को 'लोक' का पर्याय नही माना जा सकता। इसी तरह लोकगीत और जनगीत का अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। लोकगीतों की परम्परा में व्यक्ति को कोई महत्व नही दिया जा सकता। लोकगीतो की परम्परा मे, विराट्-भावना मे व्यक्तित्व मिल भी नहीं सकता है। समष्टि में तिरोहित हुए व्यक्तित्व के अवशेष का पता लगाना कठिन ही है। फिर भी जाने या अनजाने में एक-दो साहित्यकारो ने लोकगीत की भावना को प्रकट करने के लिये जनगीत या जनगीति आदि शब्दों का प्रयोग किया है। किन्तु उनका वास्तविक अभिप्राय लोकगीत ही जान पड़ता है।[3] सुधांशु ने काव्य के गेय रूप को कलागीत कहा है। कलागीतों के अन्तर्गत मुक्तक और प्रबन्ध काव्य दोनों का समावेश है।[4] कलागीत शब्द पर विवेचन करना इसलिये आवश्यक है कि लोकगीतों की आधार-शिला पर ही काव्य-कला की सृष्टि हुई है। लोकगीतों की भावनाएँ क्रमशः चिन्तनशील एवं बुद्धि-परक जीवन में काव्य के रूप में

---

१ पौरजानपदश्रेष्ठाः। वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, १४। ४१।
पौरजानपदैश्चापि नैगमैश्च कृताञ्जलि। वही, १४।५५
जनपद विनिशेष। अर्थ शास्त्र १।२२।

२ जनपद, त्रैमासिक खण्ड १, अंक २; पृष्ठ ६३, ६४।

३ ० कथा के प्रति आकर्षण जनता की स्वाभाविक रुचि है। जनगीतों में भी लोक-प्रचलित कथाओं का आधार रहता है।
—डॉ० रघुवंश, प्रकृति और हिन्दी काव्य....पृष्ठ ३३१।
० जीवन की छोटी परिस्थिति भावना की हल्की अभिव्यक्ति से मिल-जुल कर जन-गीतियों में आती है।...... —वही, पृष्ठ ३३३।

४ जीवन के तत्व एवं काव्य के सिद्धान्त....पृष्ठ १७६ व २०८।

विकसित होती गई। किन्तु काव्य के क्षेत्र में आकर लोकगीतों की स्वच्छन्द भावनाएँ एवं उसकी अभिव्यक्ति-प्रणाली शास्त्र की रूढ़ियों में आकर आबद्ध हो गई हैं। लोकगीतों में मानव-जीवन का जो सरल एवं नैसर्गिक स्वरूप था, काव्य की विकसित अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते वह अपना वास्तविक स्वरूप खो बैठा एवं जन-चेतना से विच्छिन्न हो जाने के कारण उसका अस्तित्व केवल पुस्तकों के पन्नों में सिमट कर रह गया। मध्ययुगीन सन्त-साहित्य का जन-मानस पर जितना प्रभाव आज विद्यमान है उतना रीतिकालीन कविताओं का नहीं है। सूर और तुलसी की तरह अन्य प्रान्तीय भाषाओं के कवियों का प्रभाव भी लोकगीतों में मुखरित होकर जनमानस को आन्दोलित करता रहता है। आधुनिक हिन्दी काव्य में छायावाद, रहस्यवाद एवं प्रगतिवाद के रूप में उत्पन्न हुए अनेक विवर्तनों के पश्चात् लोक-हृदय को स्पर्श करने के लिये काव्य-कला छटपटा रही है। आज कविता के क्षेत्र में साधारणीकरण, सहजता और स्वाभाविकता की ओर काव्यकारों का ध्यान आकर्षित हो रहा है। 'आज की नयी कविता छायावाद के शब्द-आडम्बर और संगीत से मुक्त होकर लोकगीतों की सहजता एवं सरलता से उतनी ही प्रभावित है, जितनी कि नयी व्यंजना से। लोक-भाषा, लोक-सरलता लोक-प्रतीक एवं लोक-संगीत लोकगीतों के ये चारों प्रभाव नई कविता में विभिन्न रूपों में व्यक्त हुए हैं।'[1]

लोकगीतों का प्रकृत स्वरूप

लोकगीतों में मानव-जीवन की उस प्राथमिक स्थिति के दर्शन होते हैं, जहां साधारण मनुष्य अपनी लालसा, उमंग, उल्लास, प्रेम, शोक एवं घृणा आदि भावों को प्रकट करने में समाज द्वारा मान्य शिष्टाचार के कृत्रिम बन्धनों को स्वीकार नहीं करता। लोकगीतों की यह स्वच्छन्द भावना उसका प्रथम लक्षण हैं। भावनाओं और भावों को प्रकट करने की विविध प्रणालियों में लोकगीतों की जिन प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है, उनके आधार पर लोकगीतों के प्रकृत स्वरूप एवं सामान्य लक्षणों पर विचार किया जा सकता है, भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ ही लोकगीतों में निम्नलिखित विशेषताएं रहती हैं :—

१—निरर्थक शब्दों का प्रयोग २—पुनरावृत्तियां

३—प्रश्नोत्तर प्रणाली ४—टेक (गीत की आधारभूत लय-बद्ध पक्तियां)

निरर्थक शब्दों का प्रयोग करने का कारण स्पष्ट है। लोकगीतों के रचयिताओं के पास शब्दों का ज्ञान-भण्डार बहुत ही सीमित रहता है। शब्द तो थोड़े होते हैं, और भाव बहुत अधिक होते हैं। अतः शब्द-चातुर्य की कमी को पूरा करने के लिये स्वरों की सहायता ली जाती है। इसमें निरर्थक शब्दो का प्रभाव तो भावों की अभिव्यक्ति को गेयता के अनुकूल बनाने के लिये किया जाता है एवं पंक्तियों की पुनरावृत्तियां संगीत का प्रभाव

---

१ श्री सर्वेश्वरदयाल का लेख 'प्रयोगवादी काव्य में लोक-गीतों की अभिव्यक्ति' —सम्मेलन-पत्रिका, लोक-संस्कृति अंक, पृष्ठ २७८।

एवं ध्वनि-माधुर्य को साकार करती है। लोकगीतों मे शब्दों के पहले लय को अधिक महत्व दिया जाता है। लय के द्वारा ही भावों की उठान को व्यक्त करने के लिये सहज प्रेरणा होती है। भावों का भारवहन करने वाले शब्द तो बाद में निसृत होते हैं। प्रश्नोत्तर अथवा संवादात्मक प्रणाली भी लोकगीतों की एक सार्वभौमिक प्रवृत्ति है। टेक के द्वारा गीत का विस्तार एवं भाव-व्यंजना को गति मिलती है। पाश्चात्य लोकगीतों में भी उपरोक्त चारों प्रवृत्तियां परिलक्षित होती है।[1]

लोकगीतों में परम्परा का निर्वाह

सामूहिक लोकभावना पर आधारित होने के कारण परम्परा से प्रचलित लोकगीतों का भी निर्माण होता रहता है। मौखिक परम्परा में रहने के कारण लोकगीतों में पुरातन भावनाओं का समावेश तो रहता ही है, किन्तु प्राचीन परम्परागत अभिव्यक्तियो के आधार पर जनमानस नवीन रचनाओ का निर्माण करने में भी सजग रहता है। भारतीय स्त्रियों में लोकगीतो के साथ आनुष्ठानिक प्रवृत्ति होने के कारण परम्परा के गीतों में परिवर्तन की उतनी संभावना नही है, फिर भी बना-बनी, गालियां एवं पारसी आदि लोकगीतो मे विभिन्न युगों की परिवर्तित परिस्थितियों और इतिहास का प्रभाव पड़ा है। इस तरह के गीत प्राचीन परम्परा के बंधन से मुक्त है। आज से दस वर्ष पूर्व मालवा में विवाह के अवसर पर 'बना-बनी' के जो गीत गाये जाते थे, शनैः शनैः उनका प्रचलन कम होता जा रहा है और नये गीतों का निर्माण हो रहा है। परम्परागत गीतों में भी परिवर्तन होने की बहुत कुछ संभावना रहती है, क्योकि लोकगीत अपनी मौखिक परम्परा के कारण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक एवं एक स्थान से दूसरे स्थान तक अभ्यन्तरित होने में बहुत कुछ बदल जाते हैं। यूरोप आदि देशों में परम्परागत गीतो के गायक की अप्रत्याशित मृत्यु पर लोकगीत विशेष के लुप्त हो जाने का भय भी बना रहता है।[2] वास्तव में लोक-गीतों का परम्परा के साथ एक अविछिन्न संबध है और सभ्यता के चरम विकास की स्थिति में उसकी व्यापकता का प्रभाव बना ही रहता हैं, उसको एकदम भुलाना संभव नही है। आज के उलझनमय एवं व्यस्त जीवन में लोकगीत एक पुराने मित्र के समान हैं, जिसके कारण अच्छे समय की मधुर स्मृतियां एवं आनन्द के क्षण सजग हो उठते हैं।[3]

---

१ The characteristics of folk-songs are as to substance, repetitions, interjection, and refrains as to form a verse accommodeted to dance—George Sampson; Cambridge History of English Literature; Pp. 106.

२ Ozark Folk-Songs. Chap. I, page 33.

३ "An old Song is an old friend, it brings back memories of good times and pleasant feelings."
—Humour in American Songs, preface-14.

लोकगीतों की कुछ रूढ़ियाँ

१ संख्या....

भारतीय लोकगीतों में संख्याओं का कुछ रूढ़ प्रयोग मिलता है। जहां संख्या का प्रयोग किया जाता है वहां वास्तविकता में अंको की कोई अर्थ-सत्ता नहीं रहती और गणित की दृष्टि से उन संख्याओ का यथातथ्य महत्व भी नहीं होता। वैसे लोकगीतों मे पांच सात, एवं नौ की संख्या का विशेष उल्लेख हुआ है।[१] लोकजीवन की मान्यताओं में से उक्त सख्याओं को शुभ माना जाता है। पांच, दस एवं बीस की संख्या मनुष्य के आदिम परिगणन-ज्ञान की सूचक है। आदिम जातियो में हाथ-पैर के पांचो उंगली- अंगूठे को लेकर संख्या का निर्धारण किया जाता है।[२] किन्तु साधारण जनता मे भी पचोल (५), छक्कड़ो (६) एवं कोड़ी (२०) आदि संख्याओं के द्वारा जीवन में विनिमय-व्यापार चलता रहा है। परिगणन की आदिम शैली ने लोकगीतों में परम्परा का स्वरूप धारण कर लिया है। लोकगीतो में निम्नलिखित संख्याओ का रूढ़िगत प्रयोग होता है....

१. समूह का भाव प्रकट करने में सात की संख्या का प्रयोग :—
—सात रानियां सात सहेलियां आदि।

२. हार नवसार का ही होता है। नवलाख की संख्या भी उल्लेखनीय है।
....नव लख बाग मे डेरे डाले जाते है। रोना भी नवसर धार में होता है।[3]

३. असंख्यत्व एवं परिगणन की सीमा के परे का भाव प्रकट करने के लिये छप्पन एवं द्वित्व की संख्या का प्रयोग मिलता है।[४] वैसे अत्रीस-बत्रीस[५] बावन–बीस, तेवन–तीस[६] एवं आंसठ–बांसठ[७] आदि संख्याएं भी उक्त भाव को प्रकट करती हैं।

---

१ संख्या ५ * पांच मोहर को कसूमल रंगायों] लेखक का हस्तलिखित गीत-संग्रह,
* पांच रुपया का पतासा मंगाव] भाग १। गीत १४०
दीजो नगरी में बटाय मारुजी....१।४१
* पांच करण की पिया बावड़ी....२।३, १।६३
संख्या ७ * सात सहेलियां हो,
* सात सैयर जल भरवा जाय....रढियाली रात; भाग ४, पृ० २६।

२ E. B. Taylor, Anthropology. II p. 62; I p. 13.

३ यो छोरयां छोरी-वालो स्य ल माण्ड्यो
ने तू रोवे नवसरधार...ग्यारस कथा-गीत की पंक्तियां, २।१२६।

४ नवकोड़ी नाग ने छप्पन कोड़ी देवता; जोवे थारी वाट....वही, २।१२६।

५ अत्रीस-बत्रीस बैनड़ी लखि ने छप्पन करोड़ जमाईरा लख्या,
—रढ़ियाली रात, भाग ३, पृष्ठ ३।

६ बेगी हो जो बावन बीस, बऊ आजो तेवन तीस....१।१५।

७ आंसठ-बांसठ मेलूं ओ इन्दर राजा सारणा, चोसठ मेलूं नी बगार....१।२६०।

२—कुछ अतिशयोक्तियां

भावनाओ के वैभवमय क्षेत्र में प्रभुता, सम्पन्नता एवं विपुलता आदि का भाव प्रदर्शित करने के लिये अतिशयोक्तियो का प्रयोग भी लोकगीतों की एक रूढिगत विशेषता है। मांगलिक अवसरों पर केसर से आंगन लीपा जाता है[१], उसमें मोती बिखेरे जाते हैं। चौक में मोती बिखरते रहते हैं।[२] प्रियतम के पत्र को पढ़ने के लिये दीप संजोने में सवा मन तेल की आवश्यकता पड़ती है।[३] दीपक भी मिट्टी के नहीं, सोने-चांदी के होते है, अतिथि के सत्कार में पचास पान [ताम्बूल] ही समर्पित किये जाते हैं।[४] लोकगीतों के क्षेत्र में सोने और चांदी की तो कमी नही है। पक्षियों का वर्ण्य-सौन्दर्य भी सोने और चांदी की चमक मे परखा जाता है।[५]

३—प्रश्नोत्तर-प्रणाली

लोकगीतो में प्रश्नोत्तर शैली को अपनाने की प्रवृत्ति भी अत्यन्त व्यापक है। पश्चिम के लोकगीतों में भी इस परम्परा का निर्वाह किया गया है।[६] संवाद-शैली में भाव बड़ी सरता से व्यक्त हो जाते है। इसलिये उक्त शैली का प्रयोग लोकगीतो की एक

---

१ सासू ने घोल्यो केसर लीपणो १।८६।

२ अ. गज मोतियन चौक पुराव

ब. मोती बेराना चन्दन चौक में—१।१३१।

३ उठो दासी दीवडिया अंजवासो, अध मण इनी करी छे वाटयु

रे सवा मण तेले परगट्यो रे लोल....रढियाली रात, भाग ३, पृष्ठ २८-२६।

४ अ. काथो सुपारी ओ इन्दर राजा एलची, पाका इ पान पचास —१।२६०।

ब. मेमानने मुखवास एलची रे, राजा ने पान पचास....

—रढ़ियाली रात; १, पृष्ठ १४०।

५ बाई रे सावरे सोना नो सारो दीवड़ो —चूंदड़ी; भाग १, पृष्ठ ५८।

६ दो सौना री चिरखली, दो रुपा री चिरखली—१ । २७७ ।।

७ Oh, who will shoe my feet ?
And who will glove my hand ?
And who will kiss my rosy cheeks ?
When you are in furrin land.
Your father will shoe your feet,
Your mother will glove your hand,
And some other will kiss your rosy cheeks,
When I am in furrin land.

—Ozark Folk-Songs; page 118.

वात्सल्य, दाम्पत्य एवं कुटुम्ब-स्नेह की भावनाओं में उसके जीवन का शृंगार, हास्य एवं औदार्य अधिक निखरता है। उसके आनन्द की अभिव्यक्ति मंगलकामना एवं लोक-कल्याण को लेकर चलती है, और जीवन की प्रतिकूल एवं विषम स्थिति मे उसका मनोबल एक आश्चर्यजनक स्थिति तक पहुँच जाता है। लोक-जीवन की समस्याओं के हलाहल को वह मौन होकर भी पी जाती है, किन्तु गीतो मे शिवत्व की भावना का उसका नीलकण्ठमय सौन्दर्य, करुणा, त्याग-भावना एवं आत्म-समर्पण के विकृत रूप 'मरण' की भावनाओं में प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त वातावरण एवं संस्कारो से उत्पन्न अविवेक, अज्ञान, मोह, गरीबी एवं दाम्पत्य-जीवन से प्रेरित अतृप्ति निराशा, चिन्ता आदि भावनाओं से आवेष्टित अभिशापमय जीवन की अनुभूतियाँ भी लोकगीतों की चिरन्तन आधार-शिलाएँ हैं, जहाँ नारी-मानस का भाव-लोक साकार हो उठता है।

मनुष्य के आन्तरिक जगत की भाव-सृष्टि के अतिरिक्त बाह्य-जगत के सम्बन्ध में भी मानव-हृदय भावनाओं से ओतप्रोत है। मानवेतर सृष्टि के साथ भी उसकी रागात्मक सम्बन्ध बना हुआ है। प्रकृति के प्रांगण में सहचरण की भावना के कारण लोकगीतों का जन-मानस पशु-पक्षी एवं सृष्टि के अन्य जीवों के साथ भी आत्मीय-भाव से परिपूर्ण है। लोकगीतों के निर्माताओ ने मानव और पशु-पक्षियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण रखा कि वे मनुष्य की तरह बोल सकते हैं, कार्य कर सकते है, और जीवन के संघर्ष में सहयोगी बन सकते हैं। उनमें भी सुख-दुःख की संचेतनाओं का स्पन्दन होता है। संसार की सभी जातियों ने पशुओं के सम्बन्ध में कहानियां कही हैं।[1] वस्तुतः लोकगीतों में मानवी-भावो का प्रसार इतना व्यापक है कि वहाँ जड़ और चेतन, मानव और अमानव का भेद ठहर ही नहीं पाता। मानव में उसके 'अहं' के प्रति, उसके 'स्व' के प्रति जो सहानुभूति की भावना है, वह लोक के साथ मानवेतर सृष्टि के प्रति भी उतनी ही स्पन्दनशील है।

मानव-जीवन और लोकगीत

लोक-जीवन की अनन्तता में भावोर्मियों के मृदु कम्पन का इतिहास भी बड़ा व्यापक है। सृष्टि के विकास से लेकर आज तक मनुष्य ने जो कुछ सोचा, अनुभव किया और जीवन के संघर्ष में सहन कर अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखा उसका प्रत्यक्ष रूप विचित्र एवं अभूतपूर्ण घटना है, जहाँ मनुष्य के स्पन्दनशील हृदय की नवीन चेतना, नवीन गति एवं नई स्फूर्ति के संचरण का प्रादुर्भाव होता है! आज गीत, लोकगीत जीवन में इस तरह समा गया है कि मनुष्य के जीवन को गीतों से विलग कर देखना और परखना किसी भी समाज-शास्त्रवेत्ता के लिये असम्भव है! मनुष्य जब सामाजिक लोकजीवन के धरातल पर अपने को व्यक्त करता है तब उसकी संचित अनुभूति एवं ज्ञान का अनन्त वैभव लोकगीतों में उतर आता है। मानवता के विकास का जो इतिहास साहित्य में प्राप्त नहीं होता उसका उद्घाटन लोकगीत एवं लोक-जीवन की परम्पराओं में बड़ी सरलता के साथ किया जा सकता है। हम लोकगीतों को साहित्य का मूलधन [2] मानकर मानव-जीवन की अनेक रहस्यमयी एवं जिज्ञासापूर्ण वस्तुओं का ज्ञान के आलोक में तथ्यान्वेषण कर सकते हैं।

१ Lomax, "Folk Songs of U. S. A."; Page 5.
२ साहित्याचें मूलधन (मराठी) काका कालेलकर द्वारा लिखित।

भारतीय लोक-जीवन की प्रत्येक गतिविधियाँ लोकगीतो में प्रतिबिम्बित हुई हैं, धार्मिक-भावना, रीति-नीति एवं लोक-मान्यताओं का सच्चा इतिहास लोकगीत ही प्रस्तुत करते हैं। साहित्यकार एवं कवियों की रचनाओं में मानव जीवन का जो चित्र मिलता है वह व्यक्ति-परक होने के कारण वास्तविक रूप में अंकित नहीं हो पाता। साहित्य के क्षेत्र मे तो लोकजीवन का सार, मन्थन के पश्चात् उतारा जाता है। लोकगीत लोकजीवन की सच्ची झाँकी प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य के सामाजिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित अनेक मार्मिक चित्र लोकगीत में ही उतर पाते हैं। सभ्यता-जड़ शिष्ट जीवन के प्रच्छन्न पक्ष का उद्घाटन करने में लोकगीत बड़े सहायक होते हैं। भारत के धर्मशास्त्र निर्माताओं ने शास्त्रीय कर्म-काण्ड आदि आचारों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचनाएँ की हैं, किन्तु लोक-जीवन की व्यापकता को बाँध लेना उनकी क्षमता से परे है। लोकाचारों में जो लोकमानस व्यक्त होता है वह युग-युगों की विभिन्न धाराओं को पचाकर लोकजीवन के प्रति मगलमय दृष्टिकोण रखता है। लौकिक अनुष्ठानों की भावना को लेकर लोकगीत आगे बढते है। मानव के जीवन की महानतम घटनाएँ-जन्म, विवाह एवं मृत्यु भी लोकगीत की छाया में अपना रागात्मक स्वरूप लेकर चलती हैं।

लोकगीतों की अभिव्यक्ति एवं कला का स्वरूप

अपढ़ एवं सामान्य जनता के पास शब्द तो थोड़े होते हैं और भाव अधिक। अतः अपने भावों को प्रकट करने के लिये स्वर एवं लयात्मक ध्वनियों का सहारा लिया जाता है। शब्द-चातुर्य की कमी को स्वर की सहायता से पूरा किया जाता है। लोकगीतों के निर्माता स्वर के धनी होते हैं। हृदय में उद्वेलित भावों के व्यक्त होने में पहिले स्वर का स्पन्दन होता है, धुन में वह बँधता है और उसके पश्चात् शब्द के रूप में अपनी अभिव्यक्ति की सत्ता को स्पष्ट करता है। स्वरों के द्वारा मानवीय भावों की अभिव्यक्ति का जो स्वरूप हमारे सामने आता है वह स्थूल रूप से उतना आकर्षक एवं कलात्मक नहीं होता। वेदना एवं पीड़ा के कष्ट की चरमता एवं उसकी असह्य स्थिति को प्रकट करने वाली ध्वनियाँ अर्थ-सत्ता की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखती। किन्तु वहाँ एक भाव-विशेष की अभिव्यक्ति अवश्य होती है। सुख और दुःख के कारण अनेक ध्वनियाँ हमारे मुख से निसृत होती हैं। इन ध्वनियों में जो विविधता आती है, वह भावों की विविधता का एक शरीर-जन्य (Physiological) परिणाम है।[१] ध्वनि की यही विविधता लयात्मक होकर संगीत का स्वरूप धारण कर लेती है। वस्तुतः संगीत भावों की प्रकृत भाषा का एक आदर्श रूप है और इसी प्रकृत भाषा में लोकगीत प्रकट होते है। लोकगीतों की अभिव्यक्ति अपने प्रारम्भिक रूप में संगीत कला को जन्म देती है। मुखरित स्वरों के साथ नृत्य, भावों को प्रकट करने वाली विभिन्न मुद्राएँ एवं शारीरिक हाव-भाव तथा वाद्य-संगीत लोकगीतों पर आधारित ह।

संगीत के पश्चात् भावों की अभिव्यक्ति के लिये शब्दों का माध्यम अधिक महत्व पूर्ण है। शब्द हमारी वाणी के वाहक है और जीवन के सामान्य व्यवहार में वाणी मनुष्य

१. Herbert Spencer, Literary Style and Music, page 40

की आशा-आकांक्षाओं को एक दूसरे के सम्मुख प्रकट करती है। अपनी आवश्यकताओं को व्यक्ति और समाज के सामने अभिव्यक्त करने के लिये हमारे मुख से जो ध्वनियाँ निकलती हैं, वे समूहबद्ध होकर सार्थकता ग्रहण करती हैं। वाणी के द्वारा मनुष्य चाहे तो अपने भावों को प्रकट कर सकता है किन्तु जीवन की कठोरता में विविध प्रतिबन्धात्मक परिस्थितियों में भावों को प्रकट करना उतना सरल नहीं है। मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ देखता है, सुनता है और अनुभव करता है उसकी प्रतिक्रिया को व्यक्त करना चाहता है। किन्तु समाज की मान्यता के विरूद्ध हृदयगत भावों को खुले रूप मे संकोच एवं भय के कारण प्रकट नही कर पाता। ऐसी स्थिति में भावों को प्रकट करने वाली भाषा अन्य मार्ग खोजती है और अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये मनुष्य संकेत एवं अन्योक्ति जैसी पद्धतियों को ग्रहण करता है।

लोकगीतों की भावना एकाकी रूप में कभी प्रकट नहीं होती। प्रकृति के सुन्दर एवं आकर्षक उपकरणों के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक देश का रमणीय वातावरण, वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, जन्म-भूमि के संस्कार एवं मनुष्य के चारों ओर फैली हुई सृष्टि की पूरी कहानी सिमट कर लोकगीतों मे समा जाती है और इनकी सफल अभिव्यंजना जितनी लोकगीतों में प्राप्त होती है उतनी साहित्य के उस क्षेत्र में प्राप्त होना सम्भव नहीं, जहाँ केवल शब्द-शिल्प द्वारा भावों का कलात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। लोकगीतों की सरल एवं स्वच्छन्द दुनियां में कला का प्रमुख स्वरूप सहजतया निर्मित होता है।

भारतीय लोकगीतों की परम्परा

संसार की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है। वैदिक युग में पुत्र-जन्म, यज्ञोपवीत तथा विवाह आदि उत्सवों पर गाये जाने वाले लोकगीतों का स्वरूप कैसा रहा होगा, यह निर्धारित करना बड़ा ही कठिन है। यज्ञ, उत्सव एवं पर्वों के समय स्त्रियों के द्वारा अपने कोमल कण्ठों से गीत गाकर मंगलमय प्रसंग में मनोरंजन की रोचकता उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य किया गया होगा किन्तु उसका निश्चित प्रमाण मिलना सम्भव नहीं है। वेदों में 'गाथा' एवं 'गाथिन्' (गानेवाला) शब्दों का प्रयोग देखकर गाथा को लोकगीत मांन लिया गया है। [१] विवाह आदि अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'रैभी' एवं नाराशंसी' तथा गाथा आदि शब्दों के नाम से प्रसिद्ध थे। [२] सूर्या के विवाह संस्कार के प्रसंग में रैभी एवं नाराशंसी शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है। किन्तु उक्त दोनों गाथाएँ हैं,

---

१ गाथा.... १. अग्नि मालिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्
गाथा वाङ्नाम.... ऋग्वेद....८।७१।१४।
२. युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथायोरौ रथ उरुयुगे
गाथा स्तोत्रेण.... फुट नोट, व्याख्या....ऋग्वेद ८।९८।९
२ डॉ० शिवशेखर मिश्र का लेख....'भारतीय संस्कृति में लोकगीतों की अभिव्याप्ति'
सम्मेलन-पत्रिका, लोक–संस्कृति, अंक; पृष्ठ १३९।

लोकगीत नही । 'गाथागीयते', गाथा गायी अवश्य जाती है किन्तु वह पुरोहित एवं ब्राह्मणों के द्वारा वैदिक मंत्रों की तरह गायी जाने वाली रचना है । रैभी अन्य वैदिक मंत्रों की तरह एक ऋचा है और नाराशंसी ऋचा में मनुष्य की स्तुति का समावेश है।[1] वैदिक गाथाओं के कुछ उदाहरण ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होते है । शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में दी गई गाथाओं में राजाओ के चरित्र का वर्णन मिलता है । वहाँ लोकगीतों की मूल भावना का अभाव है ।

वस्तुतः संस्कृत जैसी वर्ग-विशिष्ट की भाषा मे लोकगीतो का समावेश होना संभव भी नहीं है । साहित्यिक एवं पुरोहित वर्ग की भाषा जन-सामान्य के लिये पराई भाषा है और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारानुसार मृत-भाषा में पराई-भाषा में गल्प और गान संभव भी नहीं है । भाषा जब तक भावों के प्रवाह में बहा न ले जाय तब तक गान गल्प का आविर्भाव संभव नही हो सकता । सरल काव्य के रचयिता कालिदास एवं संस्कृत के गीतकार जयदेव भी बंगाली वैष्णवों को समता नही कर सकते । कालिदास का काव्य भी झरने की तरह सर्वांग रूप से नहीं बहता । उसका श्लोक अपने में ही सम्पूर्ण है, उसका श्लोक हीरे के टुकड़े के समान है । किन्तु नदी के समान कल-कल निनादिनी अविच्छिन्न धारा नही ।[2] लोकगीतों की अजस्र धारा को हमें संस्कृत के कूप-जल में नही, जन-जीवन को तरङ्गित करने वाली जन-भाषा में खोजना पड़ेगा । वेद, ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों में वर्णित यज्ञगाथा अथवा राजाओं के यशोगान मे लोकगीतों का प्रकृत स्वरूप दुर्लभ ही रहेगा । संस्कृत-साहित्य से लोकगीतों के अस्तित्व का केवल संकेत मिल सकता है । इस विषय की विस्तृत जानकारी हमें पाली, प्राकृत आदि जन-भाषाओ में अवश्य ही मिल सकती है । क्योंकि जन-जीवन के सम्पर्क की व्यापक आयोजना में लोकगीतों का पक्ष अछूता कैसे रह सकता है । बौद्ध साहित्य को सच्चे अर्थों में लोक-साहित्य की संज्ञा प्राप्त है । त्रिपिटकों में स्थान-स्थान पर सामान्य जन-जीवन का यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्र मिलता है । 'सुत्त निपात' में धनिय गोप के जीवन का चित्र एक गीत में प्रस्तुत किया गया है....

अब हे देव चाहे तो खूब बरसो ।
भात मेरा पक चुका है, दूध दुह लिया गया है,
गंडक नदी के तीर पर अपने स्वजनों के साथ मै वास करता हूँ

---

१ रैभीः— रैभ्यासीदनुदेयीनाराशंसी न्योचनी
नाराशंसीः— सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयेति परिष्कृतम् ऋग्वेद १०।८।५६।
व्याख्याः— रैभयः काश्चनर्चः रैभीः शंसति रैभन्तो वै देवाश्चर्षयश्च
स्वर्गलोकमायन् इत्यादि ब्राह्मण विहिता रेभ्यः
मनुष्याणां स्तुतयो नाराशंस्य सा नाराशंसीर्न्योचयी
गाथा गीयते इत्यादि ब्राह्मणोक्ता गाथा ।
नाराशंसी नोऽवतु प्रजाजे ऋग्वेद १०।१८२।
Vedic Research Institute Poona, Publication. Vol I

२ रवीन्द्रनाथ टैगोर....प्राचीन साहित्य (बंगला संस्करण) पृष्ठ ५५।५६।

कुटी छा ली है, आग सुलगा ली है, अब हे देव चाहो तो खूब बरसो।
मच्छर मक्खी यहां नही है, कछार में उगी घाँस को गाये चर रही हैं,
पानी भी पड़े तो वे उसे सह ले, अब है देव चाहो तो खूब बरसो।
मेरी ग्वालिन आज्ञाकारी और अचंचला है, वह चिरकाल की प्रियसंगिनो है,
उस के विषय में कोई पाप नहीं सुनता, अब हे देव चाहो तो खूब बरसो।
मेरे तरुण बैल और बछड़े है, गाभिन गाएं और तरुण बछड़े भी हैं,
सब के बीच वृषभराज भी है, खूंटे मजबूत गड़े है,
मुंज के पगहे नये और अच्छी तरह बटे हुए हैं।
बैल भी उन्हें नहीं तोड़ सकते हैं, अब हे देव चाहो तो खूब बरसो—[1]

उक्त गीत में लोक-गीत का एक प्रमुख लक्षण विद्यमान है। लोकगीतों में भावना की सरल एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति के साथ ही गीत-रचना-विधान में एक सुनिश्चित आधारभूत पंक्ति...'टेक' का बड़ा महत्व रहता है। टेक की पंक्तियाँ बार-बार दोहराई जाती हैं। 'अब हे देव चाहो तो बरसो' गीत की टेक है। बौद्ध साहित्य की थेरी-गाथाएँ लोकगीतों की कोटि में आती हैं। इनमें टेक एवं प्रश्नोत्तर-प्रणाली के अनेक उदाहरण मिलते हैं। थेरी गाथा के कुछ उद्धरण विचारणीय हैं...

—कालका भ्रमरवण्ण सदिसा वेल्लितग्गा मम मुद्धजा अहुँ....
ते जराय साणवाक सदिसा सच्चवादि वचनं अनञ्ञथा....२५२।
वासितो व सुरभिकरण्डको पुप्फपूरंमम उत्तमङ्गमु
तं जराय समलोम गन्धिकं सच्चवादी वचनं अनञ्ञथा....२५३।
कानन व सहति सुरोपितं कोच्छसूचिविचितग्ग सोभितं
तं जराय विरल तहि तहि सच्चवादि वचनं अनञ्ञथो....२५४।
सण्हगन्धक सुवण्ण मण्डितं सोभते सुवेणिहि अलङ्कतं
तं जराय खलति सिर कतं सच्चवादि वचनं अनञ्ञथा....२५५।

* मोर के रंग के समान काले जिनके अग्रभाग घुंघराले थे,
ऐसे किसी समय मेरे बाल थे
वही आज जरावस्था में जीर्ण सन के समान है,
सत्यवादी के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

* पुष्पा-भरणों से गुंथा हुआ मेरा केशपाश कभी चमेली के पुष्प की-सी गन्ध को वहन करता था।
उसी में आज जरा के कारण खरहे के रोआँ की सी दुर्गन्ध आती है,
सत्यवादी के....

* कंघी एवं चिमटियों से सजा हुआ मेरा सुविन्यस्त केश-पाश कभी अच्छे रोपे हुए सघन उपवन के समान सोभा पाता था।

[1] पालि-साहित्य का इतिहास....पृष्ठ २३७।

वही आज जरा-ग्रस्त होकर तहां-तहां बाल टूटने के कारण विरल हो गया है। सत्यवादी के....

* सोने के आभूषणों में सजी हुई महकती हुई चोटियों से गुंथा हुआ कभी मेरा सिर रहा करता था। वही आज जरावस्था में भग्न और विनमित है।

२७० क्रमांक तक सत्यवादी के वचन मिथ्या नहीं होते....टेक, गीत को आगे बढाती है।[1]

प्रश्नोत्तर प्रणाली का उदाहरण—

विपुल अन्नञ्च पानञ्च समणानं पवेच्छस
रोहिणी दानि पुच्छामि केन ते समणा पिया....२७२।
अकम्मकामा आलसा परदतोपजीवनो
आसंसुका सादुकामा केन ते समणा पिया....२७३।
कम्मकामा अनलसा कम्मसेठस्स कारका
रोगदोसं पजहन्त तेन मे समणा पिया....२७५।
तीणि पापस्स मूलानि धुनन्ति सुचिकारिनो
सब्ब पापं पहीनेसं तेन मे समणा पिया....२७६।
काय कम्मं सुचि नेसं वचीकम्मञ्च तादिसं
मनो कम्मं सुचिनेसं तेन मे समणा पिया २७७।[2]

* श्रमणों को तू बहुत अन्नपानादि दान करती है
रोहिणी मैं तुमसे पूछता हूँ....श्रमण तुम्हें इतने प्रिय क्यों हैं ?

* देख, ये भिक्षु श्रम नहीं करते, आलसी हैं, दूसरों का अन्न खाने वाले हैं।
लोभी और स्वादिष्ट भोजन के लालची हैं,
फिर भी ये श्रमण तुम्हें क्यों प्रिय हैं ?

* वे श्रमशील हैं अप्रमादी हैं, श्रेष्ठ कर्म करने वाले हैं
उनमें तृष्णा नहीं है, द्वेष नहीं है, इसीलिये श्रमण मुझे प्रिय हैं।

* तीनों प्रकार के पापों की जड़ काटकर उनकी देह विशुद्ध है,
उनका चित्त शुद्ध है।
सब पाप उनके प्रहीण हो गये हैं, इसीलिये श्रमण मुझे प्रिय है।

* कायिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, वाचिक कर्म उनके विशुद्ध हैं,
मानसिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, इसीलिये श्रमण मुझे प्रिय हैं....[3]

---

१ थेरीगाथा, वीसतिनिपातो, राहुल सांस्कृत्यायन, आनन्द कौसल्यायन एवं जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, संस्करण....१९३७....पृष्ठ २३।२४।

२ वही, पृष्ठ २४।२५।

३ हिन्दी अनुवाद; भरतसिंह उपाध्याय कृत 'थेरी गाथाएँ' पर आधारित है।

गीतों के रूप में व्यंजित हुई भिक्षुणियों की भावना का आधार केवल उपदेश अथवा अपने सम्प्रदाय के विचारों का प्रचारित करने का प्रयास मात्र ही नहीं माना जावेगा, यहां वैयक्तिक ध्वनि अवश्य है। किन्तु जीवन की गहनतम अनुभूतियों के उभार में नारी की स्वतः स्फूर्जित प्रेरणा भी कार्य करती है और इसी कारण भावों का निर्मल एवं प्रकृत स्वरूप सामने आ सका है। गीतों के भावो की पृष्ठभूमि में भने ही बौद्ध-दर्शन की छाया का प्रभाव हो किन्तु भावों की व्यंजना एवं गीतो की रचना-शैली लोकगीतों के अधिक निकट है। पालि-साहित्य में लोकगीतों की भावना का भंडार सुरक्षित है। प्राकृत-भाषा में भी इसकी कमी नही है। विक्रम की तीसरी शताब्दी में जिस समय प्राकृत का प्रचार अधिक व्यापक हो गया था लोकगीतों की उन्नति में भी एक गति आई। 'हाल' की गाथाशप्तसती में लोक-साहित्य के माधुर्य का रसास्वादन किया जा सकता है। प्राकृत की गाथाओं के साथ ही अपभ्रंश साहित्य मे लोकगीतो की परम्परा का अधिक विकास हुआ। बौद्ध, सिद्धों के गान एवं जैन कवियों की अनेक रचनाओं में आधुनिक लोकगीतों की विभिन्न प्रवृत्तियों के दर्शन होने लगते हैं। गीतकथाओं का प्राचीन रूप गुणाढ्य की वृहतकथा-मंजरी में बीज-रूप से विद्यमान है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पद्यबद्ध कथाओं की परम्परा का श्रीगणेश यहीं से मानते है।[१] लोकगीत एवं कथागीतों की रुढ़ियों को अपभ्रंश काल के जैन कवि एवं हिन्दी के प्रारम्भिक कवियों ने ग्रहण किया है। लोकगीतों में फाग एवं नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीतों के प्रचलन का प्रमाण ११वीं शताब्दी से मिलने लगता है। 'चर्चरी-गान' की प्रथा का प्रचार तो सम्राट हर्ष के समय में भी था। बाण भट्ट एवं हर्ष ने रत्नावली में चर्चरी गान का उल्लेख किया है। जिनरत्न सूरि ने चर्चरी गान सुना था। उन्होंने अपनी रचनाओं में लोकप्रसिद्ध इस चर्चरी गान एवं रासक जाति के गीतों का सहारा लिया। चर्चरी उन दिनों बडे चाव से गाई जाती थी। यह चर्चरी गान वसन्तकालीन लोकगीत होना चाहिये जो नृत्य के साथ गाया जाता था। कबीर ने भी लोकगीत की इस पद्धति को अपनाकर चांचर नामक अध्याय बीजक में दिया है। चर्चरी की तरह 'फाग' जैसे प्रसिद्ध लोकगीतों का भी जैन कवियों ने प्रयोग किया है।[२] ११वी सदी में क्षेमेन्द्र ने अपने आसपास गान सुन रखे थे। दशावतार का वर्णन करते समय इन्ही लौकिक गीतों का उन्होंने अनुसरण किया था।[३]

हिन्दी के आदि-काल से लेकर सूर और तुलसी के युग तक लोक गीतों की निम्न-लिखित पद्धतियां प्राप्त होती हैं—

१. फाग....होली के गीत २. चर्चरी (चाँचर)....नृत्य-गीत
३. बधावा ४. सोहर....पुत्र जन्म के गीत
५. मंगल-काव्य...विवाह के गीत
६. गारी (गाली) ७. अचरियाँ (भजन)

---

१ हिन्दी साहित्य का आदि काल....पृष्ठ ५६

२ (क) राजशेखर कृत..'नेमिनाथ फागु' (ख) पद्म सूरि कृत, 'थूलभद्द फागु'..आदि

३ हिन्दी-साहित्य का आदिकाल....पृष्ठ १०८।

फाग और चर्चरी गान का उल्लेख किया जा चुका है। बधावा मंगल-मय प्रसंग पर गाये जाने वाले गीतों का नाम है। जन्म और विवाह के अवसर पर मालवा और राजस्थान में बधावे गाये जाते हैं। बीसलदेव रासो में मंगलाचार एवं बधावे का उल्लेख आता है।[1] विवाह गीतों की प्राचीन परम्परा के आधार पर कबीर और तुलसी ने भी अपने आसपास के लोक-प्रचलित विनोदों और काव्यरूपों को अपनाया होगा। तुलसी द्वारा रचित 'जानकी-मंगल' एवं 'पार्वती-मंगल' प्रसिद्ध हैं ही। मंगलकाव्य वस्तुतः विवाह काव्य है। इनकी परम्परा बंगाल में भी प्राप्त होती है। जान पड़ता है कि तुलसी के पूर्व इस प्रकार के मंगल काव्य बहुत लिखे जाते थे।[2] कबीर के नाम से भी 'आदिमंगल', 'अनादिमंगल' एवं 'अगाध-मंगल' काव्य मिलते हैं। पृथ्वीराज रासो के ४७वें समय में विनय मंगल के रूप में विवाह काव्य का कुछ अंश विद्यमान है। यह तो निश्चित ही है कि तुलसी और कबीर ने लोकगीतों की परम्परा को अपनाया है। काव्य के विभिन्न रूपों के प्रयोग में से कबीर के बीजक में प्राप्त निम्नलिखित गीत पद्धतियां भी लोकगीतों की देन हैं।[3]

१. वसन्त (ऋतुओं के गीत) २. हिंडोला (झूले के गीत)
३. चाँचर (फाग) ४. साखी (शिक्षाप्रद उपदेश)
५. बेली (उद्बोधन के गीत) ६. (बिरहुली...सांप का विष उतारने वाला गीत, गारुड़ मंत्र)

हिंडोला, सावन एवं वर्षाकालीन लोकगीतों को कहा जाता है। झूलते समय हिंडोला गान गाया जाता है। साखी का छन्द दोहा है। सन्तों ने पूर्व पुरुषों के अनन्त अनुभवों को अपनी छाप लगाकर स्वीकार किया है। इस प्रकार कबीर, तुलसी आदि सन्तों की साखियों में—दोहों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति आ गई है। किन्तु साखी आज भी लोकगीतों की एक पद्धति बनी हुई है, जिसमें जन-जीवन की विभिन्न अनुभूतियां प्रकट होती हैं।[4] सर्प-काटने पर उसके विष उतारने के गीत को 'ताखा' कहते हैं। बिरहुली भी इस प्रकार का गान रहा होगा। बुन्देलखण्ड की काछी और कोलि जाति के लोग आज भी सर्प का विष उतारने के लिये बिसत्रेल के साथ ताखा गाते हैं। 'ढाक', एक प्रकार की ढोलक बजती है, और सर्पों का आह्वान किया जाता है :—

छोटे छोटे छौना नाग के हो....नाग के. निकरे औस चाटा...तो...
जाने मेरे फन में पग धरौ पग धरत ही डस लये हो...डस लये
बदन गये कुम्लाय...तौ जाने मेरे फन पै पग धरौ
कौन दिसन के बायगी...हो कौन दिसन के मोर...

१ घर घर गुड़ी उछली, होवउ बधांवउ नगरी बार।
२ हिन्दी-साहित्य का आदिकाल....पृष्ठ १०३।
३ बीजक-(रामनारायण लाल अग्रवाल द्वारा प्रकाशित १९५४) पृष्ठ २७१-३०५।
४ के बोलो भाई बम, बोलो भाई बम भोले।
माई बाप के लाड़ले पिये कटोरन दूध,
गंगाजी की गेल में भये छपेटा गाल। के बोलो भाई बम

सर्प—काटे मनुष्य को जिस समय लहर आती है यह ताखा ढाक की द्रुत गति के साथ गाया जाता है। जन—सामान्य की ऐसी धारणा है कि यदि काले तक्षकवंशीय नाग ने काटा होगा तो वह गीत की ध्वनि के वशीकरण में खिचा चला आवेगा। संभवतः तक्षक नाग के नाम से ही सर्प उतारने के गीत का नाम ताखा प्रचलित हुआ है। कबीर के युग का विरहुली एवं आज के युग का ताखा लोकगीतों के रूप में द्रविड़ों की नागपूजा की परम्परा को सुरक्षित किये हुए हैं।

कबीर आदि सन्तों ने जहां लोकभावना के अनुकूल रचनाएं की हैं वहां उनका व्यक्ति—परक काव्य भी लोकगीतों में लीन हो गया है। कबीर एवं तुलसी की प्रसिद्धि के कारण लोकगीतों के अज्ञात रचयिताओं ने इन दोनों सन्तों के नाम पर गीतों का निर्माण कर डाला। मालवी भाषा में कबीर और तुलसी के नाम पर अनेक गीत प्रचलित है। वस्तुतः ये गीत इन कवियों द्वारा नही रचे गये है किन्तु लोक—परम्परा में हिन्दी के महान सन्त कवियों का साधारणीकरण हो गया है।[1] वस्तुतः मध्य—युग की हिन्दी रचनाओं में लोकगीतों के व्यापक प्रभाव को ढूंढा जा सकता है। संदेसरासक, बीसलदेव रासो, ढोला मारू रा दूहा, परमार—रासो (आल्हा) आदि रचनाएं तत्कालीन लोकगीत एवं कथागीतों का विकसित एवं साहित्यिक रूप हैं। बीसलदेव रासो एवं आल्हा तो गाने के लिये ही लिखे गये हैं। इनकी मौखिक परम्परा आज भी जीवित है। लिपिबद्ध साहित्य एवं काव्य का अस्तित्व तो कागज एवं पुस्तकों में सिमट कर शिक्षित वर्ग—विशेष एवं युग—विशेष तक सीमित रहता है। किन्तु लोकगीतों का अस्तित्व उसकी अन्तःशक्ति के कारण जन—मानस पर छाया ही रहती है। युग के युग काल की अनन्तता में 'भूत'—बीते हुए क्षण बनकर समा गये किन्तु लोकगीतों की अक्षुण्ण परम्परा में भूत, भविष्य और वर्तमान के लिये कोई विभाजक सीमा—रेखा नहीं बन सकी है। यही लोकगीतों की स्पन्दित सत्ता परम्परा से आबद्ध होकर भी चिरनवीन है, चिरन्तन है।

—राधाजी के हात में अजब फूल एक सेत
राधाजी बूजें क्रिस्न से क्रिस्न नाम नहीं लेत। के बोलो भाई बम—
घूरे पे की रुखड़ी चौरे चकरे पात, के हमु देखी नगर अजोद्या के सन्तन के पास

—ग्राम सिकाटा (जिला भिण्ड) से प्राप्त एक गीत
बायगी—विष उतारने वाला तांत्रिक
मोर—सर्प के मस्तष्क की मणि (मालवी शब्द—मोरां)

१ देखे तृतीय अध्याय (ई) 'कबीर और तुलसी का मालवीकरण' शीर्षक में विस्तृत विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय

विषय प्रवेश

१ मालवा की धरती

२ मालवा की भौगोलिक स्थिति एवं सीमाएँ

३ मालवा नाम की प्राचीनता

४ मालवा की जन-जातियाँ

५ मालवी लोक-साहित्य की स्थिति

६ मालवी लोक-साहित्य का संकलन-कार्य

७ मालव लोक-साहित्य-परिषद्

८ मालवी और उसके लोकगीत

९ मालवी लोकगीतों का वर्गीकरण

———

मालवा की धरती

मालव जनपद के लोग अन्य पृथ्वी-पुत्रों की तरह धरती को माता कहकर पुकारते हैं। यह वही माता है जिसके धैर्य की तपस्या से मानव-शिशुओं का पोषण एवं विकास होता है। मालव-भूमि की यह विशेषता रही है कि धान्य की विपुलता के कारण यहाँ के लोगों के लिये मालव की उर्वरा भूमि ही इस प्रदेश का वरदान है। प्रकृति के इस हरे-भरे एवं रम्य-प्रदेश, मालव की भूमि पर ही तो प्रसन्न होकर सन्त कबीर ने अपने अनुभूतिजन्य विचार व्यक्त किये थे...

"देश मालवा गहन गभीर, डग-डग रोटी पग-पग नीर..."[1]

कबीर की यह अनुभूति अपने में एक शाश्वत सत्य को छिपाये हुए है। रत्नगर्भा मालव-मही के गर्भ से पत्थरों के अन्तराल को चीरकर जीवन के आधार धान्यकणों को बटोर कर मालव का आदिवासी भील आज भी उल्लास के साथ गा उठता है:—

'मालवे न धरती, सेली, भली, गूजर
महान महोरती बिन पानी, मक्का पकावे
ने पानी जुआरियो पाकावे, महान महोरती..."

परिश्रम से चूर होकर भी मालवे का भील अपनी महान महोरती... महान महिमा-वती धरती माता के गुणों का गान करने से नहीं अघाता। वास्तव में मालव की धरती 'सेली' है...उपजाऊ है बड़ी भली है। क्या यह उसकी महान विशेषता नहीं है कि जहाँ बिना पानी के मक्का पक जाती है और यदि थोड़ी सी वर्षा भी हो जाये तो जुआर की खेती भी लहलहा उठती है।

विन्ध्य की पर्वतमाला के आंचल में बसे इस भू-भाग की सम्पन्नता एवं उर्वरा-शक्ति प्रतीक बनकर मालव शब्द में समा गई है। जहां भूमि का वैभव एवं धन-धान्य की विपुलता का भाव प्रकट करना होता है, वहाँ मालव को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है। महाकवि तुलसी ने मरुभूमि की नीरसता एवं शुष्कता के विपरीत हरियाली एवं धरती के शस्य-श्यामल स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिये मालव का प्रतीक रूप में उल्लेख किया है।[2] मालवे की धरती में प्रकृति-प्रदत्त विशेषताओं के कारण अनन्त वैभव एवं

---

१ कबीर ग्रन्थावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) पृष्ठ १०९

२ कासीमग सुरसुरी क्रम नासा। मरु मालव महिदेव गवासा ॥

—रामचरित मानस,—बालकाण्ड।

महिमा का समावेश हो गया है। यहाँ की मिट्टी की श्यामता ही उसकी विशेषता है। काली मिट्टी के साथ ही मानो मालवा का नाम जुड़ा हुआ है। काले रंग के अतिरिक्त विविध रंग की मिट्टी भी यहां अप्राप्य नहीं हैं किन्तु उसमें भी एक विशेष गुण विद्यमान है कि सील (moistuse) को सुरक्षित रखने की उसमें क्षमता है। इस कारण उपज के लिये सिंचाई की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी रेतीली एवं अनुपजाऊ भूमि के लिये वांछनीय है। भूमि की गहनता उसका उर्वरा बना देती है और खाद आदि कृत्रिम शक्ति को प्रदान करने की आवश्यकता नही रहती।[1]

लोक-भावनाओं में भी मालव-भूमि की महत्ता को स्वीकार किया गया है। मालव की मिट्टी में उपजने वाली मेंहदी का रंग गुजरात तक पहुँच जाता है।[2] इसी तरह गुजराती ग्राम-वधू को मालव देश देखने की लालसा निरन्तर बनी रहती है।[3] राजस्थानी महिलाएँ वर और वधू के लिये विवाह के अवसर पर उबटन आदि के निमित्त मालवे में उत्पन्न होने वाली अच्छे रंग की हल्दी का उल्लेख करती हैं।[4] मालव के सम्बन्ध में केवल एक स्थान पर ऐसी उक्ति आती है, जहां हृदय का आवेश रागात्मक ईर्ष्या के रूप में प्रकट होता है। किन्तु वहां भी मरु-प्रदेश के सम्बन्ध में किये गये कटाक्ष के उत्तर देने की प्रवृति के साथ ही अपने प्रियतम को लुभानेवाली मालवी स्त्री के प्रति रोष की भावना है, मालव प्रदेश के प्रति नहीं।[5] ढोला की प्रियतमा जिस प्रकार अपने प्रियतम के कारण मालव के प्रति अच्छी भावना नहीं रखती, मालव के मांडवगढ़ में प्रियतम का समीप्य प्राप्त करने की कामना के कारण रूपमती का मन सदा मालवे की ओर ही लगा रहता है।[6]

मालवा की भौगोलिक स्थिति एवं सीमाएँ

मालव शब्द उन्नत भूमि का सूचक है।[7] विन्ध्य पर्वत के उत्तरी आंचल में फैला हुआ विस्तृत पठार सम्पूर्ण मध्यभारत में उन्नत खण्ड बनकर अपनी भौगोलिक सीमा

१ Physical basis of Geography of India, Vol II, by H. L. Chhibber, page 208.

२ मेंदी तो वावी मालवे, ऐनो रंग गयो गुजरात
मेंदी रंग लाग्यो रे.... रढियाली रात; भाग १, पृष्ठ १७।

३ दादे नो जोयो देश मालवो रे..... चूंदड़ी; भाग २, पृष्ठ ५०।

४ म्हारी हल्दी रो रंग सुरंग
निपजे मालवे........राजस्थानी लोकगीत; पृष्ठ १६।

५ बालूं बाबा देसड़ो, ज्यां पाणी सेवार
ना पणियारी झूलसे ना कुवे लयकार,,....ढोला मारु रा दूहा; संख्या ६४।

६ रूपमती एवं बाजबहादुर की प्रणय-कथा के सम्बन्ध में लोक-प्रचलित दोहा....
'चित चन्देरी मन मालवे हियो हाड़ोती माय
पलंग बिछाऊं रणत-भंवर में पोढूं मांडव मांय.....,

७ मालमुन्नत भूतले।

निर्धारित करता है। 'मलय' शब्द की तरह मालव भी उच्च भूमि अथवा पहाड़ी–क्षेत्र के भाव को प्रकट करता है।[१] यही पठार मालव की स्वाभाविक सीमा का बोध करता है, फिर भी समय-सयम पर राजनैतिक हलचलो के कारण मालव की सीमाएं बदलती रही हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने आधुनिक मालव के विस्तार एवं सीमाओ के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि मध्य-भारतीय एजेन्सी के सम्पूर्ण भूभाग के साथ ही मालवा का क्षेत्र विस्तार दक्षिण में नर्मदा तक, उत्तर में चम्बल, पश्चिम में गुजराज एवं पूर्व में बुन्देलखण्ड तक माना जावेगा।[२] स्मिथ महोदय द्वारा मालव प्रदेश की सीमाओं का जो उल्लेख किया है वह अंग्रेजो द्वारा राजनैतिक एवं प्रशासकीय दृष्टि से निश्चित मध्य–भारत क्षेत्र की व्यापकता को लिये हुए है किन्तु मालव की भौगोलिक स्थिति का यहां केवल स्थूल रूप से ही परिचय होता है—इन्साइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका में मालव की सीमा के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण होता है। पठार के अतिरिक्त विन्ध्याचल और नर्मदा उपत्यका के प्रदेश निमाड़ को भी मालवा में सम्मिलित कर लिया गया है।[3] वस्तुतः निमाड़ ही मालव की दक्षिण सीमा रेखा है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सन् १९४८ में जब मध्य–भारत का निर्माण हुआ तब राजनैतिक सुविधा की दृष्टि से अंग्रेजों द्वारा सीमित मध्य–भारत की प्रादेशिक स्थिति को ही स्वीकार कर लिया गया। भोपाल आदि मालव से संबंधित प्रदेश राजनैतिक दृष्टि से अपना अलग महत्व रखते थे, किन्तु यहां ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को ध्यान मे रखकर मालव प्रदेश के क्षेत्र विस्तार और सीमाओ पर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि राजनैतिक धरातल पर निर्धारित की गई सीमा की महत्ता स्वाभाविक होने के कारण प्रदेश की एकात्मकता के साथ ही विकास की प्रेरणा को लेकर चलती है।

मालव की सांस्कृतिक सीमाओं की कुछ निश्चित मान्यताएं रही है। परन्तु ये सीमाएं समय–समय पर बदलती रही हैं। मुगलकाल के समय की सीमाओं की रूपरेखा और उसका निश्चित विवरण तो प्राप्त होता है किन्तु मराठों के आधिपत्य काल में मालव की राजनैतिक एकता समाप्त हो गई और उसकी सीमाएं भी पूर्णतया अनिश्चित बनी

१ The Age of Imperial Unity, page 163.

२ Malwa the extensive region now included the formost part in the Central India Agency, and lying between Narbada on the south, the Chambal on the north, Gujrat on the west and Bundel–khand on the east.

—Oxford History of india, Page 265.

३ Strictly, the name is confirmed to the hilly table–land bounded south by Vindhya–ranges which drain north into the river Chambal but it has has been extended to include Narbada Valley further in south.

Encyclopaedia Britanica; page, 747.

रहीं। यहां अंग्रेजो के आगमन के पश्चात् सीमाओं की सही जानकारी प्रस्तुत करना अनिवार्य है। डॉ० यदुनाथ सरकार ने मुगल-कालीन मालवा की सीमाओं के संबंध में लिखा है कि यह प्रदेश उत्तर में यमुना नदी से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ है। इसके पश्चिम में चम्बल के पार राजपूताना था और पूर्व में बुंदेलखण्ड की सीमा मालवा से लगी हुई थी। बेतवा इसकी सीमा रेखा थी।[1]

राजनैतिक सीमाएं तो बदलती रहती हैं, परन्तु भौगोलिक और लौकिक सीमाएं उतनी सरलता से नहीं। जहां तक जन, भाषा और संस्कृति का प्रश्न है, आज मालव की उत्तरी सीमा न तो यमुना नदी हो हो सकती है, और न पश्चिम में स्थित चम्बल ही। मध्य-भारत एवं उसके संलग्न प्रदेशों के मानचित्रों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट समझा जा सकेगा कि मालव की प्रकृत स्थिति का स्वरूप कैसा है। नवीन मध्य-प्रदेश में मध्य-भारत क १६ जिलों में से शिवपुरी, गुना, भेलसा, राजगढ, शाजापुर, देवास, इन्दौर, उज्जैन, मन्दसौर, रतलाम, झाबुआ धार आदि १२ जिले मालवा के पठार पर स्थित हैं। भोपाल राज्य भी मालवा का अविभाज्य अंग है। होशंगाबाद का जिला सन १८१३ तक भोपाल राज्य का हो अंग था। और वस्तुतः यह भाग भी नर्मदा की घाटी में स्थित मालव का ही भूभाग है। विन्ध्याचल के दक्षिण में स्थित नर्मदा नदी की उपत्यका का एवं सत्तपुड़ा के बीच का प्रदेश मालव के पठार के नीचे होने हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से दक्षिण मालव की परिसोमा में सम्मिलित होगा। शिवपुरी जिले का उत्तरी भाग मालवे में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिये। वैसे शिवपुरी नगर की स्थिति मालवा पठार की उत्तरी सीमा पर है, किन्तु नगर एवं उसके उत्तर का सम्पूर्ण क्षेत्र ग्वालियर और आगरा से ही शासित होता रहा है। शिवपुरी जिले के कोलारस एवं पिछोर आदि तहसील के क्षेत्र मालव की उतरो सीमा के अन्तर्गत आते हैं। इसी तरह मन्दसौर जिले के उत्तरी क्षेत्र में सिंगोली एवं रतनगढ के घाट के उत्तर का क्षेत्र मेवाड़ का अविभाज्य अंग है। गुंजाल नदी के पश्चिमोत्तर में स्थित भूभाग एवं जावद तहसील के अठाना का उत्तरी हिस्सा भी मालवा में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। मध्य-भारत के क्षेत्र में जिस तरह राजस्थान के कुछ भूभाग सम्मिलित हैं, राजस्थान में मालव का हिस्सा मिला हुआ है। राजस्थान को भूतपूर्व टोंक रियासत का सिरज, पिड़ावा और छबड़ा आदि क्षेत्र मालवा का ही एक भाग है। इसी तरह मन्दसौर और शाजापुर जिले के मध्य में स्थित भूतपूर्व झालावाड़ राज्य एवं कोटा राज्य मालव की निजामतें मालवी क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं।[2]

मालव की प्रमुख नदियों में चम्बल, क्षिप्रा, बेतवा, छोटी काली सिंध, बड़ी काली सिंध, पार्वती, शिवना एवं महा नदी आदि प्रमुख हैं किन्तु सीमाओं के निर्धारण में बेतवा, नर्मदा और चम्बल ही महत्व-पूर्ण स्थान रखती हैं। बेतवा नदी मालव की पूर्वी सीमा को

---

१ शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब का हिन्दी रूपान्तर; पृष्ठ ५४३।

२ मालवा की भौगोलिक सीमाओं पर महाराज कुमार डॉ० रघुवीरसिंह द्वारा सीमा कमीशन को प्रस्तुत किये गये स्मृति-पत्र The geographical boundries of the malwa states में विस्तार के साथ विचार किया है।

बनाती हैं। बेतवा के पश्चिमीय तट पर बसे हुए भेलसा, गुना, और शिवपुरी जिले के पछोर का क्षेत्र मालवा का भू-भाग है। बेतवा के पूर्व में बुन्देलखण्ड स्थित है। यही नदी मालवा और बुन्देलखण्ड के मध्य सीमा-रेखा का कार्य करती है और इसीलिये मध्य-युग के इतिहास में इस नदी का नाम कहीं कहीं पर 'मालव नदी' दिया गया है [१]। नर्मदा मान्धाता ओंकारेश्वर से लेकर भोपाल राज्य के उदयपुरा क्षेत्र तक दक्षिण की सीमा निर्धारित करती है। चम्बल और पार्वती मालव के कुछ पश्चिमोत्तर क्षेत्र को राजस्थान से अलग करती है। पश्चिम में माही नदी बाँसवाड़ा और मालवी क्षेत्र के बीच की सीमा बनाती है।

मालव नाम की प्राचीनता

वर्तमान मालव की स्थापना कब हुई, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रदेश के विभिन्न भागों के लिये अवन्ती, उज्जयिनी, आकर-अवन्ती एवं दशपुर आदि नामों का उल्लेख मिलता है। सिकन्दर के समय से लेकर छठी शताब्दी तक इस प्रदेश का नाम मालवा नही था, यह निश्चित है। मालव गणो की एक शाखा 'औलीकरो' का शासन आधुनिक मालवा के दशपुर प्रदेश पर सन् ४०४ ई० के लगभग स्थापित हो चुका था। गंगानगर से प्राप्त नरवर्मन के शिलालेख से यह पता चलता है कि औलीकरों की यह शाखा पुष्कर्ण (जौधपुर के निकट का क्षेत्र) से यहाँ आई थी [२] हूणों को परास्त करने वाला प्रसिद्ध नृपति यशोधर्मन इसी परम्परा का व्यक्ति था। किन्तु उस समय भी अवन्ती, दशपुर एवं मालव भिन्न प्रदेश ही माने जाते रहे। संभवतः उस समय मारवाड़ एवं ढूँढाड़ क्षेत्र ही मालव कहलाता था। क्योंकि 'मालवानां जयः' के सिक्के प्राचीन कर्कोटक नगर एवं नगरी आदि उसी क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं। [३] अवन्ती प्रदेश के शासक के लिये मालवपति की संज्ञा सर्वप्रथम वाकाटक राजा, पृथ्वीसेन द्वितीय के बालाघाट से प्राप्त शिलालेख में मिलती है। पृथ्वीसेन द्वितीय का समय ५८० ईसवीं के लगभग रहा है। [४] इसके पश्चात् सम्राट हर्ष के समकालीन बाण भट्ट ने देवगुप्त के लिये भी मालवपति शब्द का प्रयोग किया है। [५] मुंज और भोज के समय से अर्थात् नवीं शताब्दी से लेकर तेरहवी शताब्दी के बीच यह प्रदेश मालव नाम से प्रसिद्ध हो गया था, यह गुजरात प्रदेश के विभिन्न भागों में प्राप्त शिलालेखों से सिद्ध हो जाता है। [६]

१ The Age of Imperial Kanauj; Page 95.

२ New History of the Indion People; Vol. II Page 181
(Bhartiye Itihas Parishad Publication)

३ The Age of Imperial Unity, Page 165.

४ कोशलमेकलमालवाधिपतिर भ्यर्चित शासनस्य, E.I.IX,No 36, P. 271

५ हर्ष चरित पृष्ठ १७८।

६–१. अपरन्च अत्रा गमन्मालवदेशे तो ऽ मी....खम्भात के चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर में प्राप्त शिलालेख वि० स० १३५२।

२. Historical Inscriptions of Gujrat; Part III, Page 93.

३. मालवपति बल्लालमाध्वान् वि० सं० १२९७: आबू के परमार राजा यशोधवल ने मालव राज बल्लाल को बन्दी बनाया था। देलवाड़ा मन्दिर में प्राप्त शिला लेख; वही लेख २०६, पृष्ठ ६।

मालव की जन-जातियाँ

मालव की भूमि प्राचीनकाल से ही अनेक संस्कृतियों के संगम की क्रीड़ा-स्थली रही है। भूमि की उर्वरा-शक्ति एवं रत्नगर्भा महिमा ने अनेक जातियों को अपनी क्रोड़ में आकर्षित किया है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर वैदिक, जैन एवं बौद्धकालीन इतिहास की परम्परा एवं सांस्कृतिक धाराओं के उद्‌गम एवं सह-विलीनीकरण का आज अलग से विश्लेषण करना असम्भव है, विभिन्न युगो के सांस्कृतिक आदान-प्रदान का लेखा-जोखा देकर मालवा में बसने वाली अनेक जातियो का विस्तृत परिचय प्राप्त कर लेना अत्यन्त ही कठिन है। वर्तमान मालवा के क्षेत्र में बसने वाली जातियो की परम्परा में प्राचीन युग की जन-जातियो का इतिहास भले ही अप्राप्य हो किन्तु जो कुछ भी लिखित प्रमाण उपलब्ध हैं, उनसे यह सहज ही सिद्ध होता है कि आज की अधिकांश जातियाँ मालव के संलग्न प्रदेश गुजरात, मेवाड़, मारवाड़ से आकर बसी है, मॉलकम के अनुसार ब्राह्मण वर्ग की उपजाति के 'छन्याती' (छः जाति के ब्राह्मण दायमा, पारीख, गुजर्रगौड़, सारस्वत, सखवाल, खण्डेलवाल) लोग अपने को मालवी ब्राह्मण कहकर इस प्रदेश के शाश्वत निवासी होने का दावा करते हैं। [1] किन्तु ये ब्राह्मण जातियाँ भी अन्य जातियों की तरह गुजरात और राजस्थान से आई हैं।

गुजरात से आने वाली जाति का प्रथम प्रमाण हमें वत्स-भट्‌टी की प्रशस्ति में प्राप्त होता है। रेशमी वस्त्रों का व्यवसाय करने वाली बुनकरों की यह पटवा जाती थी। मन्दसौर में सम्राट यशोधर्मन् के समय में पटवा व्यापारियो ने सूर्य का एक विशाल मन्दिर बनवाया था [2] पटवाओं के पश्चात् गुजरात से आकर मालवा में बसने वाली दूसरी जाति नागर ब्राह्मणों की है। भोज के समय से ही इस जाति ने मालवा में आकर बसना आरम्भ कर दिया था। गुजरात के सोलंकी एवं चालुक्यों के राज्य के समय राज-कारण से नागर ब्राह्मण मालवा में आकर बस गये। रामपुरा (मन्दसौर जिला) की बावड़ी में से गुजराती भाषा का एक शिला-लेख मिला था, जिसमें यह उल्लेख है कि नड़ियाद से आये हुए नागर ब्राह्मणों ने यह बावड़ी बनवायी थी। सिद्धराज जयसिंह ने विक्रम सम्वत् १०६० में महादेव नाम के एक नागर ब्राह्मण को मालवा का सूबेदार बनाया। चाल्लुक्यों के राज्य के समय बड़नगर नागर ब्राह्मणों की बसावट का एक प्रमुख केन्द्र था। [3] सम्भव है कि नागर ब्राह्मणों के साथ ही गुजरात की अन्य जातियाँ भी इसी समय मालवा में आकर बस गईं हों। आज भी मालवा में गुजरात से आई हुई निम्नलिखित मध्यम-वर्गीय जातियाँ निवास करती हैं:—

---

१ Memoirs of Sir John Malcolm, Part II, Page 122. (O.E)

२ Fleet, C.I.I., VoL III pp. 81.

३ **मालवा उपर गुजराती प्रभाव शीर्षक लेख, बुद्धि प्रकाशनो; त्रैमासिक सन् १६३६**

नागर (ब्राह्मण एवं बनिया)
मोड़ (ब्राह्मण एवं बनिया)
श्रीमाली (ब्राह्मण एवं बनिया)
पारख (ब्राह्मण एवं बनिया)
औदीच्य (ब्राह्मण) एवं नीमा (बनिया) पटवा, नाई, माली, दर्जी, (सोलंकी) दर्जी, (मकवाना) आदि ।

इसी तरह माहेश्वरी, ओसवाल, पोरवाल, मोड़ एवं श्रीमाल आदि वणिक्–वर्ग की परम्परा भी गुजरात के श्रीमाली एवं मोढ़ेरा प्रदेश से जोड़ी जा सकती है [१] हिन्दुओ के शासन के पश्चात् मुसलमानों के राज्य में भी यहाँ अनेक जातियो का आगमन हुआ; मालवा पर मराठों का अधिकार हो जाने के पश्चात् दक्षिण से भी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण एवं कुछ निम्न-वर्गीय जातियाँ यहाँ आकर बस गई। तामिल और तेलगु की अपभ्रष्ट भाषा बोलने वाले बरगुण्डे एवं बन्सफोड़ भी मराठों के साथ शायद इसी समय आकर बसे हैं।

पेशवा ने जिस समय मालवा पर प्रथम बार आक्रमण किया; नागर ब्राह्मणों का शासन में अधिक वर्चस्व था। मुगल बादशाह की ओर से लड़ने वाले मालवा के सूबेदार गिरधर बहादुर तथा दया बहादुर नागर ब्राह्मण ही थे। [२] गुजराती ब्राह्मणों के अतिरिक्त राजस्थान एवं उत्तर भारत से आई हुई ब्राह्मण एवं वैश्यों की अनेक उप-जातियाँ मालव में विद्यमान हैं। मॉलकम ने मालव की ब्राह्मण जातियों के सम्बन्ध में विस्तृत परिचय देते हुए लिखा है कि जोधपुर के ब्राह्मण व्यापार करते हैं। उदयपुरी ब्राह्मण कृषि एवं गुजराती ब्राह्मण पूजा और व्यवसाय कर सम्पन्न जीवन व्यतीत करते हैं। इन ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मणों की ८४ उप-जातियाँ हैं; जो पन्द्रह पीढ़ियों से पूर्व गुजरात, उदयपुर, जोधपुर, जैपुर, एवं कन्नौज आदि प्रदेशों से आकर बसी हैं। [३] ब्राह्मण एवं व्यापारी वर्ग की जातियों के अतिरिक्त कृषि-जीवन से सम्बन्धित अनेक जन-जातियाँ हैं, जिन्होंने अकाल पड़ने के कारण जीविकोपार्जन के हेतु यहाँ की भूमि को अपना चिर निवास-स्थान बना लिया। विभिन्न धन्धों में लगी हुई जातियों के अतिरिक्त निम्न-लिखित जन-जातियाँ भी उल्लेखनीय हैं:—

* अहीर, आँजना, रजपूत, जाट, गूजर, मीना, देसवाली, मोघिया, सोन्धियाँ, कन्जर, एवं बनजारा आदि।
* बलई, बागरी, खटीक, लोधा, चमार, आदि।
* भील, भीलाला, बारेला, मानकर आदि।
* खाती, कुलमी (पाटीदार)

---

१ The Glory that was Gurjar desa, part III, page 22.

२ ई० सन् १७२८ के लगभग।

३ Memoirs of Sir John Malcolm, II, pp. 122.

* माली (गुजराती, मेवाड़ी, मारवाड़ी एवं पुरविया)
* नाईता, नायक, बनजारा, मुसलमान, (मेवाती, मुल्तानी पठान)
* काछी, कीर, कोरी, महार कहार आदि ।
* भोई, पारधी, धीमर, केवटिया, नावटिया आदि...[1]

इनमें अहीर आँजना आदि जातियाँ अपने को रजपूती वंश परम्परा से सम्बद्ध मानती हैं, किन्तु इनमें गोप-जीवन एवं कृषि-सभ्यता के अंकुर आज भी विद्यमान हैं, जिन्हें प्राचीन काल की आभीर संस्कृति से सम्बद्ध किया जा सकता है । जाट, कलोता गूजर, मोघिया, सोन्धिया आदि राजपूतों की उप-जातियाँ है । कञ्जर गूजरो पर आश्रित मंगतो की एक घुमन्तु जाति है । वैसे बञ्जारे भी घुमन्तु जीवन की जन-जातियों के अन्तर्गत आते है किन्तु अब ये व्यवस्थित होकर कृषि-जीवन व्यतीत करने लगते हैं ! मोघिया, सोन्धिया एवं कञ्जर आदि साहसी जातियाँ हैं । लूटपाट धाड़े (डाके) मारना इनकी आजीविका का प्रमुख साधन रहा है । मध्य-भारत बनने से पूर्व इन जातियों की गणना जरायम-पेशा के रूप में होती थी । भील एवं कञ्जरो में यह प्रवृत्ति आज भी विद्यमान है । फिर भी बदलते युग के साथ इन जातियों की अपराध-प्रवृत्ति में सुधार आ गया है और अधिकांश लोग कृषि-कर्म में रत होकर शान्त एवं व्यवस्थित जीवन बिताने लगे हैं ।

भील-भीलालों को सर जान मॉलकम ने राजपूतों की श्रेणी में रखा है । भिलाले तो स्पष्ट राजपूत ही हैं । [2] भीलो की भाषा को देखकर शायद मालकम ने उन्हें राजपूत मान लिया है किन्तु भील मालव की बनवासी आदिम जाति के अन्तर्गत ही माने जावेंगे । भीलालों के सम्पर्क में आने के कारण उनकी भाषा में आमूल परिवर्तन होकर उनकी मूल बोली सर्वथा लुप्त हो गई है । [3] बलाई-बागरी भी मालव की मूलनिवासी जातियाँ हैं । क्योंकि अन्य जातियों के सम्बन्ध में तो भाट-परम्परा में उनके बाहर से आने का उल्लेख मिलता है । किन्तु उक्त दोनों जातियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार के प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं । खाती और कुलमी पाटीदार मालवा की सम्पन्न एवं परिश्रमी कृषक जातियाँ हैं । इन्दौर, मन्दसौर एवं निमाड़ जिले में पाटीदारों की संख्या अधिक है । पाटीदार गुजरात से आये हैं । खाती जाति के कृषक पंजाब के खत्रियों से एवं काश्मीर से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं । नायता आदि राजपूत जातियाँ हैं जो मुसलिम शासन में मुसलमान बन गयी थीं, इस्लाम की सामान्य प्रवृत्तियाँ अपनाने के बाद भी इन जातियों ने यहाँ के लोक-जीवन की रुढ़ियों को नहीं छोड़ा है । पिंजारा, छीपा, रंगरेज, कूँजड़ा एवं बनजारा जाति की स्त्रियाँ आज भी इजार (चुस्त पायजामा) के ऊपर घाघरा (लहँगा) पहनती हैं । ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष हिन्दुओं जैसी पोषाक ही धारण करते हैं । मुलतानी मुसलमानों की दो शाखायें हैं । लोधा एवं बनजारा । लोधा पशु व्यापार एवं कृषि करते हैं । [4] काछी, कीर, कहार आदि

---

१ Census of Central India; 1901, Vol. XVI, Tabe. 17-18.
२ Memoirs of Sir John Malcolm II, pp. 155.
३ **देखें, बाग क्षेत्र के भील-भिलाले, प्रतिभा-निकेतन, उज्जैन की सर्वे-रिपोर्ट पृष्ठ ११।**
४ Memoirs of Sir John Malcolm, II, p p. 113.

जातियाँ बुन्देलखण्ड से आई हैं। पशु-पालन से अपनी आजीविका चलाने वाली गवली जाति बुन्देलखण्डी संस्कृतियो को लेकर मालव की संस्कृति में घुलमिल गई है। भोई, पारधी, धीमर एवं केवटिया आदि मत्स्य-व्यवसायी जातियाँ भी अपनी आदिम संस्कृति के सौन्दर्य को सुरक्षित रखे हुए है। इस प्रकार वैदिक, शैव, शाक्त एवं तांत्रिक-परम्पराओं के आधार पर विकसित, अन्ध-विश्वास, जादू-टोने, पूजा-अनुष्ठान, आचार-विचार एवं लोक-मान्यताओं के साथ ही गुजरात, राजस्थान, बुन्देलखण्ड एवं दक्षिण आदि निकटवर्ती क्षेत्रों से आई हुई जातियों की परम्परा और संस्कारों का एक विचित्र सहयोग लेकर मालव की लोक-संस्कृति एवं भाषा ने एक नवीन स्वरूप धारण कर लिया है। संस्कृति-समागम की मनोरम भूमि मालवा में प्राचीन काल से लेकर आज तक न जाने कितनी ही जातियाँ एवं परम्पराएं आकर इतनी घुलमिल गईं है कि लोक-जीवन में व्याप्त उनकी व्यक्तिगत विशेषताओ को विच्छिन्न कर अलग से देखना असम्भव है। व्यक्तिगत आचरण व्यवहार एवं प्रवृत्तियाँ लोक-जीवन के महा-समुद्र में इतनी विलींन हो गई है कि बूँदों के रूप में उनके अस्तित्व का महत्व ही नही रह जाता। मालव के हरे-भरे विस्तृत मैदानों एवं खेतों में सोने से गेहूँ और मक्का एवं चाँदी सी ज्वार की लहलहाती फसलों ने यहाँ जन-जीवन को एक विशिष्ट संस्कृति में ढाल दिया है। सम्पूर्ण भूभाग का सामान्य जीवन संघर्षो से बहुत कम टकराया है। अतः शान्ति-प्रियता एवं सौजन्य यहाँ के लोक-जीवन का शाश्वत स्वभाव बन गया है और कृषिकर्म मानवी जीवन का सुन्दर शिल्प एवं लोकगीत उस जीवन की अभिव्यक्ति का साकार रूप !

मालवी लोक-साहित्य की स्थिति

भारतवर्ष के लोकगीतों में धार्मिक विचारों की जड़ें इतनी सुदृढ़ एवं गहनतम है कि संस्कृति और परम्पराओं की निरन्तर प्रवाहित होने वाली विभिन्न धाराओं में भी उसका प्रकृत स्वरूप परिवर्तित नहीं होता। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें लोक–साहित्य, लोक–कथा एवं लोक–कलाओं में प्राप्त होता है। भारत के विचारक, मनीषी एवं साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा जन–जीवन की सांस्कृतिक परम्पराओं को समझने में जहां व्यक्तिगत भावना और बुद्धि–वैभव का आश्रय ग्रहण किया है वहां युग–विशेष का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। किन्तु लोक–साहित्य की परम्पराएं जन–जीवन में अबुद्धिवाद के धरातल पर इस तरह व्याप्त हो गई हैं कि उनको सामान्यतः प्रथक करना कठिन हो जाता है। इस क्षेत्र में आकर ग्राम और नगर के जन–मानस में एकाकार हो जाता है। लोक-साहित्य में ग्राम एवं नगर की धर्म–भावनाएं एवं परम्पराएं समरस होकर एक साथ गुंथी चली आ रही हैं। युग की हलचल एवं राजनैतिक उत्क्रान्तियों का मानो उन पर कोई असर ही नहीं पड़ता। पुस्तक–बद्ध साहित्य में विकार उत्पन्न हो सकता है, वाह्य प्रभाव का कालुष्य भी आ सकता है किन्तु लोक–कण्ठों द्वारा अबाध गति से प्रवाहित होने वाला साहित्य हमारे देश की संस्कृति एवं आचार–परम्पराओं को भूत और भविष्य की श्रृंखलाओं में बांध कर वर्तमान का जीवित सत्य बना देता है।

सम्पूर्ण भारत में व्याप्त लोक-चेतना के स्पन्दन का मालव में भी वही स्वरूप मिलेगा जो देश के विभिन्न भूभागों में दृष्टिगत होता है। वस्तुतः संस्कार, विचार एवं सामाजिक-

धार्मिक भाव-भूमि पर आधारित लोक-जीवन की परम्परा और मान्यताओं को लेकर मालव का लोक-साहित्य अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रखता। धार्मिक व्रत, त्यौहार एवं अनुष्ठानों से सम्बन्धित लोक-कथाएं, जन्म-विवाह आदि संस्कारों के लौकिक आचार, अन्ध-विश्वास एवं सामाजिक रूढियां, नारी-मानस की स्नेह-द्रोह से आपूर्ण कुण्ठाएं, अतृप्त वासनाएं, आदि भारतीय प्रदेशों के लोक-साहित्य में समान रूप से उद्भावित हुई हैं। किन्तु जलवायु, प्राकृतिक स्थिति, जातिगत परम्पराओं तथा अन्य स्थानागत विशेषताओं के कारण प्रत्येक प्रदेश-विशेष के लोक-साहित्य के बाह्य स्वरूप में यत्‍किंचिद् अन्तर अवश्य ही दिखाई पड़ता है। मालव का लोक-साहित्य भारतीय संस्कृति का एक संश्लिष्ट अंग बनकर अपनी प्रदेशगत विशेषताओं से आवेष्टित है। मालव की शस्य- श्यमला भूमि ने अनेक कवियों की प्रतिभा को जागृत कर काव्य-सृजन की प्रेरणा दी ! तब यहाँ का जन-सामान्य अपने भावों के उफान को अभिव्यक्त न करें, यह कैसे सम्भव हो सकता है! भारत का हृदय-स्थल मालव अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सदा ही विभिन्न संस्कृति एवं जातियों का संगम-स्थल रहा हैं। अतः यहां के लोकगीतों में, लोककथाओ में, लौकिक रीति-नीति और संस्कारों में रोचक विविधता एवं विलक्षणता के दर्शन होगे। प्राचीन काल में यहां वैदिक, शैव, शाक्त एवं आदिवासी प्रेरणाओ का समन्वय रहा है अतः लोक—कथाओं में, गीतों में भी देवी-देवताओ के सन्बन्ध में अनेक मान्यताओं का निर्धारण हुआ है। रतजगा के समय स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत प्रमाण में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। चौंसठ जोगनी, भूखीमाता, लालबाई, फूलबाई, बिजासन एवं विक्रम नृपति की कुल-देवी हरसिद्धि के सम्बन्ध में अनेक लोक-कथाएँ एवं गीत प्रचलित हैं जिनका संकलन होना शेष है। मालवा का कथा-साहित्य अन्य जनपदो की मौखिक-कथाओं की तरह अपना अलग ही अस्तित्व रखता है। धार्मिक व्रत और त्यौहारों से सम्बन्धित कथाओं के साथ ही मन—रंजन के लिये कल्पित की गई कथाओं का यहाँ भी अनन्त भण्डार है। आबालवृद्ध नर-नारी कथाएँ कह कर कल्पनाओं के मनोरम प्रदेश में विचरण करने के साथ ही सिद्धान्तों का प्रचार, उपदेश एवं कौतुहलगत भावनाओं की सदा से ही वार्ताएँ कहते और सुनते है। बालक अपनी वृद्धा दादियों के मुख से कथाओं को सुन कर आश्चर्यमय भावनाओं को लेकर मीठी नींद सोता है। प्रत्येक बालक का मनोरंजन करने वाली एक कहानी का उदाहरण ही पर्याप्त होगा।

एक थो राजो, खातो थो खाजो, खाजा को पड्यो बूर,
बूर लई गई कीड़ी (चींटी) कीड़ी ने बनायो बिमलो,
बिमलो लई गयो कुमार, कुमार ने बनाई मटकी !

बाल सुलभ कल्पनाओ को उभारने के साथ ही इस प्रकार की कहानियां मानव समाज का संस्कार भी करती हैं। उक्त कहानी में कल्पना की असम्बद्धता के स्थूल रूप को तो देखा जा सकता है कि राजा और खाजा को तुक मिलाने के अतिरिक्त चींटी के बिमले से कुम्हार द्वारा मटकियां बनाना कैसे संभव हो सकता है। परन्तु कथाकार की मनोभूमि को समझने पर ही उसके गांभीर्य का परिचय हो सकता है। यह संसार ऐसा है

कि यहां पर प्रत्येक वस्तु का अन्योन्याश्रिति संवंध है, परस्पर अवलम्बन से ही विश्व का कार्य निरन्तर प्रवाहित होता रहता है, ऐसी कथाओ के द्वारा जटिल भाव भी मानव मस्तिष्क पर सरलता के साथ अङ्कित किये जा सकते हैं, विश्व के प्राचीन विचारको ने कहानी के माध्यम द्वारा देशानुकूल संस्कार एव प्रभाव डालने की चेष्टा की है, पञ्चतन्त्र एवं हितोपदेश की मूल भावना एवं उद्देश्य का धूमिल एवं प्रछन्न आभास हमें इस प्रकार की लोक-कहानियों में प्राप्त हो सकेगा, जहां बालक को मनोरञ्जन के साथ शिक्षित किया जाता है, स्त्रियों के व्रत और त्यौहारों से संबंधित कथा-वार्ता और कहानियों के सम्बन्ध में विचार करना यहां आवश्यक है, क्योंकि भारतीय कथा-परम्पराओं में उनका अलग से अस्तित्व नहीं है।

बालकों की कहानियों की तरह युवा और बृद्धों के साथ ही किशोरों को आकर्षण डोर में बांधने वाली 'सोना-रूपा' की कथा मालवी लोक-साहित्य की अपनी देन है। इस सुदीर्घ कथन को सुनने के लिये उत्सुक आबाल, बृद्ध नीद की खुमारी को पीकर रात्रि के तृतीय पहर तक समाप्त कर देते हैं। यहाँ जन-मानस की स्मृति-क्षमता पर वास्तव में आश्चर्य होने लगता है कि विभिन्न घटनाओं के जाल में उलझी हुई इन लम्बी कथाओं को मौखिक रूप से कैसे जीवित रखा! निहालदे की गद्य-पद्य मयी कथा के संबंध में सात सौ परवानों (प्रेमे पत्रों) का उल्लेख आता है। निहालदे अपने प्रियतम को सात सौ प्रेम-पत्र भेजती है। प्रत्येक प्रेम-पत्र में रोचक घटनाओं का समावेश होता है। निहालदे की पूरी कथा को सुनाने वाला आज तक प्राप्त नहीं हो सका। बड़नगर के श्री अनूप ने निहालदे की कथा के कुछ अंश लिपिबद्ध अवश्य किये हैं। इसी तरह शृंगारिक गीत-कथाओं में 'सोरठ' एवं 'चम्पादे' उल्लेखनीय हैं। इन गीत-कथाओं पर सोरठी और गुजराती लोक-साहित्य का प्रतिबिम्ब द्रष्टिगत होता है। मध्य-युग में मालवा में गुजरात, राजस्थान एवं बुन्देलखण्ड से जो अनेक जातियाँ आकर यहाँ बस गईं उनकी परम्पराएँ एवं गीत भी मालव की मिट्टी में नवीन रूप से प्रकट हुए। आश्विन मास की नवरात्रि में अम्बादेवी के पूजन का समारोह गर्वा के नृत्य और गीतों के साथ पूर्ण होता है। पुरुषों ने भी गुजरात को गरबा प्रथा को शरदकालीन धार्मिक उत्सव के रूप में अपनाया है। मालवी स्त्रियों का गरबा-उत्सव विजयादशमी के एक दिन पूर्व समाप्त होता है और पुरुषों के गरबा आश्विन शुक्ला एकादशी से प्रारम्भ होकर शरद पूर्णिमा की रात्रि के समाप्त होने पर प्रभात में विसर्जित होते हैं गर्बा गीतों में गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। गुजरात के गरबा गीतों की तरह राजस्थानी परम्पराओं से प्रेरित 'तेज्या धोल्या, नागजी-दूधजी' एवं चन्नन कुँवर' आदि गीत-कथाएँ एक तरह से महाकाव्य का स्वप्न लिये हुए हैं। सर्पों के प्रति पूजा-भाव के साथ ही अनेक वीर-गाथाओं का इतिहास इनमें छिपा हुआ है। कृषि-सभ्यता एवं भूमि की महत्ता को प्रकट करने वाला गोचारण का लोक महाकाव्य 'हीड़' है, यह बगड़ावत गूजरों की परम्परा से संबंधित है। धार्मिक भावनाएँ एवं एकादशी व्रत के महात्मा की लोक-गाथा, 'ग्यारस' ग्रामीण-जनों का अपना पुराण है। जनता की यह गीत-कथा दार्शनिक महत्व रखती हैं। किसी भी जटिल तत्व को कथा-भाव में सुलझा कर रख देना हमारे भारतीय पुराण एवं उपनिषद् साहित्य की विशेषता रही है। जनता की ये गाथाएँ प्रायः उपदेश के लिये ही होती हैं। यहां पतन या जीवन के

निकृष्टतम स्तर का किंचित ग्राभास भी नही मिल पाता। मानव जीवन की पूर्णता, सुख ग्रौर ग्रानन्द प्राप्ति का ग्रादर्श इन गीत-कथाग्रों में ग्रवाह्य रूप से प्रतिपादित हुग्रा है। मालव में प्रचलित लोक-नाट्य मांच की कथाएँ भी जन-रुचि, परम्परा, विश्वास ग्रौर ग्रपनी धारणाग्रों को प्रकट करने की क्षमता रखती हैं।

स्त्रियों की मौखिक-परम्परा में प्रचलित कथा, वार्ता एवं गीत-कथाग्रों की तरह लोक-गीतों का ग्रनस्त वैभव भी ग्राकर्षण की वस्तु है। सम्भव है कि ग्रनेक गीत एवं कथाएँ लिपिबद्ध नही होने के कारण विस्मृत होकर काल की क्रूर क्रोड़ में ग्रपना ग्रस्तित्व खो बैठी हो, भजन एवं त्यौहारों के ग्रवसर पर गाये जाने वाले गीतों के प्रचलन की गति से हम उक्त ग्रनुमान को सत्य होता हुग्रा पाते हैं। ग्राज ही से पच्चीस वर्ष पूर्व स्त्रियों ग्रौर पुरुषों में गेयता की जो स्वतः प्रेरित प्रवृत्ति थी उसमें शैथिल्य ग्रागया है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने मालव में प्रचलित चन्द्रसखी एवं नटनागर के भजनों का उल्लेख किया है।[1] चन्द्रसखी के नाम से प्रचलित लगभग पचास गीतों का संग्रह करने में मुझे सफलता मिल गई है। किन्तु नटनागर का एक भी गीत किसी व्यक्ति के मुख से सुनने को नहीं मिला। वैराग्य-भावना से युक्त भरथरी एवं गोपीचन्द की कथाग्रों से संबंधित जोगड़े के गीत ग्रवश्य प्रचलित हैं। भक्तिपूर्ण गीतो में रामदेव जी एवं पन्थीड़ा के गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। मालव के जन-मानस ने कबीर ग्रौर तुलसी का भी मालवीकरण कर दिया है। कबीर एवं तुलसी के नाम की छाप देकर मावली महिलाग्रों ने स्वयं की प्रतिभा ग्रौर भक्तिपूर्ण हृदय को लोकगीतों में उतारा है। स्त्री-पुरुषों के द्वारा कहे गये मालवी दोहे भी जन-हृदय को समझने-परखने के लिये पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

काव्य-प्रतियोगिता जैसी प्रवृत्ति को प्रकट करने वाली 'तुर्रा-किलङ्गी' की परम्परा ग्राज से ग्रर्द्ध-शताब्दी पूर्व मालवा एवं निमाड़ में व्यापक रूप से विद्यमान थी। उत्तरी मालव के क्षेत्र में मन्दसौर, नीमच एवं मनासा ग्रादि स्थानों पर तुर्रा-किलंगी पिछली शताब्दि तक पुरुषों के मनोरञ्जन का प्रमुख साधन था। किन्तु इस परम्परा का ग्रब लोप होता जा रहा है। इसका स्थान नगरों में प्रचलित राम-दङ्गल लेता जा रहा है। रामदङ्गल में लोक-साहित्य की प्रकृत भावना का ग्रभाव है ग्रौर खड़ी बोली में रचना होने के कारण उसको मालवी लोकगीतों की कोटि में रखकर उस पर विचार नहीं किया जा सकता, वैसे रामदङ्गल पद्धति का ग्राविर्भाव सन् १९४४ के बाद की वस्तु है ग्रौर उसका प्रभाव भी दो-चार नगरों को छोड़कर ग्रन्यत्र दिखाई नहीं पड़ता।

मालवी में गीतों की ग्रकृत्रिम छटा के साथ ही ग्रशिक्षित ग्रामीण समाज ग्रपनी परम्परा के कारण ज्ञान ग्रौर बुद्धि के कौतूहल वैभव को ग्राज तक सुरक्षित रखता चला ग्रा रहा है। इसका प्रमाण मनोरञ्जन की छोटी-मोटी कहानी ग्रौर चुटकलों के ग्रतिरिक्त मालवी की पहेलियों में मिलेगा। नगर के नागर नागरिकों में प्रायः विवाह ग्रादि ग्रवसरों पर बुद्धि ग्रौर सामान्य-ज्ञान की परीक्षा के लिये पहेलियां बुझाने को कहा जाता है। मालवी में गेय

---

१. राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य; पृष्ठ १३।

पहेलियों को 'पारसी' कहते हैं।[1] गेयता की दृष्टि से इनका स्थान लोकगीतों की कोटि में आता है किन्तु ग्रामों में बसने वाली जनता के मुख पर जीवन की अनुभूतियों से आप्लावित अनेक अगेय पहेलियां भी नाचा करती हैं यहाँ तक कि छोटे बालक भी बुद्धि की परख के इस खेल में पीछे नहीं हटते। ये पहेलियां सामान्य जीवन की प्रमुख घटनाओं और वस्तुओं से सम्बन्धित रहती हैं। इनमें बुद्धि-परीक्षा के साथ-साथ ही मनोरञ्जन के तत्व भी रहते है। कौतूहलमयी बातें, आश्चर्यजनक और अनहोनी कल्पनातीत सूझ को देखकर परिष्कृत एवं व्यापक बुद्धिवाले सभ्यजनों को भी ग्रामीणों के मस्तिष्क की कसरत को समझने में उलझना पड़ता है। यही उलझन पारसी, गेय-पहेली एवं कैणी अथवा बारताँ (अगेय पहेली) की विशेषता है।[2] मालवी के गद्यात्मक मौखिक लोक-साहित्य को अगीत साहित्य की संज्ञा दी गई है। अवकाश के समय अथवा शीतकाल की रात्रि में वस्त्राभावों की पूर्ति के लिये अलाव के चारों ओर बालक युवा एवं वृद्धों का समुदाय एकत्रित हो जाता है और उनका यह सामाजिक नैकट्य सङ्गीत-साहित्य की मौखिक-परम्परा को जीवित रखता है। पुरुषों में प्रचलित कथाएँ, लोकोक्तियां, पहेलियाँ, चुटकुले एवं गपशप ऐसे समय ही मनोरञ्जन के प्रधान अङ्ग होते हैं।[3] इनमें लोकोक्तियो का बड़ा महत्व है। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोकोक्तियों को मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र कहा है।[4] मालवी लोकोक्तियाँ भी ज्ञान और रस का अनन्त भंडार हैं। युग-युग से संचित जीवन की विविध अनुभूतियां सूत्र रूप में लोकोक्तियों में आकर बँध गई हैं। इतिहास की कुछ ज्वलन्त घटनाएँ भी लोकोक्तियो में आकर इतनी प्रच्छन्न हो चुकी हैं कि उनका प्रकृत ज्ञान भी धूमिल होगया है। व्यक्ति की महानता को तुलनात्मक दृष्टि से परखने के लिये 'काँ (कहां) राजा भोज ने कां गांगली तेलन' लोकोक्ति है। तैलंगाना का अधिपति तैलप एवं त्रिपुरी का राजा गाँगेयदेव कर्ण जन दृष्टि में आकर एक हो गये और गांगली तेलन का स्वरूप धारण कर लिया। घानी से तेल निकालने वाली एक अकिंचन तेलन जिस प्रकार एक राजा के महान व्यक्तित्व की समता में प्रस्तुत नहीं की जा सकती, उसी प्रकार राजा भोज की वीरता और उदारता के सम्मुख प्रपंची एवं कायर तैलपराज नहीं ठहर सकता। इतिहास की धुँधली स्मृति जन-मानस पर अवश्य विद्यमान है। यद्यपि भोज की लड़ाई तैलप से नहीं हुई थी। राजा भोज के पितृव्य मुञ्ज एवं तैलप के मध्य युद्ध अवश्य हुआ था। तैलप का समकालीन त्रिपुरी का राजा कलचुरी नरेश गांगेयदेव मुञ्ज और भोज का समकालीन था जिसे मुस्लिम इतिहासकारों ने गंग नाम से पुकारा है।[5] जनता के मस्तिष्क में इतिहास के दो प्रसिद्ध व्यक्ति गंग और तैलप एक हो गये। गङ्ग का विकृत स्वरूप गांगली होगया और तैलप तेलन बनकर गांगली का जाति सूचक विशेषण बन

१. पारसी पर विवाह के गीतों में विस्तार के साथ विचार किया गया है।

२. मालवी पहेलियों के लिये देखें मेरा लेख विक्रम 'मासिक' भाद्रपद २००७, पृ० २ व वैशाख २००६।

३. मालवी और उसका साहित्य......पृष्ठ ७०।

४. पृथ्वीपुत्र......पृष्ठ ११।

५. अ. Dynastic History of Northern India, Vol. II (H. C. Roy) p.p. 772.

ब. प्रबन्ध चिन्तामणि......मेरुतुङ्गाचार्य, पृष्ठ ३३।३६।

गया । इस तरह एक लोकोक्ति में युग-युग के इतिहास का कटु सत्य अभिव्यक्त हुआ है । मालव की भूमि सदा ही इतर व्यक्तियों के द्वारा आक्रान्त रही है और यहाँ के निवासी स्वयं की भूमि के वैभव का उपभोग नहीं कर सके । युगो की संचित अनुभूति 'मालवा की धरती को कई, या रांड तो परभोगी हैं' कहावत में प्रकट होती है । वास्तव में परमारों के शासन के पश्चात महामालव की जनता को पराजित रहना पड़ा । मध्ययुग के विभाषो विधर्मी पठान एवं मुगलों के शासन में मालव की जनता का सांस्कृतिक एवं भौतिक जीवन बड़ा ही त्रस्त-ग्रस्त रहा । इसके पश्चात् मराठों के शासन में भी यहाँ की सामान्य जनता उपेक्षित ही रही । भाषा, संस्कृति एवं साहित्य के उन्नयन की दृष्टि से मराठा शासन का वर्तमान युग भी अन्धकार पूर्ण ही रहा । मध्य-भारत के निर्माण के पूर्व ग्वालियर, इन्दौर आदि मराठा राज्यों में मालवी लोगों को शासन में कितना स्थान मिल सका था ? इतिहास की इस कटु स्थिति को विगत युग एवं आज की पीढ़ी भूल नहीं सकी है । किन्तु यह कठोर सत्य लोक-साहित्य में आंशिक रूप से ही सही, प्रकट हुआ है । लोकगीतों की नारी ने मराठा शासन की अरक्षित स्थिति के प्रति असन्तोष व्यक्ते करते हुए अभिशाप ही दिया है……… वर जइय्यो मरैठा राज, बुन्देली बैन्दी ले गयो ।[1] मालवा और बुन्देलखण्ड के सीमावर्ती प्रदेश में बुन्देली डाकुओं द्वारा त्रस्त नारी ने जहां अत्याचारों प्रति रोष प्रकट किया है वहाँ अहिल्याबाई होल्कर के उदार एवं धर्ममय चरित्र को मालवी जनता ने श्रद्धा की द्रष्टि से भी देखा है । लोकगीतो में महारानी अहिल्याबाई को अवतार माना गया है ।[2] पहिले दो सो छः वर्षों के इतिहास में अहिल्याबाई क अतिरिक्त केवल एक और राजपूत वीर के नाम को लोकगीतों का मानस ग्रहण कर सका है । मालव के नरसिंहगढ़ राज्य का राजपुत्र चैनसिंह अँग्रेजों से युद्व करता हुआ सिहोर (भोपाल राज्य) की छावनी में वीर गति को प्राप्त हुआ था । उसकी अलौकिक वीरता के संबंध में भी एक दो लोकगीत सुनने को मिले हैं ।

मालव प्रदेश का लोक-साहित्य अपनी प्रदेशगत नेसर्गिक सुषमा और वैभव की तरह ही समृद्ध एवं मनोहारी है । गीत एवं अगीत, प्रबन्ध एवं मुक्तक और गद्य एवं पद्य की विभिन्न शैलियों में मालवी लोक-साहित्य की प्रचुर सामग्री मौखिकरूप से आज भी सुरक्षित है । किन्तु उचित संकलन के अभाव में इनका सांगोपांग मूल्य अङ्कित करना सहज संभाव्य नहीं है । बदलते युगों की तीव्रतम गति में इनका स्वरूप यथावत् ही रहेगा यह अनुमान कल्पना से परे की वस्तु है । आज आवश्यकता इस बात की है कि किसी व्यक्ति विशेष के प्रयास को इति न मानकर व्यापक रूप से शासकीय अथवा अशासकीय संस्थाओं के द्वारा सम्पूर्ण साधनों के साथ मालवा के विस्तृत एवं विच्छिन्न लोक-साहित्य के सङ्कलन का कार्य प्रारम्भ होना चाहिये ।

---

१. ग्राम भाटनी (भेलसा) से प्राप्त एक गीत की प्रथम पंक्ति ।

२. रेल्लया औतार जिनका पुन्नगई पार, हाथों करे दान मुलक-मुलक में नाम ।
बुद्धी परकासना धरम खम्ब जांच का, देवल ओ बन्ध घाट तीरथ पे लगे थाट ।
सूरवीर हंसत राम धनगर था जातरा, चढता घोड़े अस्वार पड़ती पिडार ।
उनके मारने से डरते सारी विल्लात का....

—ग्राम लेकोड़ा(उज्जैन) से प्राप्त । पृष्ठ २।१२०।

मालवी लोक-साहित्य का संकलन-कार्य

हिन्दी की जनपदीय भाषाओं में लोकगीतों के संकलन का व्यवस्थित इतिहास पं० रामनरेश त्रिपाठी की अथक साधना एवं प्रयास से प्रारम्भ होता है। इसके पहिले स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी ने सन् १९१३ में सरवरिया नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें गोरख-पुर एवं बस्ती जिले की भाषा के गीत एवं छोटी कहानियां अँग्रेजी-अर्थ सहित दी गई थीं। सन् १९२४ में श्रीयुत सन्तराम ने भी सरस्वती में पंजाब के कुछ गीत हिन्दी अर्थ सहित प्रकाशित कराये। तभी से श्री त्रिपाठी जी लोकगीतों की खोज में संलग्न हुए।[1] सन् १९२८ तक उन्होंने उत्तर-प्रदेश, पंजाब, काश्मीर, राजस्थान एवं गुजरात तथा कठियावाड़ आदि प्रदेशों में यात्रा कर दस-बारह हजार गीत एकत्रित कर लिए। इस गीत-यात्रा में उन्होंने पैदल एवं रेल से लगभग नौ-दस हजार मील का सफर किया।[2] इसके पश्चात् भी पण्डित जी का कार्य बड़े उत्साह के साथ चलता रहा। किन्तु दुर्भाग्यवश मालव प्रदेश में उनका शुभागमन नहीं हुआ। अन्यथा यहाँ के लोक-गीतों की अमूल्य सम्पत्ति का प्रमाण भी उसी समय सिद्ध हो जाता। गीत संग्रह के कार्य में जिन महिलाओं और सज्जनों ने त्रिपाठीजी को किसी प्रकार की सहायता प्रदान की थी उनकी सूची में इन्दौर के दो व्यक्तियो के नामों का उल्लेख हुआ है। महिलाओं में श्रीमती राजकुंवर बाई है; एवं पुरुषों में पं० जगन्नाथराव टुल्लू।[3] परन्तु इसमें सहायता किस प्रकार की दी गई इसका कोई उल्लेख नही है। संभवतः दो-चार गीत लिखकर भेज दिये गये होगे। इस प्रकार त्रिपाठी जी के गीत-संग्रह में मालव से प्रचुर मात्रा में गीतों का समावेश नहीं हो सका किन्तु मालवी लोक-साहित्य के संकलन कार्य में उनकी प्रेरणा अनुकरण के रूप में अवश्य प्रकट हुई और सन् १९३२ एवं ३८ के बीच में भूतपूर्व इन्दौर राज्य के शिक्षा एवं रेवेन्यू विभाग द्वारा मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य समिति के तत्वावधान में लोक-गीतों के संकलन का कार्य प्रारम्भ किया गया। गांवो की प्राथमिक शालाओं के शिक्षक एवं पटवारियों से लोक-गीत लिखवा कर मँगवाये गये। इन्दौर राज्य द्वारा संकलित इस गीत-संग्रह की चर्चा प्रायः पुराने लोगों से सुना करते थे किन्तु उसका पता नहीं लग रहा था कि अचानक ही दिनांक १५ जून १९५४ को मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति के कार्यालय में गीतो की वही फाइल देखने के लिये प्राप्त होगई। संकलित गीतों का सम्पादन होल्कर कॉलेज के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० कमला शंकर जी मिश्र ने किया है। मालवी भाषा एवं लोक-साहित्य के महत्व पर एक विस्तृत भूमिका भी लिखी गई। संकलित गीतों में भीली, निमाड़ी एवं मालवी के कुछ गीतों का समावेश है। ये गीत केवल होल्कर राज्य के ग्रामों से ही एकत्रित किये गये थे, अतः सम्पूर्ण मालवी गीतों के प्रतिनिधित्व की क्षमता का नहीं होना आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य तो उस समय होता है जब सरकारी कागजों के अम्बार में लोक-गीतों की यह अमूल्य निधि भी उस युग की धूल खाकर लगभग-सोलह वर्षों के पश्चात् प्रकट हुई। यदि यथा समय ही मालवी से

---

१. कविता कौमुदी; भाग ५ भूमिका, पृष्ट २४।२५।
२. देखें वही, पृष्ठ ४३।
३. देखें वहीं। पृष्ठ ७१, सहायकों की नामावली; सूची क्रमांक ७ एवं ६५।

सम्बन्धित यह गीत-संग्रह प्रकाशित होजाता तो लोक-गीतों के अन्य अध्ययनकर्ताओं के लिये यह एक बड़े महत्व का संग्रह होता। फिर भी इस प्रयास का मालवी लोक-साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक महत्व अस्वीकार नही किया जा सकता। इस अप्रकाशित गीत संग्रह के अप्राप्य होने की स्थिति में श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव जी को मालवी लोक-गीतो का प्रथम संकलन-कर्ता मानते थे किन्तु लिखित प्रमाण प्राप्त होने पर अब प्रारम्भिक प्रयास का क्षेत्र भूतपूर्व होल्कर राज्य एवं मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति को ही दिया जायगा; जिसने सन् १९३२ में ही इस दिशा मे सुव्यवस्थित कार्य प्रारम्भ कर दिया था। लोक-साहित्य, विशेष कर मालवी लोकगीतों के संकलन-कार्य को दो कालों में विभाजित कर सकते हैं :—

१—सन् १९३२ से सन् १९४४ तक
२—सन् १९४४ से सन् १९५४ तक

सन् १९३२ एवं ४४ के एक युग के समय को प्रारम्भिक प्रयास का काल ही कह सकते हैं, क्योंकि संकलन का कार्य पूर्ण रूप से प्रदेशव्यापी न होकर व्यक्ति-विशेष एवं क्षेत्र-विशेष तक ही सीमित रहा। श्री जी० आर० प्रधान ने मालवी के कुछ गीतों को लेकर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार अवश्य किया किन्तु अधिकांश व्यक्तियों ने स्फुट गीतों को लेकर कुछ लेख ही लिखे हैं; जिसमें भावुकता एवं रसात्मक प्रवृत्ति ही अधिक पाई जाती है। निम्न-लिखित लेख-सामग्री में लोक-साहित्य के संकलन का आभास मात्र प्रकट हो जाता है:—

१. श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'—मालवी के भेद और उनकी विशेषताएँ हिन्दुस्तानी एकेडेमी में प्रकाशित, जनवरी १९३३।

२. होल्कर राज्य-द्वारा संकलित गीत—
   १. मालवी
   २, निमाड़ी
   ३, भीली } सन् १९३२-३८ के मध्य।

३. श्री जी० आर० प्रधान—'संकलन का क्षेत्र धार राज्य' Folk Songs from Malwa [The Journal of the Department of Sociology, Bombay vol VII, IX में प्रकाशित लेख]

४. श्री प्रभागचन्द शर्मा—मालवी लोकगीतों में नारी, 'हंस' मासिक में प्रकाशित १९४०।

५. श्री रामनिवास शर्मा—'गर्व की एक अपूर्व साहित्यिक वस्तु', 'वीणा' इन्दौर; सितम्बर १९४१।

६. श्री विश्वनाथ पौराणिक—मालवा के ग्राम गीत, 'वीणा' इन्दौर; मई १९४१।

७, श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय—एक लेख....साधना....१९४३।

८, श्री चन्द्रसिंह झाला—मालवा के ग्रामगीत, वीणा (इन्दौर) दिसम्बर १९४४।

सन् १९४४ के पूर्व जिन व्यक्तियो ने मालवा के कुछ गीतों को लेकर लेख लिखे हैं उनमें साहित्यिक प्रवृत्ति ही अधिक है। पं० रामनिवास शर्मा ने तो लोक गीतो से संबंधित एक दोहे की व्याख्या एवं काव्य-सौन्दर्य पर लगभग छः सात पृष्ठ का लेख लिख डाला था। ग्राम के साहित्य की ओर लोगो का ध्यान अवश्य गया था किन्तु किसी भी व्यक्ति में संकलन की प्रवृत्ति सजग नही हो पाई। इने-गिने दो-चार-लेखकों में श्री चन्द्रसिह झाला ने अवश्य इस दिशा में कुछ प्रयास किया। मालवा के कृषक-जीवन एवं लोकगीतों के संबंध में उनके तीन-चार लेख वीणा में प्रकाशित हुए। इन लेखो में झालाजी ने विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लगभग ४० गीतों के सुन्दर उद्धरण दिये है।[1] झालाजी के अतिरिक्त सन् १९४४ तक श्री श्याम परमार ने भी लोक-गीतो के विषय में लिखना प्रारंभ कर दिया था। ग्वालियर से प्रकाशित जयाजी प्रताप (साप्ताहिक) में श्री बद्रीप्रसाद परमार के (श्री श्यामपरमार का प्रकृत एवं घरू नाम) नाम से मालवा के ग्रामगीत शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था ? उसमें लोकगीतों के संकलन की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है, "मालवा के ग्रामगीत लिखित नहीं है। स्त्रियो और पुरुषो ने इस पर कभी सोचा भी नहीं कि उनके गीत लिखे जावें........ मालवा के गीतों का संग्रह करना कठिन जरूर है क्योकि स्त्रियों की संकोच-वृत्ति गीतों को लिपिबद्ध करने में अवश्य बाधक होती है। इस काम को शिक्षित स्त्रियाँ जितनी सरलता से कर सकती हैं पुरुष नही........अतः मालवी गीत जो कि कोमल भावनाओं से ओत-प्रोत, कर्ण-प्रिय सुमधुर है, संग्रह किये जावे। उनका संग्रह होने पर साहित्य की नवीनता बढ़ जावेगी तथा उनका संग्रह जन-साहित्य का विशेष प्रतीक होगा। इन गीतों को एकत्रित करना प्रत्येक मालवी से परिचित स्त्री-पुरुषों को अपना कर्तव्य समझना चाहिए"।[2]

वास्तव में गीत अथवा अन्य प्रकार के लोक-साहित्य को हेय एवं उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। 'बइराँ का गीत लिखने को अच्छो धन्धो पकड्यो' आदि व्यंगपूर्ण उक्तियों के सुनने में हम लोग तो अभ्यस्त हो गये है, किन्तु स्त्रियों की संकोचशील प्रवृत्ति के कारण कभी-कभी अप्रत्याशित बाधाएँ भी आईं एवं लोगों के द्वारा शंका एवं उपहास की दृष्टि से भी देखे गये। मालवी लोक-साहित्य के क्षेत्र में श्याम परमार ने अपना कार्य प्रारम्भ रखा और वे व्यवस्थित ढंग से लोक-साहित्य की विविध सामग्री के संकलन में निरन्तर व्यस्त रहे।

मालवी का लोक-साहित्य अत्यन्त ही विशद एवं विभिन्नता को लिये हुए हैं, और आज तक उसका विधि-पूर्वक संग्रह नहीं हो सका है। इस लेखक ने श्याम परमार आदि साथियों को लेकर प्रतिभा निकेतन नाम की संस्था के तत्वावधान में ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर

---

१. —चन्द्रसिह झाला के तीन लेख :—

१—मालवा के किसानों का सङ्गीत प्रेम....वीणा ; अक्टूबर ३९।

२—मालवा के किसान...वीणा ; अप्रैल १९४१।

३—मालवा के ग्राम गीत....वीणा ; सितम्बर १९४४।

२, जयाजी प्रताप....१५ अप्रैल १९४३।

लोक-साहित्य सम्बन्धी सामग्री संचित करने का प्रयास किया । किन्तु इस प्रयास में हमें आंशिक सफलता ही मिली । प्रतिभा निकेतन को ग्राम के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन की स्थिति के अध्ययन, पर्यवेक्षण एवं अन्य रचनात्मक कार्यों में भी संलग्न रहना पड़ता था । अतः लोक-साहित्य के संकलन का उद्देश्य पृष्ठभूमि में आ गया । फिर भी जून १९५० में सेकोड़ा ग्राम में तीन सप्ताह का शिविर एवं जून १९५१ में बाघ की प्रसिद्ध गुफाओं में चार सप्ताह का कार्य लोक-साहित्य के संकलन-कार्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण आयोजन थे । इसी समय से लोक-साहित्य को विभिन्न मौखिक-परम्पराओं को लिपिबद्ध करने का व्यवस्थित क्रम निर्धारित हो गया । मेरे निजी संग्रह की निम्नलिखित सामग्री उल्लेखनीय हैं........

१. मालवी पहेलियाँ संख्या २००
२. मालवी लोकोक्तियाँ संख्या १००० के लगभग
३. मालवी दोहे ,, १४५
४. मालवी के शब्द ,, ७००० *

५. स्त्रियों के गीत—
(१) संस्कार-सम्बन्धी ५३९
(२) ऋतु एवं त्योहार-सम्बन्धी ११०
(३) भक्ति-भावना के गीत १०

६, पुरुषों के गीत—
(१) कथा-गीत [लघु] ५
(२) गेय प्रबन्ध-कथाएँ ५
(३) भक्ति-भावना के गीत ५५

७, बालकों गीत— ५५
८ मालवी, भीली, निमाडी भाषा-सम्बन्धी नोट्स ।

उपरोक्त लोक-साहित्य का संकलन उज्जैन, शाजापुर, इन्दौर, बड़नगर, रतलाम, मन्दसौर आदि प्रमुख नगर एवं इनके निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से किया गया है । भीली, निमाड़ी बुन्देली एवं भदावरी (भिण्ड) लोक-साहित्य की संचित सामग्री का विवरण प्रस्तुत करना यहां अप्रासंगिक होगा । उक्त संग्रह में राजौद ग्राम (बढ़नगर) से विद्यार्थी कैलाश त्रिवेदी द्वारा प्रेषित साहित्य भी सम्मिलित है ।[1] इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त लेखों से भी कुछ मालवी लोकगीतों का संकलन कर लिया है । उक्त संग्रह के अति-

* महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की प्रेरणा से मालवी का शब्द-कोश संकलित करने की दिशा में यह प्रयास-मात्र था, जो अपूर्ण स्थिति में ही रह गया ।

१, राजौद ग्राम से प्राप्त सामग्री.......१—स्त्रियों एवं बालकों के गीत । २५
२—पहेलियां ५७
३—मालवी लोकोक्तियां ९१

रिक्त श्याम परमार द्वारा संकलित सामग्री हिन्दी एवं अँगरेजी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखों के रूप में प्रकट हुई। परमारजी के लगभग पचास लेख अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। वीणा (इन्दौर) में जून १९५० के अङ्क से प्रारम्भ की गई लेखमाला को मध्य-भारत, हिन्दी-साहित्य-समिति ने 'मालवी लोकगीत' शीर्षक से प्रकाशित की। इस संग्रह में लगभग ६५ लोकगीतों का समावेश किया गया है। लोक-साहित्य से सम्बन्धित प्रकाशित लेखों का संग्रह मालवी और उसका साहित्य एवं भारतीय लोक-साहित्य के नाम से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। श्याम परमार के पास बालिकाओं के सांझी-गीत, जन्म-संबंधी गीतों का अच्छा संग्रह है। अन्य गीत-संकलन-कर्ताओं मे सर्वश्री ओमप्रकाश 'अनूप' बसन्तीलाल 'बंम' एवं हरीश 'निगम' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'अनूपजी' ने बड़नगर के ग्रामीण क्षेत्रों से फाग एवं सावन के गीतों का संग्रह कर सुन्दर लेख लिखे हैं। अन्य तीन कार्यकर्ताओं के संग्रह का प्रमाणिक विवरण इस प्रकार है :—

१—'बंम'

[१] लोकोक्तियाँ	१२००
[२] हीड़ 'अपूर्ण'	*
[३] फुटकल गीत	४०

संकलन का क्षेत्र—नेवेरी एवं भंवरासा ग्राम।

२—हरीश 'निगम'

[१] लोकोक्तियाँ	१०६९
[२] मुहावरे	४००
[३] पन्थीड़ा के गीत	५०

संकलन का क्षेत्र—नागदा, सैलाना एवं आलोट

३—सौ० मनोरमा उपाध्याय

[श्री मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही' की धर्मपत्नी]

[१] लोकोक्तियाँ	८००
[२] लोककथाएँ	४०
[३] गीत	२१०

संकलन का क्षेत्र—रामपुरा, भानपुरा, रतलाम।

लोकोक्ति साहित्य के संकलन-कर्त्ताओं में उज्जैन के पं० सूर्यनारायणजी व्यास एवं सूरज प्रसाद सेठ का प्रयास भी महत्वपूर्ण रहा। व्यासजी के पास लगभग दो हजार मालवी-निवाड़ी लोकोक्तियों का संग्रह है। मालव के अन्य लेखकों ने भी लोक-साहित्य की यत्किंचित् सामग्री एकत्रित कर स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में कुछ लेख लिखे। इनमें सर्वश्री चन्द्रशेखर दुबे, रतनलाल परमार, श्रीकृष्ण गोपाल निगम, कृष्णवल्लभ जोशी, शिवनारारण शर्मा एवं शिवकुमार 'मधुर' आदि स्फुट लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं।

मालवी लोक-साहित्य के संकलन की दिशा में गीत एवं लोकोक्तियों का संग्रह

तो पर्याप्त हो चुका है। जन्म और विवाह-संस्कार के गीत ही अधिक लिपिबद्ध किये जा सके हैं। ऋतुओं के गीतों का सङ्कलन नगण्य-सा है। पुरुषों द्वारा गेय फाग के प्रचलित लोक-गीत बड़ी संख्या में एकत्रित किये जा सकते हैं। इसी तरह शरदकालीन गर्बा-गीतों का संकलन होना भी शेष है। प्रबन्ध गीत या गीत-कथाओ का सङ्कलन यद्यपि कष्ट-साध्य हैं किन्तु उनका लिपिबद्ध होना आवश्यक है। सन् १९५४ के मई एवं जून मास में उज्जैन के निकटवर्ती ग्रामो मे जाकर मैंने हीड़, चन्नन कुँवर, सम्पद-दे एवं तेज्या धोल्या आदि सुदीर्घ गीत-कथाएँ लिपिबद्ध करने की चेष्टा की किन्तु पूरी कथाओ को सुनाने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं मिल सका। हीड़ को लिपिबद्ध करने में तीन-चार व्यक्तियों को अलग-अलग सुना और बड़ी कठिनाई से साङ्ग माता आदि की कथा को सम्मिलित कर हीड़ की लगभग २७५ पंक्तियां ही लिपिबद्ध हो सकीं। इसी तरह चन्नन कुंवर की २०५ एवं तेज्या धोल्या की ३४० पंक्तियां ही लिख सका। ये कथाएं अपूर्ण सी लगती हैं। मालवी का लोक-कथा साहित्य संकलन की दृष्टि से अछूता ही रह गया है। बालकों द्वारा कही जाने वाली छोटी-छोटी कहानियां, स्त्रियों के व्रत और त्यौहार सम्बन्धी कथाएं एवं पुरुषों की नीति परक एवं शृङ्गार-भावना की मनोरंजक लोक-कथाओं का व्यवस्थित संकलन करना वांछनीय है। लोकजीवन से सम्बन्धित कला एवं संस्कृति का, कथा और गीतों का सांगोपांग एवं व्यापक अध्ययन करने के लिए वांछित सामग्री के सग्रह का प्रायः अभाव ही रहा। इस दिशा में योजना-बद्ध कार्य करने के उद्देश्य से स्थापित की गई मालव लोक-साहित्य परिषद् के कारण लोक-साहित्य के संगठन एवं अध्ययन में गति अवश्य आ गई हैं।

मालव-लोक-साहित्य-परिषद्

मालवा की सांस्कृतिक परम्परा एवं गौरवगाथाओं के प्रति जागरुक दृष्टिकोण रखकर उसकी सुरक्षा एवं विकास की प्रेरणा देने के कार्य में विक्रम के संपादक पं०सूर्यनारायणजी व्यास अग्रणी रहे हैं। उनका वास-स्थान उज्जैन, 'भारती-भवन' के रूप में मालव की सांस्कृतिक चेतना का आधार बन गया है। मालव लोक-साहित्य-परिषद् के निर्माण का दायित्व भी पण्डितजी को ग्रहण करना पड़ा। १९ अप्रैल १९५२ के दिन उक्त परिषद् की स्थापना हुई। परिषद् के निर्माण के पश्चात् मालवी भाषा में साहित्य-सृजन के साथ ही लोक-साहित्य के संकलन एवं समाजशास्त्रीय तथा नृतत्व-शास्त्र की द्रष्टि से वैज्ञानिक अध्ययन के लिये प्रेरणाप्रद वातावरण बन गया। मालव-भाषी जनता में नवीन चेतना जागृत करने की दृष्टि से परिषद ने २ नवम्बर १९५२ को शिप्रा तट पर व्यापक मालवी कवि-सम्मेलन का आयोजन किया। लोक-साहित्य के प्रति व्यापक जनानुराग उत्पन्न करने के साथ ही मालवी लोक-साहित्य के सुव्यवस्थित अध्ययन, संशोधनात्मक विवेचन, नृवंश-शास्त्र, संस्कार और सभ्यता एवं विभिन्न जातियों के संस्कार-प्रभाव आदि का पर्यवेक्षण कर निश्चित दिशा एवं लक्ष्य को लेकर कार्य करना मालवा लोक-साहित्य परिषद का चरम उद्देश्य निर्धारित किया गया। मालवी भाषा एवं लोक-संगीत के शास्त्रीय अध्ययन को भी परिषद् ने अपनी कार्य-सीमा में सम्मिलित कर लिया।[1] उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयोगात्मक दृष्टि से

---

१. देखें—मालवी लोक-साहित्य-परिषद् का परिचय पत्र।

जून १९५३ मे नर्मदा उपत्यका के संलग्न क्षेत्र निमाड़ का सांस्कृतिक पर्यवेक्षण कर लोकगीत, लोककला एवं लोक-नृत्य आदि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त की है, परिषद् के सक्रिय कार्यकर्ताओं ने अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार अध्ययन के लिये निम्नलिखित क्षेत्र निर्धारित कर लिये हैं :—

१.	समाज-शास्त्रीय अध्ययन....	श्री रामचन्द्र रानड़े एम.ए; एम.एस-सी; एल.एल.बी.
२.	लोक-कथा, लोक-साहित्य एवं लोक-कला (चित्रांकन आदि)	श्री श्याम परमार
३.	लोकगीत	प्रा० चिन्तामणि उपाध्याय
४.	लोक-नृत्य	श्री अमर बोस एवं त्रिभुवननाथ दवे[1]
५.	लोक-संगीत	श्री कुमार गन्धर्व

मालव के विभिन्न क्षेत्रो से वांछित सामग्री प्रस्तुत करने के लिए कुछ परिपत्रों का निर्माण किया गया है। इस कार्य में विद्यालय क छात्र एवं अध्यापकों का सहयोग उद्देश्य-सिद्धि में अधिक उपयोगी होगा। सांस्कृतिक पर्यवेक्षण के लिये निर्धारित किये गये परिपत्रों का यहाँ उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

क्रम संख्या	विवरण
१.	ग्राम का परिचय पत्र।
२.	लोक-साहित्य के संकलन कर्ताओं के लिए आवश्यक निर्देश
३.	परम्परा से प्रचलित धार्मिक आनुष्ठानिक आकृतियाँ।
४.	गुदनाकृतियां।
५.	वेशभूषा एवं आभूषण।
६.	लोक-नृत्य।
७.	भाषा........।

मालवी और उसके लोकगीत

मालवी भाषा की उत्पत्ति एवं प्राचीनता

लिखित साहित्य के अभाव में किसी भी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास के सम्बन्ध में मान्यताएँ निर्धारित करना बड़ा ही कठिन कार्य है। मालव प्रदेश की सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा को प्रदेश के नाम पर मालवी कह सकते है। इसका कारण भी स्पष्ट है। जनपदों के नाम पर ही भाषा एवं साहित्य की विभिन्न शैली, वेष-विन्यास, विलास-विन्यास एवं वचन-विन्यास के नामकरण की पद्धति प्राचीन साहित्य-शास्त्रियों के द्वारा अपनाई गई है, वेष-विन्यास, विलास-विन्यास एवं वचन-विन्यास को क्रमशः प्रवृत्ति, वृत्ति

---

१. श्री त्रिभुवननाथ दवे का युवावस्था में ही देहान्त हो गया।

और रीति की संज्ञा दी गई है ।[१] नाट्य-शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने चार प्रकार की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते समय दाक्षिणात्य, पांचाली एवं औड्र-मागधी आदि के साथ अवन्ती प्रदेश की प्रवृत्ति को 'आवन्ती' संज्ञा दी है ।[२] इसी तरह भाषा का नामकरण करते समय अवन्तिका की भाषा को 'अवन्तिजा' संज्ञा देकर सप्त-भाषा के वर्ग मे स्थान दिया है ।[३] अवन्तिजा निश्चित ही उस युग की लोक-भाषा थी; क्योंकि संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के साथ ही देश-भाषा के विकल्पन को ग्रहण करने के लिए भरत मुनि ने विशेष आग्रह किया है, किन्तु अवन्तिजा भाषा के स्वरूप, गुण और लक्षण आदि के सम्बन्ध में नाट्य-शास्त्र मौन है । उसे केवल धूर्तों के द्वारा प्रयुक्त होने योग्य बताया है''' प्राच्या विदुषकादीनां धूर्तानाम-प्यवन्तिजा ।[४] पं० सूर्यनारायणजी व्यास ने अवन्तिजा के साथ 'धूर्त' शब्द को संलग्न देख कर भाषा और प्रदेश की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए 'धूर्त' शब्द की विशेष व्याख्या कर डाली, धूर्त का अर्थ उन्होंने (Diplomate) माना है ।[५] किन्तु यहाँ भाषा की प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा का प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि श्लोक के उक्त अंश का पाठान्तर भी प्राप्त होता है'''' 'योज्या भाषा अवन्तिजा'[६] अवन्तिजा को धूर्तों की भाषा घोषित करने वाला अंश किसी भी दूषित मनोवृत्ति के कारण ही जोड़ा गया है । मालवी के महत्व एवं उसकी प्राचीनता को सिद्ध करने के लिये श्री श्याम परमार ने मालवी की जननी अवन्तिजा को माना है ।[७] किन्तु राजशेखर द्वारा काव्य मीमांसा मे प्रस्तुत किये गये नवीन प्रश्न का वे उचित समाधान नहीं कर सके । राजशेखर ने अवन्ति, पारियात्र एवं दशपुर के निवासियों की भाषा को भूत-भाषा कहा है ।[८] भूत-भाषा पैशाची का ही दूसरा नाम है किन्तु भूत से संलग्न शब्द पिशाच के साथ सम्बन्ध जोड़ कर उसे अनार्य भाषा करार देना उचित नहीं ।[९] फिर भरतमुनि के युग, ईसा-पूर्व तीसरी सदी मे लेकर राजशेखर के समय तक लगभग एक हजार वर्षों के दीर्घ काल को चीर कर अवन्तिजा का वही रूप स्थिर रहा होगा यह भी असम्भव है । नाट्यशास्त्र में जिस अवन्तिजा का उल्लेख मिलता है उसकी अपेक्षा मालवी को हम भूत-भाषा के निकट पाते है । क्योंकि राजशेखर द्वारा वर्णित भूत-भाषा एवं प्रचलित मालवी में एक गुण समान

---

१. वेष-विन्यास-क्रमो प्रवृत्तिः, विलास-विन्यास-क्रमो वृत्तिः, वचन-विन्यास-क्रमो रीतिः... राजेश्वर कृत, 'काव्य मीमांसा, अध्याय ३. (बि०रा०भा० प० पटना)

२. आवन्ती दाक्षिणात्याच... पांचाली चौड्र मागधी... } नाट्य शास्त्र अध्याय १३ श्लोक ३२ । निर्णय सागर प्रेस १९४३ ।

३. मागध्यवन्तिजा प्राच्या सूरसेन्यर्धमागधी :
वाह्लीका दक्षिणात्यांच सप्तभाषा प्रकीर्तिताः.... नाट्य शास्त्र १७।४।

४. वही, १७।५१ ।

५. श्याम परमार के लेख पर दी गई टिप्पणी के आधार पर ।

६. नाट्य-शास्त्र; अध्याय १७।५१ पाद टिप्पणी ।

७. मालवी और उसका साहित्य....पृष्ठ २० ।

८. आवन्त्याः पारियात्राः सह दशपुरजैर्भूत-भाषा भजन्ते....काव्य मीमांसा; अध्याय १०

९. मालवी और उसका साहित्य....पृष्ठ २० ।

रूप से विद्यमान है। मालवीकी सरलता एवं मिठास तो प्रसिद्ध ही है एवं राजशेखर ने भी भूत-भाषा की विशेषता प्रकट करते हुए उसे सरस कहा है।[1]

परमार जी को दूसरा भ्रम सिद्ध एवं जैन लेखकों की अपभ्रंश रचनाओं में प्रयुक्त कुछ प्रचलित मालवी शब्दो को देखकर हुआ।[2] हिन्दी काव्य-धारा (राहुल जी कृत) में प्रस्तुत कुछ उद्धरणो में प्रयुक्त निम्नलिखित शब्दो को परमार जी मालवी के शब्द मान बैठे····

सक्कर खंडेहि पायस पाय सोही ···········	पृष्ठ ४८
सहज अंगिठी भरि भरि राँधे	१५८
जीत्या संग्राम पुरिष भया सूरा	१६८
सासूड़ी पालनड़े बहूडी हिन्डोले	१६१
सौने रूपे सीझे काज	१६३
बळद विआअल गविआ बाँझे	१६४

सक्कर (शकर), राँधे (पकाती है), जीत्या (जीतकर), सासूड़ी (सास), बहूड़ी (वधू) सोने (स्वर्ण), रुपै (रौप्य), बलद (बैल) आदि शब्द गुजराती एवं राजस्थानी में भी उसी अर्थ में प्रचलित हैं। इन शब्दों के अतिरिक्त मालवी के कई शब्द ऐसे है जो गुजराती एवं राजस्थानी में समान रूप से प्रचलित है।[3] किन्तु इसका यह तात्पर्य तो नही हो जाता कि शब्द-साम्य के कारण हम गुजराती और राजस्थानी को भी अवन्ति-अपभ्रंश या मालवी से निसृत मान लें।

वस्तुतः जिस समय अपभ्रंश के आँचल को छोड़ कर उत्तर भारत की वर्तमान भाषाओं का जन्म हो रहा था, उस समय उक्त प्रदेशों की आधुनिक भाषाओं का प्रेरणा-स्रोत

---

१. सरस रचनं भूतवचनम्.... बाल रामायण; अंक १, श्लोक ४।

२. मालवी और उसका साहित्य ... पृष्ठ २१।

३. १—गुजराती........
सासूड़ी धूतारी वीर....चूनड़ी भाग २.... पृष्ठ ३७।
सासूड़ी मांगे रीतड़ो रे झीणां.... वही पृष्ठ २२।
सासूड़ी सोमल पायां.... रढियाली रात ; भाग, १, पृष्ठ ६६।
सोनला वाटकड़ी ने रूपला कांगसड़ी.... रढियाली रात; १।६४।
अधमण रुपाना भरत भराया.... वही १।५३।
सवा मण सोना नु कापड़ो... वही १।५३।
दूध ने साकर पाजो
बाई रे सात रे सोना नो सारो दीवड़ो चूंदड़ी २।१७।
ईने दीवड़ीए रंग रूपाना मोर

-राजस्थानी....१ एवड़ छेवड़ म्हारा भात रँधेगा, पृष्ठ ५६
२ आठ बळदां की ए मोरी नोरणी, ,, ६०
३ सासू नणद गुण मानसी, पृष्ठ ५२ (राजस्थान के लोकगीत)

एक ही है, इसमे कोई सन्देह नही है। प्रदेशगत भेद तो कालान्तर मे विकसित हुए है। गुजराती के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने गुर्जर प्रदेश की आद्य-भाषा के सम्बन्ध में विचार करते समय मालव की भाषा के लिये भी यह अभिमत प्रकट किया है कि राजपूताना, मालवा और आधुनिक गुजरात में बसने वाले लोग एक ही संस्कृति और परम्परा से आबद्ध थे एवं एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे। यह स्थिति हुएनत्संग के समय से....अर्थात् छठी शताब्दी से लेकर सन् १३०० तक बनी रही; जब पश्चिमी राजस्थानी और स्वर्गीय प्रो० दिवेटिया के शब्दोमे 'गौर्जरी अपभ्रंश' का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् ही आधुनिक काल की गुजराती, मालवी और जैपुरी के स्वरूप अलग हुए।[1] मुन्शी जी ने जिस भाषा की ओर संकेत किया है वह निश्चित ही जन-साधारण मे प्रचलित लोकभाषा थी और उस अपभ्रंश से भिन्न थी जिसका प्रयोग लेखक और विद्वानों द्वारा साहित्य-रचना में किया जा रहा था। अधिकाश विद्वानो ने हिन्दी आदि भाषाओ की उत्पत्ति अपभ्रंश से मानी है किन्तु यह अपभ्रंश विद्वानो एवं साहित्य की भाषा थी जिसका मूल आधार उस युग की लोक-भाषा रही है। असल मे 'अपभ्रंश' लोक प्रचलित भाषा का नाम है जो नानाकाल मे, नाना स्थान में, नाना रूपो मे बोली जाती थी और बोली जाती है।[2]
मार्कण्डेय एवं कुवलयमालाकार ने जिस अपभ्रंश भाषा का विवरण प्रस्तुत किया है वह लोक-भाषा का विकसित रूप है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक युग में साहित्यारूढ भाषा के समानान्तर कोई न कोई देशी भाषा अवश्य रही है और यही देश भाषा उस साहित्यिक भाषा को नया जीवन प्रदान कर सदैव विकसित करती रहती है।[3] मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के तीन उपभेद नागर, उपनागर, ब्राचड के अतिरिक्त लगभग २७ विभिन्न स्थानीय बोलियों के नाम गिनाये हैं, उनमे 'अवन्त्य' और 'मालव' को दो विभिन्न रूपो मे स्वीकार किया है।[4] किन्तु इन प्रभेदो की भाषा के लिखित साहित्य के अभाव में कोई महत्व नही है। परिनिष्ठित अपभ्रंश में आधुनिक देशी बोलियों के मिश्रण का आभास हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के रचना काल से ही मिलने लगता है। उनकी देशी नाममाला में अनेक ऐसे शब्दों का संग्रह है, जो प्राकृत ही नहीं बल्कि अपभ्रंश साहित्य में भी अपयुक्त है। ऐसे शब्दों का प्रयोग बोल-

1. "The fact make it clear that the people of Rajputana, Malwa and Gujrat during the period were homogenous people divided into different varnas and linguistically were one in the time of Yuan Chwang and so were they till western Rajasthani or what the late Prof. Divetia rightly called Gaurjari Apabhransha (गौर्जरी अपभ्रंश) after 1300 A. C. came to be split in modern Gujrati, Malwi and Jaipuri...."

—The Glory that was Gurjardesa, Part III, pp.98.

२. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी....हिन्दी साहित्य की भूमिका—पृष्ठ १७।
३. नामवरसिंह; हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृष्ठ ८।
४. नागरो ब्राचडश्चोपनागरश्चेति ते त्रयः—प्रकृतसर्वस्वः ४, ७ एवं ४।

बाल की भाषा में होता रहा होगा यह बात सहज ही सोची जा सकती है। वज्रयानी सिद्धो एवं जैन लेखकों की रचनाओं में उपलब्ध शब्दों की एक विस्तृत सूची में आधुनिक मालवी, गुजराती और राजस्थानी में प्रचलित शब्दो को देख कर यह कहा जा सकता है कि मालवी के बीज भी उसी क्षेत्र मे विद्यमान थे, जहाँ से गुजराती और राजस्थानी के अंकुर प्रस्फुटित हुए।[1]

मालवी, भाषा विज्ञान की दृष्टि से

आधुनिक भाषा-शास्त्रियों ने स्थूल रूप से हिन्दी की विभिन्न बोलियों को क्षेत्रीय आधार पर पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी, इन प्रमुख भागो मे वर्गीकरण किया है और पुराने पंडितो की तरह भाषा के अनेक भेद-उपभेद प्रस्तुत किये है। मालवी का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सर्वप्रथम अध्ययन डाक्टर ग्रियर्सन ने सन् १९०७-०८ में प्रस्तुत किया। सम्पूर्ण भारत की विभिन्न भाषा और बोलियो का कार्य एक बृहद् आयोजन था, अतः मालवी के

---

१. हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में आये हुए कुछ महत्वपूर्ण शब्दों की सूची दी जा रही है जो हिन्दी तथा मालवी जैसी बोली में भी मिलते हैं।

अच्छरा	(अछरी)	दुआर	(द्वार)	कुमार	(कुम्हार)
देउल	(वेकुल)	खोडी	(खोड) मालवी खोड़	नवल्ली	(नवल)
गड्डो	(गड़ढा)	पराई	(अन्य)	छइल्ल	(छैल)
वप्पुड़ा	(बापड़ा डी मा०)	झीण	(महीन)	रूक्ख	(रूख:वृक्ष)
डाल	(शाखा)	रूसणा	(रोष युक्त)	हलद्दी	(हल्दी)
डोंगर [पहाड़ी]	(डूंगर री मालवी)	ढोल्ला	[प्रियतम]	हेठ्ठ[नीचे]	हेठ मालवी

* हेमचन्द्र की देशी नाममाला में आये हुए शब्द जो थोड़े से ध्वनि-परिवर्तन के साथ आज भी हिन्दी की विभिन्न बोलीयों एवं मालवी में मिलते हैं।

उक्खली	(ओखली)	गग्गरी	
उज्जड़		गड्डी	(गाडी)
उड़िदो	(ऊड़दाँ:मा०)	गुत्ति	(गंति) बन्धम्
उंबी	(पक्क गोधूम)	छिणणालो	(छिनाल)
ओड्ढणं	(ओढ़नो)	जोवारो	(ज्वार) धान्य
ओखणं	(ओसाना)	झाड़	(लता गहनम्)
ओसरिया	(ओसार अलिन्द)	बोक्कडो	बकरा
कट्टारी	(कटारी)	भाभी	
कुल्लड़		बोहारी	(झाड़ू:बुवारी—मा०)
कोइला	(कोयला)	मोग्गरो	(मोगरा पुष्प)
खवो खबओ	(काँख)	राड़ी	(राड़)

के विभिन्न उपभेदों का व्यापक एवं विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करना उनके लिए संभव भी नही था। डाक्टर ग्रियर्सन ने मालवी को राजस्थानी के पांच उपभेदों में रख कर उसके मुख्य भेद रांगड़ी और नौंधवाड़ी पर संक्षिप्त विचार किया है। प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डॉक्टर सुनीति — कुमार चाटुर्ज्या ने मालवी और राजस्थानी के बीच सूक्ष्म भेदों को स्वीकार करते हुए उसे मध्य देश की भाषा की एक शाखा मानकर उसके स्थायीपन को स्वीकार किया है।[1] डाक्टर ग्रियर्सन के आधार पर श्री मोतीलाल मेनरिया ने भी मालवी को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत पांच प्रादेशिक बोलियों में सम्मिलित किया है।[2] मेनरिया जी ने मालवी की विशेषताओं के सम्बन्ध में जो उल्लेख किया है वह विचारणीय अवश्य है। यथाः—

१. मालवी समस्त मालव प्रान्त की भाषा है, यह मेवाड़ और मध्य-प्रान्त के कुछ भागों में भी बोली जाती है।
२. अपने सारे क्षेत्र में इसका प्रायः एक ही रूप देखने आता है।
३. इसमें मारवाड़ी और ढूंढाड़ी दोनों की विशेषता पाई जाती है।
४. कहीं-कहीं पर मराठी का प्रभाव भी झलकता है।
५. यह एक बहुत कर्ण-मधुर एवं कोमल भाषा है।
६. मालवा के राजपूतों में इसका एक विशेष रूप प्रचलित है, जो रांगड़ी कहलाता है, यह कुछ कर्कश है।........[3]

* अपभ्रंश काव्यों में प्रयुक्त कुछ तद्भव शब्द जो मालवी में प्रचलित हैं:—

कुंड
खाट
घरवार घर द्वार [घरबार मा०]
खुरप्प [खुरपी]
घल्लई [घालना]
चक्खई [चखाना]
चगेड़ा [डलिया] मा० चगेड़ी
चडई [चढ़ाना]

चुनई
छिवई [स्पर्श करना]
झीण [पतला]
ढोर [पशु]
पडीवा [मा० पड़वा]
भीड़
भोल [भोली]
रसोई
रडी [वेश्या]

उक्त तीनों सूचियों में दिये गये शब्द, प्रमाण एवं संदर्भ सहित, श्री नामवरसिंह कृत............हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग........ पुस्तक में उद्धृत किये गये हैं, देखें, पृष्ठ १५८ से १७२ तक।

१. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी; पृष्ठ १८३। (राजकमल प्रकाशन १९५४)
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य ; पृष्ठ ५।
३. वही, पृष्ठ १३।

मालवी के उपभेद

मालव प्रदेश की विस्तृत सीमा में भी मालवी के रूपों में यत्किंचित परिवर्तन प्राप्त होता है किन्तु यह भेद स्थूल रूप से अध्ययन करने की वस्तु नहीं है। मेनरियाजी ने मालवी के ऊपरी स्वरूप को तो अवश्य पहिचाना है, किन्तु उसकी अन्तरात्मा और उसके विस्तृत वर्गीकरण की विशेताओं की ओर उनका ध्यान आकर्षित नहीं हो सका। डाक्टर ग्रियर्सन ने मालवी के दो उपभेदों का उल्लेख मात्र किया है। मालवी का सबसे अधिक व्यापक, विस्तृत एवं अध्ययन-पूर्ण विवेचन श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' ने प्रस्तुत किया। द्विवेदीजी ने मालवी को बुन्देली तथा गुजराती की मध्यवर्ती राजस्थानी का एक रूप मान कर उसके दो भेद किये हैं....मालवी और रांगड़ी...[1] अभी तक मालवी और गुजराती के निकटतम सम्बन्ध की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। वस्तुतः मालवी पर राजस्थानी, गुजराती और मराठी का समान रूप से प्रभाव पड़ा है। द्विवेदी जी ने उज्जैन के निकटवर्ती मध्य-भाग की मालवी को मुख्य भाषा माना है और रांगडी के अनेक उपभेद प्रस्तुत किए हैं।

रांगड़ी

१. रजवाड़ी....राजपूतों की बोली, इसमें मेवाड़ी और मारवाडी का मिश्रण है।
२. निमाड़ी....
३. सौंधवाड़ी....
४. पाटवी....सी०पी० चाँदा जिले मे एक छोटी सी जात द्वारा बोली जाती है।
५. गायरी....बेतूल (म० प्र०) के भोयर लोग बोलते है।
६. ढोलेवाड़ी....होशंगाबाद के पश्चिम में बोली जाती है।
७. भोपाल की मालवी।
८. होशंगाबाद की मालवी।
९. कोटे की मालवी....(डंगसेरी) यह चम्बल के डांग की भाषा है।
१०. मालवई....(पंजाबी का एक भेद)।

समीर जी द्वारा प्रस्तुत मालवी भाषा का यह अध्ययन वास्तव में मालव प्रदेश की (भाषा की दृष्टि से) सीमा-रेखा प्रस्तुत करने में आधार-युक्त मार्ग-दर्शन का काम करेगा। मालवी के स्थान-सूचक उपभेदों के अतिरिक्त उन्होंने इस क्षेत्र-विस्तार की स्थूल सीमा-रेखा भी प्रस्तुत की है। विकृत रूप में मालवी का विस्तार निम्नलिखित है :—

पूर्व....मध्य-प्रान्त के होशंगाबाद, बेतूल आदि जिले।
उत्तर....ग्वालियर, टोंक तथा कोटा के कुछ भाग।
पश्चिम....झालावाड़।
दक्षिण....भीली बोलियों में जाकर समाप्त।

---

१. 'मालवी के भेद और उनकी विशेषतायें' शीर्षक लेख हिन्दुस्तानी एकादमी, प्रयाग, जनवरी १९३३; पृष्ठ ५१।

श्री श्याम परमार ने द्विवेदी जी के वर्गीकरण के आधार को स्वीकर करते हुए मालवी के कुछ और उपभेदो की कल्पना कर डाली। स्थान-विशेष एवं जातियो को लेकर मालव जैसे विस्तृत एवं विभिन्न संस्कृतियों से युक्त प्रदेश में भाषा के अनेक उपभेद माने जा सकते है क्योंकि ग्राम और नगर, स्त्री और पुरुषों आदि की बोली में भी कुछ भेद मिल ही जाते है। किन्तु स्थान और एक ही स्थान पर बसने वाली जातियो के आधार पर भाषा के अनेक उपभेदो की कल्पना कर लेने में न कोई तथ्य है और न भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इसका सबल आधार ही है। परमार जी ने मन्दसौरी और रतलामी आदि नामकरण दिये हैं।[1] इसी तरह नागर आदि जातियों के नाम पर 'नागरी' और 'गूजरी' उपभेदों की सृष्टि भी कर डाली। मन्दसौर और रतलाम की बोली मे कोई अन्तर नही है और मन्दसौर के अंतर्गत सौंधवाड़ा का पूरा क्षेत्र केवल मन्दसौर जिले के अन्तर्गत ही नही आता। सौंधवाड़ शाजापुर जिले की उत्तरीय सीमा में संलग्न पार्वती के क्षेत्र से प्रारम्भ होता है। काला-पीपल के उत्तर का प्रदेश आगर, सुसनेर, जीरापुर, महीदपुर, तराने के उत्तर का क्षेत्र, चोमेला, महीदपुर मंडी, गरोठ तहसील में चम्बल का पूर्वी दक्षिणी भाग सौंधवाड़ा कहलाता है सौंधवाड़ी मालवी का दूसरा प्रमुख उपभेद है सौंधवाड़ी के अतिरिक्त मालवी का दूसरा प्रमुख उपभेद रांगड़ी है। मालकम ने रांगड़ी भाषा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस प्रदेश की बोली एवं रागड़ लोगो के प्रति घृणा का भाव व्यक्त करने के लिये मराठों ने 'रांगड़ी' कहना शुरु किया।[2] वस्तुतः सौंधवाड़ी, रांगड़ी, उमठवाडी और निमाडी मालवी के ये चार उपभेद ही प्रमुख हैं, जिनका मालव मे व्यापक अस्तित्व है। वैसे आदिम जातियों के स्तर से परे जीवन व्यतीत करने वाली कुछ जातियो के आधार पर बनजारी, भीली, भिलाली, निहाली, पारधी, बागरी आदि बोलियों की गणना अलग से की गई है।

मालवी पर निकटवर्ती भाषाओं का प्रभाव

मध्य-युग से ही राजनैतिक एवं प्राकृतिक (अकाल) कारणों से आसपास के प्रदेश की विभिन्न जातियाँ मालवा में आकर बसी है। इन जातियों के सम्पर्क से मालवी में कई भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्द इस तरह घुल-मिल गये है कि उन्हे भाषा-विशेष के ज्ञान के बिना पहिचाना नही जा सकता।[3]

---

१. स्थान-सूचक उपभेद (आदर्श मालवी)

उत्तरी मालवी	दक्षिणी मालवी	पूर्वी मालवी	पश्चिमी मालवी
	निमाड़ी	उमठवाड़ी	बांगड़ी

१. सौंधवाड़ी २. मन्दसौरी ३. डंगेमरी ४. रतलामी

देखें वीणा (मासिक) मार्च अप्रेल का सम्मिलित अंक १९५४

२. Memoirs of Sir John Malcolm, II pp. 191

३. Census of Central India, 1931, Vol. XVI, Table XV.

राजस्थानी और बुन्देली तो हिन्दी की उपभाषायें होने के कारण मालवी से संबंधित ही है, किन्तु मराठी और गुजराती भाषा का प्रभाव मालवी पर व्यापक रूप से छाया हुआ है। मराठी भाषा के अनेक प्रचलित शब्द भी मालवी में खप-पच गये है। विशेषतः मध्यम-वर्गीय परिवार एवं नगर के लोगों की भाषा में ही इन शब्दों का प्रचलन है। ग्रामीण क्षेत्र में मराठी की अपेक्षा गुजराती का प्रभाव अधिक व्यापक है। मालवी और गुजराती एक ही स्रोत की दो भिन्न धारायें हैं। इसका विवेचन किया जा चुका है। मराठी का प्रभाव लगभग दो सौ वर्षो से अधिक पुराना नही है। व्यावहारिक बोलचाल की मालवी में प्रयुक्त मराठी के कुछ शब्द दिये जा रहे हैं जिससे वस्तुस्थिति स्पष्ट हो सके, क्योंकि परम्परागत लोकगीतों मे मराठी शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता।[1]

मालवा की पूर्वी सीमा पर बुन्देलखण्ड स्थित है अतः भोपाल, भेलसा के पश्चिम भाग की मालवी एवं राजगढ़, नरसिंहगढ़ आदि क्षेत्रों मे बोली जाने वाली उमठवाड़ी पर बुन्देली का प्रभाव पड़ा है। बुन्देली की अपेक्षा मालवी पर गुजराती का प्रभाव अधिक व्यापक है। गुजराती भाषा अधिक कर्ण प्रिय है। कोमल एवं मृदुल वर्णो के प्रयोग के कारण उसमे मधुरता आ जाती है। मालवी की मार्दवता और मिठास गुजराती की देन है। कही-कही तो उक्त दोनों भाषाओं की शब्दावलियों एवं वाक्य-विन्यास में इतनी समानता है कि दोनो में भेद ही उपस्थित नहीं हो पाता। गुजराती लोकगीतों की कुछ ऐसी पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही है जो मालवी का स्वरूप लिए हुए हैं।

*उगमणा उगेला भाण, आथमणा हरणां हल खेड़े...६
*जी रे....माण्डव रूडी कांचली, जी रे...मेडीनु माण्डण ढोलिया....८

---

१. एकन्दर

एकन्दर		नारल	[मा० नारेल]
उभा राहिला	[मा० उबो रे]	नथनी	[छोटी नथ]
उन्दरी	[मा० ऊँदरो (चूहा)]	बांगडी	[मा० बंगडी]
कुत्रा	[कुत्ता]	बारा	[१२]
कलश		भरतार	[पति]
कबज्या	[जाकीट]	मन्दील	[जरी की रेशमी पगडी]
कवाड़		माणूस [मनुष्य]	[मा०—मनख]
खात्री		माहितीं	[जानकारी]
चौकशी		रहिवास	[मा० रैवास]
गल्ला	[बिक्री के पैसे]	रंगीला	
दगगड़	[मा० दगड़ा]	रांडपण	[वैधव्य]
धजा	[ध्वजा]	लाड़की	[अतिप्रिय]
बडील		सई	[मा० सई :सखी]
संतखाना	[पाखाना]	शिरणी	[मा० सिरणी] मिठाईः
शालू	[मा० सालू]	हात	[हाथ]

* नहि देशे माता तारी (त्हारी) गाळ ९
* बीणी चूंटी ए गोरी छाव भरी १०.
* कां कां रे....तमारी देह दूबली, आंखड़ळी जल भरी.......... ११.
* धीड़ी (धीयड़ी) मोरी कयां तमे दीठा
  ने कयां तमारा मन मोया रे १४.
* लाडला लाडली छाना कागळ (द) मोकले २३.
* तेडाव्या भाई भौजाई रे २३.
* पोड्या जागो रे बाईना वीर ४८.
* नानापण मों लाड़ लड़ाव्या ६९.
* हालन्ती मोलन्ती नीसरी ७०,
* धुतारो धुती गयो १०५.
* हैड़ा नो हार (हिवड़ा नो हार) १२१.....[1]

लोकगीतों में भाषा के स्वरूप की वास्तविक परख की जा सकती है । मालवी के लोकगीतों में भाषा का अन्तर्निहित सौन्दर्य भी व्यक्त हुआ है । रास और गर्बा गीतों की पुण्य-भावना को उर्मिल करने वाली गुजराती भाषा की तरह मालवी शृङ्गार और प्रेम की अनुभूति को प्रकट करने के लिये उपयुक्त है। भाषा को मिठास प्रदान करने वाले शृङ्गार-पूर्ण गीत मालव की नारियों की देन है । निम्नलिखित तीन गीतो मे मालवी की सम्पूर्ण सरसता और विविधता का परिचय प्राप्त हो सकेगा । ये गीत मालवा के भिन्न-भिन्न स्थानो की प्रदेशगत विशेषता लिये हुए है :—

१. मालवा ना प्यारा भोजन धन-धन मक्का की राबड़ी
   धन-धन म्हारी मक्कड़ माता, धन मक्का की राबड़ी
   मक्का लईने पीसन बैठी घट्टी गूंजे बापड़ी
   डाधो टूटो चाकी टूटी टूटी ऊँकी माकड़ी
   छज्जो बेचो हवेली बेची भैंस लीदी बाखड़ी
   चुकलियो लईने दूवन बैठी सारी भरगी हांडड़ी
   कोरी छाछ को आदण मेल्यों नीचे दीदी लाकड़ी
   खद्बद्-खद्बद् सीजन लागी वा मक्का नी राबड़ी
   ठंडी करके जीमण बैठी थाल परुसे राज धणी
   सासु-बऊ जीमण बेठी बरफी सरका टूकड़ा बटि गया...............[2]

---

१. सभी पंक्तियाँ चूंदड़ी भाग १ से उद्धृत हैं, संलग्न अंक पृष्ठ-संख्या के सूचक हैं।

२. उज्जैन, बड़नगर....... २ । ११ ।

२. या मटकी सोरमजी से भरिया, गंगाजी से भरिया।
भरत भरत लागो तड़को, म्हारो हार टूट्यौ नवसर को ॥
सासू लड़ताँ म्हारा सूसरा लड़त है, जेठ लड़त पर घर को।
टूटो गयो हार बिखर गया मोती, बिनत बिनत लागो तड़को ॥
म्हारो हार टूट्यो........
जेठानी....जेठजी...., देराणी लड़े पर घर की, म्हारो........
हार का कारण सायब लड़त है, म्हारो हार टूट्यो नवसर को........[1]

३. अरे फेर मिलांगा रे, मनडो हालरियो !
गोरी को ढोला फेर मिलांगा रे, मनड़ो हालरियो !
म्हारा भँवर जो इत्ता रसीला, दो-दो धोतियां पेरे रे।
म्हारा भँवर जो इत्ता रसीला, दो-दो कंदोरा पेरे रे ॥
पेरे चमकोली बींटी, ने आख्यां मटकाता चाले रे। मनड़ो....
म्हारा भँवर जी इत्ता रसीला, दो-दो गोरचां राखे रे ॥
म्हारा भँवर जो इत्ता रसीला, तीन-तीन राखे रंगीली रे
म्हे तो पीयर चाली रे, मनड़ो....
ढलक-ढलक कँई रोवौ भंवर जो, काले पाछां आवां रे।
म्है तो म्हारा घर में सूती, आड़ी दे गयो टाटी रे ॥
टाटी खोल बाहर नी जाना, म्हारी छाती फाटी रे।
मनड़ो हालरिया........[2]

भाषा के माधुर्य के साथ ही लोक-मानस की रसानुभूति एवं भावों की मृदुल व्यंजना मालवी लोकगीतों की अपनी विशेषता है। मालवी भाषा और उसके लोकगीतों की व्यंजना-शक्ति को प्रस्तुत करने के लिये निम्नलिखित उदाहरण ही पर्याप्त होगा :—

मन्दर पे सुन्दर खड़ी, खड़ी सुखावे केस।
राजन्द फेरी दे गया, कर जोगी को भेस........[3]

गार्हस्थ्य-जीवन की रसानुभूति के चित्रण की दृष्टि से मालवी लोकगीतों में प्रचलित दोहों में उक्त दोहा भाव-सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। इस दोहे की मार्मिकता एवं माधुर्य पर मुग्ध होकर भूतपूर्व 'सौरभ' सम्पादक पं० रामनिवास शर्मा ने तो यह उद्घोषणा भी कर डाली कि इस दोहे की समता का पद्य विश्व की किसी भाषा में नहीं मिल सकेगा।[4]

---

१. शाजापुर........३।१३५।
२. मन्दसौर........१।५८।
३. मालवी दोहे (अप्रकाशित) ६३।
४. 'गर्व की एक अपूर्व साहित्यिक वस्तु', शीर्षक लेख; वीणा, सितम्बर १९४१।

दोहे के भाव सौन्दर्य की व्याख्या कर देना आवश्यक है। इसमे भाषा की व्यञ्जक-शक्ति स्पष्ट हो जावेगी। प्रस्तुत दोहे में सद्य-स्नाता नायिका का चित्र अंकित किया गया है। नायिका मंदिर जैसे पवित्र एवं राजप्रासाद तुल्य भवन की छत पर खड़ी हुई अपने केश सुखा रही है। नायक अपनी पत्नी के केश सौन्दर्य पर अधिक मुग्ध है परन्तु वह मर्यादा के बन्धनों में जकड़ा हुआ है। वह अपनी पत्नी के केश-सौन्दर्य को देखने के लिए अधिक उत्सुक है। उसको प्रेम-भावना में मादकता की उद्दाम आतुरता भी अधिक है, किन्तु सद्य-स्नाता स्त्री के पास जाना शास्त्र-वर्जित समझ कर वह जोगी के भेष में चुपचाप नायिका की दृष्टि बचा कर द्वार पर फेरी लगा देता है। दाम्पत्य-भावना के साथ स्त्री का केश सुखाना उसके सौभाग्य एवं अनुराग की अनुपम साधना का द्योतक है। जोगीड़े का भेष बनाकर प्रियतम को भी अपनी स्वकीया के लिये फेरी लगाना पड़े। यह प्रेमजन्य चंचल कामना और मृग तृष्णा जैसी सौन्दर्य-पिपासा का परिचायक है। प्रियतम के हृदय में गृहस्थ-धर्म की निष्ठा के साथ सौंदर्य की अनन्त पिपासा भी प्रकट होती है।

उक्त दोहे में चित्रात्मक शैली के साथ ही 'सुन्दर' और 'राजन' शब्दों का चमत्कार पूर्ण प्रयोग भी बड़ा मार्मिक है। 'सुन्दर' शब्द नारी और उसके रूप लावण्य दोनों का ही अभिधायक है। 'राजन' शब्द प्रिय और पति दोनों का पर्यायवाची शब्द है। प्रिय और पति शब्द में व्याप्त भिन्न-भिन्न अर्थ-सत्ता राजन शब्द में केन्द्रीभूत हो गई है। इसमें हृदय की सत्ता के समर्पण की भावना के साथ ही सतीत्व-साधना भी अभिव्यञ्जित हुई है।

मालवी लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों का वर्ण्य-विषय इतना अधिक व्यापक है कि उनका वर्गीकरण कठिन हो जाता है। ऋतु, उत्सव, त्यौहार जाति और प्रवृत्ति आदि के आधार पर लोकगीतो का वर्गीकरण किया जा सकता है। जार्ज सेम्पसन ने गीतो का निम्नलिखित आठ भागों में वर्गीकरण किया है:—

१. ऋतु-उत्सव के गीत
२. परम्परा, त्यौहार के गीत
३. खेल के गीत
४. आध्यात्मिक गीत
५. पालने के गीत (लोरियां)
६. धार्मिक गीत
७. मद्य-पान के गीत
८. प्रणय भावना के गीत[१]

१. 1. Songs of Festive Seasons,
2. Songs of traditional rejoicing,
3. Game songs,
4. Spiritual songs,
5. Cradle songs,
6. Religious songs,
7. Drinking songs,
8. Love songs.
—Cambridge History of English Literature; Page 106.

भारत में ऋतुओं के उत्सव, त्यौहार आदि के अतिरिक्त विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की संख्या अत्यधिक है अतः वर्गीकरण में संस्कारों के गीतों को प्रथम स्थान देना आवश्यक है। कुछ भारतीय विद्वानों ने प्राप्त गीतों के आधार पर लोक-गीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत करने की चेष्टा अवश्य की है, और उसमें संस्कारों से सम्बन्धित गीतों को ही प्रमुख स्थान दिया है।[1]

मालव के जन-जीवन में प्रस्फुटित होने वाली गीतों की अजस्र धारा भी इतनी विशद एवं विविधता से व्याप्त है कि एक सुनिश्चित सीमा मे बाँध कर उसका वर्गीकरण करना सम्भव नही है। स्वर्गीय सूर्यकरण पारीख ने राजस्थानी में प्रचलित लोकगीतों की एक तालिका प्रस्तुत की है। मालवी एवं राजस्थानी लोकगीतों में वर्ण्य-विषय की दृष्टि से बहुत कुछ साम्य है। मालवी लोकगीतों का परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से पारीख जी की सूची बहुत कुछ सहायक हो सकती है। उन्होंने गीतों के क्षेत्र-विस्तार को निम्नलिखित २९ भागो में बांटा है....

१. देवी देवताओं और पितरों के गीत २. ऋतुओं के गीत
३. तीर्थों के गीत ४. व्रत-उपवास और त्योहारों के गीत
५. संस्कारों के गीत ६. विवाह के गीत
७. भाई-बहिन के प्रेम के गीत ८. साली-सालेल्या (सरहज)
९. पत्नी-पति के प्रेम के गीत—(१) संयोग में। (२) वियोग में।
१०. पनिहारियों के गीत ११. प्रेम के गीत
१२. चक्की पीसते समय के गीत १३. बालिकाओं के गीत
१४. चरखे के गीत १५. प्रभाती के गीत

---

१. (क) लोक गीतों का विस्तार जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी संस्कारों, विशेष घटनाओं एवं ऋतु परिवर्तनों, समस्त रसों और समस्त जातियों में प्राप्त होता है। इस दृष्टिकोण से लोकगीतों का वर्ण्य-विषय निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है...

(क) संस्कारों की दृष्टि से वर्गीकरण (ख) ऋतु सम्बन्धी गीत
(ग) व्रत-सम्बन्धी गीत (घ) जाति-सम्बन्धी गीत
(ङ) विविध गीत।

—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, सम्मेलन पत्रिका (लोक-संस्कृति अङ्क) पृष्ठ १४६।

(ख) अब तक जो लोकगीत प्राप्त हुए हैं उन पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करने से उन्हें पांच भागों में बाँटा जा सकता है।

१. संस्कारों की दृष्टि से। २. रसानुभूति की प्रणाली से।
३. ऋतुओं एवं व्रतों के क्रम से। ४. विभिन्न जातियों के प्रकार से।
५. क्रिया-गीत के आधार पर। —डाक्टर शिवशेखर मिश्र....वही....पृष्ठ १४१।

१६. हरजस (भजन) १७. धमालें।
१८. देश-प्रेम के गीत १९. [illegible]कीय गीत.
२०, राज-दरबार और दारु के गीत २०, [illegible] गीत (रामदेवजी आदि)
२२. सिद्ध-पुरुषों के गीत २३. (क) [illegible]ारों के गीत
(ख) ऐतिहासिक गीत
२४. (क) ग्वालियों के गीत (ख) हास्य रस के गीत
२५. पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत २६. शान्त रस के गीत
२७. गाँवों के गीत २८. नाट्य-गीत २९. विविध...[1]

(क) बालक-बालिकाओं के गीत (ख) स्त्रियों के गीत (ग) पुरुषों के गीत।

वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने के लिये उक्त वर्गीकरण अधिक विस्तृत एवं अव्यवस्थित हो जाता है। स्त्रियों के गीतों को ऋतु, व्रत, त्योहार और रसो की दृष्टि से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऋतुओ और त्यौहारो के गीत अलग से नही होते। इन्हीं गीतो में दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन की विविध भावनाओं का समावेश हो जाता है। संस्कारों के गीतों में भी भाई-बहिन, पति-पत्नी एवं देवी-देवताओं के गीत सम्मिलित किये जा सकते है। संस्कारों से संबंधित आनुष्ठानिक गीतो के अतिरिक्त देवी-देवताओं के अन्य गीत या तो व्रत और त्योहारों के गीतों की कोटि में रखे जा सकते हैं, अथवा भक्ति-भावना के स्वतन्त्र गीतों के अन्तर्गत। नारी-मानस की भावनाएँ, ऋतु-त्यौहार, व्रत और संस्कारों के गीत में व्यापक रूप से इतनी गुंथी हुई है कि उनका भिन्न-भिन्न भाव-धाराओं में विभाजित कर परख नहीं सकते। इसलिए मालवी लोकगीतों का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत करने के लिये तीन भेद ही प्रमुख माने जा सकते है....

(क) बालक-बालिकाओं के गीत, (ख) स्त्रियों के गीत, (ग) पुरुषों के गीत।

स्त्रियों और पुरुषों के गीतों की प्रवृत्तियों की दृष्टि से मुख्य आधार मान कर सभी प्रकार के मालवी लोकगीतों का विस्तृत वर्गीकरण निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है....

---

१. राजस्थानी लोकगीत, प्रस्तावना, पृष्ठ २२ से २५ तक।

स्त्रियों के गीत

व्रत त्यौहार और ऋतुओं के गीत
संस्कारों के गीत
भक्ति भावना के गीत
बसंत कालीन
फाग
दोहे
राधा कृष्ण की
प्रणय कथाएं
गालिय
उद्यानगीत
फूलपांति
दारुड़ी
भांगडली
शीतला के गीत
गणगौर के गीत
वर्षा कालीन
झूले के गीत
भांगडली
मिरगानेणी
बारहमासी
जाम्बू नीवू
असाड़ी
तीजके गीत
कृष्णजन्म
प्रणय सम्बन्धी
शरद कालीन
गरबे
झूमर
पुत्र जन्म
पुत्र कामना
के गीत
धनबऊ
(अगरनी)
पगल्या
सूरजपूजा
छठीं के गीत
बधावे
(लोरियां)
विवाह
आनुष्ठानिक
रतजगा के गीत
पूर्वज,
पीरजी,
जुझारजी,
जीजा(मृत सोत)
कुलदेवी
भेरुजी
शीतला आदि
लोकाचार से संबंधित
विनायक
सगाई
चाक नौंतना
उकड़ी पूजा
हल्दी पीठी
तेलपान
मायरा
बनाबनी
जनोई
बर निकासी
घोडी सेवरा
टूट्या, गाली
सुहाग कामण
कांकड डोरा
पारसी, विदाई, बधावें
नृत्य-गीत
चंद्रसखी
के गीत
अन्य भजन
प्रभाती,
तीर्थ यात्रा के गीत
(गंगोज)
सत्ती
तेज्या, घोल्या
छीक
विजासन
नागजी
सत्यनारायण
भैरुजी
जलदेवता

तृतीय अध्याय

मालवी लोकगीतों का विस्तृत विवेचन

(अ)

बालकों के गीत

१ शिशुओं के गीत
२ क्रीड़ा गीत
३ बालकों के गीत
४ बाल-गीतों का वर्गीकरण
५ गीतों की मूल प्रवृत्ति
६ गीतों की भाव-भूमि एवं कल्पना का आधार
७ विस्तृत विवैचन   सल्ला [छल्ला और हिरणी
८ संजा
९ घुढ़ल्या [घड़ल्या]
१० अन्य गीत ।

———

बालकों के गीत

स्त्री और पुरुषों के गीतों की तरह बालकों के भी अपने गीत होते हैं, इन गीतों की प्रवृत्तियों में भी उतना ही अन्तर होता है जितना कि एक बालक और युवा पुरुष की रूचि, प्रवृत्ति और आयु में अन्तर होता है, बालक–बालिकाओ में जग-जीवन समझने की क्षमता तो होती नहीं, परन्तु अनुकरण की प्रवृत्ति इनमें बड़ी प्रबल रहती है, वे अपने माता–पिता एवं अन्य स्त्री–पुरुषों को विभिन्न अवसरो पर गाते देखते हैं तो उनके मन में भी गीत गाने की लालसा उत्पन्न होती है, यह लालसा सामूहिक रूप में प्रकट होती है, और जहाँ कहीं भी दो–चार बालक या बालिकाएं एकत्रित हुए नही कि उनके खेल प्रारम्भ हो जाते हैं। इन खेलो में गीतों का समावेश भी होता है, उनके ये गीत बड़े लोगों की अनुकरण करने की प्रवृत्ति के सूचक अवश्य हैं किन्तु इस अनुकरण में बड़ी रोचकता है, जो उन्हें जीवन के दुर्घर्ष एवं विशाल क्षेत्र में अवतीर्ण होने के लिये सक्षम बनाती है।

तीन या चार वर्ष की आयु के बालक प्रायः किसी छोटे खेल में व्यस्त दिखाई देंगे। यह प्रवृत्ति इस आयु के सामान्य बच्चों में अवश्य ही देखने को मिलेगी कि वे किसी भी नवीन खेल का आयोजन कर अन्य बालकों को भी उसमें सम्मिलित कर लेते हैं[१]। खेलने की प्रवृत्ति तो बालक–बालिकाओं के शैशव का धर्म है, इसी में उनके अनेक गीत भी फूट पड़ते हैं, इन गीतों के शब्द, वाक्य एवं बाल–भाव मनोविज्ञान की दृष्टि से बड़े रोचक होते हैं, वैसे एक वर्ष का शिशु अपनी भाषा का प्रारम्भ केवल एक शब्द से ही करता है, एक शब्द ही मानो उसकी भावना को प्रकट करने के लिये एक वाक्य के समान है, आयु की वृद्धि के साथ ही बच्चों के वाक्य एवं उनका सीमित शब्द–कोष उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता है, तीन से छः वर्ष की आयु के बीच का बालक ९०० से लगाकर २५०० शब्द प्रायः जान लेता है।[२] किन्तु यह स्थिति यूरोप आदि पश्चिमी जगत में मान्य हो सकती है, जहाँ का सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक वातावरण सामान्य बालकों के लिये भी अनुकूल एवं विकासमय बन जाता है। मालवा एवं भारत के अन्य प्रदेशों के ग्रामीण बालकों पर उनके घर एवं वातावरण का जो प्रभाव पड़ता है उसके अनुसार यूरोप के बालकों की वे समता तो नहीं कर सकते, किन्तु तीन और छः वर्ष के बीच की आयु के बालकों

---

१. Child Psychology by Fowler D. Brooks, pp. 384, ff.

२. Gregory, In Journal of Educational Research, Vol. VII, pp. 127, ff.

की जो कल्पना उनके खेल और गीतों में प्रकट होती है, वह अवश्य ही आकर्षक है। आयु की दृष्टि से खेल के इन गीतों को दो श्रेणियों में रख सकते हैं।

१. तीन से छः वर्ष की आयु के शिशुओं के गीत।
२. छः से सोलह वर्ष तक की आयु के बाल्य और किशोरावस्था के गीत।

शिशुओ के कुछ छन्द खेल गीतात्मक होते है। इन गीतों की पंक्तियों में तीन या चार से अधिक शब्दो का प्रयोग नहीं होता। यह शिशुओं के मानस-विकास की स्थिति का सूचक है, इन गीतों की कल्पनाएं भी बड़ी विचित्र,एवं असम्बद्ध होती है। खेल से सम्बन्धित होने के कारण शिशु एवं बालकों के इन गीतो को क्रीड़ागीत की संज्ञा देना ही उपयुक्त होगा। क्रीड़ागीत शिशु एवं बडी आयु के बालको में समान रूप से गाये जाते हैं। सम्पूर्ण मालवा में प्रचलित निम्नलिखित क्रीड़ा-गीत शिशुओं के खेल और मनोरंजन का प्रमुख साधत है।

अटली-मटली, चव्वा-चन्नन। आवे नार, जावे नार॥
अगला झूले, बगला झूले। सावन मास करेली फूले॥
फुल-फुल की बावड़ी। राजा गयो दिल्ली॥
दिल्ली से लायो सात कटोरी। एक कटोरी फूटी, राजा की टांग टूटी[1]

शिशुओं द्वारा गेय इस प्रकार के क्रीड़ा-गीत ब्रज, बुन्देलखण्ड और अवध में भी प्रचलित हैं; उपरोक्त क्रीड़ा-गीत को ब्रज में 'आटे-बाटे' कहते है, मालवा में गीत की प्रथम पंक्ति पर ही क्रीड़ा एवं क्रीड़ा-गीत का नाम अटली-मटली प्रचलित है, आटे-बाटे में मालवी गीत से मिलती जुलती कुछ पंक्तियां प्राप्त होती हैं।[2] शिशुओं के इन गीतों में स्वर-साम्य एवं लय का अधिक महत्व है, क्रीड़ा-विशेष में सम्मिलित शिशुओ के कण्ठ माधुर्य से एक निश्चत गति में स्वर प्रवाहित होते हैं, वहाँ उच्चारित शब्द लयात्मक होकर गीत का स्वरूप धारण कर लेते हैं। इस गीत-माधुरी को प्रकट करने के लिये बच्चों को कोई शिक्षण प्राप्त नही होता वरन् अन्तः-प्रवृत्ति से ये गीत स्वयं ही उमड़ पड़ते हैं। यह बात अवश्य है कि शिशुओ को पालने में लोरियां की मधुरता का गीत-रस पान करने को मिलता है और माता के ममता भरे संगीत से पोषित होने के कारण उनके संस्कार बन जाते हैं अतः क्रीड़ा-गीतों के मूल में लोरियों का प्रभाव और प्रत्यक्ष में उसका अनुकरण स्पष्ट है। तुतलाती हुई, अस्फुट अथवा अर्ध-स्फुट वाणी से जब प्रथम बार इन गीतों का उच्चारण होता है तो वात्सल्य रस में निमग्न एक अनुपम भावभूमि का निर्माण होता है।

---

१. पाठान्तर.......अटकन मटकन
दही चटाका लेखक का गीत संग्रह, भाग १, गीत क्रमांक १।

२. अटकन बटकन दही चटकन
बाबा लाये सात कटोरी, एक कटोरी फूटी
मामा की बहू रूठी.......डॉ० सत्येन्द्र, ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ९७।

इन गीतों में बालक और बालिकाओं के गीत सम्मिलित है। बालकों के गीतों की संख्या बालिकाओं के गीतों की अपेक्षा बहुत ही कम है। मनोरंजन की दृष्टि से बालकों की केवल एक ही गीत पद्धति हैं जिसे 'झुलना' कहते है। हरणी, डेंडक माता और मक्कड़-माता आदि गीत बालक और बालिकाओं द्वारा सम्मिलित रूप से गाए जाते हैं। बालिकाओं के गीतों में संजा, घुड़ल्या और 'अवल्या-छवल्या आदि गीत प्रमुख है। मन की मौज और उमंग को प्रकट करने के साथ ही व्रत और त्यौहारों से सम्बन्धित होने के कारण कुछ गीत आनुष्ठानिक महत्व भी रखते है। संजा के गीत इसी प्रकार की भावना से ओतप्रोत है। इनमें मनोरंजन के साथ ही धार्मिक भावना की परम्परा भी मिली हुई है।

बालक-बालिकाओं के गीत उनकी आयु, ज्ञान और बौद्धिक स्तर को पूर्ण-रूपेण प्रतिबिम्बित करते हैं। वयः- सन्धि के पूर्व किशोरावस्था मे बालक बालिकाओं की मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र रहती है। अपनी अपरिपक्व बुद्धि से वे जीवन व जगत को परखने की चेष्टा करते है; अतः उनके गीतों में बाल-सुलभ कल्पनाएँ, बच्चों सी उछल-कूद एवं बाल-स्वभाव के अनुकूल किसी वस्तु को परखने का दृष्टिकोण रहता है। उनकी अस्फुट भाव-व्यंजना में बाल—चांचल्य के साथ ही स्वच्छन्दता एवं निर्द्वन्द्वता की प्रवृति भी प्रकट होती है। इन गीतों में हम किसी गहन चिन्तन की अपेक्षा नही कर सकते, किन्तु किसी भी वस्तु को परखने का उनका कल्पना-मिश्रित प्रयास बड़ा ही आश्चर्यजनक होता है। मनोरंजन एवं विनोद - युक्त खेल ही खेल में वे कभी-कभी जीवन के ऐसे मार्मिक एवं कटु सत्य को पकड़ते हैं कि हमें कुछ क्षण उनकी असम्बद्ध एवं सार-हीन लगने वाली बातों पर सोचना पड़ता है। संजा के गीत का उदाहरण है ....…

चाँदे बैठी चिड़कली, उड़ावो म्हारा दादाजी
आंगण बैठा पामणा, जिमाव म्हारा काकाजी
संजाबाई चाल्या सासरे, मनाव म्हारा दादाजी........[1]

इस गीत में तीन बातों का एक साथ उल्लेख हुआ है ....

१. मकान की छत पर चिड़िया बैठी है, उसके उड़ाने का संकेत।

२. घर के आंगन में अतिथि बैठे है, उनको सादर भोजन करवाने का आग्रह।

३. संजा बाई सुसराल जा रही है, उसको रोकने का निवेदन। चिड़िया पावणां एवं संजा बाई इन तीनों शब्दों की पृष्ठ-भूमि में कन्या की बिदाई का सम्पूर्ण दृश्य हमारे सामने आजाता है। चिड़िया एवं सुसराल को भेजी जाने वाली कन्या के प्रतीक संजा में कितना साम्य है। चिड़िया आकर हमारे मकान की छत पर बैठ गई उसे उड़ा देना चाहिये, कन्या ने हमारे घर जन्म लिया है, उसे सुसराल तो भेजना ही पड़ेगा। श्वसुर-गृह के लिये प्रस्थान करने वाली कन्या को मनाने का प्रयास भी कौन करेगा? वह रूठ कर तो जा नही सकती पर कुछ दिन मायके में रहने का आग्रह भी नहीं करते। पावणां शब्द नवविवाहित कन्या के पति के लिये प्रयुक्त किया गया है।

---

१. श्याम परमार, मालवी लोकगीत; पृष्ठ ६६।

बालक मनुष्यों की बाह्य चेष्टा एवं चाल–ढाल देखकर स्थिति को परखने की कोशिश करते हैं, ऊपरी हाव–भाव को देखकर वे अपनी बुद्धि के अनुसार मनुष्य को समझते हैं :—

म्हारो मामो आयो रे, नखराली मामी लायो रे,
नकटी ने पूछी बात, धमक से पड़ी ऊंके लात[1]।

मामा जब नखराली पत्नी को लेकर आया तो किसी नाक–कटी स्त्री ने उस मामी को छेड़ दिया होगा। मामा ने अपनी नई रूपसी के सन्मुख पौरुष का प्रदर्शन करने की दृष्टि से ही सही, उस बेचारी नकटी का दो–चार लातों के प्रहार से स्वागत किया होगा, 'म्हारो मामो आयो रे' .... पंक्ति मे बालक अपने मामा के आगमन से प्रेरित अत्यधिक प्रसन्नता को प्रकट करता है, किन्तु नखरेदार मामी के रूप-गर्व और उस पर न्यौछावर होने वाले मामा की तुनक–मिजाजी को समझने में भी देर नही करता। हास्य–कौतुक की भावना के साथ एक सामान्य घटना–सत्य की पकड़ कितनी रोचक है।

बालक–बालिकाओ के गीतो में कल्पना का आधार उनकी आंखों–देखी वस्तुओ पर निर्भर करता है। गीतो में वरिणत जीवन से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं की सूची यद्यपि विस्तृत नही है, फिर भी जो कुछ उनके द्वारा देखा जाता है, सामान्य जीवन के वातावरण में उपलब्ध वस्तुओ पर उनकी दृष्टि दौड़ जाती है। बालिकाओं के गीतो में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बन्धित वस्तुओ का उल्लेख अधिक हुआ है। गीतो में निर्दिष्ट उनके ज्ञान–भण्डार का विश्लेषण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है........

१. पशु–पक्षी:—हाथी–घोड़ा, गद्दा–गद्दी, (गधा–गधी) बैल, हिरणी, चिड़कली, पपइय्या (पपीहा) मोर, (मयूर) मुरगड़ा (मुर्गा) आदि ।

२. पुष्प–वृक्ष:—पीला फूल, जामुन की डाल,केल (कदली वृक्ष) आंबा डाल, आमली(ईमली) खजूर, पीपली, तूमड़ा की बेल आदि।

३. वस्त्र–आभूषण:—चूनड़, ओढ़नी, घाघरा (लहंगा), फूलों की कांचली (कंचुकी) झगल्या टोपी, माणक मोती, टीको माला(कण्ठहार) झम्मर, चुड़लो (चूड़ियां) टूकनी (कर्णफूल) आदि ।

४. खाद्य पदार्थ:—खाजा रोटी, लाडू, खीर, लापसी, गांकर, गेहूं और तरकारियां ।

५. जातियों के नाम:—बामण (ब्राह्मण), वाण्या (बनिया) नाई, माली, बागरी, बलाई, (हरिजन जातिया) कानगुवाल आदि ।

६. प्रकृति के दृश्य:—चांद, सूरज, हिरणी (मृग नक्षत्र) चांदनी रात आदि।

७. अन्य वस्तु:—गाड़ी, रेल, पालकी, तलवार, रोकड़ा (रुपया) आदि ।

बच्चों को पशु-पक्षियों के नामों की जितनी जानकारी है; प्रसंगवश गीतो में उनका उल्लेख हुआ है। वृक्ष, पुष्प एवं प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता की ओर भी बालकों का

---

१. छल्ले के गीत की कुछ पंक्तियां, १।६ छल्ला १४।

ध्यान अवश्य ही आकर्षित हुआ है किन्तु उसमें सौन्दर्यानुभूति की अपेक्षा विषय की जानकारी और प्रकृति को समझने में स्थूल दृष्टिकोण रहता है। कहीं-कहीं पर विचित्र कल्पनाएं की गई हैं। बालिकाओं को यह मालूम है कि चन्द्र का अस्त पश्चिम दिशा की ओर होता है। अतः उन्होंने पश्चिम दिशा में स्थित गुजरात की तरफ चन्द्र के जाने का उल्लेख कर चन्द्र के अस्त होने की सूचना दी —'चाँद गयो गुजरात', चन्द्र के अस्त होने पर हिरणी (मृग नक्षत्र) के उदित होने की जानकारी बालिकाओं के प्रकृति-ज्ञान की सूचक है, किन्तु यहीं उनकी कल्पना सजग हो उठती है।

चाँद गयो गुजरात, हिरणी उगेगा।
हिरणी का बड़ा-बड़ा दाँत, छोर्‌यां डरपेगा........

आसमान में उदित होने वाली हिरणी के बड़े-बड़े दाँत हैं जिसको देख कर लड़कियाँ डर जावेंगी। भूत और डाकन के बड़े-बड़े दाँतों की भयप्रद कहानियों में इस डर की भाव-भूमि के अंकुर हैं। इसके साथ ही गीत में भय का वातावरण उत्पन्न करना भी गायिकाओं का ध्येय है। यदि रात्रि का अधिक देर से घर जाता है तो वहाँ माँ की फटकार का भय बना हुआ है, अतः कन्याएँ अपनी संजा-सहेली को माता की मार-फटकार का भय बताकर उसे शीघ्र ही घर पहुँच जाने का आग्रह करती है :—

संजा तू थ्हारा घर जा, थ्हारी मां मारेगा, कूटेगा....।
चाँद गयो........

और रात्रि का अधिक समय हो जाने की सूचना चाँद गयो गुजरात की पंक्ति से प्रकट कर एक दूसरे भय का कारण उपस्थित करती है कि चन्द्रास्त हो गया है और हिरणी के उदित होने के पहले ही घर पर चली जाओ नहीं तो उसके बड़े दाँतों को देख कर सब लड़कियां डर जावेंगी।

बालकों की कल्पना के उभार के लिए कुछ प्रसंग होता है, घटनाएँ होती हैं, किन्तु कुछ कल्पनाएँ बे-सिर-पैर की होती हैं, जहाँ प्रसंग-शृंखला आदि का कोई व्यवस्थित क्रम नहीं रहता। असम्बद्ध कल्पनाएँ एक साथ पिरो दी जाती हैं। पाठशाला में विद्यारम्भ के लिए जब बालक जाता है तो अन्य बालक सरस्वती-वन्दना के एक क्रीड़ा-गीत के द्वारा उसका स्वागत करके अपने में सम्मिलित कर लेते हैं। गीत में सरस्वती माता का नाम भर आया है और बाद की पंक्तियों में अनेक कल्पनारम्य एवं कौतुकभरे दृश्यों का चित्रण मिलता है........

सरसत सरसत तू जग वेणी, हमसे लटकावे ऐसी।
विद्या मांगे ऊबी बाट, जो विद्या के घर लई जाय॥
माय बाय को हुओ सवाल, अबके नाखी छक्के नाखी।
कित्तो लाडू खायगी, एक गुणी कम साठ॥
नानो सो नायकड़ो, तुरक तुरक चाल।

नाना नानी सोटी, विद्या म्हारी मोटी ।।
सोटी लाग छम् छम्, विद्या आवे धम् धम् ।
नानो सो नायकड़ो, हत्ती पर से पड़ी गयो ।।

बालिकाओं की अपेक्षा बालकों के गीतों में बाह्य जगत का वर्णन रहता है। मालवी बालकों के इन क्रीडा–गीतो एवं ब्रज-बुन्देलखण्ड के बालकों के टेसू के गीतों की भावनाओं का आधार एक ही है। यहाँ तर्क और कार्य-कारण के लिये कोई स्थान नहीं होता; किन्तु भावनाओं के इन बिखरे अणुओं में प्रेरित एक अन्तर्निहित अप्रकट उद्देश्य अवश्य रहता है, जिसमें असद् प्रवृत्तियों के प्रति रोष एवं घृणा की भावना रहती है। यह संस्कार एवं वातावरण का परिणाम है।[1] बालिकाओं के गीतों की भी यही भावभूमि है। यदि हम इन गीतों के मनोवैज्ञानिक आधार पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि बालकों की कल्पना को उत्तेजित होने में घर एवं ग्रामीण वातावरण का बहुत कुछ प्रभाव है। बालिकाएं अपने परिवार में मायके के होने वाले वैमनस्यमय कटु एवं ईर्षा से पूर्ण व्यवहार और भड़ोंग को प्रायः देखा करती है। इनका प्रभाव उनके गीतों पर भी अमिट रूप से छाया हुआ है। देवर के प्रति उग्र एवं अनिष्ट पूर्ण भावनाओं के अंकुर बाल्यावस्था में ही प्रकट होने लगते हैं। इस भावना की अभिव्यक्ति मे कल्पना का योग देखिये ।

* 'मेरे घर के पीछे केल का वृक्ष है मेरा भाई उस पर चढ़ने लगा। अरे भाई जरा अच्छी सी मजबूत डाली पर चढ़ना। मेरा देवरजी उस केल के वृक्ष पर चढ़ने लगा। देवर जी तुम टूटी सी डाल पर चढ़ना।' प्रच्छन्न मनोभाव स्पष्ट है कि टूटी डाली पर चढ़ने से देवर नीचे भूमि पर गिरेगा और उसकी टांग टूट जावेगी।
* 'मेरा भाई केल पर से उतर रहा है। भाई तुम्हारे लिए भूमि पर फूल बिछे हैं मेरा देवर भी केल की डाल से उतरने लगा। देवर जी तुम्हारे लिए फूल नहीं, कांटे और भाटे हैं।'
* 'मेरा भाई भोजन करने के लिए बैठा है। हे भाई मैं तुम्हें ताजा भोजन कराऊँगी। मेरा देवर भी जीमने के लिए बैठा है, उसे तो बासी रोटियों के सूखे टुकड़े ही खिलाऊँगी।'

---

१. इमली की जड़ से निकली पतंग, नौ सो मोती झलके अंग।
एक अंग की लई कमान, बेरी मार करो कल्याण।
मेरे बेरी हिन्द के, सींग लागे बिन्न के।
डाढ़ी लागी भोग की, लाज नहीं लोग की।
दिल्ली या के काले चोर।
काले हैं कल्यानसाय, जुझवे को बादसाह, ये नगाड़े रामसाय।
—कीरतपुरा (भिण्ड) से प्राप्त टेसू का एक गीत।

* . मेरे भाई के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है। मैं अपने भतीजे के लिए झगल्या टोपी ले जाऊँगी। देवर के यहाँ लड़की हुई है, लाओ उसे पत्थर की शिला पर दचक दे।''[1]

एक आदर्श भारतीय परिवार में नारी के लिये तो भाई और देवर समान है स्वयं के भाई के प्रति जितना स्नेह वाछनीय होता है उससे भी कही अधिक स्नेह अपने पति के भाई, देवर पर भी होना वांछनीय है। किन्तु मालवी कन्याएं देवर के प्रति अच्छी भावनाएं नहीं रखती। यह संजा के गीतो में स्पष्ट हो जाता है। भाई के प्रति अधिक पक्षपात, ममत्व और मंगलमय कामना जितनी तीव्र है। देवर के प्रति अहित की भावना उतनी ही उद्दाम है जो परिवारिक जीवन में उत्पन्न कटुता और राग-द्वेष की सही स्थिति को सचाई के साथ प्रकट करती है।

सल्ला और हिरणी

सल्ला अथवा छल्ला अविवाहित लड़कों और अविवाहित पुरुषों के द्वारा गाया जाता है। छल्ला शृंगारी भावना के गीतों की प्रवृत्तियों को लेकर चलता है। छल्ला की गीत-पद्धति पर विस्तृत विवेचन मालवी दोहो के अन्तर्गत किया गया है। यहां केवल बालकों द्वारा गेय छल्लों पर विचार करना ही वांछनीय है।

अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक सजग होने के कारण बालकों ने बड़े लोगों को छल्ला गाते देख कर स्वयं भी गाना प्रारम्भ किया किन्तु बालकों और तरुणों के छल्लों में उतना ही अन्तर है जितना कि शैशव और यौवन में, बालकों के गीतों में छुकरपन एव असम्बद्ध अकल्पनीय बातें कौतुक उत्पन्न करती हैं। सल्ला सायजावादी लोंडी अथवा 'छल्लो बोल्यो रे' गीत की आधार भूत पंक्तियां है, जिनको टेक कहते हैं और अनेक विचित्र कल्पनाओं को अस्फुट शब्दों में गूंथकर गीत रूप में प्रकट किया जाता है।

राम खोद्यो कुओ रे, लछमन बाँदी पाळ।
सीता आइने पानी भरे रे, हनुमान को घमसान......छल्लो बोल्यो रे!

राम कुआ खोदते है। लक्ष्मण पाल बांधते हैं और सीता आकर पानी भरती है पर अचानक ही हनुमानजी आकर घमसान युद्ध करने लग जाते है!

आम्बो चलतो लादो रे, डाल पड़ी गुजरात।
कैर्‌यां लागी दुआरका, खई ग्या बदरीनाथ.......छल्लो बोल्यो रे!

असम्बद्ध कल्पनाओं के साथ-साथ प्रत्यक्ष जीवन की अनुभूतियों की बाल सुलभ अभि-व्यंजना भी बड़ी रोचक होती है। इसमें हास्य और कौतुक का पुट रहता है:—

---

१. श्याम परमार, मालवी लोकगीत; पृष्ठ ६४–६५।

डूंगरी पे डूंगरी रे, मियां पकावे दाल।
मियां की जल गई डाढ़ी रे, बीबी नोचे बाल.... ...छल्लो बोल्यो रे।

*डूंगरी पे डूंगरी रे, झाड़ू घड़ियो जाय।
बामण-बाणया मूंजो रे, पेट लब्रूरता जाय ....छल्लो बोल्यो रे।

*एमद्या मेंमद्या भाई रे, गेल्ये चल्या जाय।
गेले मिल ग्यो खोपड़ो, मरोड़ता जाय........छल्लो बोल्यो रे।

*लेकोड़े बाया तूम्बा रे, पूंछ उज्जैन आई बैल।
घोड़ा-छकड़ा रई गया रे, दौड़ो गई रेल......छल्लो बोल्यो रे।

छल्ला की तरह हिरणी के गीत भी बड़े मनोरंजक होते हैं। छल्ला तो केवल लड़के ही गाते हैं। किन्तु हिरणी लडके और लडकियां दोनों मिलकर गाते है। ये गीत विशेषतः बागरी बलई और नीची जाति की लड़कियों के द्वारा भी गाये जाते हैं। इन गीतों को दिवाली के अवसर पर गाया जाता है। बालकों के अन्य गीतों की तरह हिरणी के गीत भी बेसिर-पैर की बातों से भरे पड़े हैं।

*हिरणी हिरणी टुकराए टुकरे, चाल म्हारा देस
खाटा गऊं की घुगरी ने, राम तळी का तेल।
लोंडी बोंडी कई गावे, गावे बावन वीर
बावन वीर अइ गया रे, नाक में घाले तीर।
तीरा वीर ने फेक्या रे, जइ पड्या आम्बा डार
आम्बा बाड़ी की डोकरी रे काते ताणा सूत।
सूता सूत को भख लियो रे भख लियो भूत......१।६

*म्हारा घर पाछे कड़ो तूमड़ो, तौड़ बगारी भाजो जी।
अण्डो तोड़यो बण्डो तोड़यो, फिर भी नइ सीजो भाजो जी......
आखा गाम का छाणा चोरया, फिर भी नइ सीजी भाजी जी......
छोटा जेठ की टांग तोड़ी, बड़ा बाप का मूंछा कतरी।
खद्बद् सीजी भाजी जी.........१।४

मनोविनोद के लिये प्रसंग-विधान कितना सुन्दर है। कड़वे तूमडे की तरकारी को पकाने के लिये कितने खटकरम करने पड़े। गांव के सभी उपलों को चुरा कर भाजी पकाने की चेष्टा में असफल होने पर बड़े जेठ की टांग और बड़े बाप की मूछों के ईंधन से तरकारी के पकाने में बालकों को बड़ा आनन्द आता है। किसी की टांग तोड़ने और किसी की मूछें कतरने में बालकों का खुरापाती दिमाग तत्पर ही रहता है।

डेंडक माता

जब अनावृष्टि का आतंक छा जाता है तब ग्राम के सम्पूर्ण जीवन में एक अनिष्ट की भीषण आशंका व्याप्त हो जाती है। वृष्टि के देवता इन्द्र को मनाने का प्रयास किया जाता है। बड़े लोगों के साथ बच्चे भी पानी की वर्षा के लिये याचना कर बैठते हैं।

डेंडक माता, डेंडक दे, पानी की बौछार दे।
म्हारा वीरा की आल सूखे, पाल सूखे।
गद्दा भूके, गद्दी भूके भों-भों भट्ट........१२

गांव के लड़के–लड़कियां किसी बालक या बालिका के मस्तक पर टीन के छोटे पतरे या मिट्टी के खपरेल को धरकर मिट्टी के लोंदे में नीम की डगाल (टहनी) गाड़कर प्रत्येक द्वार पर उक्त गीत गाते हुए वर्षा का आह्वान करते हैं। मेंढकों का टर्राना वर्षा के आगमन का सूचक है। वर्षा काल में ही मेंढकों के प्रबल साम्राज्य में बसन्त की गायिका कोकिला का पंचम स्वर पराजित होकर न जाने कहां चला जाता है। अतः बालक मेंढकों की माता, 'डेंडक माता' से याचना करते हैं कि वह अपने प्रभावशाली पुत्रों की सृष्टि कर उन्हें इस बात के लिये प्रेरित करें कि वे पानी की बौछार के लिये टर्राना शुरू करदें।

भोले बच्चे को यह क्या मालूम कि वर्षा का देवता इन्द्र है। वे तो डेंडक माता को सर्वस्व मानकर उससे ही याचना कर बैठते हैं। अनावृष्टि के संकट को बालक भी अच्छी तरह समझते हैं। उनके भाई का खेत सूखा जा रहा है, सरोवर की पाल भी सूखी जा रही है, ताल–तलैया सूख जाने पर तृण भी नहीं उग पाता और बेचारा 'माधव–नन्दन' अपनी गर्दभी के साथ भूख–प्यास से तड़प कर भों भों चिल्लाया करता फिरता है। बालकों का यह खेल उनकी अनुभूति के साथ ही प्रकृति के रहस्यों का अनजाने में कितना सम्यक् एवं यथार्थ चित्र अंकित करता है।

मालवी बालकों की इस अनुष्ठान-मयी क्रीड़ा में भिन्न-भिन्न देशों एवं आदिम-जातियों की परम्परा के स्वरूप को प्रचलित होते देख आश्चर्य होता है! अनावृष्टि के निवारण के लिए जो जादू-टोने और अन्ध-विश्वास से युक्त प्रथाएं विद्यमान हैं, उनमें बालकों के द्वारा चल-समारोह का आयोजन कर वर्षा के देवता का आह्वान किया जाता है। थिसली और मकदुनियां के यूनानी लोगों में इसी प्रकार की प्रथा प्रचलित है, जहाँ बालक-बालिकाओं का चल-समारोह ग्राम के समीप किसी कुए या जलाशय की ओर ले जाया जाता है। समारोह का नेतृत्व एक कुमारी कन्या करती है; जिसे अन्य लड़कियाँ जल की बूंदों से अभिसिञ्चित करती चलती हैं। मार्ग में स्थान-स्थान पर रुक कर वर्षा का आह्वान गीत गाती हैं। सायबेरिया की तृण-भूमि के किसान-बालकों के 'डोडोला' एवं मालवी बालकों की डेंडक माता एक जैसे आयोजन हैं। भाषा भिन्न हो सकती है किन्तु भावना एवं उसको प्रकट करने की विविध प्रथाओं में बहुत कुछ साम्य है। डोडोला लड़कियों के द्वारा आयोजित होता है। इसमें लड़के सम्मिलित नहीं होते। एक किसान कन्या के सम्पूर्ण शरीर को घास एवं फूल-पत्तों से ढक दिया जाता है। इस शृङ्गार-सज्जित कन्या को भी डोडोला कहते हैं। गांव के प्रत्येक द्वार पर डोडोला के साथ लड़कियों का समूह जाकर उपस्थित होता है। डोडोला नृत्य करती रहती हैं और अन्य लड़कियाँ वर्षा का गीत गाती हैं। इस गीत को भी डोडोला कहते हैं। 'डोडोला' गाँव के गृहस्थ के द्वार पर उस समय तक नृत्य करती रहेगी जब तक गृह-स्वामिनी आकर डोडोला के मस्तक पर एक घड़ा पानी की बौछार न

कर दे।[१] जल में रहने वाले मेंढकों को वर्षा का अधि-देवता मानने की अन्ध-धारणा पर अन्यत्र विचार किया गया है।[२]

संजा

मालव मे प्रचलित बालिकाओं के गीतों में संजा के गीत सबसे अधिक आकर्षक हैं। भाद्रपद मास की पूर्णिमा से लेकर पूरे सोलह दिनों तक श्राद्ध-पक्ष में मालवे की अविवाहित कन्याओं के द्वारा संजा का व्रत रखा जाता है। इस व्रत में आनुष्ठानिक प्रवृत्ति के साथ ही गाए जाने वाले गीतों में बालिकाओं क सरल, स्वच्छन्द स्वभाव की अभिव्यक्ति बड़ी मनोरम होती है।

संजा के लिए सांजी, सांझी, संजाबई शब्द का प्रयोग किया जाता है। सांझ, संध्या की बेला के लिए मालवा में संजा शब्द का प्रयोग किया जाता है। रात्रि के आगमन के पूर्व सान्ध्य-बेला प्रकृति के पट पर मनोहारी दृश्यों को प्रस्तुत करती हैं। ऐसे सुहावने अवसर पर उपासना, संध्या, प्रार्थना और अनुष्ठान के कार्य करना शुभ एवं मंगलमय माने गए है। गृह और देव-मन्दिरों मे दीप संजोने के साथ ही मालवी स्त्रियाँ संजा का स्मरण करती हैं, 'मन गेला संजा सुमरण करले'... ....

बालिकाओं के द्वारा दिवस के अवसान, सन्ध्या के समय मे की जाने वाली उपासना के लिए भी 'संजा' शब्द रूढ़ बन कर प्रचलित हो गया है। इस अनुष्ठान के पीछे एक विशेष भावना कार्य करती है। बालिका को भविष्य में एक आदर्श भारतीय नारी बन कर किसी सद्गृह की लक्ष्मी बनना होता है। अतः संजा के व्रत को बालिकाओं का कौमार्य-व्रत अथवा पतित्व-साधना का एक स्वरूप मान सकते हैं। कन्याओं के लिए मन के अनुकूल पति-प्राप्ति का वर देने वाली अधिष्ठात्री देवी तो पार्वती मानी गई है। सीता को मनोनुकूल वर की प्राप्ति के लिए पार्वती की वन्दना करनी पड़ी थी। यह संजा का व्रत पार्वती की उस तपःसाधना का सूचक है जो उन्होने पिनाकपाणि जैसे देव, महादेव को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए अनुष्ठान के रूप में की थी। यह व्रत कुँआरी कन्याओ के लिए गौरी-पूजन का एक स्वरूप मात्र है।

वर-कामना के इस व्रत की एक और विशेषता है जो शैक्षणिक महत्व रखती है। बालिकाएँ इस व्रत के द्वारा चित्रकला का शिक्षण भी प्राप्त करती है। सम्पूर्ण श्राद्ध-पक्ष में दीवार के कुछ भाग पर गोबर से लीप कर गोबर की विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाई जाती है और उन पर गुल-तेवड़ी, गुलाब, कनेर आदि पुष्पों की पंखुड़ियाँ चिपकाई जाती हैं। संजा के कलेवर का निर्माण गोबर से होता है। और उसके शरीर को सजाने के लिए गुल-तेवड़ी का पुष्प ही परम्परागत मान्यता के अनुसार उपयुक्त है।

---

१. Frazer, 'The Golden Bough', pp. 69–70.
२. **देखें पांचवां अध्याय, (अ)।**

संजा तो मांगे बई, हर्‌यो हर्‌यो गोबर, कांसे लाऊँ बई हर्‌यो हर्‌यो गोबर?
म्हारा बीराजी माली घरे जाय, लेवो संजा हर्‌यो हर्‌यो गोबर ....[1]

संजा बनाने वाली भोली कन्याओं के सामने एक समस्या आ जाती है। संजा का निर्माण करने के लिए सामग्री कहाँ से प्राप्त करें। संजा तो मानो गोबर मांग रही है अर्थात् संजा की आकृति को बनाने के लिये गोबर की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति कन्या का भाई तत्काल कर देता है। वह ग्वाले के यहाँ जाकर गोबर ले आता है और अपनी बहिन के व्रत में सहयोग देता है किन्तु पूजा के उपादान तो और चाहिए :—

संजा तो मांगे बई फूल की काँचली, काँ से लाऊँ बई फूल की काँचली ?
म्हारा वीरा जी माली घरे जाय, ले वो संजा फूल को कांचली........[2]

इस प्रकार फूलों की कंचुकी से संजा का शृंगार किया जाता है। पंचरंगी गुल–तेवड़ी ही वास्तव में संजा के सौन्दर्य को निखारती है। इन पुष्पों के अभाव में राखोड़ी (राख) के रंग की गुल–तेवड़ी अथवा गुलाब और कनेर के लाल फूलों से ही काम चलाया जाता है। प्रति दिन एक नवीन आकृति बनाई जाती है और संध्या के समय दीपक से आरती कर संजा के गीतों को गाया जाता है। संजा की उपासना का प्रत्येक कार्य गीत के साथ ही सधता है। आरती के लिये संजाये गये दीप की प्रथम लौ के साथ ही गीत प्रारम्भ हो जाता है।

पेली आरती पेली आरती, रई रमजोत !
मई बाप की अमृत जोड़, कका बबा की अलियाँ।
मैं फूल बिखेरूँ कलियाँ, सिंगासन मेलूँ आखा ।।
तम लो संजा बाई वासा, संजा का मूँडा आगे।
डाबर भर्‌यो कूँडो, तम पेरो संजा बाई।
दांता को चूड़ो, म्हारा काका बाबा मोल घड़ावे।
बीरो ले घर आवे, सोना री टीकी भज म्हारी बेन्या।
धरती को धोळो चूड़ो दांतेरो...........[3]

प्रथम आरती की ज्योति के साथ अक्षत और पुष्पों के साथ संजा का आह्‌वान किया जाता है। अक्षतों के द्वारा वैदिक मंत्रों के उच्चारण से विभिन्न देवी–देवताओं के आह्वान और स्थापन का दृश्य मालवी-कन्याओं के मस्तिष्क में अवश्य विद्यमान है। बड़ों की नकल करने में उनकी बुद्धि बड़ी सजग है। यदि बामण 'महाराज' देवी-देवताओं को अक्षत एवं मंत्रों के द्वारा बुलाते हैं तो ये बालिकाएं गीतों के द्वारा संजा का आह्वान और प्रतिष्ठापन क्यों न करें।

---

१. श्याम परमार, मालवी लोक-गीत, पृष्ठ ६१। २. वही, पृष्ठ ६२।
३. १।१३ संजा-बाई शब्द के स्थान पर कन्याएं स्वयं के नाम भी जोड़ देती हैं।

कुछ गीतों में संजा को अपनी सहेली मानकर लड़कियां संजा की माता से निवेदन करती हैं। कि वह संजा को शीघ्र ही भेजदें ताकि वे आरती करलें।

हर्‌यो सो गोबर पीलो सी माला, करो संजा की आरती।
तमारा भई भतीजा जोग, करो संजा की आरती।
पाना-फ़लाँ भरी रे चंगेर, सुहाग भर्‌यो बाटको।
संजा बई की मां संजा ने भेजो, करो संजा की आरती........[1]

'सुहाग-भरियो' बाटको मे सौभाग्य की कामना स्पष्ट हो जाती है। संजा के व्रत और गीतों मे वर-वांछा, चित्र-कला एवं संगीत का मणि-कांचन सयोग हो जाता है।

संजा-पूजन और गीतों के गाये जाने का यह क्रम पूरे सौलह दिनों तक चलता है। प्रत्येक तिथि को आकृतियाँ बदल दी जाती है। भाद्रपद की पूर्णिमा के 'पूनम पाटले' से लेकर सर्वपित्री अमावस्या के दिन 'किले-कोट' में आकर इस वृत का समारोप होता है। मालवा की कन्याएं विवाह होने तक प्रति वर्ष इस व्रत को करती है और विवाह हो जाने के प्रथम वर्ष में संजा का व्रत विशेष समारोह के साथ 'उजम' दिया जाता है। अर्थात् कौमार्य व्रत की समाप्ति की जा कर गृहस्थ धर्म के नवीन व्रत का श्री गणेश किया जाता है।

संजा के व्रत को यदि एक रुपक समझा जावे तो इसकी व्यवहारिकता व उपादेयता वास्तव में एक बड़ा अर्थ रखती है। यह व्रत सोलह दिनों के लिये होता है। एक-एक दिन मानो कन्याओं के जीवन का एक-एक वर्ष है। पूर्णिमा के दिन व्रत का प्रारम्भ होता है और अमावास्या के दिन इसकी समाप्ति। यह पूर्णिमा किसी सद-गृहस्थ के यहां कन्या-रत्न की प्राप्ति की प्रसन्नता की सूचक है; किन्तु सोलह वर्ष पूरे हो जाने पर कन्या को विवाहित कर घर से विदा करना हो पड़ता है। संजा व्रत का सोलहवां दिन बड़ा महत्व रखता है। और यह दिन अमावास्या का है, जब पितृ-गृह की चन्द्र-कला अपने माता-पिता, भाई-बहिन, सहेली और परिवार के अन्य लोगों को वियोग के गहन अन्धकार में छोड़कर जीवन की नई दिशा के लिये विदा होती है।

संजा कुंवारी कन्या का प्रतीक है। प्रत्येक कन्या को विवाहित होकर अपने पितृ-गृह को छोड़ना ही पड़ता है और इस करूण एवं हृदय-द्रावक किन्तु न टलने वाली स्थिति से बालिकाएं पहिले ही संजा के व्रत और गीतों के द्वारा परिचित हो जाती हैं। प्रति वर्ष संजा को ससुराल के लिये विदाई देकर पिता के घर को छोड़ने की काल्पनिक तैयारी का गीतों के द्वारा मानो वे अभ्यास करती हैं। भावी जीवन की तैयारी का ऐसा व्यवस्थित विधान एवं शिक्षण भारतीय लोक-साहित्य में मालवा और राजस्थान को छोड़कर अन्यत्र मिलना कठिन है।

संजा के इन गीतों के साथ उत्तर-प्रदेश एवं बुन्देलखण्ड में प्रचलित झैंझी के गीतों की याद आ जाती है।[2] कन्याओं की रुचि, प्रवृत्ति और भावनाओं की दृष्टि से झैंझी

---

१. श्याम परमार, मालवी लोकगीत; पृष्ठ ६०।
२. झैंझी के गीत, धर्म-युग (साप्ताहिक) २५ अक्टूबर ५३ पृ० ७।

और संजा के गीतों में बहुत कुछ साम्य है। जहाँ भाई से रेशमी दुपट्टे की मांग की जाती है। आभूषणों के प्रति जो मोह है, वह भी किसी प्रकार कम नहीं है। ससुराल के प्रति कन्याओं के मन मे एक विचित्र एवं शंकामयी भावना रहती है। फूल जैसी कोमल कन्या को पियर का फूल ही अधिक प्रिय है किन्तु संजा के गीतों मे जिस करुण रस की सृष्टि होती है उसका अनुभव आज से अनेक युग पहिले शकुन्तला की विदाई में महाकवि कालिदास ने स्वयं कर लिया था। परिवार मे बेटी की क्या स्थिति ? पराया धन जो ठहरी ! विवाह के उपरान्त एक कन्या और अतिथि मे कोई अन्तर नहीं रह जाता :—

> आज संजा बई म्हारे पावणा, दो दिन पावणा ने तीसरा दन सूना ।
> म्हारी संजा बई ने लेवा आया पावणा, भोजन जिमाऊँ म्हारी संजा ने ।
> बारा मइना में पाल्की आवेगा, पालकी में बैठीने संजा जावेगा ।
> आज म्हारी संजा बई पावणा..........[1]

बेटी पितृ-गृह को सूना करके चली जाती है। माता पिता और परिवार के अन्य व्यक्तियों के हृदय के एक निराशा और सूनेपन का वातावरण छा जाता है बालिकाओं की संजा, उनके गीत करुण एवं वियोग शृंगार कि अनुभूति के शाश्वत चित्र हैं।

घडल्या

आश्विन मास की नव-रात्रि में 'कुंआरी कन्या द्वारा देवी का पूजन करने की एक विशेष प्रथा है। इसको घुडल्या घुडल्या या घड़ल्या कहते हैं। इन तीनों शब्दों का अर्थ होता है घट [घड़ा] । मंगल घट या कलश की पूजा हमारी भारतीय संस्कृति में एक विशिष्ट प्रयोजन रखती है। कमल के पुष्प एवं आम्र-पल्लवों से लहराता हुआ पूर्ण-घट जीवन के जल को धारण करने वाले मानव-शरीर का प्रतीक-रूपक है। जीवन-रूपी जल इस घट की शोभा है। जब तक शरीर घट में प्राण-जल भरा रहता है तभी तक यह घट मांगलिक एवं पूज्य समझा जाता है। वस्तुतः मानव-शरीर रूपी घट से अधिक मंगल-मय इस विश्व में में और कुछ नहीं है।[2]

मंगल-घट की उपासना का यह तो शास्त्रीय विवेचन हुआ। प्रत्येक धार्मिक पूजा और अनुष्ठानों में घट-पूजन के वास्तविक प्रयोजन को न समझते हुए परम्परा का अनुकरण कर यह पद्धति आज भी प्रचलित है। नव-रात्रि के प्रारम्भिक दिन अर्थात् आश्विन एवं चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को घट स्थापना दिवस भी कहते हैं। इन दिनों घट को प्रतीक मानकर पूजन किया जाता है। मालवी एवं राजस्थानी कन्या भी घट-पूजन के महत्व को न समझ कर रूढ़ि का अनुसरण करते हुए उस परम्परा को आज भी अपनाये हुए हैं। घडल्या, घट पूजन का परिवर्तित रूप है। संध्या के समय कन्याएं किसी देव-मन्दिर या निर्धारित स्थान पर एकत्रित होकर ग्राम अथवा नगरके मोहल्लेमें प्रत्येक घर पर घुडल्याके गीत गाती हुई जाती हैं। घुड़ल्या मिट्टीकी एक छोटी मटकीमें छेद कर बनाया जाता है। उस रन्ध्रमय मृत्तिका-पात्र में एक दीपक संजो कर रख दिया जाता है। घटके रन्ध्रोंसे दीपकके प्रकाशकी किरणें चारों ओर

---

१. मालवी लोक-गीत, पृष्ठ ६८।
२. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, पृष्ठ २००।

फैलने लगती हैं। एक कन्या घुडल्या को अपने मस्तक पर धारण करती हैं और सब कन्याओं के साथ यह चल-समारोह प्रारम्भ हो जाता है।

घुडल्या के द्वारा आत्म-दीप के प्रकाश को सर्वत्र वितरित करने की भावना एवं भारतीय आर्यों की 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की उदात्त प्रेरणा में कितनी समानता है! अनेक युगों के अन्धकार को चीरती हुई प्रकाश-दान की यह परम्परा आज भी किसी न किसी रूप में प्रचलित है। आश्चर्य तो हमें उस समय होता है जब हम इस प्रथा को मध्य भारत के आदिवासी भील एवं भीलालो की स्त्रियों में प्रचलित देखते हैं। भीली महिलाएँ इस प्रकार के घट को 'डहो' कहती हैं।

मालवी एवं राजस्थानी कन्याओं का घुडल्या, भीली स्त्रियों का डहो, ब्रज और बुन्देलखण्ड की कन्याओं की झेंझी, इन तीनों की परम्परा में एक ही प्रेरणा है। घुडल्या की पूजा में भावनाएं चाहे कुछ भी हो किन्तु इसके साथ मालवी लड़कियां जो गीत गाती है, उनके भाव एकदम विचित्र हैं। वहाँ पूज्य भावना नहीं वरन् बाल-जीवन का हास्य एवं कौतुक है। घुडल्या का मानवीकरण कर दिया है।

गुड़ल्यो म्हारो लाडलो, सेरी भागो जाय रे भई।
सेरी भग्यो काँटो, नावी घरे जाय रे भई।
नावी दीदी नेरनी, माली घरे जाय रे भई।
माली दीदा फूलड़ा, देव चढ़ावा जाय रे भई।
देव ने दीदा लाडू, मगरे बठो खाय रे भई।
मगरे पड़ी लात की, सात गुलट्या खाय रे भई ॥१।८॥

घुडल्या मानो कन्याओं की सम-आयु वाले भाई के समान उछल-कूद करने वाला एक लड़का है। यहाँ एक लघु कथा के क्रम में लाडले घुडल्या की सब करतूतों का उल्लेख हुआ है। घुडल्या भाग कर मोहल्ले का चक्कर लगाता है। मार्ग में उसके पैर में कांटा चुभता है। कांटा निकलवाने के लिये नाई के घर जाता है। नाई के यहां नेरनी मिल जाती है और वह पैर का कांटा निकाल कर मालीके यहाँ जाता है। माली फूल देता है। फूल लेकर वह देवता को अर्पित करता है। देव प्रसन्न होकर उसे मोदक देते हैं। मुन्डेर पर बैठकर वह मोदक खाने लगता है। किन्तु अचानक किसी के पैरो की ठोकर से वह सात चक्कर खाता हुआ गिर पड़ता है।

देव-पूजा और प्रसाद के रूप में मोदक प्राप्त होने का ज्ञान बालिकाओं को अवश्य है किन्तु देव–कृपा के उल्लेख के साथ ही बालक का किसी की लात खा कर मुंह के बल गिर पड़ना बालिकाओं की कल्पना का आनन्द है।

अन्य गीत

बालिकाओं द्वारा गेय अन्य गीतों में 'अबल्या-छबल्या' (१।५) वाज् खजूर भली थी (१।६) एवं 'गाड़ा तले जीरो बोयो' (१।१०) आदि गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। ये तीनों गीत एक क्षीण-कथा को लेकर चलते हैं जिसमें मायके की महिमा, भाई का सत्कार एवं उसके द्वारा प्रदान की गई चूंदडी और अन्य आभूषणों का उल्लेख है।

स्त्रियों के गीत

[जन्म संस्कार के गीत]

- ❀ जन्म के संस्कार
- ❀ सस्कारों की शास्त्रीय परम्परा
- ❀ जन्म सम्बन्धी लोकाचार
- ❀ अगरणी(साध पुरावा)
- ❀ जन्म के गीतों का वर्गीकरण, अगरणी, कुल-देवताओं के गीत,धनबउ सौत आदि
- ❀ गीतों की भाव भूमि
- ❀ जन्म के उपरान्त के संस्कार एवं गीत
- ❀ बधावा
- ❀ पगल्या
- ❀ जच्चा के गीत
- ❀ सूरज-पूजा के गीत
- ❀ हालरा, लोरियां।

जन्म के संस्कार

प्राचीनकाल से प्रचलित भारतीय संस्कारों की परम्परा अबाध है। समाज के श्रेयस एवं कल्याण को ध्यान में रखकर प्राचीन युग के मनीषि एवं समाज-शास्त्रियों ने धर्मशास्त्र में व्यक्ति के लिये जिन आचरणीय तत्वो का विधि-निषेध किया है, उनकी अविच्छिन्न धारा आज भी जन-जीवन के लिये अटल श्रद्धा एवं सुदृढ़-विश्वास की वस्तु बनी हुई है। शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित संस्कारो के रूप में परिवर्तन हो सकता है, किन्तु उससे निसृत लौकिक आचारोंकी रूढ़ि एवं भावनाओं में किसी भी प्रकारका हेर-फेर नहीं हुआ है। भारतीय संस्कारों में पवित्रता की भावना सर्वोपरि है। सृष्टि के जनन-तत्व की प्रक्रिया को भी पूत-विचारों से सज्जित कर दिव्य स्वरूप प्रदान किया गया है। प्रत्येक मनुष्य के शरीर की उत्पत्ति माता के रज एवं पिता के वीर्य से होती है। इस प्रकार अपवित्र वीर्य से उत्पन्न शरीर स्वाभाविक रीति से अपवित्र होने के कारण श्रौत एवं स्मार्त

कर्म करने के लिये योग्य नहीं होता है। शास्त्रों में मानवी-शरीर को संस्कारों के द्वारा पवित्र करने के आचार निर्धारित किये हैं।[1]

इन संस्कारों का प्रारम्भ गर्भाधान से होता है। शास्त्रों में तो षोडस संस्कारों का विधान है किन्तु लौकिक मान्यता के अनुसार इन संस्कारों में मानव जीवन की घटनाओं से संबंधित प्रमुख संस्कार केवल तीन ही हैं। जनम (जन्म) परण: [विवाह] एवं मरण (मृत्यु)! यह एक उल्लेखनीय बात है कि भारत में मानव-जन्म के मूल-कारण को भी संस्कारित किया जाता है। गर्भाधान भी एक संस्कार माना गया है! यूरोप के शरीर-विज्ञान शास्त्री एवं विज्ञानवेत्ता भले ही इसे एक जैविकीय (Biological) आवश्यकता कहकर टाल दें, किन्तु प्रकृति के नियमों से प्रेरित होते हुए भी प्रजनन की क्रिया में सृष्टि एवं वंश परम्परा को अविच्छिन्न रखने का एक अनुष्ठान रहता है। संसार में कर्मशील सन्तान उत्पन्न कर पितरों के ऋण से उऋण होने का यह एक आवश्यक धर्म माना गया है।[2] जन्म-सम्बन्धी इन चार संस्कारो का शास्त्र में विधान है :—

१. गर्भाधान—स्थिति का कारण, जिसके कारण मानव का जन्म होता है।
२. पुंसवन—पुंसोकरण का प्रयोग।
३. सीमन्तोन्नयन—
४. जात कर्म—नालच्छेदन आदि।

इनमें द्वितीय एवं तृतीय संस्कार गर्भशोधन की दृष्टि से वांछनीय है जन्म के उपरान्त के अन्य संस्कारों में निम्न-लिखित चार संस्कार भी आवश्यक माने गये हैं:—

१. नामकरण
२. निष्क्रमण
३. अन्नप्राशन
४. चूड़ाकर्म (मुण्डन)

जीवन के लिये वांछनीय षोडस संस्कारों मे से उक्त आठ संस्कार जन्म से सम्बन्धित हैं। जन्म के संस्कारों को इतना महत्व क्या प्रदान किया गया? यह प्रश्न भी विचारणीय है। वैसे प्रजननेच्छा मानव एवं पशु में समान रूप से पाई जाती है। किन्तु मनुष्य विधाता के द्वारा रचित सृष्टि के प्रयोजन एवं रहस्य को जानता है, पशु नहीं।[3] स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करने का साधन है। स्मृतिकारों ने इस प्रसंग में नारी को अधिक महत्व दिया है। वे पूजा के योग्य मानी गयी है। क्योंकि उनके द्वारा गृहस्थी एवं वंश को प्रदीप्त करने वाला दीप प्राप्त होता है। वे घर की शोभा है।[4]

---

१. (१) एवमेनः शमंयाति बीज गर्भसमुद्भवम्। याज्ञवल्क्य स्मृति, आचार अ० १३ श्लोक।
(२) गार्भै होमैर्जातकर्म चौड़ मौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ —मनु-स्मृति, २।२७।
(३) कार्य शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चैह च। ,, २।२६।
२. प्रजननं वै प्रतिष्ठा —कामसूत्र।
३. (१) प्रजनार्थम् स्त्रियः सृष्टा सन्तानार्थं च मानवाः। —मनु ९।९६।
(२) क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान। —मनु ९।३३।
४. प्रजनार्थं महाभाग पूजार्हा गृह प्रदीप्तयः। —मनु ९।२६।

जन्म–सम्बन्धी संस्कार–परम्परा अब लोकाचार के रूप मे प्रचलित है। स्मृतिकारो के द्वारा निर्दिष्ट इसका पौरोहित्य–सम्बन्धी स्वरूप प्रायः मिटता जा रहा है। मालवा मे बालक के जन्म से सम्बन्धित लौकिक आचारो का निर्वाह रूढि परम्परा के अनुसार किया जाता है। इन आचारो में मंगल कामना के साथ नारी की उल्लास भावना का चिरन्तन स्रोत भी उमड़ता है, और वह गीतों के रूप में प्रकट होता है। जन्म-सम्बन्धी सभी लोकाचार एवं गीतो को दो भागों मे रख सकते हैं।

१. गर्भाधान एवं जन्म से पूर्व के संस्कार एवं गीत,
२. जन्म के उपरान्त के संस्कार और गीत।

गर्भाधान का सस्कार तो आनुष्ठानिक दृष्टि मे विवाह के अन्तर्गत आ जाता है। क्योंकि अग्नि-परिणयन एवं कन्या–दान के पूर्व ही धर्म–भावना से परिपूर्ण होकर उक्त कर्म के लिये संस्कार करना पडता है। 'पुंसवन' संस्कार की परम्परा मालवा मे आज भी 'अगरणी', 'खोल भरई', या 'साध-पुरावा' के नाम से प्रचलित है। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार पुंसवन संस्कार गर्भ में बालक के हिलने–चलने के पूर्व ही कर लेना चाहिये।[1] किन्तु लौकिक–परम्परा मे अगरणी का आयोजन गर्भाधान के सातवें महिने में किया जाता है। अगरणी के दिन गर्भवती महिला को हल्दी–केसर आदि की पीठी लगाकर मांगलिक स्नान कराया जाता है एवं शुभ मुहुर्त में बाजोट पर बैठा कर किसी सौभाग्यवती महिला द्वारा अथवा गर्भवती के पति के द्वारा गोद भरी जाती है। साड़ी के आन्चल में कुंकुम, अक्षत, नारियल एवं खारक–सुपारी आदि मांगलिक वस्तुओं को रखा जाता है। यह 'खोल-भरई' की प्रथा गर्भवती की 'साध' पुत्र-कामना पूर्ण होने का प्रतीक है। खोल भरने के पश्चात भरी-खोल सहित गर्भवती महिला को ग्राम या नगर मे गाजे-बाजे के एवं चल-समारोह के साथ घुमाया जाता है। आयोजन में सम्मिलित स्त्रियां अन्य मांगलिक गीतों के साथ 'धनबउ' के गीत भी गाती है। भावना एवं लौकिक आधार परम्परा की दृष्टि से मालवा, राजस्थान, ब्रज[2] एवं बुन्देलखण्ड आदि जनपदों के इन गीतों में बहुत कुछ साम्य है। ये गीत स्त्रियों के लिये तो कर्मकाण्डी पंडितों के वैदिक मंत्रों जैसा महत्व रखते है। आचार एवं 'सगुन' की दृष्टि से इन गीतों का गाया जाना अनिवार्य समझा जाता है। जन्म के पूर्व अगरणी के गीतो में धनबउ का गीत अधिक महत्वपूर्ण है। धनबउ का अर्थ है कुलवधू धन्यवाद की पात्र है। मातृत्व की साधना के श्री गणेश के कारण उससे अन्य सन्तानवती महिलाओं के आशीर्वचन भी प्राप्त हो जाते हैं। वह स्वयं भी मानो धन्य हो जाती है। नारी के गर्व और गौरव का यह एक अनुपम अवसर समझा जाता है। अगरणी के गीतों की भावना एवं लौकिक आचारों की दृष्टि से चार श्रेणी में विभक्त किया गया है :—

---

१. गर्भाधानं ऋतौ पुंसः सवनं स्यन्दनात् पुरा। —याज्ञ० स्मृ० आचार अध्याय ११।
२. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन (डॉ० सत्येन्द्र) पृष्ठ ११९।
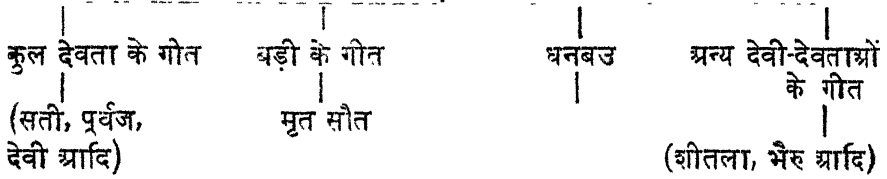
अगरणी के इन गीतों मे नारी की एकान्त लालसा एवं दोहृद का सुन्दर चित्रण हुआ है। 'दो जीवाँ' गर्भवती स्त्री की लालसाओं को पूरा करना धर्म का कार्य माना जाता है। इस भावना के पीछे भी एक मान्यता है। यदि गर्भवती स्त्री की किसी इच्छा को अपूर्ण रखा गया अथवा अतृप्त स्थिति में छोड़ दिया गया तो उसका प्रभाव जन्म लेने वाले बालक पर पड़ता है। जिस बालक के मुंह से लार टपकती है उसके सम्बन्ध में यह अन्ध–विश्वास है कि गर्भ की स्थिति में बालक की माता को मिठाई आदि खाने की लालसा बनी रही अतः गर्भवती महिला की इच्छाओं को पूर्ण करना पुण्य का काम माना गया है।

अगरणी के गीतों में भी इसी प्रकार खाने–पीने, वस्त्र–आभूषण धारण करने की कामना को प्रकट किया गया है।[१] टीका, रत्नजटिल आभूषण आदि के उल्लेख के साथ सन्तान–कामना प्रकट हुई है। पुत्र प्राप्ति के लिए नारी का यह अनुष्ठान अपने आप में एक महान तपस्या का व्रत लिये हुए है। वह देवी–देवताओं की मानता करती है, उपासना करती है, और पूजन के लिये प्रतिज्ञा करती है; तब कही उसे पुत्र का मुंह देखने को मिलता है। 'मान–गुन' मे प्राप्त बालक को अपना सर्वस्व मानकर देवताओंसे उसके दीर्घायु होने की कामना भी करती है। यहाँ नारी की सन्तान–कामना की पृष्ठ–भूमि एवं मनो–वैज्ञानिक स्थिति के विश्लेषण मे प्रमुखतः तीन बातें दृष्टिगत होती है।

१. वंशहीन होना पाप समझा जाता है। वंश की परम्परा को बढ़ाने के लिये,पितरों का तर्पण करने के लिये, पुत्र का होना आवश्यक है।[२] इस अभाव के लिये नारी ही नहीं, अपितु पुरुष भी स्वयं की मृत्यु के उपरान्त गति तक पहुँच ने के लिये बेचैन रहता है। दुष्यन्त जैसे वैभवशाली सम्राट् ने भी 'अनपत्यता' को कष्टदायी एवं अभिशापमय समझा था[३] पुत्र– प्राप्ति के लिये यह धार्मिक भावना आज भी उसी रूप में विद्यमान है।

२. नारी के जीवन की सार्थकता मातृत्व में समझी जाती है। वन्ध्या होना मानो उसके लिये नारकीय अभिशाप है। सन्तानहीन स्त्री की अप्रतिष्ठा होती है। समाज की

---

१. १।२६, १।२७।

२. अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति।

—अभिज्ञान शाकुन्तल, अङ्क ६ श्लोक २५।

३. कष्टं भो खलु अनपत्यता, अभिज्ञान शाकुन्तल, अङ्क छठा।

स्त्रियां उसका मजाक उड़ाती हैं। उसका अस्तित्व भी निरर्थक समझा जाता है और वह अगौरव का विषय बन जाती है।

३. वृद्धावस्था में सेवा-शुश्रूषा करने वाला कोई तो चाहिये ही ! यहाँ पुत्र का होना आवश्यक है। सन्तानहीन व्यक्ति इस अवस्था मे प्रायः दुर्दशाग्रस्त एवं दयनीय स्थिति में हो जाते हैं।

वन्ध्यत्व के अभिशाप से मुक्त होने की भावना जन्म के गीतों में बड़े करुण ढंग से प्रकट हुई है। कुल-देवता एवं अन्य देवी-देवताओं के गीतों में सन्तान कामना का मार्मिक स्वरूप मिलता है। इस संदर्भ मे सम्पूर्ण मालवा में प्रचलित शीतला का एक गीत उल्लेखनीय है।

गाड़ी भरी चंगेरड़ी ओ बउ तम कठे चाल्या आज !
आज माई म्हारो आसन बैठ्या, माई एक बालूड़ो दे !
लीपन-भरी चंगेड़ी ओ बउ तम कठे चाल्या आज !
आज माई म्हारो आसन बैठ्या, यो म्हने लीपणो जोग !
पूजा भरी चंगेरड़ी ओ बउ तम कठे चाल्या आज !
आज माई म्हारो आसन बैठ्या, यो माई पूजन जोग !

कुलवधू पूजा आदि का उपकरण लेकर शीतला माई की पूजन के लिये प्रस्थान करती है। पूजा करने का प्रयोजन भी निष्कपटता के साथ प्रकट कर दिया जाता है।

एक बालूड़ा के कारणे म्हारे सुसरा जी बोले बोल।
एक बालूड़ा के कारणे म्हारे सासुजी बोले बोल।
एक बालूड़ा के कारणे म्हारे जेठानी बोले बोल।
माई म्हारे एक बालूड़ो दे।
एक बालूड़ा के कारणे म्हारे जेठजी बोले बोल।
एक बालूड़ा के कारणे म्हारे देवरजी बोले बोल।
एक बालूडा के कारणे म्हारे सायब जी लावे लोंडी सौत।
माई म्हारे एक बालूड़ो दे।

नारी केवल एक पुत्र की कामना करती है। एक पुत्र न होने के कारण उसे कितने लांछन सहने पड़ते हैं। सास-ससुर, जेठ-जेठानी एवं देवर आदि परिवार के सभी व्यक्ति उसे कोसते हैं। बांझ होने का दोषारोपण करते हैं। नारी इन लोगों के कटु एवं मर्मभेदी व्यङ्ग-बाणो को सहने की क्षमता भी धारण कर सकती है किन्तु उसकी स्थिति उस समय अधिक दयनीय हो जाती है जब उसका पति भी संतान न होने का सब दोष उस अभागिन के सिर मढ़कर उसके वन्ध्यत्व की सार्वजनिक घोषणा कर दूसरा विवाह करने की ठान लेता है। बेचारी हतभाग्य नारी अपने हृदय की वेदना किससे कहे ? वह शीतला मां के सम्मुख ही अपने मन की कसक का कारण स्पष्ट रख देती है। कल्पना के मनोरम साम्राज्य में उसकी पुत्र-कामना साकार हो उठती है।

सीतला ने दियो अम्मर पालणो।
बड़ी माता ने अम्मर फूल, माई म्हारे एक बालूड़ो दे !
कठे बन्दाऊ माता पालणो, कठे बंदाऊ रेशम डोर ?
ओरां बन्दाऊ ए माता पालणो, पटसारां बंदाऊ रेशम डोर।
हिरती-फिरती माता हुलरावती, म्हारो हियो हिलोरा लेय।
माई म्हारे एक बालूड़ो दे, काम करन्ता चित्त पालणे ओ माता।
किनने राखूं रखवार, माई म्हारे एक बालूड़ो दे........१।१६

'शीतला' पालना देती है। 'बड़ी-माता' अमर पुत्र भी प्रदान करती है। रेशम की डोर से बन्धे पालने मे माता शिशु को चलते फिरते ही हुलराती है। झुलाती है और ऐसा अनुभव होता है मानो उसका हृदय-समुद्र उमंगों में तरंगित हो रहा है।

पितरो (पूर्वज) के गीतो में भी सन्तान-कामना का भाव स्थान-स्थान पर मिलता है। कुल-देवी, सत्ती, पूर्वज एवं भैरूजी आदि देवी-देवताओ को सन्तान-प्रदाता माना गया है। सन्तति की उत्पत्ति का कारण देवता और पूर्वजो की कृपा है। यह भी एक रोचक प्रसंग है। जिसका सम्बन्ध नृतत्व-विज्ञान से है। स्वस्थ स्त्री-पुरूषके संयोग का परिणाम सन्तान की उत्पत्ति है किन्तु जीवन के इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार न करते हुए शारीरिक अक्षमता को भाग्य पूर्व-जन्मो के कर्मो का फल और देवी-देवताओं की अकृपा मान लिया जाता है। देवी-देवता, पूर्वज और साधु-सन्तों के आर्शीवाद से ही पुत्र उत्पन्न होता है, अतः इन देवी-देवताओ की पूजा आह्वान एवं सत्कार का भव्य-आयोजन किया जाता है। पूर्वज की कृपा केवल मनुष्य के संवर्धन तक ही सीमित नही रहती, वरन् पशुओ की संतति के वर्धन का भी कारण है।

पूर्वज आया हो, पूर्वज म्हारे भलाई पधार्‌या
पूर्वज आया म्हारी अलियाँ गलियाँ ओ, पूर्वज आया म्हारी राम रसोई
काचा दूध उकलाया हो........पूर्वज म्हारे....
पूर्वज आया म्हारी घोड़्यां के ओरे,
घोड़्यां ने लाखेनी जाया ओ। पूर्वज म्हारे........
पूर्वज आया म्हारी भैंस्यां के बाड़े,
भैंस्यां भूरी पाड़ी जाई ओ। पूर्वज म्हारे........
पूर्वज आया म्हारे गायां के बाड़े,
गायां धोरा-धोरी जाया ओ। पूर्वज म्हारे........
पूर्वज आया म्हारी बउवां के द्वारे,
बउवां ने बेटा जाया हो। पूर्वज म्हारे........
बउवां ने बंस बढ़ाया हो। पूर्वज म्हारे........
पूर्वज आया म्हारी धियड़ल्यां के द्वारे।
धियड़ी ने धरम दोयता जाया ओ। पूर्वज म्हारे........१।२१

पूर्वज निम्नलिखित स्थानों पर पधारते हैं:—

१. घोड़ी के ठान पर, २. भैंस के बाड़े में, ३. गाय के ओरे में,
४. बधू के द्वार पर, ५. पुत्री के द्वार पर।

और उनकी कृपा के परिणाम स्वरूप परिवार के पशु एवं मानव की वृद्धि का क्रमशः उल्लेख है :—

१. घोड़ी ने लाखेनी (बछेरा) उत्पन्न की।
२. गाय ने बछड़ा-बछड़ी उत्पन्न किये।
३. भैंस ने भूरी पाड़ी उत्पन्न की।
४. वधू ने वंश बढ़ाने के लिए पुत्र को जन्म दिया।
५. पुत्री ने अरम दायना (नाता) को जन्म दिया।

सन्तान—कामना में भी स्वार्थ की मनोवृत्ति को स्पष्टतः देखा जा सकता है। विवाहित पुत्री एवं वधू के पुत्र ही उत्पन्न हों, कन्या नहीं। जन्म के सम्पूर्ण गीतों में कन्या के जन्म के लिये कहीं भी आकांक्षा प्रकट नहीं की गई है। इस मनोवृत्ति के मूल में दो स्वार्थ है :—

१. बेटी पराया धन है। २. आर्थिक संकट का कारण है। दहेज आदि की कुप्रथाओं के कारण कन्या का जन्म अवांछनीय माना जाता है।
२. पुत्र तो वधू लाता है। वधू से घर की शोभा बढ़ती है, वंश बढ़ता है।

स्वार्थ और जीवन की उपादेयता से परे होकर मानवी-नारी किसी अवांछनीय वस्तु की आंकाक्षा नहीं करती। वधू और पुत्रियाँ तो पुत्र ही उत्पन्न करें; किन्तु घोड़ी, भैंस और गायों से इसके ठीक विपरित ही आकांक्षा प्रकट की गई है, भैंस और गायों की बछड़ियाँ भविष्य में दूध प्रदान करने का साधन बन सकती है। घोड़ी पर बैठा जा सकता है। बैल की जोड़ी कृषि के काम में आ सकती है। किन्तु 'पाड़ा' शनी का वाहन यह भैंसा, असुर जैसा नहीं चाहिये।

पूर्वज के गीतों के अतिरिक्त भैरुजी के गीतों में भी पुत्र—प्राप्ति की आंकाक्षा बड़ी विकलता के साथ प्रकट की गई है :—

विशाल आंगन है पर खेलने वाला चाहिये।
दूध का कटोरा भरा है पर इसे पीने वाला चाहिये।
माई जाये बीर (भाई) बहुत है भुआ संबोधन से पुकारने वाला भतीजा चाहिए।
(इसमे बहिन के द्वारा भाई के लिये पुत्र की कामना प्रकट की गई है)
सासू के जाये देवर तो बहुत हैं, काकी कहने वाला चाहिये।
(देवरानी के लिए पुत्र की कामना)
सासू की जाई ननदें तो बहुत हैं, मामी कहने वाला भानजा चाहिये।
(ननन्द के लिए पुत्र कामना)
पर्यंक पर पोढ़ने वाला (पति) तो बहुत सुन्दर है, पर पालने में सोने वाला चाहिए।

पगड़ी बांधने वाले तो बहुत हैं, छोटी टोपी पहनने वाला चाहिये।
वस्त्र-आभूषणों की कमी नहीं है, परन्तु इनको पहनने वाला चाहिए।[1]

देवी–देवताओं के इन गीतों को बालक के जन्म के पहिले एवं अनिष्ट निवारण के लिये जन्म के पश्चात् रतजगे के अनुष्ठान में गाया जाता है। ये गीत मंगल कामना की दृष्टि से गाये जाते हैं, किन्तु इनका आनुष्ठानिक महत्व भी रहता है। जन्म और विवाहों के अवसर पर इस प्रकार के गीतो का बाहुल्य रहता है। बालक के जन्म के पूर्व से लेकर जन्मोपरान्त लौकिक आचारों के अनुष्ठान का एक लम्बा क्रम प्रारम्भ होता है और प्रायः सभी आचारों के साथ गीत का अबाध प्रवाह तो चलता ही रहता है।

जन्मोपरान्त के गीतों का विवेचन करने के पूर्व देवताओं के गीतो में सौत के गीतों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। यदि गर्भवती स्त्री की कोई मरी हुई सौत हुई तो 'जीजा' या 'बड़ी' के गीत भी जन्म–सम्बन्धी रतजगे में गाये जाते हैं। सुहागिन स्त्री को अपनी मृत–सौत के प्रति सम्मान की भावना रखना पड़ती है और उसकी स्मृति को सजग रखने के लिये गले में ' पगल्या' या इसी तरह का कोई स्मृति–चिह्न सदा धारण करना पड़ता है।

मृत सौत के सम्बन्ध में यह एक अन्ध-विश्वास प्रचलित है कि वह मृत (स्त्री) अपनी अपूर्ण कामना को लेकर गई है और सुहाग-सम्बन्धी उसकी कोई इच्छा यदि पूर्ण नहीं हुई तो नव–दम्पति मृतात्मा की तृप्ति करने के लिये मेंहदी, चूड़ियाँ बिछियां एवं अन्य सुहाग–सूचक वस्त्राभूषण सुहागिन महिलाओं को प्रदान करते हैं, और साथ ही जोड़े [स्त्री पुरुष के युग्म] को भोजन भी कराया जाता है। इस लोकाचार को जोड़े जिमाना या ' सुवासिनी ' जिमाना कहते हैं। इससे मृत सौत की आत्मा तृप्त होकर जीवित पति–पत्नी और परिवार के अन्य लोगों को कष्ट नहीं देती। मृत सौत को सुहागिन के शरीर में आते हुए भी देखा है। जीवित पत्नी की कमजोर मन स्थिति एवं अन्ध–विश्वासों की अडिग धारणा और अनिष्ट के भय की चरमावस्था के कारण सुसंस्कृत एवं उच्च परिवार की महिलाओं को भी मृत सौत के द्वारा त्रस्त होते देखा गया है। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह औपचारिक पूजा–पद्धति गर्भवती स्त्री के लिये लाभदायक ही सिद्ध होती है बालक को जन्म देते समय सौत सम्बन्धी किसी भी प्रकार का भय या अमंगल की भावना गर्भवती के मन में न होजाय इस लिये सौत सम्बन्धी गीतो का गाया जाना सार्थकता लिये हुए है। इन गीतों से सौत को अच्छे–अच्छे आभूषण प्रदान किये जाते हैं, इनमें सुहाग–मय आभूषण भम्मर, टीका एवं झबिया (पायल) आदि प्रमुख हैं।

जीजा भम्मर घड़ावा तमारे हो, कई टीको घड़ावा म्हारा जीजा बई।
म्हारा यां म्हारी बेन्या बई, गेरी गेरी झबिया बाजे
बैठू तो झबिया बाजे, उठूं तो झबिया बाजे

---

१. मूल गीत, तृतीय अध्याय के रतजगा के गीतों में दिया गया है।

सायब को बंगलो गाजे म्हारी जीजा बई
म्हारा यां म्हारी बेन्या बई, गेरी गेरी झबिया बाजे........

सौत के लिये जीजा–बई, बेन्या–बाई आदि शब्द सम्मान के सूचक हैं। उसका बहिन के समान ही आदर किया जाता है। आभूषण के बटवारे पर भी मनमुटाव या ईर्ष्या करने की कोई बात भी नही उठ सकती। मृत सौत के भय का आतंक जो है, उसे बड़ा और स्वयं को छोटा मानना ही पड़ता है:—

माया केरा मम्मर जीजा बाई, माथा केरो टीको बेन्या बई
उनको बाटो होय, तम बड़ा हम छोटा जीजा बई
तमारी होड़ मी होय........[२]

जन्म के उपरान्त के गीत

मालवा में जन्म-सम्बन्धी गीतों की एक विस्तृत सूची है। जन्मोपरान्त के गीतों का वर्गीकरण निम्न प्रकार होगा।

१– बधावणा या बधावे   २– पगल्या
३– जच्चा के गीत   ४– छटी के गीत
५– घूघरी एवं सूर्य–पूजा   ६– हालरा–लौरियां

बालक के जन्म के उपरान्त बधावे के गीत प्रारम्भ होते हैं। बालक जन्म के शुभवसर पर बहिन एवं परिवार की अन्य महिलाओं के द्वारा बधाई के गीत गाये जाते हैं। बधाई के गीत जन्मोत्सव जैसे मांगलिक अवसर के अभिनन्दन के साथ ही हृदय की उत्फुल्ल—भावना के परिचायक भी हैं। जन्म का उत्सव मनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। राम–जन्म के पावन अवसर पर गन्धर्वों द्वारा गीत गाये जाने का उल्लेख वाल्मीकि रामायण से मिलता है। कृष्ण-जन्म पर ब्रज की महिलाओं ने भी गीत गाये थे। तब से लेकर आज तक सभ्य और असभ्य सभी प्रकार की जातियों की महिलाएं बालक के जन्म पर अपने मनोल्लास और हर्ष की भावनाएं प्रकट करती चली आ रहीं हैं। प्रत्येक प्रसूता भारतीय नारी कौशल्या और यशोदा बनकर राम—कृष्ण जैसे सुपुत्रों को अपनी गोद में खिलाना चाहती है। किसी सद्–गृहस्थ के यहाँ पुत्र का जन्म जिस दिन होता है वह कंचन का दिन माना जाता है। लोक–गीतों का नारी–हृदय स्वयं को वैभव के लोक में रमा देता है। व्यक्ति निर्धन हो सकता है किन्तु उसके यहाँ पुत्र–जन्म के अवसर पर केशर से आंगन लीपा जाता है और गज–मोतियों से चौक बनाया जाता है।

---

१. मालवी लोक-गीत, पृष्ठ ६४।
२. वही पृष्ठ ६५।

कंचन दिन उगियाजी, बई घोलूं केसर लीपू आंगणांजी
गज–मोतियन चौक पुराव, कंचन दिन उगियाजी
बैठायो कोसल्या बउ चौक मेंजो, तमारी गोदी में रामचन्दर असा पूत
कंचन दिन उगियाजी ।

ब्रज, मिथिला, भोजपुर, बुन्देलखण्ड एवं छत्तीसगढ़ आदि जनपदों में इस अवसर पर 'सौहर' गाये जाते हैं। किन्तु मालवा में जन्में बालक का अभिनन्दन बधावों से होता है। इस अवसर पर आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार जाति एवं इष्ट–मित्रों में बतासे–पेड़े मिष्ठान के प्रतिक के रूप में वितरित किये जाते हैं। ब्रहिन के लिये तो यह अवसर बड़ा कौतूहलमय होता है। भाई के यहाँ बालक होने की प्रसन्नता का उभार इस गीत में प्रकट हुआ है।

म्हारा वीरा घरे कांई हुओ, छोरो हुओ के छोरी हुई........म्हारा वीरा....
म्हारा वीरा घरे छोरो हुओ, उजलो हुवो के कालो हुओ....म्हारा वीरा....
उन्दरो हुओ के उन्दरी हुई, म्हारा वीरा घरे कई बट्या
म्हारा वीरा घरे छोरो हुओ ....

बहिन की प्रसन्नता इस चरमता पर प्रहुँचती है कि भाई के यहाँ पुत्र होने पर एक पक्षी के द्वारा बधाई का सन्देश भेजती है। बधाई की सूचना भाई तक ही सीमित नहीं रहती वरन् बहिन के हृदय में इतना हर्ष है कि सम्पूर्ण नगर का बधाई दे आने के लिये कह बैठती है।

उड़ उड़ म्हारा लाल परेवा, नगर बधावो दीजे
गांव नो जाणूं गाम णी जाणू, किना घरे दू बधावो जी............[1]

इन बधाओं में कहीं कहीं पर पारिवारिक राग–द्वेष एवं वधू के मायके वालों पर व्यंग कटाक्ष आदि की भावना बड़ी तीव्र रहती है। बधावे के गीत मुक्तक एवं कथात्मक दोनों शैली में प्रकट हुए हैं। बधावे के कथात्मक गीतो का आकार सामान्यतः कुछ विस्तृत ही होता है। भाई के यहाँ लड़का हुआ है। बहिन बड़ी आशा अकांक्षाओं को लेकर पुत्र–जन्म के अवसर पर अपने भाई–भावज को बधाई देने के लिये आती है। बधावे का एक कथागीत इसी घटना को लेकर प्रारम्भ होता है।

दूर देसाँ से बई जी आया
लाया हो भतीजा री झूल
वो साजन री जाई
वीरा घरे हुआ रे बधावणा
उठोनी वो भावज
करोणी बिछावना

दूर देसाँ से ननदल आई
वो साजन री जाई
वीरा घरे हुआ रे बधावणा
त्थारा बीरा जी बई
छादरी नी लाया
कासे करूं बिछावना

---

1. मालवी लोक-गीत, पृष्ठ १४।

वो साजन री जाई
वीरा घरे
उठोग्गी वो भावज पाणीड़ा पावो
दूर देसाँ से नणदल आई
वो साजन री जाई
वीरा घरे
त्हारा वीराजी बई
कुवो नी खुदायो
कायसे पानी भर लाऊँ
ओ सासूरी जाई
वीरा घरे
उठोनी वो भावज
रसोई बनाओ (निपाव)
दूर देसाँ से ननदल आई
वो साजन री जाई
वीरा घरे
तमारा वीरा बई जी
गउँड़ा नी बोया
कायसे बनाऊँ रसोई
वो सासूरी जाई
बीरा घरे
उठोनी वो भावज
रस्तो बताओ
जीं से आया वैंई जावां
वो साजन री जाई
ओ साजन री जाई।
बीरा घरे...
सूरज सामने बई पोळ तमारी।
आंगरण केल झबूके।
ओ साजन री जाई।
बीरा घरे
आड़ा फिरिके बई का।
बीरा जी बोल्या।
चूनड़ ओढ़ी ने बई।
घरे जाओ

ओ माड़ी री जाई।
बीरा घरे
या चूनड़ वीरा।
थारी साली ने ओढ़ाव
तमारो तो धरम बढ़ाय।
रे माड़ी रा जाया
वीरा घरे
आगे जाता बईजी का जेठजी पूछे।
पियर गया था।
कँई कँई लाया?
वो साजन री जाई।
बीरा घरे
पाछे पाछे म्हारा हाथीड़ा आवे।
घोड़ा रो अन्त न पार।
वो सासू रा जाया।
बीरा घरे
आगे जाता बईजी का देवरजी बोल्या
पियर गया था भाभी।
कँई कँई लाया?
वो साजन री जाई।
बीरा घरे
पाछे पाछे म्हारे मोहरा आवे।
रुपिया रो अन्त न पार।
ओ सासूरा जाया।
वीरा घरे
आगे जाता बई जी रा जेठानी पूछे
पियर गया था कँई कँई लाया?
हीरा बी लाया ने
मोती बी लाया
गेणां रो अन्त न पार
वो साजन री जाई
बीरा घरे
आगे जाता
बई जी रा नणदल पूछे
पीयर गया था [illegible]

कँई कँई लाया?
ओ साजन री जाई
वीरा घरे
सालू बी लाया बई जी
डंडिया भर लाया
बुगचा को अन्त न पार
सोटा खेलन्ताबाई जी रा
तोड़ाचन्द पूछे।
पियर गया था गोरी
कँई कँई लाया ?
वो सासूरी जाई।
वीरा घरे
बलती के हो म्हारा साजन।
कई तम बोलो
याँ को दाँतण यँई ज करया।
हो सासूरा जाया।
वीरा घरे

— १।३६

ननद के प्रति भावज की निर्दयतापूर्ण कठोरता का यह गीत एक ज्वलन्त चित्र है। आनन्दोत्सव के समय बेचारी बहिन तो बधाई देने आई हैं किन्तु भाई के यहाँ भावज के द्वारा उसका घोर अपमान किया जाता है। बहिन स्वयं ही बैठने के लिये बिछावन माँगती है, पीने के लिये पानी मांगती हैं, भोजन के लिये रसोई बनाने की कहती हैं किन्तु लोक-गीतों की भावज इतनी ईर्ष्यामयी है कि स्वागत-सत्कार करने की अपेक्षा व्यंग्य भरे उत्तर देती है।

❀ तुम्हारा भाई बिछाने के लिये छादड़ी नही लाया,
❀ पानी के लिये तुम्हारे भाई ने कुआं नहीं खुदवाया,
❀ भोजन के लिये तुम्हारे भाई ने गेहूं की खेती नही की।

भावज मानो स्वयं तो निरपराध है और सम्पूर्ण दोष है भाई का, जिसने बहिन के आतिथ्य की यथोचित व्यवस्था नहीं की। बहिन इस अपमान से तिलमिला कर अपने घर के रास्ते की ओर चल पड़ती है। मार्ग में भाई मिल जाता है और रोक कर बहिन को चूंदड़ी ओढ़ाना चाहता है, किन्तु बहिन का रोष यथार्थ स्थिति को प्रकट करने के लिये उबल पड़ता हैं।

"जोरू के गुलाम यह चूनड़ अपनी सालियों को ओढ़ाना" इससे ही तेरा धर्म बढ़ेगा बहिन के हृदय को जलाने के लिये उसके ससुराल के लोग भी पूछ बैठते है कि वह अपने मायके से उपहार में कितनी वस्तु लाई। इन लोगों को अपने भाई का वैभव बताने के लिये बहिन झूंठ ही कह देती है कि हाथी, घोड़ा, वस्त्र, आभूषण, हीरा, मोती आदि सभी वस्तुएं लाई हैं। किन्तु उसका पति भी इस व्यंग्य-विनोद में योग देकर पूछ बैठता है 'तुम अपने मायके से क्या लाई, ? तब बहिन के अपमान-पीड़ित हृदय की वेदना अधिक मार्मिक हो उठती है।

बधावे के इन गीतों का लोकाचार की दृष्टि से ही अधिक महत्व है। जन्म, विवाह एवं अन्य मांगलिक अवसरों पर बधावे गाये जाने की प्रथा सम्पूर्ण मालवा में प्रचलित है।

पगल्या

प्रथम पुत्र के जन्म का समाचार अपने परिजनों के यहां भाई के द्वारा पहुँचाया जाता है। इस सन्देश के साथ 'पगल्या, पद चिह्न भेजने की पद्धति पूरे प्रदेश में प्रचलित है। इस प्रथा में नवागन्तुक प्राणी के स्वागत की भावना के साथ एक अन्ध-विश्वास सम्बन्धी

मान्यता भी छिपी हुई हैं। किसी परिवार में भी नवीन व्यक्ति के चरण पड़ना एक महत्व-पूर्ण घटना हैं। परिवार की सुख, समृद्धि, विकास और वैभव का भविष्य पुत्र के जन्म की घड़ी पर आधारित माना जाता है। Co-incidence ही इस अन्ध-विश्वास का आधार हो सकता है। किसी बालक के जन्म लेने पर उसके चरण किसी सद्-गृहस्थ के यहाँ पड़ने पर उस परिवार को आर्थिक या अन्य प्रकार के भौतिक लाभ हुए होंगे तो वह बालक बड़ा भाग्यवान मान लिया गया। उसके चरण शुभ एवं मंगलमय हो गये। यदि उस बालक के जन्म पर किसी परिवार को अप्रत्यशित आपत्ति का सामना करना पड़ा तो वह दोष भी बालक का है कि ऐसी कुघड़ी में उसके चरण पड़े कि सब चौपट हो गया। अतः बालक के जन्म पर 'पगल्या' भेजने और उसके बधावे से यही मनोवृत्ति प्रकट होती हैं कि इसके पद-चिह्न हमारे लिये शुभ एवं मंगलदायी हों। पगल्या के जो चिह्न अंकित किये जाते हैं, उसमें सत्या [स्वस्तिक] का अंकन इस मंगल-वांछना को स्पष्ट कर देता हैं पगल्या में पांच या सात आकृतियाँ अंकित करने की प्रथा है। विषम संख्या को प्रायः शुभ माना गया है पगल्या की आकृति इस प्रकार है।

१. पद चिन्ह	बालकों के दो पद चिन्ह (पगल्या)
२. वृक्ष	वंश वृक्ष की समृद्धि का प्रतीक (झाड़)
३. पालना	बालक के झूलने के लिये (पालणा)
४. खिलौने	बालक के खेलने के लिये (घूगरा चूखनी)
५. समधी-समधन और बालक	एकोऽहम् बहुस्यामः की भावना का प्रतीक ब्याई और ब्याइन ने बालक को जन्म देकर अपने कर्तव्य को निभाया है। उनके अंकन में अभिनन्दन की भावना .... (ब्याई-ब्यायण)
६. स्वातिक	(सात्यो)
७. काष्ठ-वेदिका, बाजोट।	इन दोनों वस्तुओं के अंकन में धार्मिक भावना प्रधान है।

उपरोक्त आकृतियाँ हल्दी-कुंकुम या लाल स्याही से सफेद कागज पर अंकित की जाती हैं। इन आकृतियों का सामूहिक एवं प्रतीकात्मक नाम 'पगल्या' दिया गया है। पगल्या भेजना पुत्र-जन्म की सूचना के साथ ही एक प्रकार का निमन्त्रण भी है। जन्मे बालक की बुआ को निमन्त्रण दिया जाता है। पगल्या बालक के माता के भाई और ननद इन दोनों के यहां पहिले भेजा जाता है। भाई को भानजा होने की प्रसन्नता होगी और बहिन को भतीजा के जन्म पर 'नेग' पुरस्कार-प्राप्ति का आनन्द होगा। किन्तु पगल्या के अधिकांश गीतों में इस हर्ष की भावना की अपेक्षा ननन्द-भौजाई के राग द्वेष और मन मुटाव का उल्लेख ही अधिक हुआ है।

जाओ नागी आओ आमण जामो बई का बीर, म्हारा मारुजी हो राज,
बई जी थें तम कीजो तमारे भतीजो आयो, म्हारा मारुजी रो राज,
चालो बाई चालो बेन्या तमारे भतीजो आयो, म्हारा....

म्हारा घरे काम घणों म्हारो तो आणो नी होय म्हारा....
नाना सारु कड़ा चइये, पान पतासा चइये
घूगरा चूखनी चईये झगलो-खुंगाली चइये
म्हारा घरे काम घणो म्हारो तो आणो नी होय म्हारा....
गया नावी गया बामण गया बाई जी का वीर हो म्हारा....
डाबा में को गेणो बेच्यो पेटी में को कपड़ो बेच्यो
अच्छो हुओ जो बईजी नी आया, म्हारा मारूजी रो राज

गीत की भावना प्रचलित प्रथाओं पर पूरा प्रकाश डालती है। यदि भाई के यहां पुत्र होता है तो बहिन के यहां से भतीजे के लिये कड़े (हाथ पैर के लिये) खुंगाली आदि आभूषणों के साथ-झगल्या-टोपी आदि ले जाना पड़ता है। सम्पन्न घर में दी गई बहिन तो सोने के आभूषण ला सकती है किन्तु उक्त गीत की बहिन के घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं जान पड़ती। भाई के यहाँ मांगलिक अवसर पर वह खाली हाथ जाना ठीक नहीं समझती। अतः निमन्त्रण एवं झगल्या लाने वाले नाई (या ब्राह्मण) को कह देती है कि घर में काम बहुत है वहां आना नहीं होगा। बहिन ने तो बहाना बताकर अवसर टाल दिया किन्तु भौजाई स्वयं यह नहीं चाहती थी कि उसकी ननन्द वहाँ आवे। ननन्द के न आने पर उसके अपने मन की प्रसन्नता व्यक्त कर ही दी।

'चलो अच्छा हुआ, वह नहीं आई।'

जच्चा के गीतों में प्रसूता की प्रसव पीड़ा परिवार के लोगों के द्वारा पुत्र-जन्म पर इधर-उधर संदेश भेजने की दौड़-धूप, सुआवड़ (प्रसूता) की उपेक्षामयी स्थिति आदि का वर्णन किया गया है। गर्भवती पत्नी के प्रति पति का बड़ा आकर्षण होता है। किन्तु संभावित आशा के विपरीत यदि पुत्र की अपेक्षा, पुत्री का जन्म हो गया तो बेचारी नारी की बड़ी दुविधामय दशा हो जाती है। निम्न-लिखित गीत में गर्भवती कुलवधू के हृदय का उल्लास व्यंजित हुआ है। परिवार के सदस्यों के प्रति वधू की भावना सुखप्रद है, जहां मालिन्य और द्वेष भावना का अभाव है।

कबलें उबी कुल बऊ अइ अइ कम्मर माय पीड़
फिकर म्हारी कुण करे जी म्हारा राज
सुसरा जी म्हारा राज बिजेजी, सासू अलख भण्डार
जेठ म्हारा चोधरीजी, जैठानी भोली नार
देवर म्हारा लाड़ला जी, देराणी नई नवेली नार
ननद म्हारा लाड़ला जी, नन्दोई पराया पूत
ओर माय की ओवरी सूता नन्दल का वीर
पांव की अंगूठों दबई जगावियां, जागो जागो बाई जी का वीर
खाली कर दो ओवरी जी, झटपट बांदी पाग
झपट घुड़लो पलाणिया या लो गोरी ओवरी जी
जो तम जाओगा धीयड़ी जी आवे सातीड़ा में लाज
जो तम लावोगा लाड़लो घर में वधावणा होय।
फिकर म्हारी कुण करे जी म्हारा राज..........३।१५५

'छठी-जगा' जन्म के लोकाचारों में विशेष महत्व रखता है । बालक के जन्म के छठे दिन रात्रि को विधाता आकर बालक की भाग्य-लिपि लिखता है । विधाता के ये लेख अटल होते हैं । बालक के जीवन के महोभाग्य, दुर्भाग्य का निर्णय ही इस रात्रि को होता है । अतः बालक एवं परिवार की सुख सम्पत्ति और वैभव की वृद्धि की कामना के लिये देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं । रातजगे में गाये जाने वाले गीतों को प्रायः दुहरा दिया जाता है । प्रसूता के पलंग के पास बालक की भाग्य लिपि लिखने के लिये दवात, कलम कागज रख दिये जाते हैं । साथ ही मंगल-कामना या श्रद्धा के लिये कंकू चोखा (कुंकुम-अक्षत) से पूजित एक ताम्र-पात्र भी रख दिया जाता है ।

बालक के जन्म के दसवें दिन शुभः मुहुर्त न आने पर ग्यारहवें या बारहवें दिन प्रसूता के द्वारा सूर्य की पूजा की जाती है । इस दिन प्रसूता को मांगलिक स्नान कराया जाता है । प्रजनन सम्बन्धी अशुचि की भावना का इस दिन परिमार्जन हो जाता है । सूतक की समाप्ति मान ली जाती है । इन दस दिनों तक परिवार के लोग देव-मन्दिर आदि नहीं जाते । जिस प्रकार किसी व्यक्ति के मरने पर 'मृतक-सूतक' में स्पर्शास्पर्श की भावना का निर्वाह किया जाता हैउसी प्रकार 'वृद्धि-सूतक' में छुआछूत का बड़ा ध्यान रखा जाता है । सूर्य-पूजा के पश्चात् यह सूतक समाप्त हो जाता है । घर-आंगन गोबर से लीपे जाते है प्रसूता को नवीन वस्त्र पहनाकर नवोदित शिशु के साथ चौके पर मंगल घट की पूजा कराई जाती है । सूर्य को अर्ध्य दिया जाता है । प्रसूता एवं बालक के लिये सम्बन्धी लोग वस्त्र आदि का उपहार लाते है । इस अवसर पर गेहूं अथवा जुआर की उबाली हुई 'घुघरी' वितरित की जाती हैं । यह भगवान सूर्य के प्रसाद का प्रतीक है, किन्तु एक प्रचलित मालवी कहावत के अनुसार घुघरी खाना अपनी वयोवृद्धता की एक उद्घोषणा है । यदि कोई छोटी उम्र का बालक अपने से बड़ी आयु के व्यक्ति को नाम लेकर पुकारता है तो यह अच्छा नहीं समझा जाता है और उस बालक को इस अवांछनीय आचरण पर डाँट दिया जाता है । इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, स्थूल रूप से तीन भागों में उनका वर्गीकरण होगा :—

सूरज पूजा के गीत

चौक के गीत	घुगरी	हास्य के विविध प्रसङ्गों के गीत

चौक के गीतों में घर आंगन के लीपने-पोतने सम्बन्धी एवं परिजनों के मिष्ठान खिलाने, चन्दन चौक, मंगल कलश के उल्लेख के साथ मातृत्व की सार्थकता का गर्व प्रकट हुआ है । माता के लिये उसका नवजात शिशु प्रजा को पालने वाले, धरती का भार उतारने वाले श्रीकृष्ण के समान ही महत्व रखता है ।

सूर्य गऊ को गोबर मंगाय, सीके भई आंगन लिपाव —
भई म्हारे आनन्द मंगलाचार, गज मोतिया चौक पुराव —
कंचन कलश धरावके भई म्हारे........ —

तेड़ो तेड़ो रे गोकुल का जोसी, नानुड़ा को नाम लेवाव
भई म्हारे··· नानुड़ा को नाम कुंवर कन्हैयो, कृष्ण कन्हैयो
धरती को धोंवन वालो, परजा को पालन वालो
सिरी कृष्ण आयो म्हारे द्वार, भई म्हारे आनन्द मंगलाचार..... ३।१५७

उक्त गीत में बच्चे का नाम रखने का सन्दर्भ भी है। सूरज पूजा के दिन जोसी (ज्योतिषी) से पूछकर बच्चे का नाम भी रख दिया जाता है। प्राचीन नामकरण संस्कार को सूरज-पूजा के आचार में सम्मिलित कर लिया है। अलग से नामकरण संस्कार करने की प्रथा प्रचलित नहीं है। सूरज-पूजा के दिन ही परिवार की सुहागिन नारियाँ बच्चे को गोद में लेकर उसके नाम का उच्चारण कर देती है।

घुघरी का उल्लेख सूर्य-पूजा के प्रसंग में किया जा चुका है। घूघरी पकाते समय निम्नलिखित गीत गाया जाता है :—

बई ओ, तांबा केरो तोलनी मंगाव, रायरूपा की ढांकणी
बई ओ, दूधा केरा आदण देवाव म्हारा गाँठ्या गऊ की घुगरी
बई ओ, दोजे दोजे अबले-सबले सेर, तमारी ननदल मत दीजो घुगरो
बई ओ, दइ दइ अबले सबले सेर म्हारो नणदल के दइ दी घुगरो
बई ओ, नावन म्हारो अगला भौ की सौक नणदल के दइ दी घुगरो
उठो पीया लोलड़ा पलाणो म्हारो पाछो लाई दो घुगरी
वीरा आदि-पिछली रात असूरो-असूरो क्यों आयो
वेन्याओ त्हारो भावज निरधन री धीहड़ी पाछी मांगे घूघरी
बई ओ आदि त्हारा बालकड़ा समझा, आदि दई दे घुगरी
वीरा रे म्हारा बालक ने राख समजाय त्हारी सगली लई जा घुगरी
वीरा रे हेड़ म्हारा गंगा जमनी खेत हूं नत की रादूं घुगरो
वीरा रे हूं जो होतो निरधनयारो नार त्हारी कांसे लातो घुगरो ३।१५६

गीत में ननन्द और भावज की ईर्ष्या-भावना को लेकर सम्पूर्ण, कथा प्रसंग का आयोजन हुआ है। सूरज-पूजा के अन्य गीतों में स्त्रियों द्वारा हास्य की सामग्री भी जुटाई जाती है। जिसमें सम्बन्धियों को कागला (कौआ) कुकड़ा (मुर्गा) और मिनकी (बिल्ली) आदि बनाया जाता है। ऐसे गीतों में भाव-सौन्दर्य का अभाव रहता है। परिवार के व्यक्तियों के नाम बार-बार दोहराये जाते हैं। केवल एक-दो टेक की पंक्तियों में गीत समाप्त हो जाता है।

उण्डो उण्डो कुओ रे, केरली का पान
....घरे छोरो हुवो रे सूपड़ा का कान

नवजात शिशु के कानों को सूप जैसा बताकर शरीर की अस्वाभाविक विकृति का दृश्य लाकर हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है।

जन्म-संस्कार के गीतों में प्रसंगवश हालरा-लोरियों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। शिशु को पालने में झुलाते समय लोरियां गाई जाती हैं।

हालरा-लोरियां

मालवी लोरियों में मातृ-हृदय में पाई जाने वाली उन सामान्य प्रवृत्तियों के दर्शन हो जाते है, जो भारत की अन्य भाषाओं की लोरियों में विद्यमान है। मालवा में लोरियों को 'हालरा' कहते हैं। पालने में या झोली में शिशु को सुलाकर हुलराया जाता है। झुलाया जाता है। इसी हुलराने-दुलराने की क्रिया के साथ जो लोरी गीत गाये जाते हैं, उनकी संज्ञा हालरा हुई। प्रत्येक हालरा या लोरी के प्रारम्भ में..........

"हलो हलो रे नाना हलो रे भई,
हलो रे नाना झूलो रे भई,
हुल रे हुल नाना हुल " आदि पंक्तियां दोहराई जाती हैं[1]

हुलराने की क्रिया के कारण बंगाली लोक-गीतों में लोरियों को 'घूम पाडा नो गान अथवा छडा' कहते हैं। शिशु को सुख की नींद प्रदान करने के लिये माता का कण्ठ गीत गाते-गाते सूख जाता है परन्तु खेल से थके बालक की परिश्रान्ति - निवारण में उसके लोरी गीत कभी नही सूखते, क्योंकि माता का हृदय कभी निर्धन नहीं होता। कुबेर का सम्पूर्ण संचित वैभव मानो उसके आंगन में बिखरा पड़ा है। शिशु के लिये पालना सोने का ही बनता है। उसे बांधने को रेशम की डोर ही लगती है। और अपने राजपुत्र शिशु को झुलाने का पारिश्रमिक (पुरस्कार) है सीरा-पूरी और घुघरी गोल[2] के ये दोनों वस्तुएं जन-सामान्य को उत्सव एवं मांगलिक अवसरो पर प्राप्त होने वाला मिष्ठ पदार्थ हैं। यहाँ मालवी माता का हृदय जीवन की यथार्थ स्थिति को छोड़कर अन्य पकवान एवं मिठाइयों के कल्पना लोक में जाने के लिये नहीं ललचाता। पंजाबी माँ की तरह मालवा की माताएं भी अपने राजपुत्र शिशु को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिये दस गायों का दूध पिलाती हैं।

नानो तो म्हारो रायां को
दूध पीये दस गायां को।

और बड़ी आशा, आकांक्षा एवं देवताओं की मान-मिन्नतों से प्राप्त हुए पुत्र को अनिष्ट से बचाने के लिये 'लूण-मीर्च' करने को तत्पर रहती है। माता को अपने शिशु पर किसी की कुदृष्टि पड जाने अथवा नजर लग जाने का बड़ा भय बना रहता है। इस नजर

---

१. गीत परिशिष्ट क्रमांक १—अ। ४ में दिया गया है।
२. गीत परिशिष्ट क्रमांक १—अ। ५ में दिया गया है।
[illegible] विशेष।

अथवा कुदृष्टि के प्रभाव से उसका पुष्प जैसा बालक कुम्हला भी सकता है। अतः इस प्रकार की किंचित शंका होने पर वह लूण-मिर्च करती ही है।[1]

अनिष्ट निवारण के साथ ही अपने शिशु के लिये माता की एक चिर पिपासा और रहती है। वह शीघ्र ही छोटी—सी दुलहन उसके घर में आजायः—

लूण करे रे के रई रे भई
नाना की करो सगाई रे भई।

मालवी लोरियों में शिशु की मंगल-कामना के साथ हास्य के भी कुछ रोचक प्रसंग आते हैं। साधारण स्थिति की माता के यहां कोई दास-दासी तो नहीं हैं, जो शिशु की देखभाल कर सके। अतः माता शिशु को अकेला छोड़कर पानी भरने के लिये घर से बाहर चली जाती है। तब कुत्ते आकर घर में खाने पीने की वस्तुओं को समाप्त कर जाते हैं और इस उजाड़ (नुकसान) का कारण समझा जाता है वह शिशु ! उसे डाट-फटकार के साथ कभी-कभी मार····धमके चार भी खाने पड़ते है, उजाड़ तो कुत्ते करें और जूते पड़े उस निरपराध शिशु पर,[2] हास्य के साथ कुछ लोरियों में व्यंग और नारी हृदय का कुण्ठित रोष, द्रोह भी प्रकट हो जाता है। यह कुण्ठा ननद के विरूद्ध उभार लाती है क्योंकि सामाजिक जीवन में व्यवहारिक शिष्टता के कारण ननद द्वारा किये गये अत्या—चारों का प्रतिकार किया जाना तो संभव नहीं होता, अतः गीतों में ही बेचारी ननद को होली में दिया जाता है। उसे लंगडी और पंगु बनाया जाता हैं।

सुईजा रे नाना झोली में, त्हारी भूआ गई होली में
हालर-हूलर हांसी को, लाल चूड़ो नाना की मासी को
पग टूटो नाना की भुआ को ......[3]

ननद की दुर्दशामय स्थिति की चाह के साथ मालवी नारी का मातृ-पक्ष के प्रति जो ममत्व है यह भी नही छिप सकता। वह पति की बहिन के प्रति क्रुद्ध है, किन्तु स्वयं की बहिन के चूड़े को लाल और सुहाग—मय रखना चाहती है। वात्सल्य की सृष्टि के साथ नारी-हृदय की कुण्ठा का प्रकटीकरण मालवी लोरियों की विशेषता है।[4]

---

१. देखें, परिशिष्ट क्रमांक १—अ। ६

० 'लूण-मिरच करना' एक टोना होता है जिसमें नमक की डली, आखी मिरच, राई और झाडू के दो-चार 'खोड़े' लेकर शिशु के ऊपर उसके मस्तक से पैर तक सात बार उवारा जाता है और उक्त वस्तुओं को जलते चूल्हे में डाल दिया जाता हैं। यदि जलती हुई मिर्च तीव्र गन्ध नहीं दे तो समझ लिया जाता है कि बच्चे को किसी की नजर अवश्य लग गई है।

२. देखें परिशिष्ट क्रमांक १—अ। ७

३. ,, १—अ। ८

को आकर्षित करने का अवसर दिया जाता था ।[1] राक्षस एवं पिशाच विवाह निकृष्ट कोटि के एवं निन्दनीय समझे गये हैं ।

ऋग्वेद से स्पष्ट होता है कि उस समय सभ्यता के विकास के साथ ही विवाह-सम्बन्धी नियम सुदृढ़ होगये थे और स्त्री-पुरुष के स्वच्छन्द एवं प्रकृत सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था । इसके पूर्व भाई और बहिन अर्थात् एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न स्त्री और पुरुष से यौन सम्बन्ध की प्रथा प्रचलित रही होगी । ऋग्वेद का यम-यमी सम्वाद इस बात का संकेत करता है । समाजगत नियम को तोड़ने में अपनी बहिन यमी से प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करने में यम धर्म-संकट का अनुभव करता है ।[2] ऋग्वेदीय समाज में विवाह के सम्बन्ध-निरधारण आदि नियमों के साथ ही धार्मिक कृत्य के रूप में अनेक आचार पद्वतियों का भी प्रचलन प्रारम्भ होगया था । इनमें प्राजापत्य विवाह की पद्धति सर्वमान्य एवं शाश्वत सिद्व हुई हैं । इसमें पिता अपनी कन्या को वस्त्र—आभूषणों से सजा कर आवश्यक संस्कारों के निर्वहन के पश्चात् वर को सौंप देता है । कन्या-दान अथवा पाणि-ग्रहण संस्कार उक्त भावना के अन्तर्गत विवाह के पर्यायवाची के रूप में प्रचलित होगया है ।

शास्त्र और रीति-रिवाज

आजकल हिन्दुओं में प्रचलित विवाह-पद्धतियों में जहाँ तक शास्त्रीय परम्परा के निर्वाह का प्रश्न है, ऋग्वेद काल से चली आने वाली प्रथाएँ किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं । मालवा में प्रचलित विवाह का जो पौरोहित्य कर्म है, उसमें शास्त्र की परम्परा का अखण्डता से पालन किया जाता है । ऋग्वेद-कालीन विवाह संस्कारों के साथ प्रत्येक युग में विभिन्न जातियों ने भारत की विवाह-पद्धति पर अपने संस्कारों की जो छाप छोड़ी है, उनका प्रभाव इन आचारगत रूढियों में देखा जा सकता है । शास्त्रीय-परम्परा के पालन के साथ ही लोकाचार का महत्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता । मनु, याज्ञवल्क्य आदि शास्त्रकारों ने भी लोकाचार को मान्यता प्रदान की है । वंश अथवा कुल की परम्परा एवं जाति-गत आचारों का संस्कारित रूप ही संस्कारों के रूप में स्वीकृत होकर शास्त्रीय विधान की वस्तु बन गया है । अनेक रीति-रिवाज एवं मान्यताएं कई जातियों के सम्पर्क में आने से परिवर्धित हुई हैं । आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार शास्त्रों की लकीर पर चलने के लिये जन-समुदाय अपने को बाध्य नहीं समझता । समाज विकास की प्रारम्भिक स्थिति में विवाह एक 'सिविल कन्ट्राक्ट' के रूप में विद्यमान था । यह संबन्ध-विनियम कभी-कभी स्त्रियों की कमी के कारण आदान-प्रदान की भावना को

---

१. कियती योषामर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसावार्येण ।
भद्रावधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सामित्रम् वनुते जने चित् ।। —ऋग्वेद १०।२७।१२ ।

२. महत्पुत्रासो असुरस्य वरा दिवो, धर्तंरि उर्विया परिख्यन् । १०।१०।२
न यत्पुरा चकृमा कद नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम । १०।१०।४
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । १०।१६२।४ ।

लेकर चलता था। आज भी लड़की देना और उसके बदले में अपने परिवार के युवा सदस्य के लिये लड़की मांगने की प्रतिबन्धात्मक प्रथा अनेक जातियों में प्रचलित है। मालव में इस प्रथा को 'आटा-साटा' कहते हैं। इसी तरह प्राजापत्य विवाह का आदर्श भी आज कुप्रथा में परिणित होगया है। ऋग्वेद काल का वर अपने ससुर से स्वर्ण एवं पशु आदि दान के रूप में, पुरस्कार के रूप में प्राप्त करता था।[1] किन्तु आज यह प्रथा दहेज के रूप में विस्तृत होकर समाज के लिये अभिशाप सिद्ध हो रही है।

हिन्दुओं के विवाह में प्रचलित लौकिक आचारों की संख्या इतनी अधिक होगई है कि वैदिक काल के लोकाचारों की संख्या नगण्य सी लगती है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल का ८५ वां सूक्त (सूर्या और सूर्य से विवाह प्रकरण में) तत्कालीन विवाह संस्कार एवं रीति-रिवाजों पर प्रकाश डालता है। उस समय केवल पांच लोकाचारों में विवाह सम्पन्न होजाता था।

*१. वर यात्रा	वर पक्ष के लोग कन्या-पक्ष वालों के यहाँ इष्ट - मित्र और परिवार के लोगों को साथ लेकर जाते थे।
२. कन्या का शृंगार	कन्या मांगलिक स्नान करती है केश–विन्यास और सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों से सज्जित हो, 'वरण पाश' बाँधकर विवाह के भोज के लिये तत्पर रहती थी।
३. प्रीतिभोज	वर-पक्ष का सत्कार भोज देकर किया जाता था। इस आतिथ्य के सम्बन्ध मे गौ माँस के प्रयोग का उल्लेख आया है।
४. अग्नि प्रदक्षिणा	विवाह के उपलक्ष में दिये गये भोज के पश्चात् यज्ञ-मण्डप में वर-वधू को लाया जाता था। अग्नि-पूजा, सोम-रस-निचोड़,
हस्त मिलन	वर-वधू का हाथ पकड़ कर अग्नि प्रदीप्त यज्ञ-कुण्ड के चारो ओर परिक्रमा करता था। इस आचार में आज की प्रचलित दो प्रथाएं छिपी हुई हैं। १. हथ–लेवा। २. फेरा [सप्तपदी]

---

१. चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्य दयात्सूर्या पतिम्॥ ऋक् १०, ८५, ७।

* (१) सूर्याया वहतु प्रागात्सविता यमवासृजत — ऋक् १०, ८५, १३।
(२) — ऋक् १०, १७, १।
(३) अघासु हन्यते गोवोऽर्जुनन्योः पर्युह्यते — ऋक् १०, ८५, १३।
(४) सोमं मन्यते पपिवान् यत्संपिषन्त्योषधिम् — ऋक् १०, ८५, ३।
गृह्णामि ते सौभगत्वाय च हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथास — ऋक् १०, ८५, ३६।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवति शरदः शतम् — ऋक् १०, ८५, ३९।

५. वर का स्वगृह-प्रस्थान एवं आशीर्वचन — अग्नि-परिणय के पश्चात् वर धूमधाम से वधू को पालकी या अन्य किसी वाहन पर बैठा कर जन-समारोह के साथ अपने घर की ओर प्रस्थान करता था। वर के घर वधू का स्वागत किया जाता था। और वयोवृद्धों द्वारा दीर्घायु एवं पुत्र-पौत्र वती होने का उसको आशीर्वाद दिया जाता था। आशीर्वचन के समय वधू-दर्शन की प्रथा का संकेत भी मिलता है।[1] आजकल इस प्रथा को मालवा में 'मुँह-दिखाई' कहते हैं। वधू अपने पति के परिवार के लोगों का चरण स्पर्श करती है और परिजन घूंघट में छिपे वधू के मुंख को देखने के लिये आग्रह करते हैं। वधू को मुख-दिखाई में आभूषण या रूपये पुरस्कार के रूप में दिये जाते है।

रामयण-काल तक विवाह संस्कार के लोकाचारों का अधिक विस्तार होगया। उपरोक्त पांच लोकाचारों का विकास लगभग बीस की संख्या तक पहुँच गया। रामायणकालीन विवाह-संस्कार को स्थूल रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया है:—
१. वैवाहिकी २. समुद्वाह। वैवाहिकी[2] में दो प्रकार के संस्कार हैं:—

वैवाहिकी

(१) आरम्भिक औपचारिक कृत्य
१. वर प्रेषण ❀
२. सीमन्तपूजन +
३. वंशावलि-कथन ×
— प्रथम दिवस

(२) मूल संस्कार (विवाह)
१. वधू-निष्क्रमण (मण्डप में आगमन)
२. वधू गृह आगमन
३. वेदीकरण

---

(५) गृहान्गच्छ गृहपत्नीयथासो, वशिनी त्वं विदथमा वदासि। ऋक् १०, ८५, २६।
१. सुमंगलीरियम् वधूरिमा समेत पश्यत
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन — ऋक् १०, ८५, ३३।
२. रामस्य लोकारामस्य क्रियां वैवाहिकीं विभो
वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड अध्याय ७३ श्लोक १६। वाल्मीकि रामायण के बाल-काण्डमें अध्याय ६६ से ७३ तक तत्कालीन वैवाहिक लोकाचारोंका वर्णन है।
❀. वरप्रेषण—१. विवाह के लिये वर के पिता के पास दूत भेजना, यह कन्या पक्षकी ओर से विवाह का प्रस्ताव है—
'अस्मै देया मया सीता वीर्य शुल्का महात्मने', —वा० रा० बालकाण्ड ६६:१।१२।
+ सीमन्त पूजन—वर पक्ष के लोगों का स्वागत।
× वंशावली कथन—वशिष्ठ द्वारा इक्ष्वाकु वंश-परम्परा का वर्णन है (वर पक्ष)
—वा० रा० बालकाण्ड ७०।२० से ४५।

४. वर-वधू की गुण परीक्षा, द्वितीय दिवस ४. अग्नि-संस्थापन
५. वाग्दान | ५. होम
६. नान्दी श्राद्ध | ....गोदान, तृतीय दिवस ६. कन्या-दान
७. पाणि-ग्रहण पंचम दिवस
८. अग्नि-परिणयन
९. जनवासा

समुद्वाह शब्द विवाह के पश्चात् वर के घर पर किये जाने वाले मांगलिक कार्यों के लिये प्रयुक्त हुआ है। जिसमें निम्नलिखित लोकाचार प्रमुख हैं :—

१. वधू का पति-गृह-प्रवेश, २. वधू-प्रतिगृह,
३. होम, ४. देवकोत्थापन।

शास्त्र और नारी का रूढ़ि-शास्त्र

रामायणकालीन विवाह पद्धति एवं लोकाचारों की सांगोपांग परम्परा मालव में आज भी प्रचलित है। उपरोक्त पद्धति में ब्राह्मण, देव, आर्ष एवं प्राजापत्य इन चारों पद्धतियों का सम्मिश्रण हो गया है। स्त्रियों द्वारा मान्य रूढ़िगत आचारों में असुर एवं राक्षस विवाह का प्रभाव आज तक बना हुआ है। यहाँ आज का विवाह संस्कार शास्त्र और नारी का रूढ़ि-शास्त्र इन दोनों का सम्मिश्रित नवीन रूप है। आज अनेक रूढ़ियाँ बदलते युग के साथ असंगत एवं अशिष्ट प्रतीत होती हैं, किन्तु इनका पालन किए बिना लड़के का विवाह सम्पन्न होना बड़ा कठिन है। मालवी स्त्रियों की कट्टर रूढ़ि-प्रियता के कारण आज के शिक्षित नवयुवकों को भी बहु-रूपिया बन कर सतरे नाच नाचने पड़ते हैं। तब कहीं वधू के श्रीमुख के दर्शन होना सम्भव है। शास्त्र द्वारा प्रतिपादित एवं नारियों के द्वारा लोकाचार की आधार भूमि पर स्थित विभिन्न रुढ़िगत प्रथाओं को यदि वैज्ञानिक विवेचन एवं इतिहास के प्रकाश में देखें तो अनेक रोचक बातें ज्ञात हो सकती हैं। सबसे पहले विवाह में सम्पूर्ण आयोजन की अवधि पर विचार करना आवश्यक है। शास्त्रों में इस मांगलिक कार्य के लिए दिनों की कोई निश्चित संख्या निर्धारित नहीं है। ऋग्वेद कालीन विवाह समारोह में कितने दिन लगते थे इसका पता नहीं लगता। किन्तु रामायण काल में विवाह विधिवत् पूरे पाँच दिनों में सम्पन्न किया जाता था। विवाह आनन्द, मनोरंजन और परिवार के लोगों से मिलने का एक अपूर्व अवसर भी समझा जाता है। मध्य-युग में यातायात के साधन बैलगाड़ी या अश्व-यान तक ही सीमित थे, तब सुदूर बसने वाले रिश्तेदारों का जीवन में बार-बार मिलना संभव नहीं था। जन्म, परण एवं मरण जैसी

२. निमि वंश-परम्परा का वर्णन (गन्या पक्ष) वही ७१।३ से २०। वंशावली कथन में यह भावना निहित है कि श्रेष्ठ एवं समान प्रतिष्ठा वान परिवारों में ही संबंध सम्भाव्य है सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशो दातुमर्हसि, वही ७२।२१।

४. नान्दी श्राद्ध—स गत्वा निलयं राजा श्राद्धकृत्वा विधानतः। वही, ७२।२१।

महान् घटनाओं पर ही सब सगे-सम्बन्धी एवं इष्ट-मित्र मिल सकते थे। अतः विवाह के कार्यों का पूरा क्रम पूजा, गीत, नृत्य एवं उद्यान-गोष्ठियों की धूम-धाम के साथ २१ दिन से लेकर लगभग एक-दो महिने की अवधि तक आयोजन, जातिगत मान्यता एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से वांछनीय समझा जाता था। द्वितीय महायुद्ध के पहिले यही स्थिति थी। अब तो पाँच-या सात दिनों में ही विवाह के पौरोहित्य, आनुष्ठानिक एवं लौकिक आचार आदि के कृत्य पूरे कर लिए जाते हैं। समयाभाव के कारण विवाह के शास्त्रीय विधि-विधान में काट-छाँट भी हो सकती है किन्तु नारियों के लोकाचारों को किसी भी स्थिति में टाल देना सम्भव नहीं है। विवाह से सम्बन्धित लोकाचार एवं रीति-रस्मों की सूची निम्न प्रकार है........

प्रथम श्रेणी

१. चाक नोतना　　२. छोटा बन्याक　　३. बड़ा बन्याक
४. टीका　　५. धोळी कलश　　६. माणक थम्भ
७. तणी बांधना　　८. उकड्डी पूजन　　९. रातजगा
१०. गिरे सातग　　११. तेल-पान　　१२. हल्दी-पीठी
१३. मायरा　　१४. वर-निकासी　　१५. ढूँट्या
१६. हथलेवा　　१७. होम (लाजा होम)　　१८. सप्तपदी (फेरा) अग्नि प्रदक्षिणा
१९. वर-वधू की प्रतिज्ञा　　२०. हथलेवा छूटना
२१. कन्यादान (दहेज)　　२२. बिदाई (कन्या को जनवासे तक पहुँचाना)
२३. बाणनो रोकई (वर पक्ष के जमाई के द्वारा मार्ग अवरोध)
२४. कँवर कलेवा　　२५. भात (विवाहका भोज)　　२६. देवी-देवताओंका पूजन
२७. कांकड़-डोरा　　२८. पासा खेलना
२९. कपास बीनना　　३०. वर को मेंहदी लगाना　　३१. पलंग फेरा
३२. पीला नारियल देना (विदाई की आज्ञा का सूचक)
३३. देली पूजा (वधू द्वारा पितृ-गृह की देहरी पूजन)।

द्वितीय श्रेणी

१. बड़-बदउ　　२. लगन भेजना　　३. समेलो
४. तेल-पान　　५. पडला भेजना　　६. कन्याका मांगलिक स्नान
७. कन्या की शृङ्गार सज्जा　　८. वर का तोरण पर आना
९. तोरण मारना　　१०. कामण (जादू टोने)
११. झिर-मिर आरती से वर का स्वागत　　१२. वर का वधू-मंडप प्रवेश
१३. माय-माताका पूजन　　१४. गठ बन्धन
१५. मंगलाष्टक विधान　　१६. मेंहदी पीसना।

तृतीय श्रेणी

१. बउबदाना (वधू का स्वागत)
२. बारणो रोकई (बहिन द्वारा नव-विवाहित भाई से पुरस्कार मांगना)
३. रातजगा
४. देवी-देवताओं का पूजन
५. काँकड़-डोरा छोड़ना
६. पासा से खेलना
७. मुँह-दिखाई (वधू दर्शन)
८. सुहाग रात
९. माय माता उठाना.

उपरोक्त लोकाचारो को विवेचन की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। प्रथम श्रेणी में उल्लिखित लोकाचार एवं अनुष्ठान केवल वर यात्रा और ढूँढ्या को छोड़कर वर एवं कन्या पक्ष वालों के यहाँ समान रूप से आयोजित होते हैं। इन लोकाचारों को विवाह का पूर्वार्द्ध कहा जा सकता है। विवाह का आरम्भ गणपति-पूजा एवं स्थापना से होता है।

छोटा बन्याक

बन्याक शब्द बिनायक का अपभ्रंश है। बिनायक ऋद्धि और सिद्धि के स्वामी माने गये है। विवाह में सब कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जावें इसलिये गणपति को पहिले निमंत्रण दिया जाता है।[1] ऋग्वेद एवं रामायण काल में विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर गणपति पूजन की प्रथा प्रचलित नहीं थी। शिव, गणपति आदि देवता आर्येतर जातियों की देन हैं। अतः ऋग्वेद में इनका उल्लेख नहीं है। भारतीय आर्यों ने अनार्यों की लौकिक-परम्परा को अपनाकर शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया है। विवाह के पूर्व गणपति की दो बार पूजा की जाती है। प्रथम पूजा और स्थापना को छोटा बन्याक कहते है। गणपति के पूजन की औपचारिक विधि तो पुरोहित आकर सम्पन्न करता है किन्तु स्त्रियाँ इस अवसर पर लोक के साकार प्रजापति को भी सम्मान देती हैं। मानव के शरीर-घट का निर्माण करने वाला ब्रह्मा हो सकता है किन्तु मिट्टी के घडे का निर्माता तो 'परजापत' कुंभकार ही हैं। स्त्रियाँ विनायक की स्थापना के पूर्व कुम्हार के यहां जाकर उसके चाक की पूजा करती है। यह प्रथा 'चाक-नौतना' कहलाती है। स्त्रियों की इस प्रथा की सार्थकता और महत्व को प्रदर्शित करने के लिये दार्शनिक भावभूमि पर आधारित अनेक तर्क प्रस्तुत किये जा सकते है। चाहे स्त्रियां स्वयं सार्थकता से अनभिज्ञ हो। कुम्हार अपने चक्र [चाक] के द्वारा अनेक घटों का निर्माण करता है। वंश परम्परा के चक्र को निरन्तर घूर्णित करने के लिये ही विवाह का आयोजन

---

१. १. गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे प्रियनान्त्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधानान्त्वां निधिपतिं हवामहे। यजुर्वेद,
२. विद्यारंभे विवाहेच प्रवेशे निर्गमे तथा संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।

होता है। विवाह प्रजनन व प्रतिष्ठा के महान आयोजन के श्रीगणेश के पूर्व स्त्रियां ब्रह्मा की समता करने वाले लौकिक प्रजापति को कैसे भूल सकती हैं। उसके चाक का पूजना अनिवार्य है। फिर कुम्भकार द्वारा निर्मित मृत्तिका के घटों का मांगलिक कार्यों में बड़ा महत्व है। विवाह के सम्पूर्ण कार्य में इन घटों की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। अतः घट-निर्माता का स्वागत उपयोगिता की दृष्टि से भी वांछनीय हो जाता है। विवाह-कालीन अवधि मे स्त्रियों को तीन बार कुम्हार के यहां जाना पड़ता है।

१. छोटे बन्याक के दिन, चाक-पूजन एवं मगंल-कलश लाने के लिये।
२. बड़े बन्याक के दिन मंगल घट लाने के लिये
३. धोळी कलश लाने के लिये
(लग्न के दिन वर-पक्ष के लोगों को कुम्हार के घर जाकर चँवरी के लिये मृतिकाघट लाने की आवश्यकता पड़ती है।)

बड़ा बन्याक

विन्याक - पूजन और चाक- नोतना कन्या एवं वर पक्ष दोनो के विवाह समारोह को प्रारम्भ करने का प्रथम दिवस माना जाता है। चाक -पूजा के पश्चात् वर या वधू को हल्दी आदि का उबटन लगाकर मांगलिक स्नान कराया जाता है। और गण-पति की पूजन होती है। इस प्रथा को 'बाना बेठाना' कहते हैं। यह विवाह की अवधि का प्रतीक है। लग्न होने की तिथि और बड़े बन्याक में सुविधानुसार ५, ७ अथवा ११ दिन का अन्तर रहता है बड़े बन्याक के दिन से विवाहगत लौकिक आचारों मे तेजी आजाती है। उत्साह की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। विनायक—पूजन के पश्चात् वर और वधू को विवाह-कंकण बाँधे जाते है। इस दिन वर पक्ष क यहाँ वर-निकासी तक एवं कन्या-पक्ष के यहाँ लड़की की विदाई तक परिवार के तथा बाहर से आमंत्रित अन्य सन्बम्धी भोजन करते हैं। प्रत्येक शुभ कार्य में मंगलाचरण के शास्त्रीय नियम का पालन करने के पश्चात् कलश-स्थापना का कृत्य करने का विधान है। जल मे परिपूर्ण आम्रपल्लवों से युक्त कलश भारतीय कला और संस्कृति का पुरातन चिह्न है। मंगल विधायक कृत्यों के पश्चात 'गिरे सातंभ (गृह शान्ति) के लिये आवश्यक वैदिक-कर्म पुरोहित द्वारा मातृका-पूजन, नवग्रह-पूजन एवं हवन आदि के साथ सम्पन्न होता है। विवाह के मूल संस्कार से इसका सम्बन्ध नहीं है। निर्विघ्नता से कार्य पुरा हो सके इस दृष्टि से विनायक पुजन की तरह वर और कन्या दोनो के विवाह के अवसर पर ग्रह शान्ति करना भी लोकाचार में सम्मिलित होगया है। 'तणी बांधना' एवं 'माणक थंभ' आदि प्रथाओं में उत्तर वैदिक-काल के यज्ञ-मंडप की छाया स्पष्ट होती है। विवाह के लिये वैदिक युग में यज्ञ मण्डप का निर्माण किया जाता था। फल और पुष्पों का विपुल वितान मंडप की शोभा को द्विगुणित कर देता था। दस दिगपालों के दस ध्वज स्थापित किये जाते थे। विवाह का यज्ञ-मंडप शिल्प-चातुर्य का एक उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत करता है।[१]

१. देखें, कुण्ड सिद्धि, पृष्ठ १५ एवं २८।

आचमनीय एवं खाने के लिए थोड़ा मधुपर्क (शहद घी मिला हुआ दही) प्रदान किया जाता था।[1] स्वागत के समय कन्या पक्ष की स्त्रियाँ वर पर कामण अर्थात् जादू-टोना करती हैं। इसके पश्चात् कन्या के गृह में प्रवेश करने के लिए कन्या की माता अगवानी करती है। वहाँ वधू मण्डप की मायमाता, कुल-देवी का पूजन करती है। इसके अनन्तर नारियों की रूढ़ियाँ एवं लोकाचार की परिसीमा समाप्त होकर अग्नि-परिणयन आदि शास्त्रोक्त विधियों में विवाह का मूल कृत्य प्रारम्भ होता है। मंगलाष्टक हस्तमिलन, अन्तःपट, लाजाहोम, सप्तपदी एवं कन्यादान की शास्त्रोक्त विधियों के सम्पन्न किए जाने के पश्चात् अग्नि-प्रदक्षिणा (फेरा) आदि कृत्य पुरोहित द्वारा सम्पन्न होते हैं। हतलेवा छूटने के समय कन्या-पक्ष की ओर से स्वर्णादि के आभूषण कन्या-दान के साथ दिये जाते हैं। इसके पश्चात् वधू को वर के साथ जनवासे तक पहुँचाने के लिए कन्या-पक्ष के लोग जाते हैं।

लग्न के दूसरे दिन के सब कृत्य लोकाचार से सम्बन्धित है। 'भात' विवाह का प्रीतिभोज है। कहीं-कही पर विवाह के पहिले भी एक सामूहिक भोज होता था, जिसे 'कुँवारी भात' कहते हैं। इसकी परम्परा ऋग्वेद काल मे मिलती है। कांकड़-डोरा छोडना, पासा खेलना एवं कपास आदि बीनना लोकाचार को परस्पर-समंजन का परिवर्तित रूप मान सकते हैं। जहाँ शारीरिक स्पर्श-भावना से हृदय समंजन या मैत्रीकरण की चेष्टा का प्रारम्भ होता है। अनुकूलता प्राप्त करने की यह विधि वैदिककालीन विवाह के अवसर पर पाणि-ग्रहण एवं कन्या-दान के पहिले सम्पन्न की जाती थी।[2] किन्तु लोकाचार में विवाह हो जाने के पश्चात् मनोरंजन की दृष्टि से कन्या एवं वर के यहाँ इसका आयोजन होता है। कन्या की विदाई पीला नारियल देकर देहरी पूजन के साथ की जाती है। विवाह के उत्तरार्द्ध के संस्कार वर के घर पर होते है। वधू का स्वागत एवं वधू-प्रतिगृह की प्रथा 'बउ-बधाई' एवं 'बारणा रोकई' के लोकाचार में निहित है। वधू-दर्शन आदि का उल्लेख किया जा चुका है। मायमाता आदि देवताओं के उत्थान की प्रथा रामायण काल के देवकोत्थापन के समान ही है।

सगाई

विवाह की पृष्ठ-भूमि वर कन्या-पक्ष की ओर से सम्बन्ध-निश्चय के संकल्प से तैयार होती है। बात पक्की करने के लिए कन्या पक्ष का व्यक्ति वर के यहाँ प्रस्ताव भेजता है। रामायण में इस प्रथा को वर-प्रेषण कहा है। बात पक्की हो जाने पर किसी भी शुभ दिन कन्या का पिता या प्रतिनिधि वर के घर पर जाकर तिलक कर भेंट-स्वरूप 'रूपया' नारेल दे देता है। मालव में वर-प्रेषण की यह प्रथा 'रूपया नारेल झेलने' के नाम से प्रचलित है। बाद में वर-पक्ष की ओर से सुविधानुसार कन्या को ओढ़नी (चूंदड़ी) देकर खोल भरने का लोकाचार किया जाता है।

---

१. आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, पृष्ठ १५२।

२. वही।

❀ रूपया नारेल भेलानाः— कन्या पक्ष के प्रस्ताव का सूचक है।

❀ ओढ़नी ओढ़ानाः— वर-पक्ष की ओर से स्वीकृति का परिचायक है।

वर और कन्या के पक्ष द्वारा सम्पन्न उपरोक्त दोनों लौकिक आचारों के पूर्ण होने को सगाई कहते है। इस प्रथा का शास्त्रीय नाम 'वाग्दान' भी प्रचलित है। सगाई के पश्चात् विवाह के प्रारम्भिक कृत्यों से सम्बन्धित लोकाचारों का एक विस्तृत जाल फैला हुआ है।

सगाई के गीत

वर और कन्या-पक्ष की ओर से विवाह के लिए सगाई संबंध निश्चित हो जाने के पश्चात् कन्या के यहां से वर के लिए उपहार-स्वरूप वस्त्र, आभूषण आदि प्रेषित किये जाते हैं। इस प्रथा को 'टीका' कहते है। टीके में सम्पन्न लोग वर के परिवार की महिला सदस्यों के लिए 'बेस', पूर्ण वेश-भूषा (लूगड़ा, चोली घाघरा आदि) भी भेजते हैं, इसमें निकटवर्ती सम्बन्धी अर्थात् वर की माता, बहिन, काकी, मामी, मौसी, भुआ (फूफी) के लिए उक्त 'शकुन साधना' आवश्यक माना जाता है। वधू के लिए वर की ओर से प्रेषित वस्त्र और अलंकारों को 'चीढा (चीरड़ी) चढाना' कहते है। यह लोकाचार रिवाज के अनुसार विवाह के पूर्व ही हो जाना आवश्यक है किन्तु वर पक्ष की ओर से यथा समय वंश की प्रतिष्ठा के अनुकूल बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण आदि की व्यवस्था नही होने पर लग्न होने के कुछ घंटे पूर्व ही आभूषण आदि दे दिए जाते है। सगाई के समय गाए जाने वाले गीतों को साजन 'कहते' हैं। इस अवसर के सभी गीतो का प्रारम्भ 'साजन' शब्द से होता है। अतः गीतों का नामकरण भी 'साजन' के रूप में सार्थक है।

साजन शैली के गीतों में पारिवारिक प्रतिष्ठा, कुल का अभिमान, सम्पन्नता का गर्व और विवाह के मांगलिक कार्य करने की प्रसन्नता, कन्या के पिता द्वारा वर को देखने की आकांक्षा आदि भाव प्रकट हुए है।[1] कुछ गीतो में कन्या की माता की मनोदशा का बड़ा मार्मिक वर्णन है। सम्बन्ध निश्चित हो गया है, कन्या की सगाई हो गई है। उसका विवाह भी शीघ्र हो जावेगा और माता का बेटी से बिछोह होगा। इस संभावित विरह की कल्पना के कारण माता का हृदय कसक उठता है। 'साजन' के गीतों में निम्नलिखित गीत अधिक लोकप्रिय है...'म्हारी राजल बेटी क्यो हारिया ?' माता को बड़ा दुःख है कि राजकन्या के समान पालित-पोषित कन्या को पराये घर जाना पड़ेगा। विवाह संबंध में कन्या-पक्ष के लोगों को ही वेदना से अधिक ग्रस्त होना पड़ता है। जीवन के खेल मे अनेक वस्तुएं हमें हारकर देना पड़ती है। धन, सम्पत्ति आदि के चले जाने पर हमें उतना कष्ट नही होता किन्तु हृदय के रस से पालित, वात्सल्य का मूल आधार कन्या भी साथ छोड़ कर चली जावे, यह स्थिति माता के लिए असह्य हो उठती है परन्तु वह विवश है। समाज के सनातन नियमों का प्रतिकार करना तो उसके लिए संभव नहीं। हाँ, उसके हृदय का उभार भावनाओं में बह कर थोड़ा हल्का अवश्य हो जाता है :—

१. मालवी लोक-गीत, पृष्ठ ७२ से ७४, गीत दो २, ४।

साजन समुन्दर का ऐले पेले पार, साजन खेले सोवटा
साजन कुण हार्‌या, कुण जीतया ? हारया हारया लाड़ी का बाप
*......सायवा जीतया, घर में बउ लाड़ी बोल्या बोल
हारताँ हारताँ कांकड़ियां रो खेत म्हारी राजल बेटी क्यों हारया ?
हारताँ हारताँ म्हारा डाबा मायका गेनड़ा म्हारी राजल बेटी........
हारताँ हारताँ चार भुवन का लोग म्हारी राजल बेटी........
हारतां हारतां सगला ज णा में बोलड़ी म्हारी राजल बेटी क्यों हारया ?

प्रियतम ने समुद्र के इस पार पासे फेके, साजन पासे में कौन हारा और कौन जीता ? कन्या का पिता हार गया और वर का पिता जीत गया। लड़की के पिता को हारा हुआ देखकर गृह स्वामिनी (कन्या की माता) बोल उठी, मेरे प्रियतम ग्राम की सीमा के सब खेत हार जाते, चारों भवन के लोगों को हार जाते, जाति के सब लोगों के समक्ष अपने वचन भी हार जाते किन्तु मेरी राजदुलारी बेटी को क्यों हार गये ? मातृ-हृदय के इस शाश्वत प्रश्न का उत्तर देने की क्षमता किसी भी पुरुष में नहीं हो सकती।

साजन के गीतों में इसी तरह मातृ-हृदय के उद्वेलन के अनेक शाश्वत चित्र अंकित हुए हैं ।

बन्याक (विनायक) एवं चाक नौतने के गीत

विनायक के गीतों में उनकी महिमा-गान के साथ विवाह के शुभ कार्य के लिये विभिन्न व्यक्तियों के लिये यहाँ जाने का उल्लेख किया गया है। विवाह में निम्न-लिखित व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक है। प्रायः सभी मांगलिक गीतों में इसके यहाँ जाने का आग्रह किया गया है ।

१. जोशी — ज्योतिषी के यहाँ जाने का प्रयोजन है, विवाह के लिये शुभ-लग्न का मुहूर्त निश्चित करना।

२. बजाज — वधू के लिये सुन्दर वस्त्र खरीदना। विशेषतः 'पड़ला' जो वधू की मांगलिक वेश-भूषा है।

३. सुनार — वधू के लिए अच्छे-अच्छे अलंकार प्राप्त करना।

४. माली — पुष्प-मालाएँ एवं गजरे भी वधू के शृंगार के लिए आवश्यक हैं।

५. तमोली — अधरों के रंजन के लिए तांबूल प्राप्त करना भी वांछनीय है।

६. गन्धी — इत्र आदि सुगन्धित पदार्थ प्राप्त करने के लिए।

७. मोची — वर वधु के लिए जूतियों को भी मांगलिक वेश-भूषा में सम्मिलित कर लिया गया है।

उपरोक्त सात व्यवसायियों का उल्लेख अनेक गीतों में प्राप्त होता है।[1] कुछ गीतों में हलवाई [मिठाई बेचने वाला] एवं साजनियाँ के यहाँ जाने के लिए आग्रह किया गया है। किन्तु परम्परा के गीतोंमें हलवाई के यहाँ जाने का उल्लेख नहीं मिलता। लोकाचार एवं शकुन की दृष्टि से सात व्यक्तियों के नामों का उल्लेख वर-यात्रा आदि के गीतों में भी हुआ है[1] उपरोक्त प्रवृत्तियों से युक्त विनायक का गीत इस प्रकार है।

चालो गजानन जोसी के चालां, आछा आछा लगन लिखावां
गजानन जोसी के चालाँ, कोठा रे छज्जे नोबत बाजे
नोबत बाजे, इन्दर गढ़ गाजे झनन् झनन् झालर बाजे गजानन
चालो गजानन बजाजी के चालाँ आछा-आछा पडला मोलवाँ, गजानन.
चालो गजानन सोनीड़ा के चालाँ आछा-आछा गेनड़ा मोलावाँ, गजानन

(क्रमशः माली, तम्बोली, गन्धी एवं मोंची के यहाँ जाने का उल्लेख कर गीत आगे गाया जाता है)

उक्त गीत की परम्परा में राजस्थान और मालवा भिन्न दिखाई नहीं पड़ते। यह संभव है कि मेवाड़ और मारवाड़ से आई हुई जातियाँ इस गीत को अपने साथ लाई हों और यहाँ उसकी भाषा का मालवीकरण होगया। यही गीत राजस्थान में भी प्रचलित है। भाव एक है, केवल भाषा का अन्तर होगया है।[2]

कुम्हार के यहाँ चाक की पूजन कर स्त्रियाँ मंगलघट लेकर, जब घर आती हैं तो मार्ग में निम्नलिखित गीत गाया जाता है।

के म्हारी बई घड्या रे सुनार, के तमारे संचे उतारियाजी
नी वो म्हारी बेन्याघड्यो रे सुनार, नीं म्हने संचे उतरियाजी
घड़ियो घड़ियों काय कोजी
जामण माय रूप दियो करतार, थोड़ा थोड़ा जोसिड़ा तेड़ावी
तो घणा घणा गोतिड़ा बुलावां जी, जोसिड़ा तो लगना मिलावे
वरद उजाले गोतिड़ा जी, थोड़ी थोड़ी कुँवासियाँ तेड़ाव
घणी घणी कुल बउंवा बुलावो जी, कुँवास्याँ तो घर-आंगणा री सोभ
वरद उजाले कुल-बउ , कुल बउ ने घुगरी जिमाव
कुल–बंउ ने चूनड़ो ओढ़ाव, कुल–बउ बंस बढ़ावे जी ॥७॥

कुम्हार के यहाँ का चाक-पूजन और उसके यहाँ से प्राप्त मंगल घट की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि गीत में स्पष्ट है। भारतीय संस्कृति के धार्मिक-अनुष्ठान, पूजा एवं अन्य मांगलिक कार्यों में घट-पूजन की महता का उल्लेख हो चुका है कि यह घट हमारे

---

१. देखें, बना-बनी, घोड़ी एवं वर यात्रा के गीत।
२. राजस्थान के लोक गीत; पृष्ठ ११३, गीत क्रमांक ५९।

जीवन-घट का प्रतीक है। इसे सृष्टि-विधाता ब्रह्मा ने घड़ा है। गीत में प्रश्न किया गया है कि इस शरीर-घट को इतना सुन्दर रूप देकर किसने निर्मित किया? क्या सुनार ने इसे सांचे में ढाला? उत्तर मिलता है कि इस मानवी शरीर को न तो सांचे में ही ढाला गया और न सुनार ने ही घड़ बन कर बनाया। माता के गर्भ में विधाता ने इसके रूप का निर्माण किया है। गीत में अभिव्यक्त जीवन संबन्धी दार्शनिक चिन्तन की महता एवं अर्थ-वैभव से गीत की गायिका महिलाएं चाहे अपरिचित रहें, किन्तु सांस्कृतिक एवं दार्शनिक-चेतना का यह परम्परागत प्रवाह मालवा की नारियों के द्वारा अक्षुण्य रखा गया है। गीत के उत्तरार्द्ध में ज्योतिषी को लग्न लिखने के लिए बुलाया है और गोतियो, सगोत्री कुटुम्बी जनों को विवाह मे आमंत्रित करने की भावना प्रकट की गई है। गोतियों के विना विवाह जैसा मांगलिक कार्य संपन्न भी कैसे हो सकता है। इनके द्वारा तो शुभ कार्य 'वरद' परिपूर्ण होता है। परिवार का गौरव बढ़ता है। परिवार के लोगों के अतिरिक्त विवाह मे कुमारी कन्याओं का भी मांगलिक दृष्टि से महत्व है। कुंवारी अविवाहिता कन्याए भी आमंत्रित होती हैं, इनसे घर और आंगन की शोभा बढ़ती है। गीत के अन्त में कुल-वधू को भी आमंत्रित करने का भाव है। क्योंकि इसके द्वारा ही वंश की परम्परा आगे बढ़ती है।

विवाह के अन्तर्गत चाक नोतने के प्रसंग में सृष्टि की उत्पत्ति—कर्त्री शक्ति-युगल की महिमा का अन्तर-भारतीय प्रवृत्ति का सूचक है। गुजराती लग्न-गीतों में भी चाक बधावे के गीतों के अन्तर्गत धरती की मंगल-मय जनन-भावना के साथ गाय, घोड़ी की सृजन-शक्ति एवं माता तथा सास की भी वन्दना की गई है। क्योंकि कन्या को तो माता ने जन्म दिया और सास ने अपने सुपुत्र को जन्म देकर उस कन्या को पति प्रदान किया।

> धरतीमां बळ सरज्यां बे जणां, एक धरती बीजो आभ वधावो रे आवियो
> आभे मेहुला वरसाविया, धरतीए झील्या छे भार वधावो
> धरती मां बळ सरज्यां बे जणां, एक घोड़ी बीजी गाय वधावो
> गाय नो जायो रे हले जूत्यो, घोड़ी नो जायो परदेश वधावो
> धरती मां बळ सरज्यां बे जणां, एक सासु बीजी मात वधावो
> माताए जनम ज आपीओ, सासुए आप्यो भरथार वधावो[1]

भावना की दृष्टि से यह गुजराती गीत अधिक सुन्दर है। स्वर्गीय भेवरचन्द मेघाणी इसे सृजन महिमा का स्तोत्र, कहा है।

हल्दी और तेलपान के गीत

चाक नोतने के दिन से ही वर और बधू दोनों को प्रतिदिन हल्दी आदि का उबटन लगाकर स्नान कराया जाता है। यह मांगलिक स्नान है। वर को वर-निकासी के दिन

---

१. चूंदड़ी, भाग१; पृष्ठ ४।५।

तक एवं वधू को लग्न होने तक पीठी लगाई जाती है। हल्दी का प्रयोग शरीर के वर्ण-सौन्दर्य को निखारने की दृष्टि से किया जाता है। हल्दी की पीठी लगाकर वर को प्रति दिन नाई स्नान कराता है। और कन्या को सुहागिन महिलाएँ हल्दी लगाती है। हल्दी का लगना [पीठी का चड़ाना] वर और वधू [लाड़ा–लाड़ी] बनने का सूचक है। पीठी लगाते समय स्त्रियाँ मंगल-भावना सूचक गीत गाती हैं :—

हल्दी गांठ गठिली हल्दी रंग रंगिलो, निपजे बालू रेत में
या तो हल्दो मोलावे लाड़ा का समरथ दादा जी,
माता सुवागण बाई हल्दी केवटे
या तो हल्दी मोलावे लाड़ा का समरथ काका जी,
काकी सुवागण बाई हल्दी केवटे १।४८

हल्दी के बालू रेत में उपजने, समर्थ दादा, काका, आदि परिजनों द्वारा उसका क्रय करने और मांगलिक कार्य के लिये सुहागिन काकी, भाभी द्वारा तैयार करने का उल्लेख है। तेल के साथ हल्दी मिलाकर शरीर पर मर्दन किया जाता है। वर या वधू के शरीर पर वर्ण-निखार के लिये सामान्यतः हल्दी का प्रयोग किया जाता है; क्योंकि केसर और कस्तूरी जैसे बहुमूल्य के पदार्थ तो सर्व-सुलभ होते नहीं। भावना में ही केसर और कस्तूरी को तेल में मिलाने की कल्पना तो की जा सकती है :—

सुण सुण रे इन्दोर्‌या का तेली, सुण सुण रे उज्जीन्या का तेली
घाणी में पील केसर ने कस्तूरी, यो तो तेल लाड़ लड़ा के अंग चढ़सी
यो तो तेल ज़ गोत बड़ा के अंग चढ़सी, दमड़ा वाला दादा जी भर लेसी
देख्याँ म्हारा माता बई कर लेसी, सुण सुण........

[काका, मामा आदि नामों के साथ गीत–विस्तार]

उज्जैन या इन्दौर के तेली को आदेश दिया गया है कि घानी में केसर कस्तूरी पील कर तेल तैयार करें। वह तेल अधिक लाड़–प्यार से पोषित वर [या वधू] के अंग पर लगाया जावेगा। अंग पर तेल लगाने को 'तेल चढ़ाना' कहते हैं। सौभाग्यमयी स्त्रियाँ वर के मस्तक से पैर तक पांच या सात बार हाथों से आंचल लेकर घुमाती हैं। यह सुदुर-स्पर्श अंग पर तेल चढ़ने का प्रतीक मान लिया जाता है। कन्या के यहाँ पहुँच जाने पर जनवासे में भी वधू पक्ष की सुहागिन महिलाओं द्वारा तेल चढ़ाने का लोकाचार किया जाता है। इस प्रसंग पर गाये जाने वाले गीतों में मृदुल भावनाएं प्रकट हुई हैं। संभव है किसी का हाथ अधिक कठोर हो और वर या वधू के कोमल शरीर पर खुरदरे हाथों का स्पर्श वांछनीय भी नहीं है। अतः तेल चढ़ाने के लिये चम्पे के पुष्प की कोमल पंखुड़ियों का प्रयोग ही उपयुक्त है।

' लाड़ाकी मां कई सूता के जागो ?
लाड़ा के तेल चढ़ावो चम्पा पांखड़ी से'

हल्दी और तेल चढ़ाने के पश्चात् वर व वधू को स्नान कराते समय का गीत भी भाव पूर्ण है :—

गाजो नी गड्ल्यो नी म्हारी माई, मेवलो नी बरस्यो
म्हारी माई मेवलो नी बरस्यो, आंगरण मांय कीचड री
म्हारी माई मेवलो नी बरस्यो, . . का बेटा [बेटी]
न्हावा ने बेठा हो न्हावा ने बेठा, आंगण मांय कीचड़ यों माच्यो
गाजो नी गड्ल्यो नी म्हारी माई, मेवलो नी बरस्यो . १ । ५०

मेघों की उमड़-घुमड़ और बिजली की चमक के पश्चात् मेह बरसता है एवं आङ्गन में कीचड़ भी हो सकता है किन्तु यहाँ न मेघ ने ही उमड़-घुमुड़ की, न बिजली ही चमकी और न पानी ही बरसा, फिर भी आंगरण में कीचड़ कैसे होगया। कीचड़ मचने का कारण है कि अमुक के सुपुत्र या पुत्री विवाह के मांगलिक स्नान के लिये बैठे है और जल के अत्यधिक प्रयोग से आंगन मे कीचड़ मच गया है।

रातजगा : विभिन्न देवी-देवताओं का आह्वान

विवाह के संस्कार में लौकिक अभिचारों का अंश धार्मिक-कृत्यों से भी अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की पूजा में निगमागम-सिद्ध शास्त्रीय-आधार बहुत ही अल्प है और विनायक आदि की पूजा के अतिरिक्त मालव की सभी जातियों में निम्नलिखित देवी-देवताओं की पूजन की जाकर रात्री जागरण के अनुष्ठान में गीत गाये जाते है :—

१. कुल देवी	२. पूर्वज	३. सती माता
४. जुझारजी	५. पीरजी	६. भैरुजी
७. मृत सौत [बड़ी या जीजी]		८. शीतला

विवाह के अवसर पर पूजित होने वाले देवी-देवताओं को राजसी अथवा तामसी प्रकृति का माना जा सकता है। लौकिक पूजा के इस आनुष्ठानिक आयोजन में टोने-टोकके का बाहुल्य हैं, जो स्पष्टतः व्यंजित करता है कि सामान्य नारी-मानस की स्थिति आदिम युग की मानवी-सभ्यता से अधिक विकसित नहीं हो पाई है। और ये मान्यताएं एवं अन्ध-विश्वास आज की अनेक आदिम जातियों से मिलते-जुलते हैं। मानवेतर सृष्टि के विभिन्न पदार्थों में देवत्व की कल्पना कर भय और विस्मय की भावना से उपासना एवं प्रार्थना करने की प्रवृत्ति असभ्य और अर्द्धसभ्य जातियों की देन है। बहुदेवत्व की भावना निम्न-स्तर की आदिम जातियों में विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। ऐसे लोगों में अन्ध-विश्वास के कारण देवताओं को प्रसन्न करने के लिये जादू-टोने एवं अनेक विचित्र

अभिचारों का प्रचलन होजाता है। इस बहु–देव उपासनावाद को १९वीं सदी के जर्मन लेखक अर्नेस्ट हिकल ने दो श्रेणी में विभक्त किया है।[१]

Polythism

Fetictism — Demonism

प्रथम श्रेणी की प्रवृत्ति में विश्वास करने वाले लोग निम्नलिखित वस्तुओं में देवी देवताओं का अस्तित्व देखते हैं :—

१. जड़ प्रकृति में २. पाषाण में ३. जल में ४. वायु में
५. मनुष्य द्वारा निर्मित चित्र एवं मूर्तियों में

दूसरी प्रवृत्ति के अन्तर्गत..

१. वृक्ष २. पशु ३. पक्षी ४. मनुष्य... आदि

सभी चेतन पदार्थ में देवी-देवताओं के अस्तित्व को मानते हैं। प्रेत एवं आसुरी शक्ति से अज्ञान के कारण मनुष्य सदा से भयभीत होता चला आ रहा है। प्रकृति के किसी भी तत्व से जहाँ कहीं भी मनुष्य का अनिष्ट हुआ, वह भयभीत होकर स्वयं की और अपने वंश की स्थिति को सुरक्षित रखने के लिये अपनी व्यक्तिगत बुद्धि के अनुसार प्रयास करता है। इस चेष्टा से उसका अज्ञान तो झलकता ही है, किन्तु साथ ही प्रकृति के अज्ञात रहस्यों के प्रति उसका विस्मय भाव प्रकट होता है। मनुष्य ने प्रकृति को स्वयं से शक्ति-शालिनी मान कर उसमें देवत्व की कल्पना कर पूजा - अर्चन के अनेक आचारो की सृष्टि कर डाली। इस पूजा-भाव में अनिष्ट निवारण को कामना से अधिक भय की भावना ही काम करती है। भूत–प्रेत एवं अन्य अनिष्टकारी शक्तियों से डरकर मनुष्य ने उन रूप-विहीन तत्वों को भी साकारता देकर अपने जीवन को मंगलमय एवं निर्विघ्न बनाने के लिये अनुष्ठान एव लौकिक विधियों की रचना की। यहाँ तक कि भयंकर रोग भी देवता बन गये। हिन्दुओं में निम्नलिखित रोगों के अधिष्ठातृ देवी–देवताओं का पूजन प्रचलित है :—

१. विसूचिका [हैजे की देवी]	भरी माता सूखी माता।
२. शीतला	शीतला [बड़ी माता]।
३. सात दिन का विषम ज्वर	छोटी माता
४. मोतीझरा [विषम ज्वर] के देवता	ओखा बापजी
५. छींक माता	

धार्मिक सभ्यता के विकास में धर्मभय का प्रमुख आधार रहा है एवं जितनी भी धार्मिक मान्यताएं और विधान है, उनमें भी एक आदिम मनुष्य की तरह धार्मिक भावना का उभार भय पर ही आधारित है।[२] विवाह के मांगलिक अवसर पर विघ्न और

१. The Riddle of the Universe, pp. 226–227 ff. (T.L.E. 3)
२. Mc Dougall, An Introduction to Social Psychology, p. 265.

अनिष्ट की आशंका के निवारण की ओर अधिक प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। विवाह के प्रसंग में विनायक को छोड़ कर सुख-सम्पति, वैभव और कला के अधिष्ठाता देवताओं का पूजन प्रायः किया ही नहीं जाता। सामान्य जन-मानस अनिष्ट की आंशका से कितना त्रस्त एवं भयभीत है, यह उसका जीवित उदाहरण है। भारतीय परम्परा की सर्व-मान्य देवी, लक्ष्मी और सरस्वती इस अवसर पर भुला दी जाती है। केवल शक्ति की परिचायिका विभिन्न नामधारिणी देवियों का वर्णन होता है। रातजगे में पूजित तीन प्रकार के देवी-देवताओं के गीत प्रमुख हैं:—

१. मातृ-पूजन — कुल-देवी, अम्बा, दुर्गा, चामुण्डा आदि।
२. पूर्वज — पितर, झुझारजी, पीरजी, सती आदि।
३. अनिष्ट एवं आतुरवृत्ति के देवता — तला, श भैरु [भैरवी] भूत-सौत,

माता (कुलदेवी के गीत)

मातृ-पूजा की मूल प्रवृत्ति भारतीय आर्यों की अपनी उपज नहीं है। सिन्धु सभ्यता के द्रविड़ लोगों में मातृ-पूजन का प्रचलन था। आर्यों ने भी भूमि को माता के रूप में स्वीकार किया है। 'माता भूमिः पुत्रोंऽहं पृथिव्याः'[1] किन्तु ऋग्वेदकालीन आर्यों ने मातृ-सत्ता के पूजन की प्रथा द्राविड़ों से सीखी। आर्यों को पितृदेव सूर्य एवं मातृदेव पृथ्वी के सम्बन्ध में और उसके देव-स्वरूप के लिये कोई निश्चित धारणा नहीं थी। सिन्धु सभ्यता के द्राविड़ों में जीवन और जगत की चेतना, शक्ति के सम्बन्ध में स्थिर मान्यताएँ अधिक सुदृढ़, रहस्य से पूर्ण दार्शनिक एवं कलात्मक आधार लिये हुए हैं[2] मातृदेव-सम्बन्धी विचार-धारा द्रविड़ लोग अपने मूल निवास-स्थान भूमध्य सागरीय एजियन प्रदेश के द्वीप यूनान और एशिया माइनर से लाये थे। माँ और हेविल एशियाई मातृदेवी के नाम थे, उनका वाहन सिंह और साँड (नन्दी) थे। हिन्दुओं ने उमा-महेश की पूजा इसी मूल आधार पर विकसित की। डॉ० परसुलकर की मान्यता है कि मातृ-पूजा का प्रारम्भ अनातौलिया या इसके आसपास के प्रदेशों में हुआ है, और यह प्रथा विश्व की सभी जातियों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।[3] भारतवर्ष के प्रत्येक ग्राम में देवी, ग्राम देवता के रूप में विद्यमान है। अम्बा माता, अम्बा, काली कराली, दुर्गा आदि अनेक नामों से ग्राम के लोग देवी का पूजन करते हैं।

मालव की सभी जातियां देवी का पूजन करती हैं। आमिषभोजी एवं शाकाहारी लोगों ने अपनी रुचि, आवश्कता और स्वभाव के अनुसार देवी की पूजा को अपनाया

---

१. अथर्ववेदीय पृथ्वी सूक्त १२। १। १।
२. The Hitory and Culture of the Indian People, Vol I, p,158. Chapt. Race movement and pre-historic culture
—By S.K. Chaterji.
३. Ibid, Indus Valley Civilization, Page 186.

है। बौद्ध धर्म की महायान शाखा के भ्रष्ट-रूप मे अनेक तांत्रिक एवं वामाचारों की सृष्टि हुई तब देवी-देवता भी मांस मदिरा से प्रसन्न किये जाने लगे। आमिष-भोजी लोग आज भी अजा [बकरा] महिष [भैंसा] आदि की बलि से देवी उपासना कर भैरव-भवानी के प्रसाद के रूप में मांस आदि का सेवन करते है। शाकाहारी लोगों की उपासना उनकी रुचि के अनुकूल है। देवी केवल धूप-दीप जैसे सामान्य पूजोपचार से ही सन्तुष्ट हो जाती है। देवी को प्रसन्न करने के लिये रात्रि में जागरण अवश्य किया जाता है। रातजगे में देवियों की उपासना करनां भी तांत्रिक एवं शाक्त-कापालिको की श्मसान जगाने की परम्परा से सम्बद्ध है।

देवी की पूजा के प्रसाधन बहुत ही सरल हैं। 'लापसी' जैसे मिष्ठान्न की धूप दी जाती है। नारियल की गिरी 'खोपरा' भी घृत के साथ अग्नि की लो प्रज्वलित करने में सहायक होता है। लौ जलती रहती है और गीतों का क्रम चलता है। इन गीतों में देवी के स्वरूप का वर्णन, पूजा की विविध सामग्रियों का उल्लेख एवं सौभाग्य को अखण्ड रखने की कामना प्रकट की गई है। देवी के रूप वर्णन में महिलाओं द्वारा दी गई विभिन्न उपमाएँ कुछ मौलिकता लिए हैं :—

सीस बागड़ियो नारेल ओ माता, चोटी वासग बसी रया रे माय
लिलवट उगो सूर ओ माता, पाटी चाँद पवासिया ए माय
आख्याँ आम्बारी फाँक ओ माता, भाँपण भमरा भमी रया ए माय
नाक सुआ री चोंच ओ माता, हौठ पनवाड़्याँ छई रया ए माय
दांत दाड़म रो बीज ओ माता, जीब कमल री पांखड़ी ए माय
बायाँ चम्पा केरी डाल ओ माता, मूंगफली सी आगल्याँ ए माय
पेट पोयर रो पान ओ माता, हिवड़ो संचे ढालिया ए माय
जांघा देवळ रो खम्ब ओ माता, पिंडल्यां बेलण बेलिया ए माय
पाव रुपा री खान हो माता, एड़ी संचे ढालिया ए माय
नाड़ी ए मारी कुंजी को घागरो, राती अदरस री काचली ए माय
के तमने घड़िया रे सुनार, के संचे ढालिय रे माय
नईं म्हने घड़िया रे सेवग सुनार, नईं म्हने संचे ढालिया रे माय
रूप दियो करतार ने रे सेवग, जनम दियो म्हारी मायड़ी ए माय
कुल देवी बायर आव, तमारो रूप बखाणिया ए माय १।७१

देवी के नख-शिख का वर्णन है। इसमें भी जिज्ञासा प्रकट की गई है कि यह अनन्त सौन्दर्यमय नारी रूप किसी स्वर्णकार की कृति है अथवा उसने अपने कौशल की असंभवता से सजग होकर सांचे में ढाल कर इसका निर्माण किया है। इस जिज्ञासा-भरे प्रश्न का उत्तर देवी ही दे देती है।

हे सेवक [भक्त] न तो मुझे सुनार ने घड़ा, न मुझे सांचे में सी ढाला गया। विधाता ने रूप दिया, और माता ने मुझे जन्म दिया है।

स्त्रियों द्वारा नारी रूपकी कल्पना कितनी भव्य है। माता की कोख से जन्म लेने वाली देवी का सामान्य स्वरूप एक स्त्री जैसा ही होना चाहिये। पौराणिक गाथाओं में वर्णित देवी के भीम-भयंकर और रौद्र रूप की कल्पना नारी के कोमल मानस मे जाग भी नहीं सकती। यह देवी का आह्वान-गीत है। आह्वान के पश्चात् पूजा की विविध सामग्रियों के समर्पण के गीत गाये जाते हैं।

खाजा खड़खड़ियाजी नव नेवज् तलियाजी, माता के मन्दर आवोजी
* भागीरथ जी की राण्यांजो, कंता साथे आजोजी
सर जोड़िया पधारो जी
मोत्यां का आखा [1] लाजोजी, तमारा चूड़ला री जतना जी
तमारा बालूड़ारी रक्स्याजी, मन्दर बाजोजी माण्डे खेला [2] नाचेजी
अगड़ ** घड़ावांजी, माण्डे गूगल देवांजी, नव नेवज् तलियाजी
माता के मन्दर आओजी १।७०

देवी के पूजन के लिये मेदे की गूंजियाँ और पूरी के आकार की पपड़ी, खाजा एवं तेल में तली हुई अन्य वस्तुओं का नैवेद्य तैयार किया जाता है। कुंकुम के साथ चाँवल के अक्षत नहीं, अपितु मोतियों के अक्षत अर्पित किये जाने की कल्पना है। पूजन के लिये सपत्नीक मन्दिर जाना आवश्यक है। यही सौभाग्य के अखण्ड होने एवं पुत्र की रक्षा कामना की गई है। गीत के उत्तरार्द्ध में देवी के मन्दिर में वाद्य बजने, हिजड़ों के नाचने आदि के उल्लेख के साथ देवी को इत्र चढ़ाने एवं गूगल की धूप देने की मानता है। देवी की पूजा में पुष्पार्पण भी आवश्यक है। चम्पा और बेला के फूलों का गीत में उल्लेख है। माला-ग्रन्थन का काम भी सपत्नीक होना चाहिये :—

माता रे दरबार, मोगरी री डार, माता रे दरबार चम्पा री डार।
कुण मोड़े डार, कुण गूंथे हार? संकर लाल जी मोड़े डार लाडी बउ गूंथे हार
ओ म्हारी माय, गुथ्यो गुंथायो हार माता रे सीस चढ़े।
ओ म्हारी माय बालूड़ा ने अम्मर करे। १।६८

पूर्वज के गीत

विवाह के अवसर पर अपने पूर्वजों को निमन्त्रण देने एवं श्रद्धा के साथ स्मरण करने का प्रथा मालवा की सभी जातियों में पाई जाती है। ब्राह्मण धर्म में विश्वास रखने वाला अभिजात्य वर्ग विवाह के शुभ कार्य को आरम्भ करने के पूर्व 'तिर-पिण्डी' [त्रिपिण्डी श्राद्ध] करता है। रामायणकालीन नान्दी श्राद्ध की यह एक अविछिन्न परम्परा जान पड़ती है। किन्तु महिलाएँ पूर्वजों का स्मरण और आह्वान रातजगा के गीतों में

* परिवार के विवाहित पुरुषों के नामों का क्रमशः उल्लेख।
१. अक्षत। २. हिजड़ा।

करती हैं। उनके गीत मानों श्रद्धाञ्जलि के माध्यम है । पूर्व[illegible] मालवी स्मरण करना कृतज्ञता का सूचक है। किन्तु इस प्रथा के पीछे एक म[illegible]–जाति करती है कि पूर्वजों, पितरों की कृपा से वंश की समृद्धि की [illegible] बना रहता है। विवाह का धार्मिक उद्देश्य भी वंश–विस्तार ही है। अतः [illegible] पर पूर्वजों को सम्मान देना वांछनीय समझा जाता है। पूर्वजों के गीतों में भी यही भावना प्रकट की गई हैं । उपरोक्त दृष्टि से पूर्वजों को अनिष्टकर एवं आसुरी प्रवृत्ति के देवताओं की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। मृत सौत से स्त्रियाँ बहुत डरती है, यदि पुरुष का एक पत्नी के मर जाने पर दूसरा विवाह होता है तो मृत सौत का पूजन एवं स्मरण तथा तत्संबन्धी लोकाचारों का पालन अवश्य किया जाता है।[1]

स्वर्गवासी पितरों को गगन मे उड़ती हुई चिड़ियों के द्वारा विवाह में पधारने का निमंत्रण भेजा जाता है :—

सरग उड़न्ती साँवली म्हारो सन्देसो लेती जा,
जई बूड़ा गड्ला से यूँ कीजे, तमारे घर बरदोड़ा हो,
ताला जक्ड़या लोथा का, ने जक्डया बज्जर किवाड़,
काचा सूत का पालना, बन्दया है सरग दुआर,
बरद करो बरदावणा, हमारो तो आवणो नी होय।[2]

राजस्थान और निमाड़ी में भी कुछ भाषान्तर के साथ यही गीत प्रचलित है।[3] स्त्रियों की स्वर्ग के सम्बन्ध में कैसी विचित्र कल्पना है कि वहाँ लौह के ताले वज्र जैसे सुदृढ़ किवाड़ो पर लगे हैं और द्वार पर कच्चे सूत का पालना बँधा हुआ है । रतलाम से प्राप्त एक गीत में पूर्वजों के निवास–स्थान सम्बन्धी कल्पना कुछ और ही है। पितर स्वर्ग में नहीं, पाताल में रहते है ।

पितर पतालां मे रमी रया, म्हारी माता ए कागद मेलियो
खोल्यारा खेलन आव, म्हारी बेन्या बई कागद मेलियो
भाई रा बन्धु घरे आव, पितर म्हारी गोरी कागत मेलियो
सोगटा खेलन्ता सायबा घरे आव.........१ । ६०

इस गीत के उत्तरार्द्ध में विभिन्न आभूषणों का उल्लेख है, जो पूर्वजों को अर्पित करने के लिये परिवार का पुरुष–वर्ग श्रद्धा से खरीदता है।

पूर्वज अश्वत्थ (पीपल) के वृक्ष में भी रहते हैं।

---

१. पूर्वज एवं मृत सौत सम्बन्धी कुछ गीतों का विवेचन जन्म–संस्कार के गीतों में किया जा चुका है।
२. मालवी लोकगीत, पृष्ठ ८६।
३. रामनारायण उपाध्याय, निमाड़ी लोकगीत, पृष्ठ १३ (भूमिका)।

म्हारा पिछवाड़े पूरबजारी पिपली, डाल्याँ ओ डाल्याँ दिवा बळे
धूलजी सेवक तमारी पूजा करे, रेलो म्हारा बाला पूर्वज
रंग्यो यो आंगणो, छोटी बउवाँ पगाँ पड़े
डाल्याँ डाल्याँ दिवा बळे.........१ । ५६

पूर्वज (पितर) वंश संवर्धन के देवता माने गये है । अतः इनके पूजोपचार के आयोजन की भावना में भी दिव्यता ही प्रकट की गई है । सोने और चाँदी की तराजू में केसर और कस्तूरी तोल कर लाये जाते है । पूजोपचार की वस्तुएं क्रय करने में परिवार के पुरुषों के उत्साह का वर्णन किया गया है ।

सुन्ना री डाली ओ राजा, रूपा री डाली ओ राजा
तोले पेठो केसर कस्तूरी, कितरे बालूड़ा सिद चालेजी
यो तो गन्धीडो तोले ओ राजा, बालूडा........ तोलाये
जीमजो ने फूलजो ओ राजा, फल जो म्हरा कड़वा लीमड़ा
चवदस का दिन आव जो, अमावस का दिन आव जो
बाड़ी का मिस वंस बढ़ाव जो १ । ५५

चतुर्दशी और अमावस्या का दिन पितर पूर्वजो के श्राद्ध एवं पूजन की शास्त्र द्वारा निर्धारित तिथियां है । गीतों में भी इसका उल्लेख किया गया है । एक गीत में सेवा-पूजा करने की विधि का वर्णन है । सरोवर की पाल पर आम के वृक्षों की छाया के नीचे पितरों का ' लस्कर ' आकर जम गया है ।

सरवर पाल आम्बो ल्यारी डाल, पूर्वजांरा लस्कर आया हो राज
फळल् फळल् नद्याँ बेबेजी, पितराँ की धोत्यां धोवे राज
आपज् पाट पधारो हो राज, पाट पधारो ने नारेल बदारो
खोपरा रा हौम करावा हो राज, फळल् फळल्...............
सोना रूपा री चट्टयां घड़ावा, राय रूपारी पंनियाँ हो राज
रमता खेलता आव म्हारा पूर्वज
या रमवा की बेला हो राज, फळल् फळल् १ । ५८

गुरुओं की कोपीन धोने की तरह पितरों की धोतियाँ धोना भी सेवा-सुश्रुषा का एक प्रमुख लक्षण है । नदियों के कल-कल-निनाद के लिये फलल् फलल् शब्द का प्रयोग किया गया है । पितरों को काष्ठ की चरण-पादुकाएं नहीं सोने चाँदी की घड़ा कर प्रस्तुत की जाती हैं ।

पितरों के गीतों के अतिरिक्त पूर्व-पुरुषों में जुझारजी और पीरजी के गीत भी गाये जाते हैं । जुझारजी शब्द ही प्रकट करता है कि युद्ध में वीर-गति को प्राप्त हुए पूर्वजों के स्मरण को गीतों में नहीं भुलया जाता । जुझारजी .... वीर, दिवगंत योद्धा को रातजगा

की परम्परा में स्मरण करने की प्रथा शायद राजस्थान से ग्रहण की गई है। वैसे मालवी राजपूतों में भी वीर परम्परा का अभाव नही है किन्तु जुझारजी के गीतों को निम्न-जाति के लोगो में प्रचलित न पाकर यही धारणा संगत होगी कि राजस्थान से आई हुई राजपूत और ब्राह्मण जातियाँ ये गीत अपने साथ लेकर आई। यहाँ की अन्य जातियों में ये गीत नही गाये जाते। पूर्वजों के गीतो की तरह जुझारजी के गीतों में भी स्वागत के प्रसाधनो का उल्लेख किया गया है।

❀ फूलो के मोती बिखेरे जाते हैं, दूध से पैर धोये जाते हैं,
अच्छे-अच्छे वस्त्र अर्पित किये जाते हैं, जुझारजी को पालने पोढ़ाया जाता है।
❀ जुझार के प्रभाव से—निर्धन को धन मिलता है
कोढ़ी [कुष्ट-रोगी] एवं कस्ट्या का दुःख दूर होता है, बाँझ को पुत्र प्राप्त होता है।

जुझारजी के गीतों की भाँति पीरजी के गीतों मे उक्त भावनाओं को दुहरा दिया है। पीरजी की पूजा मुसलमानी प्रभाव का इतिहास प्रकट कर सकती है, किन्तु पूजन-अर्चन में उसका पूर्णतः हिन्दीकरण होजाता है।

वारी ओ पीरजी, थारो परच्यो पायोजो
परच्यो पायोजो पराण सुख पायोजी, ओ रायमल तम भला पदारचा
ओ म्हाराज तम भला इ पदारचा १।७६

पीरजी के लिये रायमल एवं महाराज शब्द का प्रयोग उल्लेखनीय है। 'पीर' शब्द सन्त-प्रवृत्ति के दिवंगत 'पुरुषों' के लिये प्रतुक्त होता है। एवं मुसलमानों के फकीरों की तरह नाथ-सम्प्रदाय के संतो की मृत्यु के पश्चात् उनकी दाहक्रिया न की जाकर शव भूमि में गाड़ कर उस स्थान पर समाधि बनाई जाती है। पीरजी के देवठान पर यात्रियों की भीड़ लगी रहती है। उनके नवखण्ड महल पर नोबत बजती है।

बारी ओ पीरजी थारी पेंचारो अदकसरुप, उंडी खो में थारो देवरो
थारी नोबत बाजे जी, मेंदी रा रात्यां पांव
नोबत बाजे नो खण्ड में जी, संख बजे धरती माय जी
थारी नोबत बाजे जी के लख आवे जातरी
के लख आवे बालूड़ा री माय........ १।७७

पीरजी और जुझारजी पुत्र-कामना पूर्ण करने वाले देवता माने गये हैं।

भैरुजी के गीत

विवाह के गीतों में शीतला और भैरुजी के गीतों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। वैसे शीतला के कुछ गीतों का विवेचन पुत्र-जन्म के गीतों के अन्तर्गत किया जा चुका है। विवाह के अवसर पर भी शीतला-माता की पूजन की जाती है और उन्हीं गीतों को

प्रायः दुहराया जाता है जो पुत्र-जन्म के प्रसंग पर गाये जाते हैं। भैरुजी के गीतों में बड़ी विचित्र परम्परा देखने में आती है। देवी-पुराण के अनुसार 'भैरव' एवं 'बावन वीर' आदि देवी की सहायक शक्तियाँ हैं। मद्य-मांस आदि से इनका पूजोपचार किया जाता है। शराब की धार से भैरव बहुत प्रसन्न होते हैं। रातजगा में गेय भैरूजी के एक गीत में कलालन का उल्लेख आया है, जो भेरूजी की पूजा के लिए शराब लाती है :—

बेन ए कलालन गलियारे घर थारो ए।
गलियारो घर थारो ये लीम तले घर म्हारो ए।
बेन ए तम्बोलन ये गलियारे घर थारो ए।
बेन ए बजाजन ये गलियारे घर थारो ए।
बेन ए मोचन ये, गलियारे घर थारो ए।
गलियारे घर थारो ने लीम तले घर म्हारो ए।
बालूड़ो भैरु आवेगा झुक झुक झोला खावेगा।
म्हारी मनछा पूरण कर देगा, प्याला भर दूध का.......।६२

भैरव की पूजा के लिये कलालन के लिये यहाँ से मद्य, तम्बोलिन के यहाँ से तांबूल, बजाजन के यहाँ से वस्त्र, और मोचियों के यहाँ से चरण पादुकायें (चर्म की) लाई जाती है। किन्तु मद्यसेवी भैरव के लिए दूध का प्याला भर देना कुछ अजीब सा लगता है। गीत-निर्मात्री स्त्रियां उच्च जाति की जान पड़ती हैं। अतः मद्य के उल्लेख के साथ ही भैरव को दूध अर्पण करने की भावना अभिव्यक्त कर गईं। वैसे नीच जाति के पूज्य भैरव मद्य-मांस का खूब ही सेवन करते हैं और उपासकों को वैसा ही प्रसाद मिलता है। भैरव तामसी प्रवृत्ति का देवता है।[1] किन्तु कुछ गीतों में पुत्र-प्रदाता के रूप में भी उनका वर्णन हुआ है। स्त्रियाँ भैरव से पुत्र की याचना करती हैं :—

लिप्यो चुप्यो म्हारा आंगणो, दूधारो भरियो वाटको।
दूधारा पीवा वाला दो जी।
अन्तरजामी पाती दोनी ओ कड़वा लीम की।
भेरुजी माता रा जाया वीरा अतघणा हो।
भूवा रा केवा वाला दो जी, अन्तर्जामी
भेरुजी सासुराजाया देवर अतघणा ओ
काकी रा केवावाला दो जी, अन्तर्जामी
भेरुजी सासुरा जाया ननन्द अतघणा ओ
मामा रा केवा वाला दो जी, अन्तर्जामी

---

१. एक गीत में भैरव की पूजा के लिये प्रयोजनीय वस्तुओं का उल्लेख हुआ है। जिसमें बाजोट, कलश, फल, मरवा-मोगरा, छत्र, नारेल. दारु (शराब) आदि वस्तुओं के नाम गिनाये गये हैं।

भैरुजी ढोग्यारा पोढ़नवाला सुग्रावणा ओ
पालनारा पोढ़न वाला दो जी, अन्तर्जामी
भैरूजी पागाँ रा बांधनवाला अतघणा ओ
टोप्याँ रा पेरण वाला दो जी, अन्तर्जामी
भैरूजी थाल्यां रा जीमणवाला अतघणा ओ
तासक रा जीमणवाला दो जी, अन्तर्जामी । ३।१५८

परिवार में वैभव एवं कुटुम्बी-जनों की संख्या में कोई कमी नहीं। केवल पुत्र के अभाव में सब सूना लगता है। शीतला के गीत की तरह मालवे का यह गीत भी सर्वप्रिय है। वात्सल्य भावना की अभिव्यक्ति के साथ ही नारी की पुत्र-कामना का एक करुण दृश्य प्रस्तुत करता है। नारी में पुत्र-कामना इतनी उद्दाम है कि पर-पुरुषों से यौन-सम्बन्ध की भावना प्रकट करते समय लोकनीति एवं समाज की मर्यादा का उन्हें कोई भय या ध्यान नहीं रह पाता। फिर वह व्यक्ति चाहे देवता हो या पुरुष ! एक गीत में गूजरी को माध्यम बनाकर यह भावना खुलकर प्रकट हुई है। पुत्र की प्राप्ति के लिए गूजरनी भैरव का सामीप्य प्राप्त करती है। मालवी नारी की यह मान्यता है कि देव पुरूष, भैरव का संसर्ग पुत्र-प्रदाता होगा। किन्तु परिवार की मर्यादा और लोक-लज्जा के प्रति वे सजग रहती हैं। सास-ससुर, देवर-जेठ आदि पारिवारिक व्यक्तियों से भय एवं सङ्कट बना रहता है। इस कार्य के लिए गूजरनी स्वयं के पति से भी शङ्कित रहती है। भैरव जब एक नवयुवा पुरूष के रूप में गूजरनी के सम्मुख उपस्थित होता है तब वह उपरोक्त संकोच और बाधाओं को प्रस्तुत करती है। भैरव सब बाधाओं के निराकरण की योजना प्रस्तुत करता है :—

१ यदि गाँव के लोग शङ्का करेंगे तो तुम्हें सेवा में प्रस्तुत कर दिया जावेगा क्योंकि भक्त पर कोई व्यक्ति शङ्का नही कर सकेगा।
२ यदि ससुर आपत्ति करेगा तो नौ लाख की सम्पत्ति देकर उसको सन्तुष्ट कर देंगे।
३ यदि जेठ देख लेगा तो घोड़े पर बिठाकर मालवे की सीमा से उसको बाहर भेज देंगे।
४ यदि सास देखकर आपत्ति करेगी तो चौंसठ जोगनियाँ छोड़कर उसका दिमाग ठीक कर दिया जावेगा।
५ ननन्द पर बावन वीर छोड़ दिये जावेंगे।
६ यदि विवाहित पति को आपत्ति हो तो उसका दूसरा विवाह कर देंगे। दो स्त्रियो के बोझ से वह बेचारा परेशान हो जावेगा।

भैरव का यह गीत पुत्रवती, सुहागिन और पुत्र-विहीना गूजरी की दयनीय स्थिति को लेकर तुलनात्मक शैली से प्रारम्भ होता है ....

पांच करण की बावड़ी ओ सेली वाला !
भैरूजी लूँगा रयो रे बँधाव कुँअर ऊबा बावड़ी, ओ सेली वाला......
सात सहेलियाँ तर झूमके गूजरिया पानीड़ा जाय, ओ सेली वाला.......

सात ने ओढ़िया पोमचा गूजरन को मेलो वेस, ओ सेली वाला.......
सातॉ रे लिलवट टोलड़ो गूजरन का सूनो रे लिलाट, ओ सेली वाला......
सातॉ रे सांजन घर बसे गूजरी रा बसे परदेस, ओ मेली वाला....

भैरव का स्थान शायद किसी पांच कोण की बावड़ी के पास होगा। भैरव को 'सेलीवाला' शब्द से सम्बोधित किया गया है। सेलीवाला भैरव की कल्पना शायद नाथपन्थी जोगड़े को देखकर की गई है। नाथपन्थी जोगी जब भिक्षा मागने आते हैं, तब भैरव का पूरा स्वाङ्ग बना लेते है। एक हाथ में खप्पर और दूसरे मे त्रिशूल धारण कर लेते है। कलाई एवं भुजाओ पर काले ऊन की डोरियो की पट्टिया बँधी रहती है। कमर और गले में भी काले ऊन की डोरियों की मालाएँ रहती हैं। अधोवस्त्र लुङ्गी की तरह लपेट लिया जाता है। मस्तक पर सिन्दूर की आड़ लगाते है। किसी तरुण जोगी को देखकर महिलाओं ने भैरूजी के स्वरूप का वर्णन इस गीत मे किया है। गूजरी की सात सखिया है, जो पुत्रवती होने के कारण सौभाग्य का चरम फल प्राप्त कर शृङ्गारमय एवं गौरव-पूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं। सातों ही सहेलिया गूजरी के साथ झूमती हुई पनघट पर जाती है। सब सहेलियो ने रेशमी वस्त्र धारण किये हैं। किन्तु गूजरी ने तो मलिन वस्त्र पहिन रखा है। सातों के मस्तक पर सौभाग्य का आभूषण है। टीलड़ी सुशोभित हो रही है, किन्तु गूजरी का ललाट सूना है। सातों के पति घर पर है अर्थात् वे संयोग-गर्वी हैं। बेचारी गूजरी का पति तो परदेश में है अतः पुत्रवती होने की उसकी कामना पूर्ण भी नहीं हो सकती।

सेलीवाले भैरव ने गूजरी का घूँघट हटाकर छेड़-छाड़ करना प्रारम्भ की........

"छोड़ो-छोड़ो म्हारो रङ्ग बिना छेवड़ो, देखे म्हारी नगरी का लोग।
छोड़ो हठीला म्हारो छेवड़ो, देखे म्हारा सुसरा ने जेठ"

भैरव और गूजरी के संवाद में यह गीत नारी मानस की अतृप्त वासना, सामाजिक दबाव, कठोरता और उनसे बचने के उपाय की मानसिक सन्तुष्टि को प्रकट करता है... ...

तमारे रखावां सेवा माय ओ गूजरनी
ससुरे देवां नवलख हार, जेठ बेठावां घोड़े सवार, ओ सेलीवाला !
छोड़ो हठीला म्हारो छेवड़ो, देखे म्हारी सासू नणदलड़ी,
सासू के लगावां चौसठ जोगनी, नन्दल लगावां बावन बीर, ओ सेलीवाला !
खेलत आवे चौसठ जोगनी, घूमत आवे बावन वीर,
छोड़ो रङ्ग बिना म्हारो छेबड़ो, परण्या ऊभा हो म्हारे पास,
परण्या ने दोई परणावां रे गूजरी, बोझा मरे नो दिन रात, ओ सेलीवाला !
ससुरा छाने तमारे पूजतां भैरूजी दीनी झडूल्यो पूत,
जो तू हालरिया की साबली माथे बँधावा थारे पालनो, ओ सेलीवाला !
जो तू हालरिया की साबली आँगली लगावाँ लोड्यो वीर, ओ सेलीवाला ! १।८३

गूजरी ने सास से छिपाकर पुत्र के लिए भैरूजी की पूजा की। भैरव प्रसन्न हो गये, यौन-भाव तो लुप्त हो गया और भैरव का अलौकिक प्रभाव प्रारम्भ हुआ। पुत्र के लिए

गूजरी की विकलता देख भैरव ने बरदान दिया कि सिर पर पालना बांध देंगे और उसकी अँगुली का स्पर्श भैरव के छोटे गरण (वीर) करेंगे। तब उसके द्वारा पुत्र-प्राप्ति की मनोकामना पूर्ण हो जायगी। मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अज्ञानता-वश कार्य-कारण से परिचित न होने की स्थिति मे नारी-मानस का यह विश्वास आज भी अडिग है कि किसी दैवी-कृपा अथवा दैवी-पदार्थ के स्पर्श से गर्भ में शिशु का अवतरण होता है। उक्त गीत मे मस्तक पर पालना बाँधने और भैरव के सहचर बावन वीर के द्वारा अँगुलियों का स्पर्श-मात्र कर देने मे पुत्र होने की मान्यता अन्ध-विश्वास का एक ज्वलन्त प्रमाण है।

उक्त गीत में टोने और टोटके के भाव भी छिपे हुए है। इस प्रकार के भाव भारत के सम्पूर्ण नारी-मानस में व्यापक रूप से व्याप्त है। डॉ० सत्येन्द्र ने ब्रज में प्रचलित विवाह के लोक-गीतो में इनका उल्लेख किया है।[1] विवाह के अवसर पर उकड़ी पूजन मे भी इसी तरह के टोने-टोटके किए जाते है। पांच कोण के आकार का आटे का दीपक बनाकर कन्या अथवा वर पर न्यौछावर कर फेंका जाता है। उपरोक्त गीत में 'पांच करण की बावड़ी' का उल्लेख हुआ है। चार कोण मनुष्य के हाथ पैर के सूचक हैं। और एक कोण मस्तक का प्रतीक है। यह टोटका वामाचर का एक अङ्ग है। स्वयं के कल्याण के लिए नर-मुण्डों की बलि चढ़ा देना जंगली जातियो का तो अन्ध-विश्वास कहा जा सकता है, किन्तु कापालिको द्वारा दी जाने वाली नर-बलि के धार्मिक स्वरूप को देखकर इस परम्परा को नृशंस अभिचार का एक अङ्ग मानना पड़ता है। कापालिकों की क्रूर उपासना पद्धति टोने-टोटके के रूप में आज भी ताजी है। स्त्रियां आज भी अपने शिशु के मङ्गल के लिए अन्य व्यक्तियों के बच्चों को लोह शलाका से जला देती हैं। केस उतार लेती हैं, पुत्र-विहीना नारी यदि संतान प्राप्ति की आकांक्षा में वर्जनीय कार्य करने के लिए उद्यत भी हो जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि अन्ध-विश्वास एवं क्रूर अभिचारों के रूप में इस प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित हैं।

इन गीतो में कुछ परम्पराओ का अखण्ड प्रवाह दृष्टिगत होता है। रामायण मे लव कुश के 'काक-पक्ष' का उल्लेख आया है। आज भी देव की मान्यता (मानता) से जो पुत्र-प्राप्त होता है, उसके केस रखे जाते है। इस प्रकार की मानता से रखे गए केस को झडूल्या कहते हैं। वैसे झडूल्या या काक पक्ष रखने की प्रथा बंजारे और मेवाड़ की घुमक्कड़ जाति गाड़ूलिये लुहारों में प्रचलित है। बच्चों की कनपटी के ऊपर केस रखते हैं। मस्तक का शेष भाग मुण्डित रहता है।

घोली-कलश एवं उकड़ी-पूजन के गीत

कुम्हार के यहाँ से बड़े बन्याक (विनायक) पूजन के पश्चात् महिलाएँ मिट्टी के कुछ कलश लाती हैं। बिजोरे सहित एक कलश-समुच्चय की संख्या पांच या सात होती है और जहाँ पर गणेश या मायमाता (कुलदेवी) की स्थापना होती है, दोनों समुच्चयों को प्रस्थापित कर देते हैं। यह कलश-स्थापना मङ्गल कलश के पूजन का ही एक स्वरूप है। घोली कलश लाते समय मार्ग में गाया जाने वाला गीत निम्नलिखित है :—

---

१. ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २४१.

कां से आया हंजा बीड़ला मारुजी, के यांसे आया हो हंजा बीड़ला मारुजी।
के यांसे आया हो हंजा नारेल, अब के तो हेले हो कोटा बूंदी जीतलो मारुजी।
कां उतारु ओ हंजा बीडला मारुजी, काँ राखूं ओ नारेलरी जोड बालम जी।
ओरा उतारो ओ नारेल री जोड, बालम अब के हेले कोटा बूंदी जीतलो मारुजी।
नो मण रांदू हंजा घूगरी मारुजी, बालम अबके हेले....
मारुजी तम तो चाल्या परणवा हंजा मारुजी म्हारा माय कई-कई ओगण मारुजी।
हिवडा समाणी घर की नार, झाली साँवरी परणबा चाल्या मारुजी।
तमारा डेरा है झाली बाग में, म्हारी साजनिया री पोळ।
कसो हंजा तमारो सासरो, कसी सारस नी जोड़।
समन्दर सरको म्हारो सासरो, सात सारस नी जोड़।
हिवड़ा समाणी घर की नार, अब के हेले कोटा बूँदी जीतलो, मारुजी।३।१३७

इस गीत में प्रियतम के लिए हंजा शब्द का प्रयोग किया गया है। धोली कलश के प्रसङ्ग में उपरोक्त गीत के भाव का कोई भी सम्बन्ध न होते हुए कन्या पक्ष की ओर से आये हुए नारेल और बीड़ला (तम्बूल) का उल्लेख अवश्य है।

कोटा-बूंदी जीतने का प्रसङ्ग ऐतिहासिक महत्व रखता है। मुगल काल में विशेषकर औरङ्गजेब के समय में स्थानीय राजपूतों को दबाने के लिए दिल्ली की सरकार ने अपने विश्वस्त राजस्थानी राजपूतों को जागीरें देकर यहां का शासक बनाया था। कोटा और बूंदी जीतने का जो आग्रह प्रकट किया गया है सम्भवतः कन्या के स्थान का निर्देश भी हो सकता है।

गीत में 'हीवड़ा माय समाई नार' के होते हुए अन्य स्त्री को परणने की घटना का उल्लेख है। पहली पत्नी के होते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करना राजपूत एवं अन्य निम्न जाति के लोगों में एक प्रथा रही है। अतः उक्त भाव का प्रकट होना अस्वाभाविक नहीं है।

घूरे जैसी तुच्छ वस्तु के पूजन का आयोजन किया जाना लौकिक आचार में विवाह पक्ष वालों के मनोविज्ञान को प्रकट करता है। जिसके यहाँ माङ्गलिक कार्य होता है उसे बड़ा ही बिनम्र बनना पड़ता है। उसके लिए यह आदर्श भावना है कि घूरे जैसी अकिंचन वस्तु को भी वह इस महत्व पूर्ण अवसर पर नही भूलता, और उसे सम्मान देकर पूजता है। स्नेही और परिवार के लोगों के साथ अन्य लोगों का जो सहयोग लेना पड़ता है उसके अह-भाव या गर्व के कारण संबन्धी विवाह में सम्मिलित न होवे और उल्लास एवं आनन्द के प्रसङ्ग में बाधा न पड़े इस भय से उसे झुक कर चलना ही पड़ता है।

बनड़ा-बनड़ी

विवाह के अवसर पर मालवी स्त्रियाँ बनड़ा-बनड़ी के गीत गाती हैं। 'बनड़ा' शब्द का वर के लिये प्रयोग होता है और 'बनड़ी' शब्द बधू के लिये। कहीं-कहीं पर वर-वधू के

लिये बना-बनी, अथवा 'बन्ना-बन्नी' शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। बना-बनी के गीत लगन होने के पूर्व के गीतों में विशेष स्थान रखते हैं। विनायक-पूजन के दिन से लेकर वर-यात्रा तक लड़के के यहाँ एवं लगन होने तक कन्या के यहाँ प्रति सायं एवं रात्रि को ये गीत गाये जाते हैं। जब 'बना' निकलता है तब मार्ग में स्त्रियाँ बना-बनी के गीत गाती हैं। मालवी में 'बना' विवाह से सम्बन्धित वर-वधू के चल समारोह को कहते हैं। इस चल-समारोह मे स्त्रियाँ भी रहती हैं जो मार्ग में गीत गाती हुई चलती हैं। इन गीतों में अधिकतर मालवी दोहों का समावेश रहता है। दोहे स्त्रियों द्वारा गेय अनेक गीतों के मूल आधार हैं। कुछ दोहों को लेकर विभिन्न अवसरो पर गाये जाने वाले गीतों का निर्माण कर लिया जाता है। दोहे गाने के पूर्व कुछ पंक्तियाँ टेक के रूप में गाई जाती हैं। वैसे टेक की पंक्तियों का दोहे के वर्ण्य विषय से कोई सम्बन्ध नही रहता, किन्तु वातावरण निर्माण की दृष्टि से दोहों की भाव-भूमि अच्छी बन जाती है। एक टेक और चार छः दोहों को लेकर एक पूरा गीत बना लिया जाता है। बना-बनी के गीतों की कुछ टेक इस प्रकार हैं :—

१. म्हारा फूल कुंवर बनड़ा, बनड़ी तो परसई दूं आछा रूप की,
दादाजी का प्यारा घोड़ो नचई दूं चन्नन चौक में।

२. कलाकन्द केसर को भावे रे रायतो दाखाँ को भावे,
बनड़ी जोवे बाट बना सा तोरण कद आवे।

३. सड़क पे आफू की क्यारी सड़क पे केसरी की क्यारी,
नवल बनी का रथ सिंगारिया हवा करो प्यारी।

४. आम पर केरी लग रई जी,
गुड़ का चढ़ गया भाव, सकर बी मेंगी हुई गई जी!

५. गिलट की चाँदी चल गई जी,
बड़ा घराँ की नार गिलट में जगमग हो गई जी।

६. फिरंगी नल मत लगवा रे,
नल का पानी सीत करे जी, म्हारो जी घबरावे।

७. बना जी तमने केसर बरसाई,
आसमान का तारा टूट्या दुनियां घबराई!

८. बना जी तमारी मुलाकात भारी,
चन्द्रकोट दरवाजा ऊपर चले रेलगाड़ी!

९. बना जी तमारे घूम रया हाथी,
बी. ए. हो जाव पास बनाजी फेर कराँगा शादी!

उपरोक्त टेक की सभी पंक्तियों में युगों का इतिहास स्वयं बोलता है। मालवी नारियाँ युग के प्रति सजग ज्ञात होती हैं। रेल चलने, नल लगने और लड़के बी० ए० होने की घटनाएँ तो कुछ पुरानी भी पड़ सकती हैं किन्तु गिलट का रुपया नकली चाँदी के रूप में चलना एवं गुड़-शक्कर के भाव का मँहगा होना तो नवीन पीढ़ी के द्वारा अनुभव की गई प्रत्यक्ष घटनाएँ हैं। बना-बनी के उक्त प्रकार के गीतों का सृजन प्रायः नगर की स्त्रियों के

द्वारा ही हुआ है। इन गीतों में नित-नई उन घटनाओं का उल्लेख अवश्य मिलेगा जिनका अमिट प्रभाव नारी-मानस पर अङ्कित हुआ है। कुए और तालाब से पानी लाकर पीने वाली नगर की महिलाओं के लिये नल के पानी का प्रथम प्रयोग सर्दी जुकाम अथवा शीत का कारण बन गया होगा तो कोई आश्चर्य की बात नही। उन्होने इस अनुभूति को गीत में भी निर्भीकता के साथ प्रकट कर दिया। बना-बनी के इन गीतों की आयु एक शताब्दि से अधिक नहीं हो सकती। परम्परा मे गाये जाने वाले दोहे अवश्य ही कुछ पुराने हो सकते हैं किन्तु टेक की प'क्तियों में नवीनता का समावेश होता रहता है। टेक एवं दोहे को मिलाकर बनाये गये गीत का एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

फिरंगी नल मत लगवा रे, फिरंगी नल मत लगवा रे,
नल को पानी सीत करेजी म्हारी तबियत घबरावे।......टेक
नद्दी किनारे केवडो जी नम नम झोला खाय, बनाजी नम नम झोला खाय।
मां सूगली का सायबा मां देख्या अन्न खाय ! : १ : फिरंगी...
गली रे तुमारी सांकडी नई रे मिलन को जोग, बनाजी नई मिलन को जोग।
नैना सूरत मान जो (जी कई) चुगरी खोरा लोग। : २ : फिरंगी...
चंदा त्हारी चाँदनी जी सूती पलंग बिछाय, बनाजी सूती पलंग बिछाय।
जद जागूं जद एकली जी (कँई) मरूं कटारी खाय। : ३ : फिरंगी...
सीरो भरियो वाटकी जी टपकन लागो घी, बनाजी टपकन लागो घी।
गोरी चली बाप के जी (कँई) तरसन लागो जी। : ४ : फिरंगी...—३।१५६

इसी तरह टेक की प'क्तियों के साथ दोहों को गाकर अनेक गीतों का सृजन कर लिया जाता है। स्त्रियों द्वारा गेय इन दोहों में मालव के गार्हस्थ्य जीवन का व्यापक एवं मार्मिक चित्र मिलता है। अधिकांश दोहे मध्यमवर्गीय संभ्रान्त महिलाओं की अनुभूति एवं जीवन की यथार्थ स्थिति के चित्र लिये हुए हैं।[1]

मालव में प्रचलित बनड़ा-बनड़ी के गीतों में परम्परा से गाये जाने वाले गीतों की संख्या बहुत ही कम है। नये-नये गीतों का निर्माण होता रहता है और पुराने गीत प्रायः भुला दिये जाते है। युग की नवीन प्रवृत्तियों का नगर की स्त्रियों के गीतों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। सिनेमा की प्रचलित एवं अधिक लोक-प्रिय धुनों पर भी स्त्रियाँ गीतों की रचना कर डालती हैं। एक समय था जब आर्य समाज का एक प्रचार गीत 'वेदों का डङ्का आलम में, बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने' प्रचलित था। उस समय उक्त तर्ज पर बना-बनी के गीत सुनने को मिल जाया करते थे। इसी तरह गजल आदि की पद्धति पर :—

१. दादा सरबत का प्याला अनार मंगवा दो। १।८६
२. मेरा दिल चावे बना आपसे मिलने के लिये। १।५८
३. कैसे खडी हैं बलम नजर धर के। १।८९
४. ढाई हजार से कम नहीं लगते, घर में बहू बुलाने को। १।९२

१. विस्तृत विवेचन पाँचवें अध्याय में किया गया है।

रचित गीत नगर की मालवी स्त्रियों की कल्पना-प्रसूत सृष्टि हैं। कहीं-कहीं पर तो कल्पनाएं अत्यन्त ही असम्बद्ध हैं। बनड़े (वर) को ठोकर लगने और गांधीजी के सीने पर गोली चलने की घटनाएँ एक साथ गूँथी गई हैं:—

लगी ठोकर गिरा बनड़ा उठा लेते तो क्या होता।
चली गोली गांधीजी पे बचा लेते तो क्या होता।
हमारा पानी तुम्हारा साबुन मिला देते तो क्या होता।
तुम्हारे लड्डू हमारे पेड़ा जिमा देते तो क्या होता।

इन गीतों में एक ही प्रवृत्ति परिलक्षित होती हैं। वर-वधू एक दूसरे के व्यक्तिगत जीवन से विवाह के पूर्व अपरिचित रहते है। एक दूसरे के प्रति कौतूहल-भाव बड़ा सजग रहता है। गृहस्थ-जीवन की देहरी पर कदम रखने वाले अबोध युवक-युवतियों के हृदय में एक दूसरे के प्रति भाव एवं आकर्षण उत्पन्न करने की दृष्टि से इन गीतों का बड़ा महत्व है। वर और वधू के शृङ्गार के लिये उपादानों की आवश्यकता होती है, उनको लेकर एक प्रकार का मोह जाग्रत किया जाता है, सामीप्य भावना को अंकुरित किया जाता है। भावी पत्नी जीवन में किस प्रकार वस्त्र, आभूषण एवं शृङ्गार सामग्रियों की मांगें प्रस्तुत करती रहती हैं और साथ ही सहविचरण के लिये उत्सुक रहती है, उसका आभास लेकर इन गीतों का निर्माण हुआ है। आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य भौतिक जीवन के लिये जितने उपभोग्य प्रसाधन संचित करने की चेष्टा करे, उनकी आवश्यकता बढ़ती जाती है। यदि मालवी महिलाएँ उड़ते हुये वायुयान में बैठने की कल्पना-रम्य स्वप्निल आकांक्षा लेकर चले तो कोई आश्चर्य नहीं:—

बनी म्हारी लागे सोई मँगवावो, बैठो उठती झाज मे।
वो झाज कलकत्ता से आई, ठोकर बम्बई सेर में पाई।
उसमें पंखे की ठण्डाई, उसमें बिजली की उजलाई। बनी.... १।१२०

उड़ते हुए हवाई जहाज को देखकर उसके सम्बन्ध में की गई कल्पना का आधार सुनी-सुनाई बातों का होते हुये भी यथार्थ है।

रहने के लिये सुन्दर आवास का आदर्श प्राचीन काल का राज-प्रासाद अथवा महल हो सकता था। मेल (महल) का स्थान अब अंग्रेजी 'बँगलों' ने ले लिया है। 'मेल' का उल्लेख परम्परा से प्रचलित लोक-गीतों में अवश्य मिल जावेगा किन्तु आज की नवीन वधू तो बँगले में रहना चाहती है। नगर एवं ग्राम के लोक-गीतों में बँगले की माँग अवश्य की गई है।

१. राजा रासे बँगलो बंदा जाजो।
२. भरया बजार में बँगलो चइये, कुडसी मेज लगाने को।
   दो सौ रुपये की पोपलीन चइये, पेटी-कोट बनाने को।
३. बँगला पे बैठो रे जोसिडो बुलावे।

मनोरञ्जन के साथ ही इन गीतों में लोकाचार के उन प्रसङ्गों का उल्लेख भी हुआ है जिनका आयोजन विवाह के अवसर पर आवश्यक होता है। विवाह के लिये मांगलिक वेष-भूषा एवं अन्य सामग्री जिन लोगों से क्रय की जाती है बना-बनी के परम्परागत गीतों में उनका वर्णन हुआ है। जोशी, बजाज, सोनी, माली, तम्बोली, मोची आदि के यहाँ जाने का उल्लेख अनेक गीतों में किया गया है। यथा :—

१. बना तम जावो जोसिड़ा के हाट, लगना री पारख लाजवो रे बनड़ा।
बना तम जावो बजाजी के हाट, पडला री पारख लाजवो रे बनड़ा।
बना तम जाजो सोनिड़ा के हाट, गेनड़ा री पारख लाजवो रे बनड़ा।
बना तम जाजो मालिड़ा के हाट, गजरा री पारख लाजवो रे बनड़ा।
बना तम जाजो तमोली के हाट, बिड़ला री पारख लाजवो रे बनड़ा।
बना तम जाजो मोचिड़ा के हाट, पनियां री पारख लाजवो रे बनड़ा।

२. बँगला में बैठो रे बना जोसिड़ा बुलावे
बँगला में बैठो रे बना बजाजड़ो बुलावे
बँगला में बैठो रे बना सोनिड़ो बुलावे
आछा आछा लगनां लिखावे बनड़ा वाला।
आछो रंग लायो रे गढ़ कोटा वालां।
मोल मोलावे बनड़ा वाला।
गेणो मोलावे बनड़ां वाला।
सब से सवायो रे बना उजीण वाला आछो रंग लायो....
बँगला पे बैठो रे बना गन्धीढो बुलावे........ ११९६

उक्त व्यक्तियों के यहाँ जाने का उल्लेख का कारण है। विवाह में लग्न-पत्रिका, वस्त्र, आभूषण, पुष्पहार, ताम्बूल एवं मिष्ठान आदि लोकाचार के सब आयोजन की सामग्री जुटाना है। ऐसे अवसर पर वधू के प्रति मोह, आकर्षण और प्रेम उत्पन्न करने के लिये राग एवं राग पक्ष के जितने भी उपादान होंगे उन सब का उल्लेख एक मनोवैज्ञानिक उद्देश्य की पूर्ति कर देता है। राग पक्ष के उद्रेक की चरमता के लिये ये गीत अपनी विशेषता रखते हैं। इस समय वर वधू के लिये क्या नहीं कर सकता है। सम्भव, असम्भव सभी प्रकार की आवश्यकता और मांगों की पूर्ति करने की उसमें क्षमता होनी चाहिए। यही उसका पुरुषार्थ है, और अदम्य एवं अपराजेय व्यक्तित्व से ही वह नवेली वधू को आकर्षित कर सकता है। इन्हीं भावों की प्रेरणा से 'बना-बनी' के गीत ओत-प्रोत हैं। वर-वधू के भावी जीवन का काल्पनिक चित्र देखिये :—

"चांदनी चढ़े बना पतंग उड़ावे, म्हारे नजर नईं आवेजी बना
मेलां बैठी बनी पायल बजावे पियुजी ने मेलां बुलावे जी बना"

मकान की छत पर चढ़कर वर तो पतंग उड़ा रहा है और शयन-कक्ष में बैठी हुई वधू अपने पायलों की झङ्कार से प्रियतम को महल में बुला रही है। गीत का नायक महल में आकर वधू को सम्बोधित करता है :—

"अब तो मुखड़े बोलो प्यारी बनड़ी, नैना सूरत देखोजी बना
कैसे मुखड़े बोलां प्यारा बनड़ा, कैसे नैन मिलावां जी बनां"

वधू सङ्कोच से नेत्र उठाकर सामने देख भी नही पाती। वर कुछ प्रलोभन देता है।

"मरजो हो जो मांगो प्यारी बनड़ी, तम मांगो जी देवां जी बना।"

इस आश्वासन पर वधू कुछ विचित्र मागें प्रस्तुत कर देती है :—

धरती को घाघरो आसमान को लूगड़ो, तारा केरो पोलखो सिवाडोजी बना।
मिसरी का फुलका सक्कर पलेतन, दाखाँ को रायतो खिलाओ जी बना।
इलाहाबाद को जम्फर लइने बनारस की साड़ी मँगवावो जी बना। १।६६

मिष्ठान-प्रिया वधू को मिश्री का फुलका (पतली रोटी) शक्कर के पलेतन से बनाकर तो खिलाई जा सकती है, किन्तु भूमि का लंहगा, आकाश की साड़ी एवं तारागणों की कंचुकी सिलाकर देना बेचारे प्रेमी के लिये असम्भव हो है। इतना ही नहीं, वधू की मांगें तो मर्यादा लांघ कर उग्रतर होती जाती हैं :—

"सासू सपुतन ने ननदल दूती, दूती ने साँसरे भिजवावो जी बना।
बड़ी हवेली का चौसठ पंगत्या, चढ़ता उतरता हारी जी बना।
देवर थोड़ा ने जेठ घणा है, छेवड़ो कर कर हारी जी बना।
लाडू पेड़ा ने सरस जलेबी, मथरा से घेवर बुलावो जी बना।
इत्ता होय तो आओ प्यारा बनड़ा, नीतो रेवो अपने डेरे जी बना। १।६६

इसी प्रकार मिलन, छेड़छाड़, चुटकियाँ एवं व्यंग्य-विनोद से भरे मालव के गृहस्थ-जीवन के चित्र इन गीतों में उतर पाये हैं।

मायरा के गीत

भाई और बहिन के प्रेम से निसृत अनेक लोक-गीत हैं, जहाँ बहिन के निर्मल एवं पवित्र हृदय को परखा जा सकता है। भारतीय पारिवारिक जीवन में अनेक प्रकार के रिश्ते और नाते होते हैं, किन्तु सामाजिक जीवन में बहिन के लिये भाई का एवं भाई के लिये बहिन का जो जन्मजात तथा साहचर्य-पोषित ममत्व है, उसको चिरस्थाई एवं मङ्गलमय बनाने के लिये ऐसे अनेक प्रसंगों का आयोजन हुआ है, जहाँ रस के सञ्चार के साथ अधिकार एवं दायभाग की अर्थलिप्सा का अन्त हो जाता है। बहिन के घर प्रत्येक मांगलिक अवसर पर भाई की उपस्थिति वांछनीय समझी जाती है। भाई अपनी बहिन के लिये, बहिन के ससुराल वालो के लिये उपहार-स्वरूप वस्त्र-आभूषण आदि ले जाकर उसके 'हरख' हर्ष को द्विगुणित करता है। मालव में इस प्रथा को 'मायरा' कहते हैं। मायरा शब्द मातृ-पक्ष से

प्राप्त होने वाले वस्त्रों के उपहार का पर्यायवाची बन गया है। वैसे मालवी में मायरा के लिये मामेरा, माहेरा आदि शब्द भी प्रचलित हैं। मामेरा शब्द में मामा का सम्बन्ध ध्वनित होता है। कोई भी पुरुष अपनी बहिन की सन्तान के लिये मामा ही होता है। बहिन के लिये न सही, बहिन के लड़के लड़कियों के विवाह के अवसर पर यदि मामा उपहार की वस्तुएं लाता है तो उसे मामेरा संज्ञा देना सार्थक है। मायरा शब्द के पीछे गुजरात के प्रसिद्ध संत नरसी मेहता की भक्ति का महाप्रभाव छिपा हुआ है। मालव में 'नरसी मेता को मायरो' की दन्त कथा भी प्रचलित है। निर्धन नृसिंह मेहता को अपनी पुत्री नानीबाई के यहाँ मायरा ले जाने की बड़ी चिन्ता थी। नानी बाई के ससुराल के लोग निर्धन मेहता की पुत्री होने के कारण उसके साथ बड़ा कटु व्यवहार करते थे। किन्तु भगवान की कृपा से नृसिंह ने नानी बाई के यहाँ अभूतपूर्व मायरा सम्पन्न किया। 'नानी बाई रा मायरा री ठाकुरजी ने लाज' की गीत पंक्ति आज भी अनेक मालवी परिवारों को निर्धन स्थिति में सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाये रखने की प्रेरणा देती रहती है। गुजरात, मालवा एवं राजस्थान में मायरा प्रथा का समान रूप से प्रचलन है। मालवे में गुजरात का काफी प्रभाव रहा है। सम्भवतः 'मायरा' शब्द के साथ यह प्रथा भी मालव ने गुजरात से ग्रहण की है।

बहिन के यहाँ उसकी संतानों के विवाहों के अवसर पर भाई मायरा ले जाता है। इस अवसर के लिये भाई को बहिन की ओर से पहिले ही व्यवस्थित निमन्त्रण प्राप्त होता है। मायरा लाने के लिये इस निमन्त्रण को 'बत्तीसी झेलाना' कहते हैं। विवाह के प्रचलित लोकाचारों में मायरे की प्रथा का एक विशेष स्थान है। बहिन बड़ी प्रतीक्षा के साथ इस आनन्दमय अवसर पर भाई के उपस्थित होने की आकांक्षा करती रहती है। इस प्रथा के नाम पर उक्त अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को भी 'मायरा' कहते हैं। इन गीतों के सम्पूर्ण भाव, कथानक एवं विषय आदि भाई से सम्बन्धित होने के कारण मालवा में मायरा के गीतों को 'वीरा' भी कहते हैं। 'वीर' शब्द भाई का समानार्थी ही है। प्रत्येक गीत की पंक्ति वीर शब्द से प्रारम्भ होती है। वीरा के अधिकांश गीतों में नारियों के द्वारा आभूषणों की मांग की गई है। इनमें सौभाग्यवती महिलाओं के लिये वांछनीय आभूषणों की एक लम्बी सूची है :—

वीरा माथा ने मेमँद लावजो, वीरा रखड़ी रतन जड़ाव।
फूल जा रे फूल गुलाब को, वीरा काना ने झालज् घड़ाव।
वीरा ओगन्या रतन जड़ाव। फूलजा रे....

वीरा मुखड़ा ने केसर लावजो, वीरा म्हारे नथ मोती पुवाव। फूलजा रे . . .
वीरा हिवड़ा ने हंस जड़ाव, वीरा माला पाट पुवाव। फूलजा रे . . .
वीरा बइय्यां ने बाजूबंद लावजो,
वीरा म्हारी झबिया रतन जड़ाव। फूलजा रे . . .
वीरा पोचाँ ने चूड़लो चिराव,
वीरा म्हारा गजरो से गुजरो लगाव। फूलजा रे . . .
वीरा पंगल्या ने तीड़ा घड़ाव, वीरा म्हारे घुघरा उथल घड़ाव। फूलजा रे . . .

वीरा अंगल्ला ने वीछ्या लावजो, वीरा अनवट रतन जड़ाव। फूलजा रे . . .
वीरा काँचली पचरंग लावजो, वीरा कड़ियो बन्दागळ लावजो।
वीरा केसरिया कोर लगाय, फूलजा रे फूल गुलाब को। १।७६

बहिन ने अपने शरीर को सजाने के लिये सभी आवश्यक आभूषणों की मांग कर डाली। निम्नलिखित आभूषणों की माग को लेकर अनेक मांगलिक गीतों का निर्माण हुआ है परम्परागत गीतों में वर्णित आभूषणों का प्रचलन कम होता जा रहा है। नगर की स्त्रियों में जूने जमाने के आभूषणों के प्रति रुचि एवं आकर्षण का अभाव होते हुये भी गीतो में उनका श्रद्धा के साथ स्मरण कर लेना ही युग परिवर्तन एवं परम्परा के अक्षुण्ण मोह को प्रकट करता है। बनड़ा, वीरा एवं विवाह के अन्य गीतों में प्राप्त आभूषणों की सूची निम्न-लिखित है।

आभूषणों के नाम	पहिनने का स्थान (अङ्ग का नाम)
मेमँद, भम्मर, रखडी	मस्तक (माथा)
झूमना, झूमका, झालज, ओगन्या	कान
नथ, बेसर	नाक
हार	कण्ठ (हृदय)
हस (हँसली)	हिवड़ा
बाजूबन्द	बाहू (बइयाँ)
चूड़ला	कलाई
पोंची, गजरा	पोंचा
पायल	पैर (पगल्या)
बोंच्छ्या	पैर की अँगुलियाँ
अनवट	पैर का अंगूठा

आभूषणों के अतिरिक्त मायके से प्राप्त चूंदड़ी के प्रति भी बहिन का बड़ा ममत्व है। बहिन के जीवन में मंगलमय अवसर प्राप्त हो और उसके वहाँ भाई नहीं आ सके यह असम्भव है। भाई ही नहीं अपितु अपनी भौजाई और सरदार तुल्य भतीजे को भी साथ में लाने का निमन्त्रण देती है :—

वीरा रमा झमा से म्हारे आजो, वीरा आप आजो ने भावज लाजो।
सिरदार भतीजा लारे लाजोजी, वीरा रमा झमा से म्हारे आजो। १।८०

बहिन की यह कामना है कि उसका भाई धूम-धाम से आवे ताकि उपस्थित जन-समुदाय, जाति एवं परिवार के लोगों में भाई के गौरवमय वैभव के साथ बहिन की प्रतिष्ठा भी बढ़ सके। किन्तु भाई के आने में कुछ विलम्ब हो जाता है। बहिन इसके लिये स्पष्टी-करण मांगती है कि सबसे पहिले तुम्हें सादर निमन्त्रित किया था, आने में विलम्ब होने का क्या कारण है?

"वीरा सगला पैलां तमे नोतिया, वीरा क्यों रे लगाई बड़ी देर।
फूलजा रे फूल गुलाब को।"

भाई ने बहाना बनाते हुए जो स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है उसमें गृहस्थ-जीवन मे व्याप्त नारी की ईर्ष्या भावना का शाश्वत चित्र अङ्कित हुआ है। बहिन के यहाँ जाने के लिये भाई के मन में अधिक उत्साह है, किन्तु भावज यह नहीं चाहती कि अनेक बहुमूल्य आभूषण एवं वस्त्रों की भेंट बहिन को प्रदान की जावे। वह उस प्रसंग को टालने के लिये अनेक युक्तियां रचती है :—

बेन्या त्हारी भावज मांड्यो रुसणों, बेन्या समझावत लागी बड़ी बेर।
फ़लजा फ़ूल गुलाब को...
बेन्या त्हारी भावज न्हायो माथलो, बेन्या सुखावत लागी बड़ी बेर। फ़लजा....
बेन्या त्हारी भावज पेरयो चूड़लो, बेन्या निरावत लागी बड़ी बेर। फ़लजा....

प्रस्तुत चित्र नगर में रहने वाली भावज का है जिसके रूठने, मान करने, सिर के केश धोने और चूड़ियों के कारण भाई को बहिन के यहाँ पहुँचने में देर हो जाती है। इसी भाव से मिलता-जुलता ग्राम की नखराली भौजाई का चित्र और भी अधिक आकर्षक है।

वीरा रे सबका पेलां तमे नोतिया, असूरो क्यों आयो।
वीरा रे कई त्हारी खेती में टोटो पड्यो,
कई त्हारा सउकार नटी गया, कई त्हारा बलद्या भूका।
बेन्या बाई नी म्हारी खेती में टोटो पड्यो, नी म्हारा सउकार नट्या।
नी म्हारी गाड़ी रो धूरो टूट्यो, नीं म्हारा बलद्या भूका।
बेन्याओ त्हारी भावजने माथो न्हायो, बेन्याओ छांयले बैठि माथो सुखायो।
बेन्याओ बारा जणी मिल चट्टो टाल्यो, बेन्याओ तेरा जणी ने माथो गूथ्यो।
जद नखराली बूगच्या हेड्या, सब रंग साळू ओढ्या।
जद नखराली ने डाबो हेड्यो, पेटी मांय से गेणा हेड्या।
सब रस गेणा पेरयाँ, जद वा नखराली छकड़ा बैठी।
बेन्याओ जद म्हारा धोरड्या चाल्या।[1]

मायरे के उपरोक्त गीत में बहिन के यहाँ मांगलिक अवसर पर यथा-समय उपस्थित होने में असमर्थ भाई पर व्यंग्य बाणों की बौछारें कितनी उग्र हैं।

रे वीर सबके पहिले तुमको निमन्त्रण दिया था।
आने में देर क्यों हुई? क्या तेरी खेती में नुकसान हो गया?
क्या पैसे देने के लिए तेरे साहूकारों ने इन्कार किया?
क्या तेरी गाड़ी का धुरा टूट गया? क्या तेरे बैल भूखे थे?

---

१ मालवी लोक-गीत, पृष्ठ ८४।

भाई ने जानबूझ कर तो बहिन के यहाँ जाने में देर नहीं लगाई थी। बहिन द्वारा की गई उपरोक्त शङ्काओं को निर्मूल करते हुये भाई ने वस्तु-स्थिति को सामने रखा। बहिन भाई के लिये पराई नहीं हो सकती। यह तो पराये घर से आई भावज का व्यवस्थित षड्यन्त्र था जिसके कारण भाई को विलम्ब हुआ और बहिन की प्रतिष्ठा और गौरव को ठेस पहुँची।

भाई के स्पष्टीकरण पर बहिन क्या उत्तर देती? सावन और भादों में ही वर्षा वांछनीय होती है। शस्य-श्यामल भूमि के श्रृङ्गार के साथ यह सृष्टि के प्राणियों को जीवन का आधार भी प्रस्तुत करती है। शुभ एवं गौरवमय अवसर की घड़ी तो टल गई और जब भाई आया तो खाली हाथ, बहिन की निराशा चरम सीमा तक पहुँच जाती है।

वीरा गिरधरलाल, वीरा मदन गोपाल, इन अवसर नइ आया कद आवसी ?
हूँ तो जाणी वीरा आया, वीरा आया मायरो लाया।
वीरा तो आईग्या खाली हाथ, वीरा गिरधरलाल........।
वीरा म्हारा सावन बरस्यो भादवो जो, वीरा फिर बरस्यो कँई काम को।
वीरा गिरधरलाल.... ....। १।७८

मालवी के मायरा के गीतों में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं संगीत की अनुपम माधुरी से सिक्त निम्नलिखित गीत मालवी बहिन की कल्पना के मनोरम काव्य को प्रकट करता है।

गाड़ो तो रड़क्यो रेत में रे वीरा, गगना उड़े रे गुलाल।
चालो उतावल धोरड़ी रे, म्हारो बेन्या जोवे वाट।
धोरी रा चमक्या सींगड़ा रे, म्हारा भतीजा रो झगल्यो झाग।
म्हारी भावज बई को चमक्यो चूडलो रे, म्हारा बीराजी की पचरंग पाग।
काका बाबा अतघणा रे, म्हारा गोयरा से निकस्या जाय। १।८२
माड़ी तो जायो वीरो एक घणो रे, म्हारा बरद उजाल्या जाय। गाड़ो....

इस गीत के गाने से पूर्व कुछ पंक्तियाँ जोड़ी जाती हैं। मालव के विभिन्न स्थानों में इन पंक्तियों के भिन्न-भिन्न पाठान्तर प्राप्त होते हैं। उज्जैन एवं मन्दसोर से प्राप्त गीत में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं।

'दिवलो ले मेलाँ चढू ओ, हूँ तो वीराजी री जोऊँ वाट।'

श्री श्याम परमार ने अन्य पाठान्तर प्रस्तुत किया है।

'गुया मांय की पीपली रे वीरा, जा चढ़ि जोऊँ तमारो वाट।'[1]

श्री अनूप के गीत-संग्रह में उक्त भाव को प्रकट करने वाली पंक्तियाँ भी कुछ भिन्नता लिये हुए हैं।

'म्हारे आँगणे सायबा रूँख धणा रे, जो पे चढ़ जोवां वीराजी री वाट।'[2]

---

१. देखें मालवी लोक-गीत, पृ० ८२।
२. देखें अनूपजी का लेख, 'मामेरा' नई दुनियां, ६ फरवरी, ५० का अंक।

एक ही गीत के तीन पाठान्तर महिलाओं की कल्पना-शीलता के परिचायक हैं। किन्तु मूल-भाव एक ही है कि बहिन वीराजी की बाट देख रही है। प्रतीक्षापूर्ण विकलता में बहिन के हृदय में होने वाली उथल-पुथल को समझा जा सकता है। बहिन आखिर दीपक लेकर दिन के प्रकाश में भी महल पर चढ़कर भाई की प्रतीक्षा क्यों करती है? पीपली अथवा अन्य रूँख (वृक्ष) पर चढ़कर भाई के आगमन की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता ही क्यों उपस्थित हुई? इस प्रतीक्षा-भाव के मूल में बहिन के मायके की प्रतिष्ठा के साथ उसके आत्म-सम्मान की रक्षा का प्रश्न भी संलग्न है। यदि उसका भाई मांगलिक अवसर पर भी नही आया तो ससुराल पक्षवालों के व्यंग्य-बाणों से उसे मर्मान्तिक पीड़ा होगी एवं जीवन भर सास-ननद के कड़वे ताने सुनना पड़ेंगे। इसलिये 'माड़ी-जाये वीर' के आगमन की प्रतीक्षा में उसके मानस का उद्वेलन चरमता पर पहुंच कर कल्पना के मनो-राज्य में विचरने को बाध्य होता है। दूर क्षितिज पर धूलि के उड़ने से ही बहिन सोच बेठती है कि उसके भाई की गाड़ी अनेक घाटियों पर से रड़कती हुई ढाल पर शीघ्र गति से आती हुई नदी की रेत में फँस कर धीमी चाल से आ रही होगी। भाई बहिन के यहाँ यथासमय पहुँचने के लिये बैलों को जल्दी चलने के लिये उकसा रहा है। गाड़ी में बैठे भाई एवं भावज के सम्बन्ध में भी बहिन की कल्पना सजग होती है। वह कल्पना के चित्र में देखती है कि गाड़ी में जुते हुये बैलों के सींग चमक रहे हैं। भतीजे का झगल्या भी झूल रहा है, सौभाग्यवती भावज के हाथों की चूड़ियाँ भी चमक रही हैं। और भाई भी पचरङ्गी पगड़ी पहिने हुये है। बहिन का आत्म-विश्वास दृढ़ होता है और स्वयं के भाई के प्रति उसका गर्व उमड़ पड़ता है। उसके यहाँ शुभ कार्य की शोभा बढ़ाने के लिये माँ-जाया एक भाई ही पर्याप्त है। वे काका-बाबा एवं मायके पक्ष के अन्य सम्बन्धी किस काम के हैं? जिनमें आत्मीयता का अभाव है और जो बहिन-बेटी के ग्राम की सीमा से निकल जाते हैं किन्तु मिलने के लिये नहीं आते।

उक्त गीत में यातायात के प्रमुख साधन गाड़ी का उल्लेख है। सम्भवतः गीत यांत्रिक वाहनों के पहिले की सृष्टि है। सामान्यतः भारत के ग्रामीण-जीवन में आवागमन का साधन गाड़ी (बैलगाड़ी) है किन्तु इस गीत को मारवाड़ से आई हुई जातियाँ अपने साथ लाई हैं। इस गीत से मिलता हुआ एक लग्न-गीत गुजरात में भी प्रचलित है। भाव नगर में कुम्हार स्त्रियों द्वारा यह गाया जाता है। मारवाड़ से सौराष्ट्र एवं गुजरात में गई हुई जातियाँ विभिन्न संस्कारों के साथ गीतों की परम्परा लेकर चली है। सौराष्ट्र में बसने वाली उक्त कुम्हार जाति मारवाड़ से आकर बसी है। मालवी गीत एवं सोरठी कुम्हार महिलाओं के गीत की भाव-भूमि में कोई अन्तर नहीं है।

हुँ तो ऊँची चडुं ने नीची ऊतरुं रे, जोऊँ मारो माड़ी जायो वीर रे जेठानी।
हमणे माड़ी जायो आवशे रे, ऊंडा-ऊंडा रणमां उडे खेह रे जेठानी।
हमणे माड़ी जायो आवशे रे, झबक्यां-झबक्यां धोरीडांना शींग रे जेठानी।
झबक्यां नाना भाई नां मोळियां रे, झबक्यां-झबक्यां बेलडियानां इंडां रे जेठानी।
झबकी भाभलडी नी चूंदड़ी....।[1]

---

[1] झवेरचन्द मेघाणी द्वारा सम्पादित, 'चूंदड़ी' भाग २, पृ० ५६-५७।

एक भाव होते हुए भी उक्त गीत मालव एवं सोरठ में जाकर अपनी विशेषता को लेकर प्रकट हुआ है। मालव का भाई गाड़ी में अपने परिवार के साथ बैठकर जब बहिन के यहाँ जाता है एवं गाड़ी में बैठी हुई स्त्रियाँ मार्ग में जब इस गीत को गाती हैं, तब वातावरण की चित्रात्मकता और भी अधिक आकर्षक हो जाती है। गाड़ियो की गड़गड़ाहट की ध्वनि में कण्ठ-निस्तृत गीतो के लिये मानो वाद्य-यन्त्र की पूर्ति हो जाती है। इस गीत में व्याप्त काव्य, चित्र एवं संगीत की त्रिवेणी में मालवी बहिन का चिरन्तन हृदय लहराता रहेगा।

भावनाओं की संचित निधि पर इतराता, गर्व करता, नारी-हृदय व्यावहारिक जीवन की कठोरता के हल्के आघात पर तिलमिला उठता है। जीवन में अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं और आये होंगे जब बहिन की आशातीत कामनाएं भाई के द्वारा पूर्ण नही हो पाती। स्वयं की आर्थिक परिस्थिति खराब होने पर भाई बहिन के यहाँ लोक-मर्यादा के अनुकूल मायरा ले जाने में असमर्थ रहता है। और बहिन के आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचती है। ऐसी विषम स्थलि में ससुराल पक्ष की नासमझ, रुढ़िगत एवं दर्पोद्धत सास-ननदो को अपने घर की बउ एवं पराये घर की बेन-बेटी की दुर्दशा करने का खुला अवसर मिल जाता है। बहिन का पति भी अप्रसन्न हो जाता है एवं अपने परिवार के अन्य लोगों के साथ मिलकर पत्नी पर विष-बाण चलाने में नहीं चूकता।

"गोरी म्हारी चूनड़ ओढ़ लो गोरी म्हारी घरनी।
थेई तो समजो सायबा लोग नी समजे, म्हारी छाती फाटे हीवड़ो ऊलरे जी।"

"गोरी अपने घर की चूनड़ी ओढ़ लो। इसे भाई के घर की ही समझ लेना।" पति भी व्यंग्य कर रहा है। बहिन मर्म पर आघात होने से तिलमिला उठती है। "प्रियतम! तुम तो वस्तुस्थिति को समझो! दूसरे लोग तो नही समझते कि मेरा भाई नहीं आ सकता। इस दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति से मेरी छाती फटी जा रही है। मेरा हृयय रह-रह कर रो रहा है।" मायरा एवं बधावे के गीत इसी प्रकार के सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्रों को प्रस्तुत करते हैं।

मायरा की प्रथा के लोकाचार का एक पूर्व-पक्ष भी है जिसे 'बत्तीसी' कहते हैं। बहिन की ओर से अपने यहाँ विवाह आदि प्रसंग पर मायरा लाने के लिये यह एक निमन्त्रण ही नहीं अपितु साधिकार आग्रह भी है जिसे भाई जीवन को सब विषमताओं को झेलकर भी पूरा करता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गातों में बहिन की मांगें अपना हठपूर्ण स्वरूप धारण कर लेती हैं :—

"भावज का झम्मर गिरवे मेलजो वीरा, चूनड़ी लावो तो सगळा सारु लावजो।
नी तो री जो तमारा देश, ओ जावण जाया भावज का झूमका बेचजे।"

बहिन की मांग भी विचित्र है। बेचारे भाई के लिये अपनी पत्नी से सब आभूषण बेचकर अपने बहिन के यहाँ मायरा ले जाना असम्भव ही होता है। भावज भी इस दुराग्रह के लिये ननन्द से पूरा बदला ले लेती है :—

"सुरिया से बैल मंगाओ बई गाड़ो तो लियो जुताय।
माडी रा जाया तमारा पे माँगूगी भात।
नणदल के आता देखिया ओ बई भतीजो खेले दुआर।
नणदल के आता देखिया ओ बई चूलो दियो बुझाय।
वीरा जी कँई घरे नइ ओ बई भतीजो खेले दुआर।
बेन्या तमारो मेलो भेस ओ बई बेन्या तो अनमनी।
भावज मुखडो नी बोलिया ओ बई नी लाग्या पांव।
लूगडाँ तो लेऊ डेढ़ से ओ बई को अन्त न पार।
पागड़ी तो लेऊ सवा लाख की ओ बई दुपट्टा को अन्त न पार। ३।८

सूर्या गाय के समान बैल की सुन्दर जोड़ी गाड़ी में जोतकर बहिन अपने भाई के यहाँ बत्तीसी भेजाने[1] जाती है। किन्तु ननद को दूर से आती देखकर ही भौजाई चूल्हा बुझा देती है अर्थात् उसे भोजन करने के सामान्य शिष्टाचार को निबाहने का विचार भी नहीं रखती। प्रेम से बोलना तो दूर रहा अपने पति की बहिन के पैर छूकर सम्मान-सूचक स्वागत भी नहीं करती है। भावज के द्वारा ननद के अपमानित करने के प्रसंगों को लेकर बधावे के कुछ गीतों का भी निर्माण हुआ है।

यज्ञोपवीत [जनोई के गीत]

मालव में यज्ञोपवीत का संस्कार एक प्रकार से उपविवाह माना जाता है। स्त्रियों के लिये यह भी एक हरख (हर्ष) का समय है जहाँ विवाह की अनेक रूढ़ियों का एवं लोकाचारों का चाक नोतने से लेकर मायरा पहिनने की विधि तक निर्वाह किया जाता है। पुरोहित तो केवल एक दिन आकर 'गिरे-सातक्क' (ग्रह-शान्ति) मातृका पूजन आदि शास्त्रीय विधियों को सम्पन्न कर पुराणोक्त एवं वैदिक रीति से बालक के गले में जनोई डालकर दक्षिणा प्राप्ति के साथ ही अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ लेता है। उपनयन का यहाँ न तो शैक्षणिक महत्व ही है और न मनु-याज्ञवल्क्य आदि आचार्यों द्वारा निर्धारित आयु में ब्राह्मण पुत्रों का उपनयन संस्कार होता है। स्मृतिकारों ने ब्राह्मण के लिये उपनयन का उपयुक्त समय आठ वर्ष की आयु में माना है।[2] किन्तु आजकल कुछ संभ्रान्त एवं सुसंस्कृत परिवारों को छोड़कर ब्राह्मण वर्ग की उप-जातियों का जनोई के सम्बन्ध में रूढ़िगत दृष्टिकोण बन गया है कि ब्राह्मण हैं, यज्ञोपवीत करना है, विवाह होने के पूर्व ग्यारह एवं सोलह वर्ष की आयु में सुविधानुसार इस बोझ को भी उतार देना चाहिये। अनेक व्यक्ति तो आर्थिक सुविधा के अभाव में जनोई और विवाह के संस्कार एक साथ ही निपटा देते हैं।

साधन-संपन्न लोगों के यहाँ जनोई का आयोजन धूमधाम से किया जाता है जिसमें परिवार एवं जाति के सभी व्यक्ति आमन्त्रित किये जाते हैं। दो बिनायक बैठाये जाते हैं।

---

१. इस प्रथा को भात मंगना भी कहते हैं।
२. गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। मनु-स्मृति २।३६।
गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्। याज्ञ० स्मृति (आ०प्र०, ब० प्र०) श्लोक १४।

विवाह की प्रथा के अनुसार ही लड़के को प्रतिदिन हल्दी आदि लगाकर मांगलिक स्नान कराया जाता है। मांगलिक कलश एवं देवी-देवताओं के रातजगे के साथ बनड़ा आदि गीत गाकर पूरा आनन्द मनाया जाता है। इस शुभ अवसर पर भी लड़के के मामा के यहाँ से मायरा आता है। 'कुटुम्ब-पेरावनी' होती है। सारांश यह है कि जनोई में विवाह के समय के वर-यात्रा के पहिले तक के सब लोकाचार एवं षटकर्म करना पड़ते हैं। काशी जाने का नाटक भी कर लिया जाता है।

प्राचीन काल में उपनयन संस्कार के सम्पन्न होने पर अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करके ब्रह्मचारी गुरु के पास विद्या अध्ययन के लिये प्रेषित किया जाता था। पुरातन काल से ही काशी ब्राह्मण-पुत्रों के लिये विद्या का एक तीर्थ था। जहाँ वास्तव में ज्ञान की गङ्गा प्रवाहित होती है। अनेक ब्राह्मण परिवारों से बालकों को उपनयन के पश्चात् विद्याध्ययन के लिये बनारस भेजा जाता था। आजकल काशी भेजने की कामना केवल एक रुढ़ि में ही पूर्ण कर ली जाती है। गुरु ऋण उतारने की लक्षपूर्ति एक दो घण्टे में ही पूर्ण हो जाती है। जनेऊ के अवसर पर काशी की दौड़ एक बड़ी मनोरञ्जक घटना होती है। गुरु के द्वारा यज्ञोपवीत धारण करवाने के पश्चात् ब्रह्मचारी माता से भिक्षा मांगता है। मनु द्वारा प्रतिपादित मातृ-भिक्षा की प्रथा तो लोकाचार के रूप में अभी प्रचलित है, किन्तु मातृ-भिक्षा के साथ अन्य लोगों से भी भिक्षा मांग ली जाती है। और यहाँ व्यवहार का श्रीगणेश हो जाता है। व्यक्ति विशेष के यहाँ से जितनी रकम भिक्षा से प्राप्त होती है उतनी रकम उस व्यक्ति के यहाँ अवसर आने पर सामाजिक शुल्क के रूप में देना पड़ती है। मातृ-भिक्षा के पश्चात् काशी की ओर प्रस्थान करने के लिये बटुक-वेषधारी बालक द्वारा दौड़ लगाई जाती है। दौड़ते हुये बालक को उसका मामा पकड़ने के लिये जाता है, मानो वह मनाने जा रहा है। कौपीन-धारी ब्रह्मचारी को मामा पकड़ कर ले आता है, और वस्त्रादि पहिनाकर मायरे की रुढ़ि को सम्पन्न करता है।

जनोई के अवसर पर दो-चार गीत गाये जाते है, उनमें काशी के पथ का काल्पनिक चित्र एवं कपास के सूत कातकर जनोई तैयार करने का उल्लेख है। उदाहरण के लिये कुछ गीत दिये जा रहे हैं: —

१. कासी री बाट रे कुंवरा, घणी री सुहेली।
जनोया पेरन्ता त्हारा दादाजी बोल्या, केवो तो कासो भणवा जावां।
कासी री वाट रे कुंवरा, चलत-चलत दुःखे त्हारा पांव।

२. दादाजी बोया नानण, माता बई काते भीणो सूत रे बना।
पेरो म्हारा कान्ह कुंवर जनोई[1] कासी भणवा जावोजी बना।
कासी रा वासी सदा हो निवासी, पण्डत हो घर आवो जी बना।

---

१. पाठान्तर.......पेरो म्हारा राम लछमण जनोई।

३. इ नानण वन की गैरी-गैरी छाया, बैठो तो कुंवर म्हारा लाडला।
इना नानण वन में जोसिडो वसई दो[1], लगना मोलावे हो कुंवर म्हारा लाडला
इ नानण वन की गैरो-गैरी छाया....। ३।१११; ३।११२

वरयात्रा के गीत [घोड़ी और सेवरा]

बारात शब्द कदाचित् वरयात्रा का अपभ्रंश है। कन्या के नगर अथवा घर की ओर प्रस्थान करने के लिये वर पक्ष के लोगों को दलबल सहित उद्यत होना पड़ता है। वर के यहाँ विवाह के लोकाचारों के पूर्व-पक्ष का घुड़-चड़ा अन्तिम दिवस होता है। मध्य-युग में किसी कन्या को विवाह कर लाना कोई सामान्य बात नहीं थी। कन्या या उसके माता-पिता की स्वीकृति, अस्वीकृति का कोई प्रश्न ही नही उठता था। किसी वीर की दृष्टि में कन्या जँच जाना चाहिये, बस बाहु-बल से उसे प्राप्त कर लिया जाता था। मनु द्वारा उल्लिखित राक्षस और पिशाच विवाह की पद्धतियाँ मध्य-युग तक पूर्णतः प्रचलित रही। इस स्थिति के भी दो पहलू थे।

१. किसी वीर को वरण करने में कन्या की स्वेच्छा और माता-पिता की सहमति।
२. कन्या की स्वेच्छा के विरुद्ध माता-पिता का निर्णय।

पहली स्थिति में वर-पक्ष के लोगो की कन्या की सहानुभूति होने के कारण किसी कठिनाई का सामना नही करना पड़ता था। किन्तु दूसरी स्थिति में एक कन्या के लिये दो-दो बरातें आ धमकती थी और बिना रक्तपात किये विवाह होना सम्भव नहीं था। अतः विवाह करने वाले व्यक्ति को एक वीर की वेशभूषा में अपने सहयोगियों के साथ दलबल से सज्जित होकर जाना पड़ता था। मध्य युग का वर केसरिया बाना पहिनकर स्वयं की अङ्ग-रक्षा के लिये कवच धारण करता होगा। आज भी वर को केसरिया बाना, लंबा अंगरखा पहिनकर एक वीर की वेशभूषा में पूरी तरह सजाया जाता है। आजकल मालवा में राक्षस और पिशाच विवाह की पद्धतियाँ यद्यपि प्रचलित नहीं हैं, किन्तु लोकाचार में मध्य-युग की प्रथाओं का निर्वाह अवश्य किया जाता है। इस प्रसंग के कुछ लोकाचार उल्लेखनीय हैं:—

१. वर को केसरिया बाना पहिनाया जाता है।
२. वर तलवार या कटार हाथ में रखता है।
३. वर को अश्व पर बैठाकर वर-यात्रा के लिये प्रस्थान करना होता है।
४. वर-यात्रा के समय पर वर द्वारा अपनी माता के स्तन को मुख में लेना पड़ता है।
५. कन्या के यहाँ जाकर तोरण मारा जाता है।

इन आचारों में माता के स्तन को मुख में लेने की प्रथा उस बात की द्योतक है कि वर यात्रा के लिए उद्यत अपने वीर पुत्र को माता यह स्मरण कराती है कि वधू लेकर घर आना, याद रहे माता का स्तन्य लज्जित न हो।

---

१. विवाह के अन्य गीतों की तरह परम्परा के अनुसार इस गीत में भी क्रमशः जोसी, बजाज, सोनी, बेराती, माली, मोची आदि के नामों का उल्लेख किया जाता है।

उपरोक्त लौकिक आचारों के अतिरिक्त स्त्रियों के कुछ आचार मांगलिक भावनाओं को लिए होते है। केसरिया अंगरखे के अतिरिक्त वर को कमर में दुपट्टा एवं कन्धे पर एक उत्तरीय दुकुल 'अन्तर्वासा' धारण करना पड़ता है। दाहिने हाथ में विनायक-पूजन के समय से ही कंकण बधा रहता है। वर की आंखों में सुरमा लगाने की पद्धति को हम आँखों के सौंदर्य को बढ़ाने की दृष्टि से उपयुक्त मान सकते हैं, किन्तु सुरमे की अपेक्षा आंखों में काजल का कालापन सौंदर्य बढ़ाने का प्रतीक ही नहीं उसमें अमङ्गल और अनिष्ट निवारण की भावना भी है। काजल की रेख से वर को किसी की कुदृष्टि नहीं लगती। शोभा-वृद्धि की दृष्टि से पुरुषोचित कुछ आभूषण भी धारण किये जाते है। वर के मस्तक पर सेवरा बांधा जाता है। भिन्न-भिन्न जातियों में अपनी प्रथा के अनुसार वर और वधू के मस्तक पर सेवरे बाँधते हैं। जिनके नाम भी बनावट की दृष्टि से अलग है :—

१. सेवरा—खजूर के खोड्यो (पत्तियो) से बनाया जाता है। पुष्पों से सजाया जाता है।

२, मोड़....मुकुट का प्रतीक है। सुनहली चमकदार वस्तुओं से सजाकर कागज के पुट्ठे का 'मोड़'...मुकुट बनाया जाता है।

सेवरा या मोड़ पहिनने के पश्चात् विवाह के पूर्ण वेश में वर (लाड़ा) घोड़ी पर बैठता है। अश्व का उपयोग वर्जित है। घोड़ी न मिलने की स्थिति में घोड़े पर बैठना विवशता का सूचक है। घोड़ी पर बैठाकर वर की यात्रा सम्पूर्ण गांव या नगर के चल-समारोह के रूप में प्रदर्शित की जाती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में 'घोड़ी' और 'सेवरा' के गीत मांगलिक दृष्टि से महत्व रखते हैं। जिस घोड़ी पर वर बैठता है उसका वर्णन गीत में है।

घोड़ी नाचत कूदत नगर गई, घोड़ी गई जोसिड़ा री हाट।
बछेड़ी आछी लम रई, वणी जोसण बनड़ा बुलाय लियो।
हेलो पाड़ लियो, सुरमो सार दियो।
म्हने दऊ रे आछा लगन लिखाय, बछेरी लूम रई।

....गीत में क्रमशः बजाज, मोची, खेराती, तम्बोली, माली, सोनी आदि के यहाँ जाने का उल्लेख है, जहाँ इन व्यवसाइयों की पत्नियाँ वर का स्वागत करती हैं एवं अपने यहाँ से प्राप्य वस्तुओं का पुरस्कार देने की कामना प्रकट करती है।

घोड़ी के गीतों की तरह सेवरा के गीतों का वर्ण्य-विषय भी महत्व रखता है। सेवरा सजाने के लिये पुष्पों की आवश्यकता होती है। अतः मालिन से विभिन्न प्रकार के फूल लाने का आग्रह किया गया है। गीत की प्रारम्भिक पंक्ति....टेक में मालिन के नाम भी दिये गए हैं। गेंदा मालिन एवं फूला मालिन। पुष्पों के नाम पर ही मालिन का नामकरण कितना सार्थक एवं सुरुचि पूर्ण है। सेवरे के लिये मालिन से चार प्रकार के रंगीन पुष्पों की मांग की गई है :—

चम्पा, चमेली, मरवा-मोगरा, गुलगावदी।

संगीत एवं लय-माधुरी की दृष्टि से सेवरे का यह गीत मालव के प्रसिद्ध लोक-गीतों में माना जाता है :—

जोसिड़ा री गलियाँ होय निसरचा ए मालनी।
राजाजी री गलियाँ होय निसरचा हो मालनी।
कर गया लगना रो चाव, हाँ वो फूलाँ मालनो हाँ वो गेंदा मालनी।
सेवरा में चार रंग लावजो ए मालनी!
चम्पो चमेली मरवो मोगरो ए मालनो।
चोथो गुलदावदी रो फूल....हाँ वो फूला.......
बजाजी री गलियाँ होय निसरचा ए मालनी।
कर गया पलड़ा रो चाव....हाँ वो फूला.... ....
सोनिड़ा री गलियाँ होय निसरया ए मालनी।
कर गया गेणा रो चाव....हाँ वो गेंदा मालनी....
तम्बोली री गलियाँ होय निसरचा ए मालनी।
कर गया बिड़ला रो चाव....हाँ वो फूला मालनी....
खैराती री गलियाँ होय निसरचा ए मालनी।
कर गया चूड़ला रो चाव ...हाँ वो फूला मालनी....
मोचिड़ा री गलियाँ होय निसरचा ए मालनी।
कर गया मोजड़ी रो चाव ...हाँ वो फूला मालनी....
सजना री गलियाँ होय निसरचा ए मालनी।
कर गया बनड़ी रो चाव....हाँ वो फूला मालनी....
सेवरा में चार रंग लावजो ए मालनी,
चम्पो चमेली मरवो मोगरो ए मालनो। चोथो गुलदावदी रो फूल....३।१३६

सुहाग कामण के गीत

पुरुष के हृदय-राज्य पर अधिकार करने का प्रयास नारी की जीवन-साधना का एक चरम लक्ष्य रहा है। किन्तु भारतीय नारी गृह-लक्ष्मी एवं पति के मानस की राज-रानी बन जाने के पश्चात् भी पुरुष की उद्दण्डता एवं चंचल-वृत्ति को बाँधने में असफल रही है। प्रत्येक भारतीय नारी के मन में यह कामना रहती है कि उसका पति उसके वश में रहे एवं उसके प्रणयमय जीवन में प्रेमाधिपत्य से वंचित होने की स्थिति उत्पन्न न हो सके। विवाह के अवसर पर मालवी स्त्रियों द्वारा वधू के भावी जीवन को मंगलमय बनाने की कामना से कुछ लोकाचारों का आयोजन होता है। मालवा में इन्हें 'कामण' कहते हैं। कामण का लोकाचार एक प्रकार का टोना-टोटका है। उसके सम्बन्ध में स्त्रियों की यह धारणा है कि कामण के लोकाचार एवं गीतों से वर कन्या के वश में हो जाता है। वर-पक्ष के लोग जब कन्या के

यहाँ बारात लेकर जाते हैं, तब तोरण मारने के पश्चात् वर जैसे ही वधू-मण्डप में प्रवेश करता है, कन्या-पक्ष की स्त्रियां नाड़े (रङ्गीन माङ्गलिक सूत्र) से वर को लम्बाई नाप लेती है। वर की लम्बाई का प्रतीक यह नाड़ा वधू के लँहगे की नाड़ी बनाने के काम में लिया जाता है। कामण का यह लोकाचार कन्या के विवाह के समय प्रायः पूरा नहीं हो पाता, क्योंकि वर-पक्ष के लोग एवं स्वयं वर भी कामण की इस प्रथा से सजग रहते हैं और कामण का नाड़ा नापने की चेष्टा करते समय वह झटके के साथ तोड़ दिया जाता है। ऐसा कौन पुरुष है जो स्त्री के घाघरे की नाड़ी में बंधकर सदा के लिए उसका दास बनने में गौरव का अनुभव करेगा? कामण को असफल कर देना वर-पक्ष वालों की तत्परता एवं चतुराई का सूचक होता है।

कामण के जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'वशीकरण गीत' की संज्ञा दी जा सकती है। इन गीतों में भी पुरुष को वश में करने की भावना का प्राधान्य है।

भर भादों की रात अन्धारी, माता बई कामण करिया हो राज।
कामण कूमण करवा लागा, म्हारी बनड़ो थर-थर कांपे हो राज।
तु मति कांपे म्हारी प्यारो बनड़ी, त्हारा दादाजी के बस किया हो राज।
छोटा देवर पीसे पोवे, जेठ भरेगा पानी हो राज।
सासू ननंद त्हारी टगर-मगर देखे, म्हारी बनड़ी घर घरियाणी हो राज।[1]

कन्या की माता अपनी बेटी को काणण के वशीकरण के प्रभाव से परिचित कराती है कि कामण से उसने कन्या के पिता को वश में किया था। कामण के द्वारा ही वधू का देवर आटा पीसेगा, रोटी बनावेगा और जेठ पानी भरेगा। इसी कामण के द्वारा अधिकार का आतङ्क जमाने वाली सास और ननद मौन होकर देखती रहेगी और पति के घर पर वधू का एकछत्र अधिकार हो जावेगा।

इस गीत में कामण के सद्यप्रभाव की कल्पना की गई हैं कि वर वधू का चाकर बनना स्वीकार कर सलाम करता है।

कोरी कोरी कुलडी में दही जमाया हो राज।
आज म्हारा दादाजी घर रईवर ने नौत्या हो राज।
दादाजी घर नौत्या, म्हारी माता नौत जिमाय हो राज।
लीली टीलड़ी लींली सूत, बाँदो रे बाँदो सासु रा पूत।
बांदा बूँदी करी सलाम, एक सलाम ने दूसरी सलाम।
तीसरी सलाम त्हारा बाप का गुलाम।
छोड़ दो दादाजी की प्यारी, अब तो त्हांका चाकर हो राज।
चाकर था तो पेलां केता, अब तो कामण करिया हो राज। २।१८

कामण के गीतों की तरह सुहाग के गीत भी वधू-पक्ष की महिलाएँ गाती हैं। इन गीतों में कन्या के लिये अखण्ड सौभाग्य की मंगल-कामना एवं आशीर्वाद की भावना प्रकट

1. मालवी लोकगीत, पृष्ठ ८१।

हुई है। हस्तमिलन की प्रथा के पहिले एवं कन्या-परिणय के पश्चात् विदाई के समय सुहाग के गीत गाये जाते हैं। सुहाग के गीतों में पति को वश में करने की भावना नहीं है अपितु प्रियतम की अनुगामिनी बनकर एक आदर्श पत्नी बनने की भावना व्यक्त की गई है।

नवी रे सुहाग नवी रितु आई, तो नया क्वार साजन आया।
दादाजी तमारा लाड लडईने लगन लिखावे, माताबाई ब्याव रचावे।
हूँ तमसे पूछूँ म्हारो बनड़ो, सासरिया केसा जावेगा।
आगे आगे रामचन्दर जी बनड़ा, तो पीछे बेन्या बई दासी हुई जावेगा। ३।२५

हस्त-मिलन के गीत

पुरोहित द्वारा वधू-मण्डप में मङ्गलाष्टक गान की विधि सम्पन्न करने के पश्चात् वर और वधू का हस्त-मिलन होता है। मालवी में इस प्रथा को 'हथलेवा' कहते हैं। वर और वधू की हथेलियों पर कुंकुम, केसर, मेंहदी एवं पान को पीस कर लगाया जाता है। हस्त-मिलन की इस रागमयी वस्तु को तैयार करने का रुढ़िगत अधिकार कन्या-पक्ष के किसी जमाई को होता है और उसे इस पुनीत कार्य के लिये नेग (पुरस्कार) भी मिलता है। हथलेवे के गीतों में वधू की स्वभावगत नारी-सुलभ लज्जा का चित्रण है।

मेंदी निरखो राज बनाजी, नागर बेल रा पतला पान।
हर हथलेवो जोड़ सहेलड़ी, हथलेवो कैसे जोड़ा म्हारा बनडा।
म्हारा वीराजी ऊबा देखे, वोरा तो सालाजी म्हारा। मेंदी निरखो ...२।२५

कांकड़-डोरा के गीत

कांकड़ शब्द कंकण का बिगड़ा हुआ रूप है। वर और वधू दोनों को बड़े बन्याक के दिन कंकण बांधते हैं। कंकण रंगीन डोरों का होता है। इस माङ्गलिक सूत्र का मालवी नाम 'नाड़ा' है। स्त्रियों के लिए सीस गूथने में भी इसका प्रयोग होता है। ब्राह्मण यजमान को रक्षा सूत्र भी इसी नाड़े के डोरे का बाँधता है। वर-वधू के कंकण-सूत्र में कोड़ी, लोहे का छल्ला (अंगूठी) लाख का बना हुआ छल्ला और सूखी सुपारी के आकार का फल आदि वस्तुएं बांधी जाती हैं। इसको मालवी में 'कांकड़-डोरा' कहते हैं। वर के हाथ और पैर दोनों में यह कांकड़-डोरा बन्धता है। और वधू के केवल हाथ में। इस कंकण-सूत्र के बांधने में लौकिक आचार एवं टोने-टोटके की प्रवृत्ति ही दिखाई देती है। वर-वधू का माङ्गलिक हल्दी लगा हुआ शरीर विशेष आकर्षण का केन्द्र होता है। उनके जीवन के इस माङ्गलिक एवं मृदुलतम अवसर पर यत्किंचित बाधा या विघ्न उनके भावी जीवन को एक धक्का दे सकता हैं। अतः किसी की कुदृष्टि और अनिष्ट निवारण के लिए ही एक टोटके के रूप में ये कंकण बांधे जाते हैं।

कन्या के घर पर अग्नि-परिणयन हो जाने के दूसरे दिन वर-वधू एक प्रकार का जुआ खेलते हैं। इसको 'एकी-बेकी' कहते हैं। वर या वधू की हार जीत से उनके भावी

'ढेइयाँ की जीत गई, रायां को हार गयो।'

उपरोक्त दोनो प्रकार के खेलो में मनोरंजन की भावना के साथ लोकाचार का एक उद्देश्य भी होता है। इसमें वर और वधू में सामीप्य भावना जाग्रत होती है। विवाह के पूर्व दोनो एक दूसरे से प्रायः अपरिचित ही रहते हैं, अतः छेड़छाड़ के द्वारा संकोच-निवारण में आचार बड़ा उपयोगी है। छेड़छाड की भावना का यह मृदुल एवं संस्कारित रूप है। इस अवसर पर उक्त उद्देश्य से एक दूसरा लोकाचार भी सम्पन्न किया जाता है। जिसे 'कपास बीनना' कहते है। वर या वधू के विभिन्न अङ्गों पर कपास रख दिया जाता है और उसे बीनते हैं। शकुन की दृष्टि से सात बार कपास बीनना चाहिये। कभी-कभी मनचली भावज या सहलज (साली) दुलहिन के वक्ष पर कपास रख देती है और वर जैसे ही कपास उठाने की चेष्टा करता है महिलाएँ हँसकर उसका मजाक भी उड़ाती है।

गाल्-गीत

बोल-चाल की भाषा में गाली का अर्थ अपवाद होता है। क्रोध या आक्रोशमयी भावना के उद्वेलन पर अचानक ही कुछ ऐसे शब्द मुख से निकले जाते हैं जो मनुष्य के मस्तिष्क की प्रतिक्रियात्मक स्थिति को प्रकट करते हैं। किसी व्यक्ति के द्वारा कुछ अप्रिय कहने, अनिष्ट पूर्ण व्यवहार करने अथवा हानि पहुँचाने की स्थिति में उस भावना के प्रतिकार या विरोध में जहाँ वाणी का आश्रय लिया जाता है, वहां मुख से अपशब्द, अमंगल-सूचक शब्द एवं मर्म पर आघात करने वाले शब्द प्रायः निस्तृत होते है। गाली देने की भावना से कभी-कभी व्यक्ति की मान-मर्यादा और इज्जत आबरू पर गम्भीर ठेस पहुंचाने की प्रवृत्ति भी रहती है। माँ-बहिनों के सम्बन्ध मे वर्जित एवं अप्रकृत सम्बन्ध दिखाकर यौन-क्रियाओं पर बकवास करना यद्यपि असभ्य समाज मे हीन नही समझा जाता किन्तु सभ्य-समाज में गाली का यह घृणित रूप माना जाता है।

स्त्रियों द्वारा गाली दिये जाने में ध्वंसात्मक भावना अधिक उग्रतर होती है। किसी के हाथ और पैर टूटने की कामना से लेकर शमशान की चिता पर चढ़ा देने की स्थिति तक, मनुष्य को शारीरिक आघात पहुँचाने की अनेक कल्पनायें इन गालियों में प्रकट होती हैं। गालियों की उद्भावना जिस स्थिति में होती है, यदि उसका मनो-विश्लेषण किया जावे तो उसमें अनेक सहज वृत्तियों का सम्मिश्रण प्राप्त होगा, जहाँ विवशता, हीनत्व की भावना से उत्पन्न क्रोध, अवमानना के प्रतिकार की अदम्य चेष्टा आदि में मानव-मस्तिष्क उलझ जाता है किन्तु भारतीय जीवन में कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जहाँ गालियां तो दी जाती हैं पर वहाँ रोष-आक्रोश की भावना नही होती। ये गालियां सुनने में कड़वी नहीं लगती। सुनने और सुनाने वाले को इसमें रस प्राप्त होता है, गीतों की मिठास जो घोली जाती है। विवाह आदि प्रसंगों पर गालियां गाई जाती हैं। ऐसे गीतों को मालवी में गाल्-गीत कहते हैं। विवाह जैसे प्रसंग पर भी गालियां ? किन्तु ये गालियां हृदय की कुढ़न को लिए हुये नहीं होतीं। गीतों में ढलकर इनमें कुछ रागात्मक निखार आ जाता है। छेड़छाड़, विनोद-व्यंग्य और मनोरंजन के साथ ही इन गालियों के द्वारा अतिथियों का सत्कार होता है। किसी के हृदय पर आघात पहुँचाने

की भावना का यहां नितान्त अभाव है। गालियों के द्वारा हास्य और मनोविनोद की प्रवृत्ति में समाज के व्यक्तियों के प्रति आत्मीय भाव प्रकट होता है। सहानुभूति के इस वातावरण-निर्माण में जहाँ एक ओर सहजवृत्ति कार्य करती है, दूसरी ओर सद्-सम्बन्ध में गुंथे हुए व्यक्तियों के मनोभावों को परखने का अवसर भी मिल जाता है कि वे साधारणतः अप्रिय एवं कड़वी बातों को पचाने की क्षमता रखते है या नहीं और इसलिये गालियां गाने के पश्चात् स्त्रियां अपने शुद्ध हृदय का परिचय देते हुए गीत में क्षमा भी मांग लेती है।

"म्हारी गाल्याँ को बुरो मती मानजो, ...दो दिन का मिलना रे।

प्रमुखतः गाल् गीत निम्नलिखित अवसरों पर गाये जाते हैं :—

१. जेवणार (विवाह का सामूहिक भोज) के समय (कन्या-पक्ष के यहाँ)
२. कन्या अथवा वर-पक्ष के समधी और समधन के अतिथि रूप में आने के समय।
३. जमाई जब ससुराल में जाता है।
४. भाई जब अपनी बहिन के ससुराल में जाता है।

गाल्-गीतो के हास्य और मनोरंजन के लिये उत्पाद्य प्रसंग-विधान मे निम्नलिखित प्रवृत्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं :—

१. व्याई अथवा व्यायन का असंगत एवं हास्यात्मक चित्रण।
१. मर्यादा के विपरीत पर-स्त्री-पुरुषों की सम्बन्ध कल्पना।
३. उपदेशात्मक प्रवृत्ति ।
४. हास्य के पुट में सामाजिक बुराइयों पर व्यंग्य, आघात।

व्यायन अर्थात कन्या अथवा वर की माता के अल्हड़ यौवन पर उसकी शौकीन तबियत पर व्यंग्य किया जाता है। शृङ्गार-प्रिया व्याइन का एक चित्र प्रस्तुत है।

गोविन्दलालजी वाली मल्ल मस्तानी, तेल मीठ से माथो न्हावे।
ऊपर बढ़िया अतर (इत्र) लगावे, पाटी पर गोटो चिलकावे।
रे वातो सोकीन केलावे, असी बात सुणन में आवे।
राती टींकीं कालो अंजन, दाताँ पे चोंप चिपकावे।
अँगिया कसती, जोबन मस्ती, चले उचकती, ठोकर खाती।
साळ् को पल्लो छिटकावे, रे वा तो सोकीन केलावे।
पतलो पेट, वा की उंडी डूंठी, दिल की घुण्डी खोलो व्यायण।
कम्मर पर कन्दोरो कूंची लटकावे, रे वा तो सोकीन केलावे .... १।१४५

यौवन-मस्त समधिन के चित्रण के साथ ही उक्त गीत मे सीधी साध्वी स्त्रियों के द्वारा चटक-मटक से रहने वाली शौकीन महिलाओ के प्रति आक्षेप की भावना भी मृदुलता के साथ प्रकट हुई है। व्यायिन के सम्बन्ध कुछ असंगत एवं हास्यप्रद कल्पनाएँ भी बड़ी विचित्र हैं :—

दारी....वाली म्हारे आई, बड़ी रे धर्मात्मा।
दारी रमक झमक करती आई, बड़ीरे धर्मात्मा।
दारी पेरूं ओढ़ूं करती आई, बड़ी रे धर्मात्मा।
दारी माथां में दोई चौपड़ लाई बड़ी रे धर्मात्मा।
दारी खेलूं-खेलूं करतो आई, बड़ो रे धर्मात्मा।
दारी बातां मे चुगल्यां लाई, बड़ी रे धर्मात्मा।
दारी माथां में दोई केरया लाई, बड़ी रे धर्मात्मा।
दारी म्हारे घरे पावणी आई, बड़ी रे धर्मात्मा। १।५०

बेचारी ब्यायण को धर्मात्मा बनाकर कितनी मीठी चुटकियाँ ली गई हैं कि जिसे पहिनने-ओढ़ने को नहीं मिलता, जिसे चलने का ढंग भी नहीं आता है, जिसके जीवन में अभाव एवं असन्तोष भरा हुआ है, जिसका स्वभाव चुगलखोरी का है। इसी प्रकार पढ़ने-लिखने और लेक्चर देने वाली महिलाओं की भी हँसी उड़ाई गई है। उसमें नवीन सभ्यता अपनाने की प्रवृत्ति के प्रति आश्चर्य एवं तिरस्कार प्रकट किया गया है।

........वाली लाडळी ठेसन पे चाली रे।
किताबाँ पढ़े दिवानी, असी नार कदी नो जाणी।
दारो लेक्चर दई री, किताबाँ पढ़े दिवानी।
बिड़ल्या चाव्या होठ तमारा, रे वा जन्टरमेन दिवानी रे....१।१५३

परम्परा-प्राप्त रूढ़ियों से ग्रस्त मालव की नारियों के सम्मुख एक समस्या है, यदि स्त्री पढ़-लिखकर फेशन-परस्त हो जाएगी तो घर का काम काज कौन करेगा ?

........वाली लाड़ळी, वा तो बाबू के पढ़वा जाय।
रे वा तो होगई जन्टर मेन, रसोई कौन बनावेगा ?
वा तो होगई बी. ए. पास, रसोई कौन बनावेगा....१।१४७

गाल्-गीतों में नारी-पुरुष के कुछ अमर्यादित यौन-सम्बन्धो का खुलकर प्रदर्शन हुआ है। निम्न जाति की स्त्रियों में अश्लील गीत निर्बाध रूप से गाए जाते है। नगरो की महिलाओं के गीतों में इस प्रकार के भावों का कुण्ठित रूप ही प्रकट हुआ है। इन गीतों में 'माल्जादी', एवं 'बांगड़' आदि शब्द नारी के लिए प्रस्तुत हुए हैं, जो स्पष्टतः यौन-संकेतों को प्रकट करते हैं। 'मालजादी' शब्द मालवी में एक गाली है, जिसका अर्थ होता है अनैतिक सम्बन्ध से उत्पन्न स्त्री। ऐसी स्त्रियों का गालियों में मखोल किया गया है।

........वाली असी माळजादी दारी।
आंगण मांड्या मांडना, पिछवाड़े मांडया मोर।
ब्याईजी तो सुई गया ने ब्यावण ने लेग्या चोर। वाली असी माल०....
बुझ गई चिमनी ने बन गयो खेल।
सैर करो तो प्यारी चलो अजमेर। १।१४६

पर-पुरुष के सम्बन्ध को लेकर प्रकट की गई भावना को कुण्ठित वासनाओं की अभिव्यक्ति माना जा सकता है। कुण्ठा पर अलग से विस्तृत विचार किया गया है।[1] एक स्त्री

1. देखें अध्याय पाँचवाँ।

चार-चार पुरुषों को आकर्षित करे यह भी एक अवांछनीय एवं वेश्या जैसा आचरण है। किन्तु पर-पुरुष-संसर्ग का उल्लेख इन लोकगीतों में स्थान-स्थान पर हुआ है।

तांबे के हण्डे में ताता सा पानी, न्हावन को तैयार।
न्हाने वाली एकली जीं, न्हिलावा वाला चार....१।१४७

स्नान करने वाली तो एक ही है किन्तु नहलाने वाले चार पुरुष हैं। इसी प्रकार क्रमशः भोजन करते समय, ताम्बूल ग्रहण करते समय, चौपड़ खेलते समय, एवं फूलों की सेज पर सोते समय परिचर्या के लिए चार पुरुषों के उपस्थित होने की कल्पना की गई है। कुछ गीतों में उपदेश भी दिए गए हैं :—

सुनो रामचन्दरजी वाली, सुनो लछमनजी वाली।
थ्हने कहूँ हकीकत सारी, सुणजों ध्यान लगाय।
प्यारी ए सुणजो ध्यान लगाय, पति की सेवा करना।
धरम तुमारा ए नार, पति की सेवा करना।

पति को गर्म जल से स्नान कराने, गरम भोजन कराने, झारी से ठण्डा पानी पिलाने एवं सुन्दर पुष्पों के सेज बिछाकर पति की परिचर्या आदि के उल्लेख के साथ गीत पूर्ण होता है। (१।१४८) यह गीत आधुनिक सुधारवादी प्रवृत्ति की देन है। कुछ गीतों में अमेल विवाह, बाल-विवाह आदि कुरीतियों पर भी अप्रत्यक्ष रूप से व्यंग्य किया गया है। व्यंग्य को हास्य में छिपाया गया है। क्षण भर के लिए व्याई को पांच बरस का बताकर व्याइन के लम्बे मोटे स्वरूप की कल्पना का आनन्द लेकर मनोरंजन भले ही कर लिया जावे किन्तु गीत की जन्मदात्रिया के मस्तिष्क पर समाज में देखे जाने वाले बेमेल युग्म का चित्र अवश्य रहा होगा, साथ ही बड़ी-नार के छोटे एवं अयोग्य बालम की दुर्दशा-मय स्थिति भी हमारे सामने आ जाती है :—

पाँच बरस का... ....
दारी बांगड़ सरीकी नार, बालम छोटा-सा।
मर जावे थ्हारा माय ने बाप,
म्हाने लाजा मत मारो भरतार। बालम छोटा सा....
घट्टी पिसता म्हारी हथेलियां दुखे,
आटो पिसवावो भरतार। बालम छोटा सा।
दारी बांगड़ सरीकी नार....बालम छोटा सा।

पारसी [जमाई की ज्ञान-परीक्षा]

पहेलियों की परम्परा अत्यन्त ही प्राचीन है। भारत में नहीं अपितु सारे संसार की अन्य जातियों में भी इन पहेलियों का प्रचलन पाया जाता है। फ्रेजर के अनुसार पहेलियों का जन्म उस समय हुआ होगा जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट बात कहने में किसी प्रकार की अड़चन या असुविधा पड़ी होगी।[1] किन्तु विभिन्न भाषाओं की पहेलियों को देखने

---

१. Frazer, The Golden Bough. Vol IX, 121 ff.

से उसमें निहित यह प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है कि जानकार मनुष्य दूसरे व्यक्तियों के ज्ञान को परखना चाहता है। हमारा असाधारण ज्ञान अज्ञानियों के लिये कौतूहल का विषय बन जाता है। यह एक प्रकार से बुद्धि वैभव का खेल है। मनोरञ्जन के साथ ही स्वयं के ज्ञान-विनास में अन्य व्यक्ति के अज्ञान की मजाक उड़ाकर कुछ क्षणों के लिये हास्य का वातावरण उपस्थित करना ही इन पहेलियों की उत्पत्ति का कारण हो सकता है। ये पहेलियां वक्ता के लिये अस्पष्ट हो भी नहीं सकती। पहेलियों के उत्तर देने वाले व्यक्तियों के लिए अस्पष्ट अवश्य हो सकती हैं।

वैदिक काल से लेकर आज तक भारत में पहेलियों की परम्परा का स्रोत उमड़ता चला आ रहा है। वैदिक होता (होतृ) एवं ब्राह्मण के लिए ब्रह्मोदय के रूप में अश्वमेधादि यज्ञों में पहेलियों का स्वरूप विशिष्ट एवं सीमित वर्ग के लिए ही कौतूहल अथवा लोकाचार की वस्तु रहा होगा किन्तु आज तो यह जन-सामान्य की वस्तु है। आधुनिक युग के सभ्य और सुशिक्षित व्यक्ति पहेलियों के बुद्धि-वैभव से दूर रहकर उसे बालकों की वस्तु मानते हैं, परन्तु ग्रामीण-समाज अशिक्षित होते हुए भी परम्परा के कारण ज्ञान एवं कौतूहलगत बुद्धि विलास को सुरक्षित रखता चला आ रहा है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मालवी पहेलियों में मिल सकेगा। यहाँ पहेलियों के दो स्वरूप मिलते हैं :—

१. गद्यात्मक पहेलियाँ....सूत्र शैली में।
२. पद्यात्मक पहेलियाँ....गेय शैली में।

प्रथम प्रकार की पहेलियाँ साधारण स्त्री-पुरुषों के मुख पर नाचती रहती हैं। ग्रामीण समाज इसमें अधिक रस लेता है। यहाँ तक कि छोटे बालक भी बुद्धि की परख के इस खेल में पीछे नहीं रहते।[१] दूसरे प्रकार की पहेलियाँ गेय होती हैं और इनका स्थान लोकगीतों में माना जावेगा। ये केवल स्त्रियों के द्वारा ही गाई जाती हैं। सामान्यतः विवाह आदि अवसरों पर जमाई की बुद्धि और ज्ञान की परीक्षा के लिये मालवा में 'पारसी' गाई जाती है। 'पारसी' शब्द मालवी में गेय पहेलियों के लिए प्रयुक्त होता है। वैसे पारसी एवं फारसी में बहुत कुछ-साम्य भी है। पारसी का मूल फारसी शब्द ही जान पड़ता है। क्लिष्टता के कारण कठिनाई से समझ में आने वाली फारसी भाषा की लाक्षणिकता इन मालवी पारसियों में देखी जा सकती है, और इस दुर्बोधता के कारण पहेलियों को मालवा में पारसी कहा गया है। पारसी शब्द मालवी में संभवतः गुजराती भाषा से ग्रहण किया गया है। अर्वाचीन गुजराती में भिन्न-भिन्न धन्धे करने वालों की गुप्त भाषा को, सांकेतिक बोली को पारसी कहते हैं! व्यापारी और दलालों की भाषा पारसी होती है। इस समय यह शब्द प्रायः व्यवहार में नहीं आता।[२] गुजराती में भले ही उक्त शब्द का प्रचलन बन्द हो गया हो। मालवा में विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों में पारसी भी एक आवश्यक अंग है। वैसे प्राण

---

१. गद्यात्मक पहेलियों के लिए विक्रम में प्रकाशित, 'मालवी ग्राम साहित्य की पहेलियां' शीर्षक के मेरे लेख देखें :—

१. विक्रम, भाद्रपद सं० २००७ २. विक्रम, माघ सं० २००७।

३. विक्रम वैसाख सं० २००६।

२. बद्रीप्रसाद सांकरिया का लेख....राजस्थान भारती....पृष्ठ २६२।

(द्विरागमन) लेने के लिये जमाई जब ससुराल जाता है, मनोरंजन एवं स्वागत की दृष्टि से पारसी का गाया जाना आवश्यक समझा जाता है। विवाह के अवसर पर मंडला के गोंड, प्रधान और बिर्होर आदि जातियों में पहेलियां बुझाने की प्रथा का उल्लेख आर्चर[1] एवं डॉ० वेरियर एलविन ने भी किया है।[2] यह एक आश्चर्य की बात है कि भारत के इन आदिवासियो की प्रथा को मालवी एवं राजस्थानी महिलाओं ने किस प्रकार अपना लिया। जो कुछ भी हो सम्पूर्ण मालव में पारसी, मनोरंजन के साथ ही विनोद-भरी चुटकियाँ लेने का एक अनुपम साधन है। जिस प्रकार गद्यात्मक पहेलियों का अर्थ बतलाने में असमर्थ व्यक्ति को 'मूरख या भाटे का टोल' अर्थात निपट मूर्ख कहने में कोई नहीं चूकता[3] इसी प्रकार पारसियो को बुझाने में असमर्थ व्यक्तियो को घर की नारं हारने या दोवड़ गोठ (दोनों ओर का प्रीति भोज) देने की बात कही जाती है। किन्तु हास-परिहास और व्यंग्य-विनोद में कभी-कभी बुद्धू बन जाने पर, पारसियों का सम्यक् उत्तर न देने पर इस प्रकार के व्यंग्य-वाणों को सहन करने में भी लोग बड़ा आनन्द लेते हैं।

इन पारसियों को गाते समय मूल पहेलियों के साथ गेयता की दृष्टि से निम्नलिखित पक्तियाँ भी जोड़ दी जाती हैं :

१. म्हारा घड़ा मारुजी।
२. बूजो जमई (अथवा बेवई) म्हारी पारसी, नी तो हारो घर की नार।
३. नुकली (नकली) होय तो नुकल बताओ,
म्हारी पारसी को अरथ बताओ बना।
४. केवो सिरदार म्हारी पारसी, नी तो लागे दोवड़ गोठ।

पारसी के पूरे गीत निम्न प्रकार से बनते हैं :—

१. मोती बिखरिया चन्नन चौक में,
म्हारी बई से सोरिया नी जाय.......घड़ा मारुजी।
नौ सौ जण्या ने नौ सौ पेट में, नौ सौ बड़ला के हेट.... ...घड़ा मारुजी।
२. उदियापुर की चूनडी ओढूं वार तेवार,
ओढ़न वाली पदमनो जी निरखन वालो गिवांर।
बूजे नी जमई म्हारो पारसी, नी तो हारो घर की नार....घड़ा मारुजी।
३. लीला कुआ को लीलो पानी, हम लीला हो जावां जी बना।
नुकली होय तो नुकल बनाओ, म्हारी पारसी को अरथ बताओजी बना।
४. चलताँ घसेजी बैठा वा हँसे, उबा रेवेजी चुप्प।
केवो सिरदार म्हारी पारसी, नी तो लागे दोवड़ गोठ।
गोठ गोठिला खई गया, जमई चाटे ओठ।

---

१. The Indian Riddle Book. Number of men in India. Nos XVII–XIV. Dec.1943.
२. Notes on The use of Riddle in India, pp. 315–316.
३. पान सरका पातला पापड़ सरका गोल, जो हमारी बारतां नी बूंजे उ भाटा को टोल।

रेखाङ्कित पंक्तियां मूल पारसी हैं एवं अन्य पंक्तियां गेयता एवं व्यंग्य-विनोद की दृष्टि मे जोड़ी जाती हैं। इन पहेलियां के रचना-कौशल में छन्द या पंक्तियों की दृष्टि से नियमितता नहीं मिलेगी। रचना-विधान की दृष्टि से इन पारसियों के चार प्रकार होते हैं:—

१. कुछ पारसियाँ दोहे, छन्द की पूर्णता लिये हुए हैं।[1]

२. कुछ पारसियों में केवल एक पंक्ति में ही भाव प्रकट कर दिये जाते हैं।

भैंस व्याणी ने पाड़ो पेट में चीको गया गुजरात, घडा मारुजी....१
माय मोड़ी ने बेटी झीतरी छोरा-छोरी एण्डा-बेडा होय, घडा मारजी....
लीलो चूड़ो ने लीली कांचली लीलो मारुणी को बेस, घड़ा मारुजी....३२

३. चौपाई जैसी अर्धालियाँ जिसमें तुक भी मिल जाती है।

जल भर झारी सिराने धरी, सारी-सारी रैन हूँ प्यासे मरी। ४
सोले हाथ की साड़ी सिराने, सारी सारी रैन हूँ ठन्डा मरी। ५

४. वर्ण्य विषय के अनुसार कम या अधिक पंक्तियां होती हैं, जिनकी निश्चित संख्या निर्धारित नहीं होती।

जंगल जाना, लकड़ी लाना, आली नी लाना, सूखी नी लाना।
लकड़ी लई ने जल्दी आना.... ... . ६

---

१. पारसी के गूढ़ अर्थ की प्रवृत्तियों को लिए हुए दोहों का प्रयोग सोरठी गीत-कथाओं में भी हुआ है। इन गेय-पहेलियों को समस्या कहा गया है। प्रेम-कथाओं में नायिका की जो कुछ समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं। और उनका सही उत्तर देने पर नायक की योग्यता की परख हो जाती है एवं दोनों का सम्बन्ध विवाह द्वारा दृढ़ हो जाता है। गुजराती लोकगीतों में प्रचलित गीत-कथा 'सोन हलामण' में लगभग २० समस्यायें दी गई हैं। इन समस्याओं में एवं मालवी के गेय पहेली पारसी में विशेष अन्तर दृष्टिगत नहीं होता, केवल प्रयोग-प्रसंग में ही अन्तर है। 'पारसी' विवाह के अवसर पर गाई जाती है। और उसकी प्रवृत्ति मुक्तक जैसी है, जब की समस्या कथा-विशेष का एक आवश्यक अङ्ग है और उसका विवाह के गीतों से कोई संबंध नहीं है। कुछ गुजराती समस्यायें उल्लेखनीय हैं:—

लंक लपेटन सीतहर नहीं लंकापत राव।
जे कारण कौरव हन्या ते मोकल म्हारा राव।

जो लंक लपेटन है अर्थात् कमर पर लपेटा जाता है। सीत (ठण्डी) का हरण करने वाला है किन्तु लंकापति रावण नहीं है। लंक एवं सीत शब्द में श्लेष का सौंदर्य मार्मिक है। जिसके कारण कौरव सैन्य का संहार हुआ है। राजा वह वस्तु हमारे लिए भेजना। द्रोपदी की चीर-हरण की घटना के कारण ही महाभारत हुआ था। उक्त पहेली का उत्तर हुआ ····रेशमी चीर।

—विस्तृत अध्ययन के लिये देखें, सोरठी गीत—कथाओ (गुजराती) पृष्ठ ५–१२।

आवो कंवर, तम घणा दन में आया ।
बालकपण की तमारी अवस्था, आता मचई दी भारी धूम । ७

भावों की स्वच्छन्द एवं प्रकृत अभिव्यक्ति के कारण इन पारसियों में एक ही तरह का रचना-विधान मिलना संभव भी नहीं है । केवल गेय तत्व को प्रमुखता देने का ध्यान अवश्य रखा गया है । पारसियां में सामान्यतः जीवन की देखी-परखी वस्तुओं का ही वर्णन प्राप्त होता है परन्तु इन वस्तुओं के सम्बन्ध में कौतूहलपूर्ण, आश्चर्यजनक एवं अनहोनी कल्पनातीत सूझ को देखकर परिष्कृत और व्यापक बुद्धि वाले व्यक्ति को भी कुछ देर सोचना पड़ता है । शब्दों की मार्मिकता एवं वाणीविलास का एक सुन्दर उदाहरण है :—

रंग रूप ने रस भरी किरपा करजो मोय ।
ऐसी नारी भेजजो भोर भये नर होय ।

मोगरे की कली का सन्दर्भ है । रात भर वह नारी अर्थात कलिका के रूप में ही लता के वृन्तों पर झूमती रहती है एवं प्रातः उषा की ललाई के साथ ही नर अर्थात पूर्ण विकसित पुष्प का स्वरूप धारण कर लेती है ।

कुछ पारसियों में कल्पना बहुत ही सहज एवं बोधगम्य है । उनके उत्तर के संकेत भी वहीं स्पष्ट हो जाते हैं :—

सूई सरिकी पातली जी म्हने जेबाँ में राखोजी बना....८
चाँदी सरिकी चमकूं जी, म्हने हार्थां में राखोजी बना....९
केवड़ा सरिकी वासूं जी, म्हाने बालाँनी राखोजी बना....१०
कोयला सरिकी हूँ कालीजी, म्हने नैनों में राखोजी बना....११

किसी वस्तु का वर्ण, रंग-विशेष भी कुछ पंक्तियों के सृजन का आधार है ।

धोळा कुआ को धोळो पानी, धोली भँवर जी की सेजाँ जी
सिल्ला ऊपर धरी सिलपट्टी, हम धोला हो जावाँजो बना....१२
काला कुआ को कालो पानी, हम काला हो जावाँजी बना....१३
लीला कुआ को लीलो पानी, लीली भँवरजी की सेजाँजी बना....१४

साबुन, घड़ी, पेन आदि वस्तुओं पर प्रचलित पारसी अपने अविर्भाव के युग को स्पष्ट कर देती है । इनकी आयु अधिक नहीं है किन्तु विवाह के अवसर पर आवश्यक रूप से गाई जाने वाली निम्नलिखित पाँच पारसियों का लोकाचार की दृष्टि से बड़ा महत्व समझा जाता है ।

जल भर झारी सिराने धरी, सारी सारी रैन हूँ प्यासा मरी....१५

इत्र की शीशी का आकार जल से भरी हुई सुराही के समान ही होता है । शय्या के पास सिरहाने धरी हुई किसी इत्र की शीशी से प्यासे व्यक्ति की प्यास बुझ भी नहीं सकती ।

सोले हाथ की साडी सिराने धरी, सारी रैन हूँ तो ठण्डा मरी....१६

बिछाने की वस्तु जाजम अथवा सोलह हाथ लम्बी पगडी से कहीं शीत का निवारण भी हुआ है ?

मावा की छाब सिराने धरी, सारी सारी रैन हूं तो भूखा मरी। १७

—पुष्प मालाओं से घ्राणेन्द्रिय तृप्त हो सकती हैं, किन्तु वर्ण-साम्य के कारण उसे मावा (खोवा) मानकर भूख तो नहीं मिटाई जा सकती।

चम्पा की डाली म्हारे सिराने धरी, सारी सारी रैन हूं तो वासां मरी...१८
वो लाया डाबा आलो सोड, वा सोड म्हारा सिराणे धरो.
सारी सारी रात हूं तो धरत्या पड़ी ....✻१९

बिदाई के गीत

बिदाई के गीत स्त्रियों द्वारा गेय सभी गीतो में अधिक करुणापूर्ण है। विवाह के मङ्गलमय आयोजन का अवसान एक करुण स्थिति में होता है। वास्तव में कन्या की बिदाई का दृश्य बड़ा ही मर्मस्पर्शी होता है। नारी का मातृत्व यदि अपने चिर-पालित वात्सल्य के आधार से वियुक्त होता है तो वहाँ हृदय का उभार इस समय कुछ द्रवित होने लगता है। गृहस्थ की बात तो जाने दीजिये, क्योंकि दुःख-सुख की—हर्ष-विमर्श की भावनाओं में वह आन्दोलित होता रहता है, किन्तु तपस्वी एवं विरक्त व्यक्तियों के हृदय पर भी इस प्रसङ्ग का मार्मिक प्रभाव पड़ता है। यह मानो हृदय की चिरन्तन भावना का एक अनुपम प्रसंग है। शकुन्तला की बिदाई के समय महर्षि कण्व का हृदय भी भावनाओ के संयम की सीमा के बांध को तोड़कर वात्सल्य के कारुणिक अनन्त में लहरा उठा था। युग के युग बदल गये किन्तु मानव का शुद्ध, सात्विक हृदय अपने शाश्वत स्वरूप को कभी भी विकृत नहीं कर सका है। भाव-साम्य की दृष्टि से कालिदास के युग में और आज के मानव-हृदय की चिर-पोषित भावना में कोई अन्तर नहीं आया है। बेटी ससुराल जा रही है, आत्मजा पराई हो गई है, कुछ क्षण ही सही उसे रोक लेने की इच्छा होती है। विवाह के आनन्दोत्सव की सम्पूर्ण मिठास कन्या के लिये भी माता की गोद का अन्तिम आश्रय छूटते समय जहर के समान कड़वी बन जाती है। माङ्गलिक वेश-भूषा धारण किये हुये आभूषणों से विभूषित कन्या का श्रीमुख घूँघट में प्रेमाश्रुओं से घुलकर भावना को अवश्य निखार देता है। कन्या बिदाई के क्षणों को कुछ समय के लिए टाल देना चाहती हैं, किन्तु उसकी भावना मौन होकर जड़ हो जाती है। बिदाई के गीत मानो उसकी भावना को मुखर कर देते हैं :—

घड़ी एक घोड़लो थोबजो रे सायर बनड़ा,
माता-बई से मिलवा दो रे हठीला बनड़ा।

✻ अर्थ :—

१. शहद २. खजूर का वृक्ष ३. कंजी (काई) ४. इत्र की शीशी ५. जाजम या पगड़ी
६. सर्प ७. खटमल ८. फाउण्टेन पेन ९. घड़ी १०. इत्र
११. सुरमा (काजल) १२. सुरमा १३. जामुन का फल १४. कंजी १५. इत्र की शीशी
१६. जाजम १७. पुष्पहार १८. लहसुन अथवा लौंग १९. पलंग।

माता-बई से मिलने कँई करो सायर बनड़ी,
दोनीं पालखी में पॉव, घरे चालो आपणा।
कोठी का कणे थाप्या बई का डेयरा, बई तो चाल्या परदेस।
सम्पत होय तो दादाजी लावजो, नी तो रीजो तमारा देस।
सम्पत थोड़ी ने ऋण घणो, बई ने लावां बेगा बेग........। १।७२

वधू पतिगृह की ओर प्रस्थान करने के लिये उद्यत हुई। उसकी कामना कुछ क्षणों के लिये अपनी परिवार के सम्बन्धी, माता-पिता, सखी-सहेलियों से एक बार और मिलने की होती है। वह वर मे अनुरोध करती है कि कुछ क्षणों के लिए घोड़े को रोक ले। वर का उत्तर भी उचित ही है कि इस मिलन में कितना स्थायित्व रहेगा! तुम तो अपने घर चलो। गीत के उत्तरार्ध में कन्या की विचित्र मनोस्थिति का चित्रण है। वह पिता का घर छोड़ रही है। जीवन के एक नवीन क्षेत्र में पदार्पण कर रही है, किन्तु पितृ-गृह से क्या वह सदा के लिये प्रस्थान कर रही है। चलते समय वह अपने दादाजी—पिता के समक्ष स्वयं की विवश स्थिति को रख देती है।

कोठी के पास तुम्हारी बेटी के डेरे लगे हैं,
तुम्हारी प्रिय बेटी तो अब परदेस जा रही हैं।
यदि आप के पास सम्पत्ति हो तो मुझे फिर बुला लेना,
नही तो अपने देश रहना।

पिता कन्या को आश्वासन देता है :—

जो भी सम्पत्ति थोड़ी है, ऋण भी बहुत है,
तो भी बेटी तुम्हें तो शीघ्र बुला लेंगे।

कुछ स्थानों पर विशेषकर इन्दौर, उज्जैन एवं रतलाम-मन्दसौर आदि नगर की स्त्रियों के गीतों में उपरोक्त गीत का पाठान्तर भी सुनने को मिलता है।

क्रस्नजी घुड़लो पलानिया, बई रुक्मण हुआ असवार।
पीछे फिर ने रुक्मण जोवजी, काकाजी ऊबा मांडा हेठ।
थें घर जाओ काकाजी आपणे, म्हें तो चाल्या परदेस।
सम्पत होय तो लावजो, नी तो भला परदेस।
सम्पत थोड़ी ने बई रिण घणो, बई ने लावां बेगा बेग।....१।१७१

यहां कन्या को रुक्मणि और वर को श्री कृष्ण का स्वरूप दिया गया है। श्री कृष्ण एवं रुक्मणि सामान्य वर-वधू के प्रतीक बन गये हैं किन्तु भाव-प्रदर्शन की सार्थकता बड़ी प्रबल है। कृष्ण रुक्मणि का हरण कर लाये थे। यहाँ पर भी वर माता-पिता के गृह-आंगन से सदा के लिए कन्या को लिए जा रहा है। दृश्य हृदय-द्रावक है। जैसे ही वर ने स्वगृह की ओर चलने के लिए अश्व को प्रस्तुत किया वधू अश्वारूढ़ हो गई। दोनों प्रस्थान करने के लिए उद्यत ही थे कि विवाह मण्डप के नीचे खड़े हुए काकाजी ने आकांक्षा प्रकट की,

बेटी ! जाते जाते पीछे मुड़कर तो देखती जाओ। किन्तु कन्या सयानी है। काकाजी को समझा देती है :—

काकाजी आप घर जाओ, हम तो परदेस चले।
आपकी सामर्थ हो तो मुझे बुला लेना, नही तो मैं परदेश में भी अच्छी रहूँगी।

पिता के व्यथित हृदय को सान्त्वना देने के लिये उक्त शब्दावलियाँ कन्या के मुख से चाहे न निकले किन्तु पिता का हृदय तो कन्या की मनोदशा से परिचित है कि स्वप्न में भी वह मायके में आने के लिये विकल रहेगी। कण्व के तपोवन को छोड़ते हुए प्रियगृहगमनोत्सुक शकुन्तला के हृदय में भी यही कामना थी :—

'तात मैं इस पवित्र तपोवन को फिर कब देख सकूंगी।'[1] उस समय कण्व ने आश्वाशन दिया था कि गृहस्थाश्रम के सब सुखों को भोगकर, चक्रवर्ती पुत्र को जन्म देकर अपने पति के साथ इस पितृगृह-तुल्य तपोवन में अवश्य आओगी।[2] किन्तु यह तो कर्तव्यनिष्ठ ऋषि एवं उस युग के कण्व की बात हुई। आज का पिता बेटी के इतने सुदीर्घकालीन वियोग को सहन करने में असमर्थ रहता है, और न कन्या ही पुत्र-प्राप्ति तक मायके से मुंह मोड़ सकती है। यहाँ तो 'बाई ने लावां बेगा-बेग' की भावना का व्यवहार सामाजिक मान्यता लिए हुए है।

किसी भी सद्गृहस्थ के लिये ममता का बड़ा महत्व होता है। साथ-साथ रहने एवं सामीप्य-भावना के कारण मनुष्य का ममत्व जब पेड़-पौधे एवं पशु-पक्षी तक के लिये अपने हृदय में स्थान बना लेता है और इनको छोड़ते समय उसे दुख होता है तब अपने 'कालजे की कोर' बेटी को वियुक्त होते देख दुख क्यों न होगा ? स्त्रियाँ जब उपरोक्त गीत गाती हैं तब उनके कण्ठ हृदय की उभारमय स्थिति के कारण अवरुद्ध हो जाते हैं। गीत का स्वर भारी आवाज में निकलता है एव अश्रुओं की अविरल धारा रोके नहीं रुक पाती। कठोर हृदय पुरुषों की आँखें भी सजल हो जाती हैं। इस प्रकार के करुणा-पूर्ण प्रसंग विश्व-साहित्य में काव्य-प्रेरणा के आदि स्रोत माने गये हैं। जब बेटी जाने लगती है तब उससे सम्बन्धित सभी वस्तुयें एवं कार्य करुणा उत्पन्न करने का माध्यम बन जाते हैं। शकुन्तला की विदाई के समय कण्व की भी यही मनोदशा थी। सहोदरा-सा स्नेह रखने वाली शकुन्तला द्वारा पालित अतिमुक्त लता का सिंचन कौन करेगा ? मृग शावक को स्नेह से कौन पालेगा ? आदि विचार ऋषि के हृदय को अधिक वेदना-पूर्ण बना देते हैं। शकुन्तला ने कुटिया के सामने नीवार धान के पौधे लगा रखे थे।[3] इनके द्वारा भी करुण रस मूर्त हो उठा है। कालिदास के ये चिरन्तन भाव मालवा की नारियों के लोकगीतों में आज भी शत-शत युगों के व्यवधान को चीरते हुए प्रकाशित हो रहे हैं :—

---

१. तात कदानु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये....अभिज्ञान शाकुन्तल, चतुर्थ अङ्क।

२. वही, श्लोक २०।

३. वही, श्लोक २१।

बनड़ी त्हारा काकाजी बाग लगायो रे, बनड़ी त्हारा वीराजी बाग लगायो रे।
बनड़ो त्हारा बिन सिंचेगा कुण ? म्हारा हरिया बन की कोयलड़ी।
बनड़ो केरी खाजे ने नीबू चूसजै, बनड़ी सीताफल नो घणो रे सवाद।
म्हारा हरिया बन की कोयलडी, त्हारा बिन सूनो रेगा यो बाग। १।१७६

गाँव से कन्या की बिदाई हो रही है। उद्यान की रखवाली करने वाली मालिन का हृदय भी भर आता है। वह कहतो है कि बेटी तुम्हरे काका और भाई के द्वारा लगाया गया बाग अब सूना हो जायगा। तुम्हारे बिना अब उसे कौन सींचेगा ? तू इस हरे-भरे उद्यान की कोयल थी। बड़े चाव से कच्ची केरी, नीबू, सीताफल का स्वाद लेती थी। ये वस्तुयें अब कहाँ प्राप्त कर सकेंगी ? कन्या के लिए 'हरिया बन की कोयलड़ी' उपमान कितना सार्थक एवं मधुर है : कन्या के कारण गृहस्थी के उद्यान में चहल-पहल रहती है, किन्तु इस उद्यान का वसन्त चिरस्थाई नहीं हो पाता। पञ्चम स्वर से आनन्द की किलकारियाँ भरने वाली कन्या-कोकिल को जीवन के सावन में अन्य घर को खेती को हरा-भरा करने के लिए जाना ही पड़ता है। जीवन की बड़ी विषम एवं विवशतापूर्ण स्थिति है। 'अर्थोहि कन्या परकीय एव'[१] कन्या का जन्म ही मानो पराई होने के लिए होता है। कुछ क्षणों के लिए वृक्ष पर आकर बैठी हुई चिड़िया और कन्या में कुछ भी अन्तर नही है। कन्या के लिऐ हरिया बन की कोयल एवं 'लीला वन नी चरकलो' आदि अभिव्यक्तियो में राजस्थान एवं गुजरात के नारी-मानस की भाव-साम्य की एकात्म स्थिति दर्शनीय है।

१. थारी आले दिवाले गुड़िया धरी,
वन खण्ड की ए कोयल बन खण्ड छोड़ कठे चली।
थारा बाबासा बाग लगायो ए बनड़ी,
थारे बिन कुण सींचेगा ए, म्हारे हरिया वन री कोयली।[२]

२. दादा ने आँगण आम्बलो, आम्बलो घोर गंभीर जो।
अमे रे लीला वननी चरकली, ऊड़ी जाशु परदेस जो।[३]

विरह से उद्बोधित ममत्व तो जननी के हृदय में ही परखा जा सकता है। माता का हृदय जब शून्य होने की स्थिति के क्षणों तक पहुंचता है, तब उसकी वात्सल्य-भावना का प्रभाव उमड़ पड़ता है। मातृरूप में नारी का जीवन ही मानवता को जन्म देकर शैशव के दुलार-प्यार से परिवर्धित करने में बीतता है। किन्तु कन्या बड़ी होकर जब उसको काम में सहायता देने के लिए योग्य होती है, तब वर आकर उसको ले जाता है। चम्पा की कली को हृदय का अमीरस पिला कर पोषित करने के पश्चात माली आकर उसे तोड़ ले जाता है, तब कर्तव्य-बाधित हृदय पश्चाताप करके रह जाता है :—

१. अभिज्ञान शाकुन्तल, चतुर्थ अङ्क, श्लोक २१।

२. राजस्थान के लोकगीत; पृष्ठ १९०, १९१।

३. चूंदड़ी भाग १, पृष्ठ १००।

में तो हरखे चांपलीओ रोपावीओ रे !
मारो उछेरतां भव जाय, फलड़ां वेलाए माली लई गया रे !
में तो हरखे ने लाड़वई मोटां कर्या रे, मारो उछेरतां भव जाय !
काम नी वेलाए जमाई लई गया रे,
में तो हरखे ने जियावर मोटा कर्या रे, मारो उछेरतां भव जाय।
कमाई वेलाए वहुए वश कर्या रे........।[1]

बिदाई के गीतों के अन्तर्गत माता के हृदय की ममता और वात्सल्य का मनोरम रूप भी फूट पड़ता है। वर के तोरण पर आते ही सुहाग-कामण के गीत गाये जाते हैं। कन्या की माता मानो वर की माता से अनुनय करती है कि उसकी स्नेह-पालिता लड़की को किसी प्रकार का कष्ट मत देना :—

ओ सासू गाळ मत दीजै, ओ सासू दुखड़ो मत दीजै।
ओ म्हारी कर करियारी री बेटी, म्हारा घर आंगण को टमक्यो। ×
ओ म्हें तो दूध पाई ने की मोटी, ओ म्हें तो लाडू दई ने लड़ाई।
ओ म्हे तो पापड़ दई ने पौढ़ाई, ओ म्हे तो खाजा दई ने खेलाई। ०
ओ म्हारी कर करियारी बेटी, ओ सासू गाळ मत दीजै। १।१७५

लड़की को बिदा करते समय परिवार के वयोवृद्ध कुछ आशीर्वाद एवं भावी जीवन को मङ्गलमय बनाने की कामना से कुछ उपदेश दिया करते है। शकुन्तला को गृहस्थ जीवन के लिये दिया गया मार्ग-दर्शन का संकेत तो विश्व-साहित्य मे श्लोक चतुष्टय के नाम से अमर हो गया किन्तु जनता की वाणी ने उसे अपने सांचे मे ढाल लिया। कन्या ससुराल जा रही है मानो वह स्वयं माता और पिता से आशीर्वाद माग रही है :—

लाड़ी चाली दादाजी दरबार, दो म्हारी माता बई अखंड सुहाग। ❀
लाड़ी चाली काकाजी दरबार, दो म्हारी काकीबाई अम्मर सुहाग।
औरा ने दूं बई पुड्यां बंधाय, म्हारी लाडली बेटी ने थाल भराय।
पुड़की री बाँध्यो ढ ुल ढ ुल जाय, थाल भरयो बई को अम्मर सुहाग। १।१७७

सुहागमय आशीर्वाद की आकाँक्षा पर माता, काकी आदि महिलाओ की ओर से उदारता पूर्वक कन्या के लिये तो सुहाग की अखण्डता अमरता के थाल भर आशीर्वचन दिये जाते हैं, जब कि अन्य व्यक्तियों को केवल पुड़ियों में बाँधकर ही दिये जाते हैं और वह भी कागज की पुड़ियों के फट जाने पर मोती के दाणो के समान ढुलक सकता है, बिखर सकता है किन्तु बेटी को दिया गया सुहाग का वरदान तो अमर है।

इन आशीर्वचनों के साथ नगर की स्त्रियों ने अपनी सीता-तुल्य कन्या को कुछ उपदेश भी दिये हैं :—

सजो जी सिन्गार चतुर अलबेली, समझ समझ पर धरियो सीता।
देस पराया ने लोग पराया, देवर पराया ने देरानी पराई। १।१७८

---

१. चूंदड़ी भाग १, पृष्ठ १०५, १०६।
पाठान्तर —× रमत्यो, ० सिखाई, ❀ मम्मर।

बधावे

भारतीय संस्कृति में मङ्गलमय जीवन की कामना सर्वाधिक रूप से व्याप्त है। भारतीय नारी ने अपने हृदय की मङ्गलमय भावना को प्रत्येक शुभ अवसर पर गीतों में प्रकट किया है। जन्म और विवाह के अवसर पर आनन्द मङ्गल के उल्लास को प्रकट करने के लिए मङ्गलाचरण आदि के अतिरिक्त गीतों के द्वारा अपने परिजनों का अभिनन्दन किया जाता है। पुत्र जन्म की तरह विवाह का प्रसंग भी बड़ा महत्वपूर्ण है। विवाह के अवसर पर परिवार के लोगों के अतिरिक्त अन्य स्नेही एवं इष्ट-मित्र भी आते है। उनके शुभागमन एवं सत्कार का लोकाचार गीतों से सम्पन्न होता है। विवाह में सम्मिलित होने के लिए आये हुए अतिथि का मङ्गलमय कलश को लेकर स्वागत करने के लिए लोकाचार को मालवी में बधावा कहते हैं। बड़-बदऊ (बड़े जमाई का स्वागत), बहू-बधाना (वधू का स्वागत) आदि लोकाचार से भी बँधावे शब्द का भाव स्वागत के अर्थ में ही व्यञ्जित होता है। बधाने के समय गाये जाने वाले गीतों को भी 'बधावा' कहते हैं।

बधावा शब्द में बधाई एवं अभिनन्दन की भावना निहित है। जिसमें किसी आनन्द-मय प्रसंग पर हृदय की प्रसन्नता प्रकट की जाती है। जिस व्यक्ति के यहा आनन्द बधाई का सुयोग प्राप्त होता है उसके द्वारा एवं घर-आंगण में उल्लास का वातावरण छा जाता है। मालवी स्त्रियों द्वारा गेय बधाओं में वर्णित परिवार की नारी का गर्व झलक उठता है।

जी ओ पेलो बधावो म्हारे आयो, ओ सुसुरजी ने रंग से बदायो।
लियो सासू ने गोदी झेल, रजवो बधावो म्हारो आवियो।
दूसरो बधाओ म्हारे आवियो, मोकल्यो म्हारा काकाजी रो पोळ।
जी ओ काकाजी ने रंग से बदायो, लियो काकाजी ने गोदी झेल। ३।१०

(परिवार के अन्य व्यक्तियों के नामों का उल्लेख)

विवाह में अतिथियों के स्वागत-सम्मान के अतिरिक्त विशिष्ट लोकाचार एवं देव-पूजा आदि की समाप्ति पर भी बधावे गाये जाते हैं। शीतला, भैरूजी आदि के पूजन के लिए जाते समय तो सम्बन्धित देवी-देवता के गीत गाये जाते है किन्तु पूजा सम्पन्न होने के पश्चात् वर अथवा वधू के मण्डप की ओर लौटते समय बधावे गाये जाते है। इसी तरह कन्या की बिदाई के समय करुणासिक्त गीतों के भारी स्वर मुखरित होते हैं और वधू को जनवासे में छोड़कर वधू मण्डप की ओर प्रस्थान करते समय बधावे का उल्लसित गान पुनः गूंज उठता है। वैसे पुत्र-जन्म के अवसर पर भी बधावे गाये जाते हैं। इन बधावों में कथात्मकता अधिक रहती है और उनमें कौटुम्बिक राग-द्वेष, सास-ननद के प्रति दुर्भावना एवं पति-पत्नी के मनोभावों का सजीव चित्रण रहता है। विवाह के अवसर पर गेय बधावों में केवल उल्लास और गर्व की भावना ही अभिव्यक्त हुई है।

स्त्रियों के गीत (क्रमशः)

त्यौहार एवं देवी देवताओं के गीत

- o सातवार ने नौ तेवार
- o प्रभाती एवं तीर्थों के भजन
- o चन्द्रसखी के गीत
- o चैत्र मास के गीत
- o फाग
- o उद्यान-गीत
- o भांगड़ली
- o गालियाँ
- o शीतला एवं गणगौर के गीत
- o वर्षाकालीन गीतों का वर्गीकरण
- o उज्जैणी
- o तीज
- o वर्षाकालीन गीतों का भाव-सौन्दर्य
- o मिरगाणेनी-पनिहारी
- o कृष्ण-जन्म के गीत
- o गरबा
- o झूमर
- o नागजी, सत्यनारायण एवं सती आदि ।
- o त्यौहारों का वार्षिक क्रम
- o गंगा-जल के गीत
- o कबीर और तुलसी का मालवीकरण
- o वसन्तकालीन गीतों का वर्गीकरण
- o शृङ्गारी दोहे
- o फूल पाति
- o दारूड़ी
- o आम्र गीत
- o सावन के गीत
- o इन्द्र का आह्वान
- o राखी-दिवासा
- o झूले के गीत
- o हंसा-हंसी एवं अन्य कथा-गीत
- o जाम्बू-नींबू
- o शरद्‌कालीन त्यौहारों के गीत
- o दीपावली एवं कार्तिक मास के गीत
- o विभिन्न देवी-देवताओं के गीत........

सातवार ने नौ त्यौहार

जब मानव समाज के मन में उल्लास और जीवन में वैभव का आधिक्य होता है तभी उत्सव, त्यौहार एवं अन्य मनोरञ्जक उपादानो की सृष्टि होती है। संसार की विभिन्न जातियो मे जितने भी उत्सव और त्यौहार प्रचलित हुए है उनके मूल में आनन्द की अभिव्यक्ति की भावना सर्वोपरि है। मनुष्य के हृदय का आनन्द एवं सुखद भावना यदि व्यक्ति की सीमा में ही संकुचित रहती तो त्यौहार और पर्वों की सृष्टि भी नही होती। सामाजिक भावना के उदय और विकास के साथ मानव-मन की विलास-भावना सामूहिक रूप में प्रकट होने लगी। इस भावना की अभिव्यक्ति में मनोवैज्ञानिक कारण के साथ ही मनुष्य की समर्थता, ज्ञान, अनुभूति और वाह्य परिस्थितियों ने भी बहुत कुछ योग दिया है। प्रकृति से भय खाकर आदि युग के मानव ने कौतूहल, विस्मय और अपनी अज्ञानजन्य विवशता के वातावरण मे प्रार्थना, उपासना एवं अनेक धार्मिक अनुष्ठानों को सृष्टि की। उत्सव व त्यौहारो में धार्मिक भावना के समावेश से असंख्य पर्व, व्रत एवं पूजा-उपासना का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। समस्त विश्व में भारत आज भी एक ऐसा देश है जहाँ का सम्पूर्ण जोवन पर्व और त्यौहारों की अविच्छिन्न परम्पराओ में आन्दोलित होता रहता है और इस सम्बन्ध में प्रचलित एक मालवी लोकोक्ति विचारणीय भी है....'सातवार ने नौ तेवार' अर्थात जीवन के उल्लास और आनन्दयापन के लिए ज्योतिषाचार्यों द्वारा निर्धारित सप्ताह के सात दिन भी अपर्याप्त होते है। धार्मिक पर्वों एवं हर्षोन्मुख त्योहारों की इतनी बहुलता है कि सप्ताह की परिधि में इनका समावेश नहीं हो पाता। वास्तव में जीवन की मस्ती और उसके आनन्द का उपयोग करने की यह चरमावस्था थी। जीवन के आनन्दातिरेक का भग्नावशेष आज के भारतीय लोक-जीवन में व्यापक रूप से सर्वत्र दिखाई देता है।

विवाह आदि संस्कारों के गीतो के अतिरिक्त प्रकृति सम्बन्धित सामाजिक एवं धार्मिक उत्सव और त्यौहारों पर अनेक गीत गाए जाते हैं। प्रकृति के पट पर अङ्कित होने वाली नित-नई ऋतुओं में सौंदर्य की अनुभूति के साथ ही मन की उमंग गीतों में तरङ्गित होती रहती हैं और प्राकृतिक प्रकोप के भय की आशंका से उत्पन्न धार्मिक भावना भी व्यक्ति एवं समाज की शुभ-चिन्तना और समृद्धि-कामना को लेकर अनेक देवी देवताओं के व्रत और अनुष्ठानो के साथ चलती हैं। इन गीतों में प्रार्थना और भजनों का समावेश भी हो जाता है। प्रत्येक मास में, प्रत्येक ऋतु में एवं दैनिक जीवन के क्रम में गीतों का प्रवाह चलता ही रहता है। जब वर्षा होती है, मन की मौज में उमङ्ग भरे गीत गाए जाते हैं। बारह-मासी, कजली तीज और झूलों के गीतों के स्वर भी इसी अवसर पर मुखर होते हैं। शरद् और वसन्त के आगमन पर भी लोकगीतो का स्रोत उमड़ पड़ता है। भारत के अन्य प्रदेशों की तरह मालव में पूरे वर्ष गीतों का महासागर कोमल एवं मधुर कण्ठों पर लहराता है। ऋतुओं के क्रम से विभिन्न व्रत एवं त्यौहारों के अवसर पर जो भी गीत मालव में प्रचलित है उनकी विस्तृत सूची निम्नलिखित है। इसमें केवल स्त्रियों द्वारा गेय लोकगीतों का ही समावेश किया गया है।

महीने का नाम	व्रत और त्यौहार	तिथि	गीत एवं अन्य आयोजन	प्रवृत्ति-विशेष
१. चेत (चैत्र)	होली	फाल्गुन पूर्णिमा से एक पक्ष का	फाग, रसिया, फूलपाती झाला, उद्यान गीत आम्र गीत, भांमड़ली, दारुड़ी	ऋतु उत्सव एवं सांस्कृतिक-परम्परा
	सील सतमी	चेत कृष्णा सप्तमी	शीतला के गीत	अनुष्ठान
	दसा माता	,, ,, दशमी	कहानी, वार्ता एवं गीतो के साथ पूजन	सौभाग्य-व्रत
	गणगौर	चैत्र शुक्ला तीज	कहानी, वार्ता, गीत	सौभाग्य-व्रत
	राम नवमी	,, ,, नवमी	भजन	धार्मिक उत्सव
	नोवड़ता	,, ,, नवरात्रि	रातजगा, कुल की देवी और देवताओ के गीत	अनुष्ठान
२. वैसाख (वैशाख)	वैसाख स्नान	(सम्पूर्ण मास) पूर्णिमा का विशेष	धार्मिक भजन एवं तीर्थो के गीत	मोक्ष-कामना
	आखा तीज	शुक्ल पक्ष		सांस्कृतिक परम्परा
३. जेठ (ज्येष्ठ)	वट-सावित्री	ज्येष्ठ अमावस्या	व्रत, उपवास	सौभम्य-व्रत
	गङ्गा-दशमी	,, शुक्ल पक्ष	,, ,,	धार्मिक-भावना
	निरजला ग्यारस	,, ,,	,, ,,	मोक्ष-कामना
४. असाढ़	रथ-यात्रा	असाढ़ शुक्ला दूज	व्रत उपवास	
	हरया गोया	देवशयनी एकादशी	बालिकाओ का त्यौहार	अनुष्ठान
	उज्जेणी	किसी भी शुभ दिन	अनावृष्टि या वृष्टि के बिलम्ब पर इन्द्र का आह्वान, गीत	,,
५. सावण (श्रावण)	दिवासा हरियाली अमावस्या	श्रावण अमावस्या	सावन के गीत झूले के गीत	त्यौहार
	नागपञ्चमी	श्रावण शुक्ल पक्ष	नागदेव के गीत	त्यौहार
	राखी	,, पूर्णिमा	रक्षाबन्धन, भाई-सम्बन्धी गीत	त्यौहार सांस्कृतिक परंपरा
६. भादवो (भाद्रपद)	सातूड़ी तीज (कजली तीज)	भाद्र कृष्ण तीज	कथा-वार्ता एवं वर्षा-कालीन गीत, अधरात्या (अर्धरात्रि जागरण)	सौभाग्य-व्रत
	जनम अठमी (कृष्ण जन्माष्टमी)	भाद्र कृष्णपक्ष	भजन, कीर्तन, गीत	धार्मिक उत्सव
	बचबारस (गौत्सम द्वादशी)	भाद्र कृष्णपक्ष ,, ,,	बछड़ेवाली गाय की पूजा, मङ्गल कामना के गीत	सन्तान-कामना एवं गौ-पूजा
	हरतालिका	भाद्र शुक्ला तीज	पूजा, कथा-वार्ता	सौभाग्य-व्रत
	दगड़ा चौथ (गणेश चतुर्थी)	भाद्र शुक्लपक्ष	गणपति पूजन	धार्मिक उत्सव

महीने का नाम	व्रत और त्यौहार	तिथि	गीत एवं अन्य आयोजन	प्रवृत्ति विशेष
	रिसी पंचमी (ऋषि)	भाद्र शुक्ल पक्ष	कथा वार्ता	
	सप्ताजी (भागवत सप्ताह)	,, (६–१२)	धार्मिक भावना के गीत	अनुष्ठान भागवत की कथा श्रवण करना
	तेज्या-धोल्या	,, (दशमी)	नागपूजा, गीत	अन्ध-विश्वास
	डोल ग्यारस (देव झूलनी : एकादशी)	,, (एकादशी)	कृष्ण-सम्बन्धी भजन	धार्मिक चल–समारोह
	अणन्त चवदस (अनन्त चतुर्दशी)	,, १४.	कथा पूजा	पौराणिक–परम्परा
७. कुंवार (आश्विन)	संजा-पूजन	सम्पूर्ण श्राद्ध पक्ष	साँझी-पूजन, गीत	सौभाग्य–कामना
	नोवड़ता	आश्विन शुक्ला १:९	देवी-देवताओं के गीत गरबा का आयोजन अम्बा माता का पूजन एवं रात्रि जागरण	अनुष्ठान
	सरद पूनम	शरद पूर्णिमा	भजन, गीत	धार्मिक-उत्सव
८. कार्तिक (कार्तिक)	करवा चौथ	कृष्ण-पक्ष, चतुर्थी	कथा, वार्ता	सौभाग्य-व्रत
	धन तेरस	,, ,, १३	कन्याओं द्वारा घुड़ल्या	सांस्कृतिक
	रूप चवदस	,, ,, १४	आयोजन, हिरणी के गीत	त्यौहार
	दिवाली	अमावस्या	लक्ष्मी पूजन	
	गोरधन पूजा (अन्न कूट) सुहाग पड़वा	शुक्ल पक्ष.१	गीत	कृषि सभ्यता की परम्परा
	भई-दूज	,, २.	यम एवं धर्मराज का पूजन	सामाजिक परम्परा
	आँवला नौमी	,, ९.	व्रत, कथा	धार्मिक भावना
	देव-उठनी ग्यारस	,, ११.	,,	,,
	तुलसी का व्याह	,,		
	कार्तिक स्नान	सम्पूर्ण मास	भजन, गीत	मोक्ष-कामना
९. अगहण (मार्गशीर्ष)	—	—	—	—
१०. पौस (पौष)	—	—	—	—

११. माह (माघ)	बड़ी चौथ	कृष्णा ४	व्रत, उपवास	धार्मिक-भावना
	डांडा रोपनी पूनम	माघ पूर्णिमा	होली का प्रारम्भ	
	माघ स्नान	सम्पूर्ण मास	धार्मिक-भावना के गीत	मोक्ष-कामना
१२. फागण (फाल्गुन)	शिवरात्रि	कृष्ण १३	व्रत, उपवास	
	होली	शुक्ला पूर्णिमा	पूजन, गीत	ऋतु उत्सव एवं साँस्कृतिक परम्परा

सम्पूर्ण मालव मे प्रचलित व्रत एवं त्योहारों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों के अतिरिक्त समय-समय पर प्रातः सायं या अवकाश को बेला में मन की उमंग के साथ फूट पड़ने वाले गीतों की सूची अलग ही है, धार्मिक प्रवृत्तियों में व्यस्त महिलाओं के लिये तो दिन का उदय भी प्रभाती के साथ प्रारम्भ होता है, मंजा का सुमरण (साध्य स्मरण) ही गीतों के द्वारा हृदय के भक्ति-रस को प्रकट करता है। मंदिरों मे एवं सदगृहस्थों के यहां भजन का संगीत लोक-हृदय की माधुरी को मुखरित करता है। यहाँ भजनों में उन गीतों का समावेश किया किया है जो लोकगीतों की कोटि में आते हैं। इन गीतों में स्त्रियों को धार्मिक-भावना की अभिव्यक्ति, पौराणिक एवं परम्परागत गाथाओं का उल्लेख भी रहता है। प्रसिद्ध संत-कवियों के लोकप्रिय गीतों का इतना व्यापक प्रभाव है कि स्त्रियां अपने द्वारा रचित गीतों में भी कबीर—तुलसी आदि संतों के नाम टेक के रूप में जोड़ देती हैं। तीर्थ-यात्रा के लिए जाने वाले यात्रियों की विदाई एवं लौटकर आने पर स्वागत के समय जो गीत गाये जाते हैं, लोकगीतों की श्रेणी में ही रखे जावेगें। सत्यनारायण की कथा, गगोज (गंगाजल) एवं इसी प्रकार के अन्य धार्मिक व्रत एवं उद्यापन आदि के कार्य भी मांगलिक एवं धार्मिक गीतों के वातावरण में संपन्न होते हैं। इस प्रकार के अनुष्ठाना के लिये त्योहारों के वार्षिक क्रम में कोई तिथि निर्धारित नहीं होती। किसी भी शुभ दिन एवं मुहूर्त में इनका आयोजन कर लिया जाता है। इन विविध एवं स्फुट गीतों का वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है।

स्फुट गीत
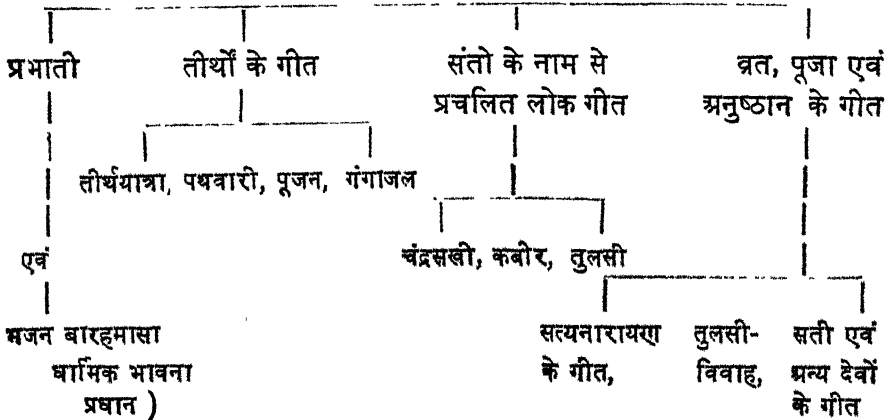
प्रभाती एवं तीर्थों के भजन

प्राचीन काल में सम्राट् और सामन्तों को उनके बंदीजन भाट एवं वैतालिक आदि विरुदावलियाँ गाकर, वीणा की झंकार के साथ, प्रभात के समय उन्हें नींद से जगाया करते थे। यहाँ वैभव, प्रभुता एवं व्यापक प्रभाव की भावना ने सांस्कृतिक स्वरूप ले लिया है। भारतीय साहित्य के राम और कृष्ण की जीवन गाथाओं मे जहाँ बाल-क्रीड़ाओं का प्रसंग आया है माता कौशल्या एवं यशोदा द्वारा अपने पुत्रों को मीठे गीत गाकर सवेरा होने की सूचना देकर जगाने का वर्णन मिलता है। हिन्दी के कवियो ने विशेषतः सूर ने वात्सल्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रातःकालीन सुषमा एवं प्रकृति वर्णन को प्रभाती-गान के रूप में ग्रहण किया है। लोकगीतों में इस परम्परा ने धार्मिक भावना का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। भक्ति भावना से उल्लसित महिलाएँ प्रातःकाल में सूर एवं तुलसी द्वारा रचित प्रभातियाँ तो गाती हैं, किन्तु विवाह जैसे माँगलिक अवसर पर भी 'परबातिया' प्रभाती गाई जाती हैं। विवाह की प्रभातियो में प्रभात होने की सूचना तारो के डूबने, सूर्य के उदित होने एवं कुकड़े (मुर्गा) के बोलने को लेकर स्थूल रूप से प्रकट हुई है। मालवी लोक-गीतों में धार्मिक भावना से प्रेरित होकर प्रभाती ईश्वर-स्मरण के उद्देश्य से भी गाई जाती है। वैसे प्रभाती जागरण गीत का प्रतीक है एवं सांस्कृतिक-परम्परा में यही भावना निहित है। किन्तु धार्मिक भावना के अतिरिक्त कहीं-कहीं पर अद्भुत एवं विचित्र कल्पनाएँ भी मिलती हैं। विवाह के एक सांग रूपक में साग-भाजी एवं अन्य भोज्य पदार्थों को वर्ण्य विषय बनाकर प्रभाती का निर्माण किया गया है। मेथी का विवाह मूले के साथ सम्पन्न होता है। इस विवाह में बथवा, केला, करेला, मिर्च, गाजर आदि सभी बराती बनकर जाते हैं और अपने विचित्र ठाट दिखाते हैं (१।२५६) प्रभात के समय गाये जाने वाले भजनों में प्रायः भैरवी राग की धुन को अपनाया जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से भी भैरवी प्रभात के समय गाने की रागिनी है। लोक गीतो की परम्परा में प्रभाती के स्वर भैरवी में प्रकट होते है। मध्यवर्गीय परिवार की महिलाएँ प्रायः प्रभाती गाती है। चन्द्रमुखी के कुछ गीत भी प्रभात के समय गाये जाते हैं। अन्य भजनों में मोक्ष-कामना एवं दुःखपूर्ण संसार के प्रति निराशा एवं जीवन के अभावों की स्थिति का उल्लेख हुआ है। 'सुख-वैभव' में भी एक ग्रामीण महिला की अभावग्रस्त निराशापूर्ण स्थिति विचारणीय है :—

परवत उपर बाग लगायो फूल है गुलाब को सीचवें नई कोई बी
तमे रुगनात हमारे, नई कोई रे; चुन-चुन कंकर मेल चुनाया
टूटी छान छावा ने नइ कोई रे; तुम सियाराम......
एक लख सासरो सवा लाख मायलो; मायला का पालन वाला नइ कोई रे
एक लख भेस्यां सवा लाख गायाँ; भेस्सा का चरवाने वाला नइ कोइ रे
गायाँ का दुवाड़ना वाला नइ कोई रे; तमे रुगनात......

टूटी नाव पड़ी मंझधार; परभु उखे पार लगावा नइ कोई रे
तमे सियाराम हमारे नम; रुगनात हमारे, नइ कोई रे........

स्त्रियां के गीतां में संसार के प्रति नश्वरता का भाव, मायावादी दार्शनिक दृष्टिकोण एवं लोकप्रिय जीवन के प्रति उपेक्षात्मक प्रवृत्ति उतनी अधिक मात्रा में दृष्टिगत नहीं होती जितनी कि पुरुषों के गीतों मे। स्त्रियों के लिए वैराग्य-भावना को प्रकट करना संभव भी नही है, क्योंकि वह अव्यवहारिक है। जिस दिन नारी-मानम मे पुरुषों की तरह विराग-भावना जागृत होगी उस दिन भारतीय समाज एवं संस्कृति का स्वरूप ही अस्त- ध्वस्त हो जावेगा। स्त्रियाँ राग अनुराग के पक्ष को लेकर चली हैं और उनके जीवन में, लोक गीतो में उल्लास एवं मंगल भावना का पक्ष ही व्याप्त एवं सार्वभौमिक है। पुरुष का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण स्वयं की मोक्ष-कामना तक ही सीमित रहता है। किन्तु स्त्रियो की साधना एवं व्रत समाज की विभिन्न परम्परा एवं सांस्कृतिक परिसीमा को लेकर चलती है। कबीर आदि निर्गुणो-पासक सन्तों का प्रभाव मालव की स्त्रियों पर आँशिक रूप से अवश्य पड़ा है। किन्तु वह अनुकरण की प्रवृत्ति का सूचक है। उनके मानसिक जीवन की यथार्थ स्थिति नही है।

तीर्थ एवं तीर्थ-यात्रा के गीतों में गंगाजल, गंगा के तीर्थ सौरों (सूकर क्षेत्र) आदि का वर्णन मिलता है। गंगा का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व सर्वोपरि है। अतः जीवन में गंगा-स्नान करने एवं गंगा-तट के तीर्थों पर जाने की कामना प्रत्येक भक्त मानस में आवश्यक रूप मे विद्यमान रहती है। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि मालव के लोक-गीतों में इस प्रदेश की, नदियों—शिप्रा, चम्बल, गंभीर, पार्वती एवं दक्षिणी आँचल की नर्मदा—का धार्मिक दृष्टि से कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। फाग के गीतां में एकाध स्थल पर नर्मदा का उल्लेख अवश्य हुआ है किन्तु गंगा का स्मरण जिस उत्साह एवं पूत भावना से किया जाता है उतना अन्य प्रादेशिक नदियों का नहीं।

आधुनिक युग में तो रेल आदि यातायात के साधनों के कारण गंगातट एवं तीर्थों की यात्रा करना अधिक कष्टप्रद नही है। जिस समय पैदल ही यात्रा की जाती होगी यात्रा के लिये प्रस्तुत स्नेही एवं गुरुजनों के प्रति जनमानस की एक विचित्र एवं श्रद्धा-मयी स्थिति का निर्माण हो जाना सम्भव है। उनकी विदाई में श्रद्धा-मिश्रित वियोग-भावना के साथ धार्मिक आस्था प्रकट होती है। कन्धों पर काबड़ रखकर यात्री प्रस्थान करते हैं। मालवा के अधिकाँश भक्तजन सोरमजी की यात्रा ही अधिक करते हैं। गङ्गाजल के एक गीत में काबड़िया वीर एवं सोरम तीर्थ का वर्णन किया गया है :—

नाना काबड़िया रे वीर, जल भर लायो सोरम घाट को
सीसेरा चीरा अदब स्या रे वीर
पेंचारो अदक सरूप नाना, काबड़िया रे वीर....
जल भर लायो सोरम घाट को......काबड़ तो मेलो चौक में रे वीर
मिललो व्हांका सोई परिवार ! नाना........

गंगातट के तीर्थों से जल झारी में बन्द कर रख दिया जाता है। सुविधा के अनुसार उस गंगाजल का पूजन होता है। अन्य मंगल-कलशों को लेकर सौभाग्यवती महिलाओं का चल-समारोह आयोजित किया जाता है। भोजन के समय गंगाजल प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है। चल-समारोह में आयोजित गंगाजल की झारी को लेकर एक गीत की रचना हुई है :—

झारी झलकती आवे, जम्बू उबरातो
आवे, सगला की लागी दोड़ा-दौड़, झारी....
नजराँ से देखां ल्हारा वीर, मेंमद तो तम पेरो म्हारी भावज....झारी....
मेंमद तो जद पेरा बाई जो, नजराँ से देखे ल्हारा वीर....झारी....१।१७२

गंगाजल के अधिकाँश गीतों में भाव-सौन्दर्य की अपेक्षा आभूषणों के नामों की भरमार ही अधिक है। इस तरह के गीत परम्परा-निर्वाह के लिये गाये जाते हैं। भाव-सौन्दर्य के अभाव में भी गीतों के गेय स्वरों की मधुरता के कारण ये गीत बड़े ही रोचक लगते हैं। उपरोक्त दो गीतों के अतिरिक्त निम्नलिखित गीतों की धुनें भी अधिक लोकप्रिय हैं :—

१. सीसा की पागाँ अद्‌बणी रे भई, गंगाजी की जै बोलो
जै बोलो गंगामाई की जै बोलो, घरे आया गंगाजी का साथ
गंगाजी की जै बोलो

२. गगाजी ने कीजो हो राज गंगोजा आवे पावणां....१।१६८

(शेष गीत इन्द्र के आह्वान गीत की तरह)

एक गीत में लय-सौन्दर्य के साथ नारी-मानस की मधुर भावना भी निखर उठी है:-

या मटकी सोरमजी से भरिया। या मटकी गंगाजी से भरिया।
भरत भरत लागो तड़को (धूप)। म्हारो हार टूट्यो नवसर को।
सासू लड़त म्हारा सुसरा लड़त है, जेठानी लड़त पर-घर की, म्हारो हार........
टूटी गयो हार, बिखर गया मोती, ये....बीनत-बीनत लागो तड़को, म्हारो हार....
हार के कारणे सायब लड़त है, सोकन लड़े पर घर की
म्हारो हार टूट्यो नवसर को............१। १६७

गंगा की यात्रा के लिये प्रस्थान करने के पूर्व पथवारी का पूजन किया जाता है। दो चार प्रस्तर-खण्डों को लेकर पूजने की प्रथा को पथवारी पूजा कहा जाता है। पथवारी-पूजन के पीछे यात्री के मार्ग को मंगलमय एवं प्रशस्त करने की भावना है। पथवारी के गीत में ही यह भावना स्पष्ट हो गई है।

उठो रानी रुकमण पूजो पथवारी; पथवारी पूज्या कई गुण होसी ?
भूल्या ने मारग बिछड्या ने मेलो; उठो रानी...........
अन्न होवे जी धन होवे जी; होवे पुन्ता की पखार ; उठो रानी......३।१३५

गगाजल के गीतों की भावना तो रूढ़िगत हो गई है। मालव की नारियों का भक्ति मानस तो वास्तव में चंद्रसखी के गीतों में लहराकर हृदय की सरसता एवं नवीनता को प्रकट करता है... चन्द्रसखी का लोक-गीतो की दृष्टि से बड़ा महत्व है।

चन्द्र-सखी के गीत

लोक-साहित्य में अभिरुचि रखने वाले विद्वानो के लिए चन्द्रसखी एक आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। राजस्थान के कुछ विद्वान चन्द्रसखी को राजस्थान की सुप्रसिद्ध[1] लोक-भजनकार एवं राजस्थान की कोकिला मान बैठे हैं।[2] श्री मेनारियाजी ने चन्द्रसखी के गीतों का उद्धरण देते हुए उसे मालवी माना है।[3] मालव में चन्द्रसखी के गीतों का अधिक प्रचार देख कर मेरी भी यह धारणा थी कि चन्द्रसखी मालव की मीरा है। किन्तु मध्म-प्रदेश के कुछ ग्रामों मे, ब्रज, भदावर (भिण्ड) एवं मध्य भारत के क्षेत्र में चन्द्रसखी के सरस गीतों को सुनकर उक्त धारणा पर विचार करना आवश्यक है।

अभी यह निर्णय करना कठिन है कि चन्द्रसखी स्त्री थी या पुरुष। वैसे ईकारान्त शब्द होने के कारण चन्द्रमुखी को स्त्री मान लेना सामान्य व्यक्ति के लिये अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु कुछ विद्वान उसे पुरुष मानते हैं।[4] मिश्र-बन्धुओं ने चन्द्रसखी नाम के दो कवियों का उल्लेख किया है। एक को वे जयपुर निवासी मानते हैं और दूसरे को ब्रजवासी[5] मिश्र-बन्धु विनोद के अनुसार इनका समय संवत १६६८ और १६०० के मध्य ठहरता है। श्री मोतीलाल मेनारिया के अनुमान मे चन्द्रसखी का समय संवत १८८० है।[6] श्री अगरचन्द नाहटा ने कुछ प्रमाण देकर उसको संवत् १७०० के लगभग माना है।[7] श्री नाहटा जी ने छा नबीन करके जो तर्क उपस्थित किये हैं उसके अनुसार चन्द्रसखी का समय संवत् १७०० के लगभग मान लेना तो ठीक है किन्तु चन्द्रसखी को हम केवल राजस्थान की कोकिला या लोक-भजनकार के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

चन्द्रसखी के गीतों का प्रसार हिन्दी-भाषी चार प्रदेशों में पाया जाता है। ब्रज, राजस्थान और मध्य-प्रदेश में चन्द्रसखी का लोक-गीतों के क्षेत्र में इतना व्यापक प्रभाव है कि हम

---

१. विक्रम, मार्गशीर्ष २००६। लोक कवि चन्द्रसखी के समय सम्बन्धी विचारणा (लेख)
२. हिन्दुस्तान (साप्ताहिक) १२ जुलाई १६५३, श्री कैलाशचन्द्र माथुर का लेख, पृष्ठ—२३।
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ११।
४. मिश्र-बन्धु-विनोद, प्रथम भाग, ३७०।
५. मिश्र-बन्धु विनोद, तृतीय भाग।
६. राजस्थानी भाषा और साहित्य पृष्ठ २१२।
७. विक्रम, मार्गशीर्ष २००६ वि० नाहटाजी का लेख, पृष्ठ २४।

उसे केवल एक प्रदेश विशेष की सम्पत्ति नहीं मान सकते। मैं इन गीतः को देखकर इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि चन्द्रसखी को दो रूपों में स्वीकार करना होगा....

१. भक्त-कवि के रूप में। २. लोक-गीतकार के रूप में।

चन्द्रसखी मूल रूप में एक ब्रजवासी कवि है जिसके काव्य का स्रोत कृष्ण भक्ति के भावनामय अन्तराल से प्रकट हुआ था। उसके काव्य की प्रेरणा ब्रज और श्री कृष्ण का चरित्र था और यह प्रवृत्ति मध्ययुग के राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के सभी कृष्ण-भक्त कवियों में पाई जाती है। श्री कृष्ण की लीला का गान इनका प्रमुख उद्देश्य था, दान-लीला, मान-लीला, माखन-चोरी, पनघट की छेड़छाड़, रास, मिलन-वियोग आदि के कई ऐसे प्रसंग है, जो चन्द्रसखी को केवल परम्परा का अनुसरण करने के लिये लिखना पड़े। सूर एवं अष्ट-छाप के अन्य कृष्ण-भक्त कवियों एवं चन्द्रसखी के पदों में हमें केवल कथा-वस्तु, शैली और भावना की दृष्टि से कोई स्थूल अन्तर दिखाई नहीं देता। भक्ति के आवेश में लिखी कथा-प्रसंगों की वे ही चिर-परिचित पुनरावृत्तियाँ जो सूर आदि कवियो में पाई जाती है, चन्द्रसखी के गीतों में भी देखने को मिलेगी। भदावर के क्षेत्र में लोकगीतों का संकलन करते समय मेरे विद्यार्थी श्री रामदत्तसिंह कुशवाहा के द्वारा उनके ग्राम से चन्द्रसखी के पन्द्रह गीत प्राप्त हुए हैं। इन गीतों में भी उपरोक्त प्रवृत्ति स्पष्टतः लक्षित होती है—

"कृष्ण पिया मोरी रंग दे चुनरिया
ऐसी जो रंग ना रंग छुटे हो; धोबी धोवे अपनी सारी उमरिया"

इस गीत में कृष्ण के प्रति अनन्य उद्दाम प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ ही मिलन शृंगार एवं भक्त के आत्म-समर्पण की भावना व्यंजित हुई है....इसी प्रकार....

"ब्रज में लगी है प्रेम नगरिया
कृष्ण की लगी है मोहे नजरिया; कृष्ण कन्हैया मोरो वर रे संवरिया"
* मोहन मोरी गगरी उठाते जइयो
* दूध बेचन जावे ब्रजनारी
* आज में गोकुल नेक गई
* भले से गिरधारी हमरे घर अइय्यो

आदि पंक्तियों में यद्यपि सूर एवं नन्ददास की साहित्यिकता नहीं है परन्तु अभिव्यक्ति की मधुरता एवं रुचि के अनुकूल सरलता अवश्य है। कहीं-कहीं पर सूर के पदों का अनुकरण कर वात्सल्य की अभिव्यक्ति करने की चेष्टा की गई है:—

❀ यशोदा लेती लला को कनिया
अपने लला को जामा सिलऊँ आठ कली नौ तनियां
❀ मैया मोहि ब्रजरानी सतावे

सान घाघरो सुरंग चुनरिया मोहि पहिरावे ।

उक्त गीतों में चन्द्रसखी के नाम की छाप तीन प्रकार से मिलती है :—

१. चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण छवि
२. चन्द्रसखी यों कहती
३. चन्द्रसखी........

मालव और राजस्थान में 'चन्द्रसखी भज बाल—कृष्ण छबि' एवं 'चन्द्रसखी की कर विनती' आदि छाप मिलती है । ब्रज और मध्य—प्रदेश में प्रचलित चन्द्रसखी के गीतों को गायन की दृष्टि से दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है । १. रसिया २. दादरा

कथा-वस्तु की दृष्टि से भी ये पद दो श्रेणीयों में विभक्त होंगे ।

१. भक्ति के वे पद जिनमें लीला गान का शुद्ध रूप है ।
२. वे गीत जिनमें गार्हस्थ- जीवन की अनुभूति के चित्र अंकित किये गये हैं ।

दूसरी श्रेणी के गीत लोकगीतो की कोटि में आते है और इनका सृजन किसी कवि के द्वारा न होकर प्रदेश-विशेष की महिलाओ के द्वारा ये निस्तृत किये गये हैं । जिसमें सास-ससुर, ननन्द आदि को कठोरता, गृहस्थ—जीवन की कठिनाइयाँ एवं दबी हुई मनोकामना का विस्तृत एवं अमर्यादित उल्लेख हुआ है । लोकगीतों की चन्द्रसखी का यह रूप अधिक व्यापक है । मिश्र—बन्धुओ ने चन्द्रसखी नाम के जिस कवि का उल्लेख किया है वह तो पुरुष ही होना चाहिए । गोपी—भावेन उपासना करके कृष्ण की अनन्यासकता चन्द्रावली की तरह भगवान का सामीप्य प्राप्त करने कामना से उसने अपना नाम चन्द्रसखी भले ही रख लिया हो किन्तु उसके पदों मे मीरा की तरह नारी—हृदय की कोमल एवं मार्मिक अभिव्यक्ति का यद्किंचित आभास भी नहीं मिल पाता । मिलन और छेड़छाड़ के प्रसंगों का वर्णन करने में पुरुष की मनोवृत्ति ही प्रकट हुई है । माधुर्य भाव से उपासना करने वाले बृज के पुरुष कवि चन्द्रसखी के लीला गान के प्रसगों को छोड़कर उसके सरस—सरल रूप को जन—सामान्य ने ग्रहण कर अपने प्रादेशिक वातावरण के अनुकूल लोकगीतो में ढालते हुए उसे परम्परा की एक अमर वस्तु बना दिया है । अभी तक चन्द्रसखी के नाम के दो भजन संग्रह प्रकाशित हुए हैं । पहिला ठाकुर रामसिंह जी के सम्पादन में ५४ भजनों का संग्रह प्रकाशित हुआ है । उसमें अधिकांश गीत काव्य की अपेक्षा लोकगीतों के अधिक निकट है । उक्त संग्रह में 'करमन की गत न्यारी' एवं 'कुन्जन बन छोड़ी रे माधव', शीर्षक के दो भजन मालव में भी प्रचलित हैं ।[1] चन्द्रसखी के भजनों का दूसरा संग्रह पद्मावती शबनम का है । इसमें ११६ पद दिये गये हैं उनमें लोकगीतों की विशेषता बहुत कम है । कुछ गीत ऐसे भी हैं जो मालव में गाये जाते हैं ।[2]

मालव प्रदेश में चन्द्रसखी के लोकगीतों का माधुर्य एवं भाव—सौंदर्य अपना विशेष महत्व रखता है । बृज एव भदावर में प्रचलित गीतों की तरह न तो इनमें सूर की कूटकलिव

१ चन्द्रसखी का भजन (नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर)
२ चन्द्रसखी और उनका काव्य (लोक सेवक प्रकाशन बनारस)

ष्टता ही है और न परम्परागत कृष्ण कथा का अङ्कन मात्र ही। ये गीत अपनी मौलिक अवस्थाओ को लेकर जीवन की सरलता एवं यर्थाथता को प्रकट करते हैं। मालव में चन्द्रसखी के गीत राम और कृष्ण दोनो के जीवन की कथाओं के सरस एवं मार्मिक प्रसंगों को लेकर मौलिक उद्‌भावनाओं के रूप में प्रकट हुए हैं। चन्द्रसखी के इन गीतों की विशेषताओं का विश्लेषण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है।

मूल भावना, भक्ति
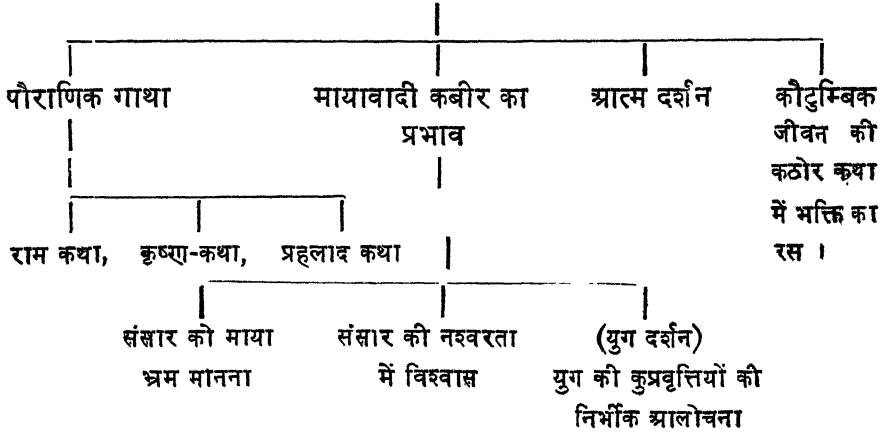
सन्त–काव्य के प्रणेताओं ने राम और कृष्ण के चरित्रों को लेकर अनेक गीतो में भक्ति रस की स्रोतस्विनी को अपने कल–कण्ठों से प्रवाहित किया था। संगीत के उस स्वर माधुर्य से जन–मानस अपरिचित नही है और आज भी सन्तों के अनुकरण पर मालव की महिलाओं द्वारा उद्‌भावित गीत प्रति सायं–प्रातः वाणी पर तैरते नजर आते हैं।

राम के वन-गमन के प्रसंग को लेकर महाकवि तुलसी ने गीतावली में करुणासिक्त अनेक गीत लिखे हैं। किन्तु नारी के हृदय की पीड़ा चन्द्रसखी के इस लोकगीत में पढ़िये....

धीरे चलो मैं हारी
ओ सियावर
धीरे चलो मैं हारी'
रात दिनों का चलना बुरा है
कंकर लगे अतिभारी
ओ सियावर
पांवों की पींजन
तप गई लछमन
धूप पड़े अति भारी
ओ सियावर

सासु के कँई को
कँई रे बिगाड्यो
दुखड़ो दियो अतिभारी
ओ सियावर
राजाजनक घरे जन्म लियो है
जन्म्या से क्यों नी मारी
ओ सियावर
चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण छवि
हरि चरणां बलिहारी
ओ सियावर
धीरे चलो मैं हारी...... ।।२२।।

तुलसी की सीता के सामने तो आदर्श और मर्यादा की एक सीमा-रेखा थी जिसके कारण सास के अन्याय-पूर्ण कार्य के लिये कुछ भी कहना वर्जित था किन्तु लोक-गीतो में भावनाओं पर कोई प्रतिबन्ध नही होता। सास के अत्याचारों से पीड़ित महिलाओं ने सीता की आत्म-कथा मे तन्मयता स्थापित कर करुण रागिनी की विकलता को प्रकट कर ही दिया है।

श्री कृष्ण-चरित की गाथाओं में भी कुछ अद्भुत, एवं अपूर्व मौलिकता है। अपनी प्रियतमा के सामीप्य को प्राप्त करने के लिये श्रीकृष्ण को नकली वेद (वैद्य) बनना पड़ा और बीमारी का अभिनय करने वाली प्रेयसी की धृष्टता तो देखिये कि वैद्य को शुल्क (फीस) के रूप में एक अच्छी सी साड़ी देती है।

बन गयो वेद लाड़लो गिरधारी, बन गयो वेद सांवरो गिरधारी।
बृन्दावन की कुन्ज गली में, देखत फिरत नाड़ी, बन गयो वेद·······
एक गुवालन नई उठ बोली, देखत जाओ लालजी नबज हमारी,
नबज पकड़ के कहे सांवलो, सरद गरम है भारी,
एक दवई तो अैसी दउंगा, मिट जायगी री गुवालन,
सरद तुमारी, बन गयो वेद·······
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि, हरि चरणां बलिहारी,
दखणां में दउंगी लालजी, एक अच्छी सी साड़ी, बन गयो वेद··· १।२३०

श्री कृष्ण चरित्र की अन्य गाथाओं के समावेश में निम्नलिखित प्रसंग अधिक महत्वपूर्ण हैं।

१. विदुर-कथा — भक्ति और प्रेम से समर्पित अकिंचन वस्तु भी श्रेयस्कर है। इस सिद्धान्त का विदुर-कथा मे सरसता से प्रतिपादन किया गया है। १।२३४

२. बालकृष्ण छबि—श्री कृष्ण के मुकुट की सुन्दरता का वर्णन करते हुए अन्य सौन्दर्य एवं बड़ी वस्तुओ का उल्लेख है। यथा—

सब पहाड़न में हिमाचल बड़ो है सब तीरथ में गंग
सब देवन में सुरज बड़ो है ताराओं में चन्द
सब सकियन में राधा बड़ी हैं सब गुवालन में गुबिन्द·······१।२३६

३ कुब्जा-प्रसंग—परकीया के प्रति स्वकीया नायिका की ईर्षा-भावना कुब्जा को लेकर प्रकट की गई है। श्री कृष्ण अपनी ओर से लाख स्पष्टी-करण देने की चेष्टा करें परन्तु निम्नलिखित आचरण उनकी चोरी को स्पष्ट कर देते हैं:—

बिड़िया चाबी ने होठ रचाया, नैना में सुरमा सार्याजी
बन्सी तो तम काँ भूली आया, हाथों की खोई अंगूठी
कुब्जा को कँई रूप घणो रे, हूं कई तनकी काली.......१।२३९

परकीया को अंगूठी प्रदान करने की कल्पना सूर के काव्य-जगत की वस्तु नहीं है। प्रहलाद की कथा मे ईश्वर-भक्त प्रहलाद की दृढ़ता के साथ युग के अनाड़ी गुरुओं का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है, जो ज्ञान-दान के लिये शिष्य की पिटाई को आवश्यकता मानते हुए 'छड़ी पड़े छम-छम, विद्या आवे धम-धम' क सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं।

मायावादी कबीर का प्रभाव भी लोकगीतों की चन्द्रसखी पर स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। कबीर ने संसार को माया-जंजाल मानकर उसकी नश्वरता एवं जीवन को अस्थिर मानकर, यौवन की गर्विलो प्रवृत्ति को तिरस्कृत किया है।

"नई नई रे भरोसे जिन्दगानी-को, को तू मत कर जोर जुबानी को"

संसार की अस्थिरता को प्रकट करने के लिये निम्नलिखित रूपक है :-

यो संसार हाट को मेलो रामा लख आवत लख जावत है।
यो संसार ओस को मोती रामा पवन लगे ढुल जावत है।
यों संसार बोर की भाड़ी रामा माया जाल रचावत है।
यो संसार माया दौलत को रामा चोर पड़े लुट जावत है।

स्पष्टवादी कबीर की तरह इन गीतों में युग-दर्शन भी निर्भिकता के साथ हुआ है। मूर्ख राजा का राज्य, पंडित का भिखमंगापन, विधवा के हास-विलास एवं पतिव्रता स्त्री की दुर्दशा पर कटु व्यंग्य किये गये हैं। 'नागरवेल, फूल बिन तरसे गेंदा फूले हजारी....' उक्ति में युग की असाम्य स्थिति एवं अयोग्य लोगों के वैभव-विलास का मार्मिक संकेत है।

युग दर्शन के साथ साथ आत्म-दर्शन एवं आत्म-उद्धार की प्रवृति भी तुलसी की विनय-पत्रिका में समान सजग रूप से व्यक्त की गई है। चोरी, चुगली, पर निन्दा आदि को छोड़ देने से ही हरि का द्वार प्राप्त होता हैं। यह मन को, पागल मन (मन गैला) को उपदेश दिया गया है। 'धरम के बेड़े' और 'सत्य की नाव' के द्वारा ही संसार को पार किया जा सकता है। १।२४१

भक्ति के सिद्धान्तों को सरलता प्रदान करते हुए कौटुम्बिक-जीवन की कठोर, विपरीत एवं बाधक परिस्थितियों में सद्-भक्तों की सद्-गृहणियों की भक्तिपूर्ण गाथाओं के मनोरम गीत चन्द्रसखी के लोकगीतों के विशेष महत्व रखते हैं। गृहस्थ-जीवन का एक चित्र देखिये। सास, ससुर, देवरानी, जेठानी और ननंद का एक वधू के प्रति कितना कठोर और अमानवीय व्यवहार होता है, और उसके प्रतिकार की भावना भक्ति के आवरण में कलात्मक ढंग से व्यक्त हुई है—

"ले लोट्यो बउ न्हावा चाली, सासू मु मचकोड्योजी
रामनाम सिरी कृष्ण जी ।
थे सासु जी रात-जगे जाओ म्हे मन्दरिये जावा जो, रामनाम.......
थें सासु जी लापसी जीमो, म्हें हरि परसादां पावाँ जी, रामनाम ....
थे सासुजी गंगाजल पीवो, म्हे हरि चरणामिरत पीवाँ जी, रामनाम........

इस लोकगीत में एक भक्त कुलवधू की कथा का अंकन है। वधू प्रातः होते ही लोटा लेकर गंगास्नान के लिये चल पड़ती है। पावन क्षेत्र उज्जैन के लिये तो यह दृश्य दैनिक जीवन चर्या का का एक अंश है। सास के लिये यह असह्य हो जाता है कि उसकी वधू भक्ति करे। जैसे ही वधू गंगास्नान के लिये जाती है, सास मुंह को विकृत कर यदि अपना रोष और अप्रसन्नता प्रकट करे तो कोई अस्वाभाविकता नहीं है। वधू के लिये सम्पूर्ण मिष्ठान एवं गगा का पवित्र जल भी भगवान के प्रसाद एवं चरणामृत के सम्मुख कुछ मूल्य नहीं रखते।

सास निराश होकर अपने सुपुत्र से वधू के अवांछनीय आचरण के सम्बन्ध में शिकायत करती है :—

"सुण सुण रे म्हारा पूत सपूता, थारी बउ मन्दर जावे जो, रामनाम
सुण सुण रे म्हारी माय सपूती, करनी पार उतरनी जी, रामनाम

अन्त में भक्त वधू को स्वर्ग में ले जाने के लिये भगवान की ओर से विमान आता है। लोकगीतों का यह विमान शायद एक उड़न-खटोला है जिसके पलंग के समान चार पाये हैं। वधू की उपेक्षा और भर्त्सना करने वाले परिवार के व्यक्ति स्वर्ग के विमान का पाया पकड़ कर अब उससे अनुनय करते हैं कि वधू उनको भी स्वर्ग में साथ ले चले। किन्तु स्वर्ग में जाने का परिपत्र तो सज्जन एवं भक्तजनों को ही प्राप्त होता है। वधू उन सबको संसार के मायाजाल में छोड़कर करनी का फल भुगतने के लिये कहती है। सास और ननन्द के प्रति तो इस लोकगीत में बड़ा कठोर व्यंग है।

"बैकुन्ठा से बैवाण आया बउ बैकुन्ठा चाली जी रामनाम....
पैली पायो सासु जी सार्यो
बउबड़ मोये ले चालो जी रामनाम...............
थे सासु जी बन का वागळ
सिद्धनाथ[1] में ऊंदे माथे झूलो जी रामनाम........
दूसरो पायो देराणी सार्यो
भाभी जी मोये ले चालो जी रामनाम........
थें भाभी जी लंक-लड़ावन
लंक लड़ाता रीजो जी रामनाम........

१. सिद्धवट उज्जैन में शिप्रा-तट पर एक तीर्थ है।

अगन्यो पायो नरणदल सार्यो
भावज मोये ले चालो जी रामनाम.......
थें बाई जी चुगली खोरा
चुगली करता रीजो जी रामनाम.......

सास को चमगीदड़ बनाकर बन के वृक्षों पर झुला दिया जाता है, झगड़ा कराने की कला में कुशल देवरानी और चुगलखोर ननंद के पश्चात् अन्तिम और चौथा पाया पकड़कर वधू का पति भी जब पत्नी के साथ स्वर्ग जाने की आकाँक्षा प्रकट करता है तो वधू के द्वारा दिये गये उत्तर में जीवन की मार्मिकता एवं करुणा प्रकट होती है।

चौथो पायो सायब सार्यो, गौरी मोये ले चालो जी रामनाम.......
थे सायब जी नगरी के राजा, राज करन्ता रीजो जी रामनाम.......
चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण छबि, हरि चरणां बलिहारी जी
रामनाम श्री कृष्ण जी....... १।२३७

मिलन और वियोग के इस विचित्र प्रसंग पर गाते समय महिलाओं के कण्ठ करुणा और प्रेम के कारण अवरुद्ध से हो जाते हैं और बुझती हुई सी आवाज में मानो गीत का अवसान होता है। निस्सन्देह यह कहा जा सकता हैं कि हिन्दी साहित्य में जो स्थान मीरा को प्राप्त हुआ है लोकगीतों के क्षेत्रों में चन्द्रसखी का, जन-मानस पर भी उतना मोहक प्रभाव है।

कबीर एवं तुलसी का मालवीकरण

संत कबीर और तुलसी का महत्त्व कवित्व की दृष्टि से साहित्यिक एवं विद्वानों के समझने की एक वस्तु है। ज्ञान, भक्ति और उपसाना के जितने गूढ़ एवं दार्शनिक सिद्धान्त इन महात्माओं के द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं उसमें लोक-पक्ष का बराबर ध्यान रखा गया है। जन सागान्य ने शास्त्र-पक्ष की गहन उपेक्षा कर, उपासना के सारिल्य को अपनाया है और आज भी ग्रामों की अपढ़ जनता के मुख पर कबीर और तुलसी का जन-साहित्य मुख-रित हो उठता है! इन दोनों संत कवियों के द्वारा लिखे गये सरस पद जनता की परम्परा-प्राप्त अमूल्य निधि है, पुस्तक-वद्ध साहित्य से मानो इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

मालव प्रदेश में भी कबीर, तुलसी और मीरा के सरल-सरस भक्तिपूर्ण गीत आज भी जनता की वाणी से प्रसारित होते हैं। इनकी अखण्ड परम्परा का एक प्रमुख कारण और भी है। कबीर-पंथी और निरंजनी अखाड़े के साधु एवं रामोपासक महन्तों के अनेक मंदिरों में भक्ति का स्त्रोत प्रायः उमड़ता ही रहा है और इन संतों का शाश्वत प्रभाव जन-मानस पर बराबर बना रहा। कबीर और तुलसी के पदों में विद्यमान.......

'कहत कबीर सुनो भई साधो' और 'तुलसीदास'

आदि छाप मालवी महिलाओं के ध्यान में अवश्य थी, लोकगीतों को महिलाओं ने भी कबीर और तुलसी के समान अपने भक्तिपूर्ण हृदय की उमड़ती हुई भावना को गीतों मे उतारने का प्रयास किया किन्तु नाम की छाप कबीर और तुलसी की ही लगाई गई :—

१. केत कबीर सुणो रे भई सादू २. तुलसीदास आस रघुवर की

इस प्रकार उक्त दोनों कवियों के नाम की आड़ में मालव की अज्ञात महिलाओं द्वारा रचे गये कितने ही भक्तिपूर्ण गीत प्रचलित है, दोनो कविया के आदर्श की नकल करने की चेष्टा की गई है, किन्तु भाव और भाषा में कबीर और तुलसी का मालवीकरण करने पर नारी—हृदय का सारल्य छिप नही सका है।

सन्त कबीर के समान स्पष्टवादी व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य मे नहीं मिलता। उपदेश के साथ युग—पाखण्ड एवं अवांछनीय आचरण करने वालों को उन्होंने खूब खरी—खोटी सुनाई, कबीर की ओट में मालव की नारियों का आत्म-चिन्तन एवं पाखण्ड विडम्बना देखिये—

"बोल म्हारी जीबड़ली रामहरि
राम हरि वो सीताराम हरि
मन्दर जाता थारा पगल्या दूखे,
दौड़ा देवा ने तो हुंसियार घणी बोल म्हारी
कथा सुणो तो बेरी बन जावे,
निन्द्या सुणवा हुसियार घणी बोल म्हारी
भजन गावतां थारो मुखड़ो दुखे,
गाल्यां गावाँ में हुंसियार घणी बोल म्हारी
खारो नइ भावे म्हने मोठो नइ भावे,
लाड़ू जीमवा में हुंसियार घणी बोल म्हारी
केंत कबीरा सुणो रे भई साधु,
कई ये करो रे बायां पड़ी ए पड़ी बोल म्हारी

जिह्वा से रामनाम के उच्चारण का आग्रह करते हुए ईश्वर-भक्ति से विमुख महिलाओं के आचरण पर व्यंग किया गया है।

मन्दिर जाने पर तो तेरे पैर थक जाते हैं किन्तु इधर-उधर भटकने में तू बड़ी तत्पर है।

हरि-कथा सुनना तो तुझे कड़वे वचन सा लगता है किन्तु दूसरों की निन्दा सुनने में तो तू बड़ी चतुर है।

भजन गाने में तेरा मुंह दुखने लगता है किन्तु गालियां गाने में तो तू बड़ी होशियार है।

तू बड़े चटोरे स्वभाव की है। खारा अच्छा नहीं लगता, फीका नहीं भाता परन्तु मीठे मोदक जीम जाने में कभी पीछे नहीं रहती।

'कँइ येकरो रे बायां पडी ए पड़ी' उक्ति में निरर्थक समय व्यतीत करने वाली स्त्रियों को सावधान किया गया है।

लोकगीतो में वर्णित रामकथा की विशेषताओं का चन्द्रसखी के गीतों में उल्लेख किया जा चुका है। राम के वनबास की कथा की अपेक्षा नारियों को सीता के वनवास की व्यथा के प्रति अधिक सहानुभूति है। सीता की वेदना मानो नारी के हृदय की कसक है। राजदुलारी, राजभवनों में रहनेवाली बन में क्यों भटकी ? यह प्रश्न कोई मुनि पूछता है या नारी स्वयं ही :—

मुनि पूछे सीता जी से बात, बन में क्यों भटकी ?
मुनि पूछै जानकी से बात बन में क्यों भटकी ?
कौन राजा की लाड़ली, कौन तुम्हारा नाम ?
कौन देश की रेने वाली, कौन पुरस घर नार मुनि पूछे........
राजा जनक की लाड़ली, सीता म्हारो नाम
नगर अजोद्या को रेने वाली, रामचन्दर भरतार मुनि पूछे........
बाल जति ने पोथी बाँची, रोवन लागी सीता
अब रोवां से कई होवे, लिख दिया विधाता लेख मुनि पूछे........
तुलसीदास आस रघुवर की, दीनो अजोद्या वा छांड़,
किनके हाथ सन्देसों भेजू, यो बन सयो नि जाय,
बन में क्यों भटकी ? मुनि पूछे सीताजी से बात बन में क्यों भटकी ? १।२५४

बालमीकि और तुलसी की सीता के सम्मुख तो भारतीय नारी के आदर्श एवं गौरव की रक्षा का प्रश्न है। परित्याग के पश्चात्, अग्नि परीक्षा की चुनौती को अस्वीकार करने पर महान नारी को कलंकित होते देख सीता के हृदय ने करुण क्रन्दन किया होगा। सीता की उस व्यथा में मालव की एक सरलमना नारी का हृदय बोल उठता है। सामान्यतः वह पति के वियोग का दुःख सहन नहीं कर सकती। रोने और शोक सन्तप्त होने से लाभ भी क्या हो सकता है। अन्त में नारी की विवशता इतनी दयनीय स्थिति पर पहुँच जाती है कि रोने-कल्पने से विधाता का लेख तो नहीं मिटाया जा सकता है।

प्रश्नोत्तर शैली के उपरोक्त गीत में कुछ बातें विचारणीय है। साधारण स्त्रियों को रामकथा की सम्पूर्ण, सांगोपांग जानकारी नहीं है। महर्षि बालमीकि का नाम शायद उनको मालूम नहीं अतः मुनी और बाल जति शब्द का प्रयोग किया गया। प्रश्न के उत्तर में सीता

अपने पति के नाम का उच्चारण भी कर लेती है वैसे भारतीय स्त्रियाँ पति का नाम नहीं लिया करती।[1]

यह शास्त्र-सम्मत परम्परा आज भी मान्यता के रूप में मालव की स्त्रियो प्रचलित में है किन्तु सीता के द्वारा पति का नाम उच्चारित करने का कारण परिस्थिति विशेष भी हो सकता है। विपन्नावस्था में इस प्रकार की मर्यादा का उल्लंघन हो जाना स्वाभाविक है।

परित्यक्ता सीता का एक चित्र और देखिये ! सीता को भुलावा देकर राजमहलो मे दूर, एकान्त वनों में छोड़ आने का कठोर दायित्व भी तो लक्ष्मण को ही सौंपा गया था। बन मे सीता को प्यास लगी। वियाबान जंगल में पानी कहाँ से प्राप्त हो। लक्ष्मण के पास पानी लाने के लिये कोई पात्र तो था नहीं; पलास के पत्ते का दोना बनाया और देवीतुल्य भावज का नाम लेकर जैसे ही मंत्र पढ़ा, सूखा तालाब समुद्र के समान लहराने लगा। लक्ष्मण पानी लेकर आऐ किन्तु प्यास की तड़प को भूलकर सीता सो गई थी। लक्ष्मण भावज को जगावे तो कैसे क्योकि सुप्त सीता के पास जाने में मर्यादा-भंग होती है। अतः उन्होने वृक्ष के पत्तों पर थोड़ा पानी डाला, उसकी बूँद टपक कर सीता पर गिर पड़ी और उसकी आँखे खुल गई—

देवर मोये पानी पिलाव, बन में प्यास लगी
नइ कुवा नइ बावड़ी रे, नइ समुन्दर तलाब
उबो लछ्मन सोच करे है बन में जल कां से लाव
बन में प्यास लगी देवर....
लछ्मन दूना गुंथ के रे, गया समुन्दर पाल,
एक मंत्र भावज को पढ़ियो, एक मंत्र सीता को पढ़ियो,
भर गया समुन्दर तलाब बन में प्यास लगो देवर....
लछ्मन दूनो भर के रे दियो बिरछ पर छींट
एक बूंद भावज पर पड़ गई एक बूंद सीता पर गिर गई
भावज की खुल गई नींद बन में प्यास लगी देवर....
तुलसीदास आस रघुबर की दीनी अजोद्या छांड़
किनके हाथ संदेसो भेजूं यो बन सयो नी जाय बन में प्यास लगी ११२५३

चैत्र मास के गीत

मादक ऋतु का मधुमास चैत आज के आर्थिक संकट के युग में मानव को चित-चैती आनन्द क्रीड़ायें करने का खुला अवसर न दे फिर भी जन-मानस प्रकृति के साथ उमंगों में लहरा ही उठता है, होली दहन के साथ मानो जीवन के वसन्त का प्रारम्भ होता

---

१. आत्मनाम गुरोर्नाम नामादि कृपणस्यच
श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्य कलत्रयोः —सिद्धान्त कौमुदी में उद्धरण

है और प्रत्येक नर-नारी के हृदय में उल्लास एवं क्रीडा-कौतुक की वृत्ति जाग उठती है, व्यक्ति समष्टि में लीन होकर अपने हिय की हिलोर को सामूहिक रूप से प्रकट करता है।

बसन्त के पुष्प जब प्रकृति के यौवन का शृंगार करते हैं मानव हृदय के प्रेम का देवता कन्दर्प स्त्रियों को भी अपने मनोगत भावों को प्रकट करने के लिए प्रेरित करता है। मालवे मे यह समय समस्त स्त्री-पुरुषों के लिए आमोद-प्रमोद का होता है। वैसे फागुन मास फाग का महिना, होली के त्यौहार एवं फाग के गीतों के लिए प्रसिद्ध है किन्तु स्त्रियो को फाग के गीत होली दहन की पूर्णिमा के दूसरे दिन अर्थात् चैत मास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर चैत शुक्ला तृतीया गौरी पूजा तक सम्पूर्ण वातावरण को गुञ्जायमान करते रहते हैं। रंग गुलाल, उद्यान गोष्ठी, फूल पाति, गैर (चल समारोह) सौभाग्य व्रत और अनुष्ठानों की धूमधाम में नारी कण्ठ के संगीत की रसवन्ती माधुरी उमड़ पड़ती है। चैत्र मास में स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों की सूची का वर्गीकरण नीचे लिखे के अनुसार होगाः—

फाग के गीतों का आदि-स्रोत यदि मनोवैज्ञानिक आधार पर ढूंढा जावे तो उसका उद्‌गम वहाँ मिलेगा जहाँ जीवन हँसता है, पुलकित होता है और वासन्ती प्रकृति की प्रेरणा से उद्दीप्त होकर मुखर हो उठता है। इस कारण चैत मास में गाये जाने वाले मालवी नारियों के गीत अत्यधिक सरल एवं मनोरम हो गये हैं। जीवन के सभी रस इसमें समा गये हैं। मनोरंजन, छेड़छाड़, हास-परिहास एवं प्रेम के मिलन-वियोग की शाश्वत अभिव्यक्तियों के साथ ये गीत नवोल्लास से परिपूर्ण है। होली के दहन के दूसरे दिन संबंधी एवं परिवार की महिलाओं के यहाँ रंग-गुलाल डालने के लिये जाने वाली स्त्रियां मार्ग में फाग का गीत गाती हैं :—

ननंद बाई म्हने बरजो मति म्है तो बंसीवाला से खेलूंगी फाग
वोइ बंसीवाला ने वोई मुरलीवाला वोइ म्हारा जीव को अधार

माथा के म्हारे मम्मर सोवे ने टीको भोत हजार
सूरज सामे पानी नी जाऊं म्हारी चूनड़ी को रंग उड़ा जाय
ननंद बाई बरजो.........१।१८०

उक्त गीत की धुन से सम्पूर्ण मालव गूँज उठता है, यहाँ तक कि चल समारोह में बैण्ड-बाजे वाले भी इस अवसर पर इस लोक-प्रसिद्ध धुन का प्रयोग कर जनता को मंत्रमुग्ध करते हैं। यहां राधा और कृष्ण तो प्रतीक मात्र है। फाग के गीतो में शृंगार-पूर्ण अभि-लाषायें, प्रणय-चेष्टायें राधा-कृष्ण के माध्यम से प्रकट की गई है। लोकगीतों की नारी सामीप्य-भावना को प्रकट करने के लिये अन्य कोई साधन खोज भी नही सकती, प्रेम का गहरा रंग एवं अनेक प्रतिबन्धों से जकड़ी हुई भावनाओं को अन्य अवसरों पर निर्भीक होकर प्रकट भी तो नही किया जा सकता। फाग के रंग के साथ ही साथ हृदय की भावनाओं का रंग बड़ी सरलता के साथ प्रकट हुआ है। मालवी के अनेक गीतो में विभिन्न रंगों का उल्लेख हुआ है। कँसूड़ी [टेसू] का रंग सर्वाधिक प्रिय है। उद्यानगत झाला के गीतो में केसरिया साफबा का उल्लेख प्रियतमा की मनोगत भावनाओं के साथ प्रकृति के प्रति वर्ण परिज्ञान Sense of colour की परख को भी सूचित करता है। एक गीत में रंग और पिचकारी का उल्लेख स्पष्ट रूप से हुआ है

"नरबदा के रग से भरी पिचकारी बन्सीवाला से खेलाँगा फाग
कायन का रंग बनायो ने कायन की पिचकारी
कच्ची कली को रंग बनायो कंचन की बनी पिचकारी
भरी पिचकारी राधा के माथे डारी तो भींग गई जी गुलसारी
कित्ता रे बरस को कुंवर कन्हैयो किता रे बरस की राधा प्यारी
बारा बरस को रे कुंवर कन्हैयो
तो भर राधा जोबन प्यारी, नरबदा के ...."२।१८१

नरबदा के जल में रंग घोलकर वंशी वाले श्रीकृष्ण से होली खेलने की कामना करने वाली महिला यदि कंचन की पिचकारी का प्रयोग भी करे तो वह ब्रज के वैभव का सूचक है। किन्तु बारह वर्ष के कृष्ण से पूर्णयौवना राधा का हास-परिहास जरा विचारणीय है। कभी-कभी प्रौढ़ आयु की भाभी अपने छोटे देवर की छेड़छाड़ में भी इसी प्रकार का मनोविनोद कर लेती हैं।

स्त्रियों द्वारा गेय होली के गीतों में राधाकृष्ण के माध्यम से मालव की स्त्रियों द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले आभूषण और वस्त्रों के वर्णन के साथ रंग डालने और होली खेलने की छेड़-छाड़ का वर्णन हुआ है। होली खेलने में व्यस्त नायिका को शरीर के भीग जाने का उतना भय नहीं है जितना कि नैनों में भीग जाने का--

"गेल म्हारी छोड़ो, डगर म्हारी छोड़ो
स्याम भींज जावाँगा नैनन में
नैनन में जो थारे मन में होली खेलन की
स्याम म्हने लई चालो कुञ्जन में
स्याम म्हने लई चालो सकियन में
हिवड़ा पे त्हारे हंस यो सोवे
अङ्ग के त्हारे केसरिया बी सोवे
अरे सालू के कोर लगाव
स्याम भींज जावांगा नैनन में, यू गैल म्हारी—१।१७६

राधा और कृष्ण के नामों से सम्बन्धित गीतों के अतिरिक्त मन की मौज में गाये जाने वाले मधुमास के गीत भाव-वैभव की दृष्टि से अधिक महत्व रखते है। इनमें से अधिकाँश गीतों का निर्माण प्रायः परम्परा से प्रचलित दोहो को लेकर किया जाता है। मालवी स्त्रियों द्वारा गेय दोहे भावना-जगत की अमूल्य निधि होने के साथ ही अनेक गीतों के आदि-स्रोत भी हैं। इन दोहों के द्वारा विवाह के गीतों का सृजन हुआ है, उसका उल्लेख किया जा चुका है। वसन्त और सावन के गीतों का निर्माण भी इन दोहों को मिलाकर पूर्ण होता है। वसन्तकालीन गीतों में जिन दोहों को गाया जाता है उनके पूर्व की कुछ पंक्तियाँ अत्यन्त ही मार्मिक है :—

१ सेजा रा सरदार, ढोल्या रा उमराव
छज्जा ऊपर मोर नाचे खेले कुंवर दोय।
२ दलबादल बीच चमके तारो
तो सांझ समे पिउ लागे जी प्यारो
कँई रे जुबाब करुं रसिया से[1]
मेलाँ बिच जाता लोंड़ी सोक भुरमाया
कईं रे गुमान करूं रसिया से

प्रथम उद्धरण में पति के लिये प्रयुक्त विशेषण कितने सार्थक एवं सुन्दर है

१ शय्या का सरदार।
२ ढोल्या (पर्यंक, पलंग,) का उमराव।

---

१. रतलाम एवं मन्दसौर से प्राप्त पाठान्तर सहित पूरा गीत निम्नलिखित है.......
सासु ननन्द बीच साजन प्यारा, कँई रे जुबाब करुं रसिया से
जोर करूंगी'जुबाब करूंगी, तो रसिया का नैणा में रीज रंऊगी
क्यों रसिया जी थाने किन बिलमाया, तो लोड़ी का जाता बड़ी बिलमाया।

यह मिलन-शृंगार का चित्र है। दूसरे उद्धरण में वियोगिनी की आत्म-व्यथा का अंकन हुआ है। पति के होते हुए भी वह संयोगिनी नही बन सकती। शयनकक्ष तक आते आते उसकी छोटी सौत ने बनाव-शृंगार कर प्रियतम को लुभा लिया। वह अपने रूप और यौवन पर तो गुमान करने की स्थिति में नही है। प्रेम पर तो गर्व कर सकती है किन्तु अन्यासक्त पति पर वह गुमान क्यों-कर करे ?

स्त्रियो द्वारा गेय दोहो का यहाँ प्रसंगानुकूल उल्लेख कर देना आवश्यक है। मालवी दोहो के काव्य-सौन्दर्य पर अगले अध्याय मे विस्तृत विचार किया गया है। यहां वसन्त-गीतों से सम्बन्धित कुछ दोहों की विवेचना प्रस्तुत की गई है। स्त्रियों द्वारा गेय इन दोहों में विरह का पक्ष ही अधिक व्यापक एवं मार्मिक है। पति के द्वारा उपेक्षित एक नारी का चित्र देखिये :—

"पिलसौदा दीवो बले जालियां बड़ो रे उजास
जाय दुकाने सो रया रे कामनी, पड़ी उदास——"[1]

—भव्य भवन के शयन-कक्ष में शमई जल रही है। कक्ष को प्रकाशित करने के साथ ही जालियों से दीपक का प्रकाश बाहर के वातावरण को भी ज्योतित कर रहा है किन्तु कामनी, प्रिय के प्रेम की आकांक्षा करने वाली नारी, उदास पड़ी है क्योंकि उसका प्रियतम दुकान पर जाकर सो गया है।

चन्दा त्हारी चाँदनी सूती पलंग बिछाय,
जद जागूं जद एकली मरुं कटारी खाय।

—हे चन्द्र तेरी शुभ चाँदनी में पलंग बिछा सो गई किन्तु रात्रि में जब जागती हूं तो स्वयं को एकाकी सी पाती हूं। प्रियतम पास नहीं आये। इस असह्य स्थिति से हृदय में कटारी मारकर स्वय को समाप्त कर देना अच्छा है।

टींकी दे मेलां चड़ी बिन काजल की रेख,
सायब को सारो नइ, लिख्या विधाता लेख।

सौभाग्य-चिह्न बिन्दिया से अपने ललाट का शृंगार कर आँखों में काजल लगाकर अपने महल (शयन-कक्ष) में गई किन्तु यह शृंगार तो निष्फल रहा क्योंकि प्रियतम का सहारा (कृपा-भाव) नहीं है। विधाता ने भाग्य में ऐसा ही लिखा है।

चाँदनिया का चौक में गेरो बिके रे रुमाल,
साजन होय तो मोलवे किन पे करू गुमान।

चांदनी चौक में गहरे रंग का रुमाल बिक रहा है। प्रियतम तो है नहीं जो उसे खरीद कर लाते। वियोगिनी किस पर गर्व करे।

---

१. मालवी दोहे, ८५,

जिस प्रकार चांवल से बनी खीचड़ी घी के बिना स्वादिष्ट नहीं होती है। अपने पिता की लाडली होते हुए भी प्रिय के बिना नहीं रह सकती।

डेढ चावल की खीचड़ी घी बिन कसो रे सवाद
म्हारा बाप की लाड़ली पी बिन रयो नी जाय

नदी किनारे पर केतकी-पुष्प सौरभ से आक्रान्त होकर वायु के झोंकों से आनन्दोलित हो रहा है किन्तु अस्वच्छ एवं मलीन वस्त्र धारण करने वाली माँ के प्रिय सुपुत्र, माँ के बिना भोजन ही नहीं करते।

नदी किनारे केवड़ो नम नम झोला खाय,
मां सूगली का सायबा मां देख्या अन्न खाय।

इन दोहों को लेकर बसन्तकालीन चलगीतों के अतिरिक्त उद्यान गीतों की रचना भी की जाती है। झाला देते समय कुछ पंक्तियों के साथ उक्त दोहों को गाया जाता है। दो गीतों की प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार :—

१, ओजी म्हारी सुणोजी म्हारी
खेलतड़ा गम गई बींदली हो रसिया,
बींदली बींदली कंई करो ए मारुणी,
बींदली घड़ावा दोय चार, ओ जी म्हारी.......
२. इ तो बाईजी रा वीरा बालम रसिया
गेरो जी फूल गुलाब को ———

दूसरी टेक से प्रारम्भ होने वाला गीत 'फूल-पाति का गीत' है। फूल-पाति उद्यान-बिहार की एक प्रथा है। कुमारी कन्या एवं विवाहित स्त्रियों के द्वारा चैत्र मास में आनन्दोत्सव के रूप में इसका आयोजन होता है। संस्कृत–साहित्य में वर्णित वसन्तोत्सव अथवा मदनोत्सव का परिवर्तित स्वरूप फूल-पाति में आज भी विद्यमान है। जिसमें वसन्त के देवता कन्दर्प की पुष्पों से अर्चना एवं स्वागत करने की भावनाएँ है। फूलपाति का आयोजन शोक–विमोचन एवं आनन्दवर्धक बधावे के रूप में भी किया जाता है। जाति एवं परिवार के किसी वयोवृद्ध की मृत्यु पर अथवा पुत्र-जन्म, विवाह आदि माँगलिक कार्य जिसके यहाँ सम्पन्न हुआ हो उसके घर पर फूल-पाति लाई जाती हैं। स्त्रियां सामूहिक रूप से जाती हैं एवं दो ताम्र पात्रों को मंगलमय कलश का स्वरूप देकर और पत्तियों से उसे सजाकर किसी सुहागिन महिला के मस्तक पर फूलपाति के कलश को रखकर गीत गाती हुई उस व्यक्ति के घर पर जाती हैं जहां से इस आयोजन का निमंत्रण पहिले से ही प्राप्त कर लिया जाता है। पेड़े, बताशे आदि मिठाई–वितरण के पश्चात् यह आयोजन समाप्त होता है। छोटी लड़कियाँ भी अपने मन की उमंग को प्रकट करने के लिये फूल-पाति लाती हैं। 'बाई जी

बीरा बालम रसिया' गीत की पंक्ति में भाई–बहिन के प्रेम की अनन्यता के साथ रसिया प्रेमी के गहरे रंग के समान अनुराग को अवश्य प्रकट कर दिया है।[1]

बसन्त के समय हृदय की हिलोर को उत्तेजन देने के लिये ही आनन्द उत्सव और त्योहारों के अवसर पर मनुष्य मादक पेयों का सेवन करता चला आ रहा है, प्राचीन काल की आपानक गोष्ठी एवं सुरा सेवी सुरों की कथाएँ आज भले ही इतिहास के पृष्ठों की वस्तु बनकर रह जावे किन्तु भंग और मदिरा अबाध रूप से आज भी सार्वजनिक पेय के रूप में स्वीकृत है। धर्म और सभ्यतागत समाज के नियम भी इनके सेवन में बाधक नहीं बन सकते। आज की जनतंत्रीय सरकार ने भी जो 'भंग भवानी' पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया है और किसी जमाने में एक पैसे में तोला भर बिकने वाली विजया की बूटी अब चार आने मे प्राप्त होती है परन्तु जन-सामान्य इससे असन्तुष्ट नही है। सार्वजनिक पेय पर, जन–सामान्य की मस्ती पर कहीं कन्ट्रोल लग सकता है ? और यदि लग भी जावे तो जन–मानस अपनी तृप्ति का साधन ढूंढ ही लेता है। लोक-गीतो में मन की मादक मस्ती पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लग सकता। शाकाहारी जन-समुदाय के लिये प्रायः मदिरा का सेवन वर्जित है। किन्तु भंग पीने का प्रचलन मालव की सभी उच्च जातियो में पाया जाता है। लोकगीतो में मालव की तरुणियाँ न जाने कितने युगों से फाग के रंगीले दिनो में अपने केसरिया सायबा को भाँग की व्यवस्थित खेती कर पीने का आग्रह करती चली आ रही है :—

"उदयापुर से सायबा भांगड़ी मंगाय, सायबा बीज मंगाय
अब थे बोवो हो केसरिया सायबा, भाँगड़ी हो राज !
थे नी बोवो तो थाने म्हारा गला की आन,
झरमर झाला जी की आन, रसिया प्रेम कंवर की आन
अब थें बोवो हां केसरिया सायबा भाँगड़ी हो राज !

उदयपुर की भांग के बीजों में शायद अत्यधिक मादकता रही होगी। तभी तो मालव की नारी वहीं से भांग के बीज मंगाकर बोने का आग्रह करती है। यदि उसका प्रियतम इस माँग को अस्वीकृत करने की सोचे तो उसे गले की शपथ दी जाती है। प्रेम के आदर्श देवता रसिक शिरोमणि, प्रेम-कुंवर श्री कृष्ण की शपथ दी जाती है। प्रेम से पसारे आंचल की शपथ दी जाती है और अन्त में बेचारे प्रेमी को विवश होकर भांगड़ी का मधु-रस प्राप्त करने के लिये आद्यन्त सभी क्रीड़ाओं में भाग लेना पड़ता है।

बड़े मजे की बात तो यह है कि भांग के बीज बोने और नींदने के लिये खुरपी, सिंचन के लिये जल की झारी, भंग बांटने के लिये शिला, छानने के लिये गण्ना (आप इसे

---

१. ई तो बाई जी रा बीरा बालम रसिया
गेरो जी फूल गुलाब को

ईख न समझें) अर्थात् छानने के लिये वस्त्र और पीने के लिये प्याला ये सभी वस्तुएँ उदयपुर से मँगाई जाती है। उपरोक्त मांगों को लेकर गीत आगे बढ़ता है :—

"उदयापुर से सायबा खुरपी मंगाय, सायबा खुरपी मंगाय
अब थे नींदो हो केसरिया सायबा, भाँगड़ी हा राज !
थे नी नींदो तो त्हाने म्हारा गला की आन
झरमर झाला जी को आन रसिया प्रेम कंवर की आन
अब थे नीदो हो केसरिया सायबा भाँगड़ी हो राज !
उदियापुर से सायब झारो मँगाय, सायबा झारी मँगाय
अब थे सींचो हो केसरिया सायबा, भांगड़ी हो राज
उदियापुर से सायबा सिल्ला मँगाय, सायबा सिल्ला मँगाय
अब थे बाटो हो केसरिया सायबा, भांगड़ी हो राज !
थे नी बाटो...........

उदियापुर से सायबा गण्ना मँगाय, सायबा गण्ना मँगाय
अब थे छानो हो केसरिया सायंबा, भांगड़ी हो राज.......
थे नी छानो तो...........

उदियापुर से सायबा प्याला मंगाय, सायबा प्याला मंगाय
अब थे पीवो हो केसरिया सायबा भांगड़ी हो राज !
थे नी पिओ तो त्हाने म्हारा गला की आन
झरमर झाला की आन, रसिया प्रेम कंवर की आन
अब थे पीवो हो केसरिया सायबा........... भांगड़ी हो राज १।१६३

उपरोक्त गीत एक उद्यान-गीत है ! इसकी परम्परा के मूल में प्राचीन काल के मदनोत्सव एवं उद्यान-गोष्ठी के अंकुर विद्यमान है। होली की पूर्णिमा से लेकर चैत की वर्ष-प्रतिपदा एवं गणगौर की तीज तक मालव में प्रत्येक जाति का समुदाय उद्यान-गोष्ठि का आयोजन करता है। नगर या गाँव के बाहर किसी उद्यान या वाटिका में प्रीतिभोज होता है। इस आयोजन को मालवी में 'गोठ' कहते हैं। गोठ शब्द में गोष्ठी की प्राचीन विहार-मयी परम्परा छिपी हुई है। इस अवसर पर स्त्री-पुरुषों का सामूहिक प्रीतिभोज होता है रंग गुलाल उड़ाई जाती है और महिलायें झाला देते समय उक्त गीत गाती हैं। झाला की प्रथा को देखकर आदिवासियों की स्त्रियों के सामूहिक नृत्य की याद आ जाती है। लतः दोनों की प्रवृत्तियाँ एक ही हैं। किन्तु नगर की नागर स्त्रियां खुलकर नृत्य नहीं कर सकतीं, इसलिए केवल दो पंक्तियों में आमने सामने खड़ी होकर अपनी साड़ी के पल्ले को कोमल हाथों से हिलाकर रह जाती हैं। यह पल्ला (झाला) एक तरह से प्रेम का पसारा हुआ आंचल है जो पवन की तरह मनोकुसुम की सुरभि को प्रवाहित तो अवश्य करता है

किन्तु बेचारी महिलायें संकोच के कारण हिलडुल कर ही रह जाती हैं। फिर भी इस कुंठित वातावरण में प्राचीन संस्कारों की परम्परा तो फूट ही पड़ती है।

वसन्त एवं वर्षा के समय भांगड़ी या भांगड़ली के अन्य गीत भी गाए जाते है। भांगड़ली शब्द मादकता का सूचक है। अतः इस भाव को लेकर गाए जाने वाले गीतों में शृङ्गार की मादकता किसी प्रकार कम नही है। भांगड़ी के एक गीत में तो प्याले पर प्याले पीकर झूमने और इतराने का उल्लेख किया गया है। (१।२१५) यौवन की मस्ती में आकर्षण विकर्षण की भावना भी काम करती है और नायक अपनी पत्नी के फूहड़ व्यवहार एवं अनाकर्षण–मय कृत्यों से असंतुष्ट होकर 'सुख प्यारी' (प्रच्छन्न प्रेयसी) के सौन्दर्य की ओर आकर्षित होता है। विकर्षण की भावना इस चरमता पर पहुंच जाती है कि नायक के मुख से हठात् ही मन की बात निकल पड़ती है—

थें मरो तो गोरी गोळ गलावाँ हो
सुख प्यारी जी मरे तो घेवर छाँटा
हो राज, म्हारी भांगड़ली (१।२१५)

गृह–लक्ष्मी, पत्नी की इतनी अप्रतिष्ठा कि उसके मरने पर जाति–भोज में गुड़ ही गलाया जायगा अर्थात् गुड़ का बनाया मिष्ठान ही प्रस्तुत किया जायेगा, जो हीनता या अगौरव का विषय समझा जाता है और प्रेयसी (रखेल) के मरने पर घेवर जैसा बहुमूल्य शक्कर का पकवान बनाया जाता है। स्वकीया का यह निरादर समाज द्वारा मान्य नहीं हो सकता किन्तु पुरुष के मन में छिपी कामना को नारी ने जो गीत से प्रकट किया है वह यथार्थ ही है। वसन्तकालीन उद्यान–गीतों में स्वकीया और परकीया के प्रसंग को लेकर मालवी नारी ने अपने हृदय की कसक को निष्कपट रुप से रखने की चेष्टा की है। एक गीत में परकीया के आकर्षण का उल्लेख बड़े ही रोचक ढंग से हुआ है। किन्तु स्वकीया के महत्व और गृहस्थ-धर्म की प्रतिष्ठा को पूरी तरह निभाया भी है :–

"भंवर म्हारा बागाँ आजो जी, चतर म्हारा मेलां आजो जी
म्हे बागाँ फिरूं अकेली पपइयो बोल्यो जी ....।"

युग–युगों से विरह–प्राप्त किसी वियोगिन की आत्मा मानो इस गीत में व्याप्त होकर प्रकट होती है। कहते हैं कि कोकिल का पंचम स्वर विरहियों के कोमल एवं वेदना-तप्त हृदय में कसक के साथ एकाकी भाव को असह्य बना देता है। वसन्त की मादक ऋतु में प्रायः सभी प्रेमिकायें अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती रहती हैं। मालव की रमणी के लिए कोकिल के साथ ही पपीहे की पुकार भी असह्य हो उठती है। किन्तु प्रेमी के समक्ष एक समस्या है, उसे अपनी विवाहिता पत्नी का भी ध्यान है:—

"सुन्दर गोरी किस विध आवाँ ए
भायली म्हारी किस बिध आवाँ ए ?

म्हारी परणी नार अकेली----पपइयो बोल्यो जी"

किन्तु प्रेयसी का आकर्षण भरा आह्वान सजग ही रहता है:—

"चतर म्हारा सड़कां आजो जी
सजन म्हारी गलियाँ आजो जी
म्है गलियां रेऊं अकेली पपइयो ....

चतर म्हारा पनघट आवो जी
राजन म्हारा पनघट आजो जी
म्है पानी जाऊं अकेली पपइयो ....

भंवर म्हारा मेलां आजोजी
सजन म्हारा सेज्यां आजो जी
म्है सेज्या पोढ़ूं अकेली पपइयो" ....

प्रेमिका को अनुनय-विनय करने पर भी संयोग के क्षण प्राप्त नहीं होते, प्रेमी की परणी-नार उसके प्रेम-मार्ग में बाधक बनी हुई है। किन्तु प्रेमी अपनी मर्यादा से पूर्णतः परिचित है। वह धर्मपत्नी के प्रति प्रकट की गई दुर्भावना का उत्तर तत्काल दे देता है

भायली म्हारी तुई मर जावे रे
जोड़ायत म्हारी तुई मर जाजे रे
म्हारी परणी बंस बढ़ावे; पपइयो बोल्यो जी १।१९४

मालवा में इस गीत के स्थान-भेद के कारण कुछ पाठान्तर भी मिलते हैं। अनूपजी ने बड़नगर के आसपास के ग्रामों से प्राप्त उपरोक्त भाव से साम्य रखने वाले एक गीत का उद्धरण दिया है

"कौन दिसा से आयो रे ढोला, गली तो चारि बन्द हुई?
बागन माय अइयो रे ढोला, आज बसेरो फूल बागां में
बाहेला म्हारा बाग में अइय्यो, बागा बीच अकेली
बाहेली म्हारी कैसे आऊँ रे, थारो भँवर म्हारो बैरी
कुअछां कुअछां अइय्यो रे ढोला आज बसेरो रतन कुआ पे
ताल पे आइयो रे ढोला, आज बसेरो सागर ताल
मेलाँ में अइय्यो रे ढोला, आज बसेरा रंग मेलाँ में
अइय्यो रे बाहेला मेलां में, मैंलाँ बीच अकेली
बाहेली म्हारी किस विधि आऊं, म्हारी परणी नार अकेली
बाहेली थारी परणी मरजे रे ढोला, थारी परणी मरजे रे
बाहेली तू ही मरजे रे, परणी वंस बढ़ावे.................. १।१८३

यहां नायक को प्रेमिका के यहां जाने मे प्रेमिका के पति का जितना भय है, उतना अपने एक-पत्नी-व्रत की प्रतिष्ठा का नही । 'पपइयो बोल्यो जी' गीत मालव के अनेक स्थानों पर सुनने को मिला है । गेयता और प्रचलन को दृष्टि से स्त्रियो को यही गीत अधिक प्रिय है

मालव की कुछ जातियों में 'भाँगड़ी, की तरह वसन्त के गीतो मे 'दारूड़ी, भी गाई जाती है । राजस्थान की सीमा से लगे हुए प्रदेशो में यह गीत अधिक प्रचलित है । दारू शब्द मालवी में मदिरा के लिए प्रयुक्त होना है और दारू से सम्बन्धित गीत मदिरापेयी जाति की महिलाओं की ही देन हो सकता है । हमें ब्राह्मण एवं वैश्य परिवार की सम्मान्य महिलाओ के द्वारा दारूड़ी के गीत सुनने का कभी अवसर नही आया । होली और सावन के महिने में गाई जाने वाली दारूड़ी, मदिरा-गीत का एक उदाहरण दिया जा रहा है

"मउड़ी बावोरी कलालन, मउड़ी बावोरी कलालन
म्हारा केसरिया भरतार दारुड़ी तोड़ी खाजो
मउड़ी सीचो री कलालन, हाय राजन मउड़ी; म्हारा केसरिया
मउड़ी कूची जाय कि राजण भरतार........म्हारा केसरिया
मउड़ी गले री हाय राजण गले री हाय " "
मउड़ा बीणों री हाय राज मउड़ा " ,
मउड़ा सुखावो री रांगण मउड़ा सुखावोरी " "
मउड़ा राँदोजी हाय राँगण मउड़ा राँदोरी म्हारा केसरिया
मउड़ा राँदो री हाय राँगण मउड़ा खावोरी
म्हारा केसरिया भरतार दारुड़ी तोड़ी खाजो १।१९२

स्त्रियों को यह जानकारी है कि मदिरा महुए से बनती है । गीत में महुए के बोने, सीचने, बीनने, सुखाने, शराब बनाने के लिए कुचलने, गलाने आदि सभी क्रियाओं का उल्लेख किया है । भाँगड़ी गीत केसरिया सायबा की तरह इस गीत में प्रेमी पुरुष द्वारा मउड़ा खाने का विवरण है । भागड़ी और दारुड़ी दोनों प्रकार के गीतों में एक विशेषता दृष्टिगत होती है कि नारी पुरुषों के लिये ही मादक द्रव्य तैयार कर पीने को विवश करती हैं, स्वयं उसका पान नही करती । हालावाद के जन्मदाता उम्मर खैय्याम ने आधुनिक युग में उतर कर मधुबाला के हाथों से मधुशाला मे खूब चषक ढाले और फिर भी उसकी प्यास नही बुझती । इस चिर-पिपासा की तृप्ति के लिये लोकगीतो की नारी का प्रयास निरन्तर चला आ रहा है तो काई आश्चर्य नहीं । उसे तो पुरुष की भोग-पिपासा को किसी भी ढंग से शाँत करना ही पड़ता है । सभ्यता-जड़ विलास के विज्ञानपूरित वैभवमय युग में कामिनी—कादम्ब, नारी और नीरा, साकी और शराब, Woman एवं wine के द्वित्व में वर्ण—साम्य स्थापित कर पुरुष ने अपनी भोग-वृत्ति को चरम सीमा पर पहुँचाया तो स्त्री के हृदय

से पुरुष की इस प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न प्रवृत्ति का लोकगीतों में परिचय मिल जाना स्वाभाविक ही है।

वसन्त के त्यौहार होली की मार्मिक एवं साँस्कृतिक परम्परा में जहाँ एक ओर शिष्ट वातावरण है वहाँ दूसरी ओर उच्छृंखलता भी है। एक-दूसरे पर रंग डालने एवं होली की हुल्लड़ में सभी स्त्री-पुरुष आत्मभाव की मस्ती में जिस प्रकार मर्यादा का उल्लंघन करना अपनत्व का अधिकार समझते है; उसी तरह फाग के गीतों में अश्लील गालियो के गाने की परम्परा भी अक्षुण्य है। इन गालियो के गीतों में राधाकृष्ण का स्थान लौकिक स्त्री-पुरुष ले लेते है। ऐसा लगता है कि समाज के द्वारा निर्धारित स्त्री-पुरुष के विवाह-मय बन्धन को नारी मानस एक झटके मे ही तोड़ देना चाहता है। पर स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध की कल्पना को लेकर गाली-भरे गीतों को स्त्रियाँ बड़े उल्लास के साथ गाती है। यद्यपि अमर्यादा से परिपूर्ण इन गीतो की, शिष्टता की मर्यादा मे रहकर विवेचना करना संभव नहीं है फिर भी जन-मानस की मनोवृत्ति का परिचय देने के लिये कुछ ऐसे गीतों पर विचार किया जा सकता है जिनमें अशिष्टता का उभार चरम सीमा पर नहीं पहुँच पाया है। इस विषय पर विस्तृत विवेचना कुण्ठा को लेकर अन्यत्र किया गया है[1] प्रसंगाकूल यहां 'जूनी भायली' गीत का उद्धरण ही पर्याप्त होगा·······

हाँ जूनी भायली।
जूनी भायली का कारणे
कुँवारो रई गयो रै जूनी भायली
जूनी भायली करे तो छैला, * वाली ने करजे रे
नी तो भर–जलम कुंवारो रीजे रे, जूनी भायली
भायली मजा की मिलगी माच्यो मिल गयो टूटो रे
जूनी भायली १।१४१

मालवी में भायली शब्द प्रेयसी के लिये प्रयुक्त होता है। प्रेयसी स्वकीया नहीं, परकीया है। परकीया के पुराने प्रेम के कारण अविवाहित रह जाने की कल्पना की गई है।

आम्रगीत

वसन्तकालीन गीतों में मन की उमंगों में गाये जाने वाले गीतो के साथ ही उनमें कुछ गीत ऐसे हैं जिनका आनुष्ठानिक महत्व है। गीत, त्योहार व्रत और लौकिक आचारो

---

* नाम विशेष

१. देखें, पाचवां अध्याय (अ)

की मनोभूमि पर यदि विचार करे तो जीवन की किसी भी स्थिति में भारत के नारी-मानस ने अपनी कल्याण-भावना एवं मंगलमय स्वरूप को एकदम तिलांजलि नहीं दी है। भारतीय नारी का उदार-हृदय इन गीतों में परखने से संस्कृति, धर्म, दर्शन, सामाजिकता की अनेक मूल भावनाएं परिलक्षित होती हैं। वंश-संवर्द्धन एवं परिवार के प्रति सुख, वैभव, वृद्धि की कामना का प्रदर्शन नारी के प्रत्येक व्रत एवं लोकाचारों में छिपा हुआ है। सौभाग्य की मंगल कामना इनमें सर्वोपरि है। वसन्त के उत्सव एवं व्रतों में शीतला एवं गौरी पूजा आदि का आयोजन इसके प्रमाण है। यहां वसन्त ऋतु के सौन्दर्य एवं वैभव से उल्लसित होने के साथ ही अपने पारिवारिक वैभव को भी वे नहीं भूल सकती। वसन्त के समय आम्र-मंजरियों की सौरभ-भीनी बहार में अमराइयां महक उठती है। आम्र-मंजरियो के बिना वसन्त का त्योहार भी अपूर्ण सा रहता है। अतः आम्र वृक्ष के रोपने एवं उसके पल्लवित होने के वर्णन को लेकर निम्नलिखित गीत गाया जाता है—

"यो आम्बो मोरियो; सहेलड़ी यो आम्बो मोरियो
इँका इन्दौर से रोप मंगाड़िया, इँको उज्जीण से रोप मंगाड़ियो
चोट्यो ए सरवर पाल......सहेलड़ी......
इँको गोड़ तो थाम्बा हुई रया इँकी डाल पे पंछी बोल रया
इँकी डाल पे मोत्या केरी लडालूम ......सहेली यो......
इँके देखवां राम-लछमन आबिया इँके संग सोनाकेरी जोड़
इँकी सात पूताँ केरी जोड़ सहेलड़ी यो आम्बो मोरियो १।१९५

वसन्त की श्री एवं विभूति के साथ आम का वृक्ष परिवार की सम्पन्नता से उत्पन्न गर्व की भावना का ही सूचक है। आम का वृक्ष मंजरियो की महक के पश्चात् ही केरियों (कच्चे आम) से बोझिल हो रसाल की संज्ञा प्राप्त कर सकता है। भारत की नारी भी आमवृक्ष की तरह शीतल-छाया एवं मधुर-जीवन का फल प्रदान करने के पश्चात् ही इस प्रकार का गर्व कर सकती है। 'इंकी सात पूतां केरी जोड़' में भावना की दृष्टि से गुजरात एवं मालव की नारी का हृदय एक समान ही स्पन्दित होता है[1] भाव के अनुसार इस गीत को आम्रगीत की संज्ञा दी जा सकती है।

१—मारे आंगण नवरंग आम्बो मोरिओ
ऐ आंबलियो कोणे रोप्यो कोणे पायो
कई रे राणीजी रयां रखोपले
ऐ आंबलिया काने (कृष्ण) रोप्यो बलु ने पायो
राणी रुखमणी रयां रखोपले
आंबलियानी आड़ी अवली डालखी
डाल्यै बैठा टौके झीणा मोर — चूंदड़ी भाग २, पृष्ठ ४३।

शीतला और गणगौर के गीत

रोग आदि भय एवं अनिष्टकारी शक्ति को देवी के रूप में मानकर उसे पूजने की प्रवृत्तियों का विवेचन रतजगा के गीतों में किया गया है। शीतला, चेचक भी एक भयंकर रोग है। बालकों की मृत्यु का विशेषतः यह मूल कारण भी बन सकता है। इस रोग के व्रणों से मनुष्य कभी-कभी अन्धा काणा एवं कुरूप तक बन जाता है। मानवीय सौन्दर्य को विवर्ण कर देने वाले इस असाध्य रोग को आदिमानव देवता मान भी बैठे तो कोई आश्चर्य नहीं। हिन्दुओं में शीतला को पुत्र-प्रदायनी देवी के रूप से पूजा जाता है! स्त्रियों के सौभाग्य की संरक्षिणी एवं मनोनुकूल सौभाग्य को प्रदान कर देने वाली देवी तो गौरी (पार्वती) है किन्तु पुत्र की संरक्षा अथवा बन्ध्या को पुत्र प्रदान करने वाली देवी शीतला ही मानी जाती है और इसी भावना से उसका पूजन किया जाता है। उक्त अवसर पर गीतों में भी इसी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति हुई है। जन्म संस्कारों के गीतों में शीतला के सम्बन्ध में प्रचलित पुत्र कामना के गीत का उल्लेख किया जा चुका है। चैत कृष्णा सप्तमी को शीतला का पूजन किया जाता है। इस दिन गरम भोजन का बनाना निषिध है। एक दिन पूर्व का बनाया हुआ ठण्डा भोजन ही दिया है।

गणगौर के त्यौहारों का शास्त्रीय नाम "गौरी तृतीया" है। चैत मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को गौरी एवं ईश्वर को पूजा की जाती है। गौरी के साथ ईश्वर (शिव) भी पूज लिये जाते हैं। वैसे प्रमुख आराध्या देवी तो पार्वती है। सम्पूर्ण भारत में यह त्यौहार किसी न किसी रूप से प्रचलित हैं, जो हिन्दु स्त्री मात्र के लिये विशेष महत्व रखता है। प्रदेश विशेष में पूजन और अर्चन की विधियों में यदकिंचित अन्तर हो सकता है किन्तु मूल-भावना के पीछे एक ही पृष्ठ-भूमि है। सौभाग्यवती महिलायें उक्त दिन मध्याँह तक व्रत रखती हैं। गौरी तृतीया के ठीक एक सप्ताह के पूर्व चैत कृष्णा दशमी के दिन "दसा माता" का पूजन होता है। इस दिन मिट्टी के सरावलों में गेहूं बोये जाते हैं। गेहूं गौरी तृतीया तक अंकुरित हो लहलहाने लगता है। इनको 'जवारा' कहते है। बुन्देलखण्ड के भुजरिये जैसी प्रथा है। अंकुरित जवारों के मध्य बाजौट पर गणगौर एवं ईश्वर की मूर्तियाँ रखकर उनका पूजन किया जाता है। कांच की चूड़ियाँ महावर कुंकुम एवं नवीन वस्त्र आदि सौभाग्य-सूचक वस्तुएं पूजन में चढ़ाई जाती हैं। अनेक स्त्रियां आटे व बेसन के आभूषण बनाकर, घी अथवा तेल में तलकर, खाने के योग्य प्रसाद के रूप में, पूजन के पश्चात् उसका उपयोग भी करती हैं। संध्या को काष्ठ-पुत्तलिकाओं को गौरी के रूप में सजाकर चल-समारोह आयोजित किया जाता है.......

मालव, राजस्थान और निमाड़ में पूजोपचार और और गीतों की भावनाओं में बहुत कुछ समानता है। राजस्थान और मालव में इस त्यौहार को 'गणगौर' कहते हैं।

महाराष्ट्रीय महिलाएं गणगौर कहकर सौभाग्य की अधिष्ठात्री देवी के रूप में पूजन करती है। इस अवसर पर समाज की सौभाग्यवती स्त्रियों का प्रत्येक परिवार में सम्मेलन भी होता है। जिसे 'हल्दी कंकु' कहते है। निमाड़ में गणगौर को रणुबाई' नाम दिया गया है। रेणुका (रेत) की गौरी बनाने के कारण संभवतः रेणुबाई नाम प्रचलित हुआ है। उक्त तीनों प्रदेशो में गणगौर के त्यौहार का नारी-जीवन में बड़ा विशिष्ट स्थान है। इस अवसर पर गाये जाने वाले जितने भी लोकगीत मिलते है उनमें देवी-देवताओ का वर्णन अवश्य रहता है किन्तु वस्तुत: गीत जीवन के यथार्थ तत्वो से परिपूर्ण है। नारी ने अपने आदर्श जीवन को इसमें उतारने की चेष्टा की है। गणगोर के माध्यम से भारतीय बेटी और वधू के जीवन की कुछ घटनाओ का वर्णन किया गया है। मालव के नारी जीवन में सौभाग्यवती एवं कुमारियों के लिये गौरी-पूजन सौभाग्य कामना का एक दिव्य अनुष्ठान माना जाता है। कन्याएं इस आकांक्षा एवं विश्वास को लेकर गौरी का पूजन करती है कि उनको भी मनोवांछित ईसर (शिव) जैसा आदर्श पति मिलेगा और सौभाग्यवती महिलाओं का यह विश्वास अक्षुण्ण है कि गणगौर के व्रत से उनका पति सकुशल एवं चिरायु रहेगा। इस त्यौहार का अपना सांस्कृतिक महत्व भी है। आदर्श गृहस्थ-जीवन की कल्पना के साथ उसे सुसंस्कृत बनाने का उद्देश्य इसमे छिपा हुआ है। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उनमें भी उपदेश, नारी का विराट् श्रृंगार और उसके जीवन की चिरन्तन व्यथा अभिव्यक्त हुई है। इनमे पुत्र-जन्म का हर्ष, भाई-बहिन का प्रेम एवं दाम्पत्य-जीवन के अश्रुहास के शाश्वत चित्र भी अंकित हुए हैं।

रणुबाई बेटी एवं वधू का प्रतीक है और ईश्वर जी जमाई और पति के आदर्श हैं। जमाई अपने ससुराल में जाकर कन्या को उसके माता-पिता से छुड़ाकर ले आता है। बेटी के वियोग की घड़ी कितनी निराशापूर्ण होती है जिसमें करुणा के साथ वात्सल्य का सागर हिलोरे लेता है :—

"ईसर जी तम किना ओ नखेतर में आया हो राज
अबे आणो नी भेजा जी
म्हारी सासूजी आयो हो सावण मास
अबे आणो लई जावाँ जी
ईसर जी म्हारी गोरलबाई तो घणा हो नानेरा
अबे आणो नी भेजा जी
म्हारा सासूजी लावांगा अदवा सदवा सूंठ
अब आणो लई जावाँजी............१।२००

ईसर जी गोरल बई को उसके मायके से अपने घर ले जाने के लिए आग्रह कर रहा है। लड़की की माता कन्या को अभी 'आणा' देना नहीं चाहती और कन्या की

अस्वस्थता का बहाना बनाकर विदाई के प्रसंग को टालना चाहती है। विदाई के प्रसंग के अतिरिक्त नारी-जीवन के मिलन; मान और वियोग की स्थितियों की शृंगार-पूर्ण भावना भी गणगौर के गीतों की विशेषता है। अधिकाँश गीतों में नारी ने आभूषणों की मांग प्रस्तुत की है। निमाड़ की नारी की मांग दिव्य एवं विराट शृंगार की भावना को प्रकट करती है। वह गगन के शुक्र को अपने सौभाग्य आभूषण टीकों मे जड़ना चाहती है। ध्रुव तारे से अपनी बादल रंगी चूनड़ी को रंगना चाहती है। मेघवर्णीय साड़ी पर बिजली की चमकदार किनारी लगाना चाहती है। और वासुकी नाग को वेणी में गूँथना चाहती है—

"शुक्र को तारो रे ईश्वर उगीरयो तेकी मख टीकी घड़ाव
ध्रुव की बादलाईं रे तुली रयी तेकी मख चोल रंगाव
सरग की बिजलई रे ईश्वर कड़की रयी तेकी मख मगजी लगाव
नवलख तारो चमकी रयो तेकी मख अंगिया सिलाव
वासक नाग रे ईश्वर देखई रयो तेकी मख वेणी गुंथाउ....[1]

इसी तरह मालवी नारी का सौन्दर्य-पर्व भी सौभाग्य-आभूषण की अमरत्व भावना को लेकर प्रकट हुआ है।

माता कोर्या ओ कोर्या अम्मर चाँदलो
सोवे बउ रणु को लिलाड़ सोवे बउ गोरल को लिलाड़
म्हारो चाँदलो लागे सुआवणो माता अख्खी हो चूड़ो अम्मर चांदलो
अख्खी हो ईश्वर जी को राज म्हारो अम्मर चाँदलो सुआवणो[2]

मिलन-शृंगार की तरह वियोग अथवा वियोग की प्रारम्भिक स्थिति को उत्पन्न करने वाला मन मुटाव (अबोलना) भी इन गीतों का एक मार्मिक विषय बना हुआ है। गृहस्थ जीवन में अनेक बार ऐसे प्रसंग आते है जब साधारण सी बात पर झगड़ा हो जाता है और पति पत्नी कुछ समय के लिये आपस में एक दूसरे से बोलना बातचीत करना बंद कर देते हैं। पुरुष तो इस स्थिति को सहन कर सकता है किन्तु घर के अवरुद्ध वातावरण में रहने वाली नारी के लिए पति का यह मौन सत्याग्रह बड़ा ही असह्य हो उठता है। मान एवं आत्म गौरव की भावना को दबाकर उसे यह स्वीकार करना पड़ता है 'अबोलो म्हार से नी सरेजी म्हारा का राज' अबोले की स्थिति का चित्रण गणगौर के गीतो में इस लिए महत्व रखता है कि जिस व्रत को नारियाँ सौभाग्य सुख की आकांक्षा लेकर करती हैं

---

१. रामनारायण उपाध्याय; निमाड़ी लोक गीत, पृ० ११।
२. २।१९७ यह गीत रात के समय गाया जाता है।

वहां यदि कोई विषम स्थिति उत्पन्न भी होती है तो हृदय खोल कर उसे भी प्रकट कर देती है । अबोलने का गीत इस अवसर पर आवश्यक रूप से गाया जाता हैं

माथा ने मेंमद लाव म्हारी रखड़ी रतन जड़ाव
जी सायबा खेलणाँ गई गणगौर
अबोलो म्हारा से नी सरेजी म्हारा राज
जी सायबा अबोलो देवर-जेठ
मारुजी रुस्याँ नी सरेजी म्हारा राज
जी सायबां एक चणा की दोय दाल
दोयाँ ने राखो सारखी जी म्हारा राज ......[1]

वधू के लिए देवर और जेठ यदि मौन व्रत धारण करे तो वहां श्रद्धा एवं समाज मर्यादा की रक्षा का भाव रहने से वह स्थिति अखरने योग्य नही होती । अबोला तो देवर जेठ से होता ही है किन्तु प्रियतम रूटे फिरे यह असह्य है । एक चने के दाने से ही दाल के रूप में दो भाग हो जाते है किन्तु उनके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता । उसी तरह नारी यह आकांक्षा रखती है कि सौत की तरह उसके साथ भी समान भाव रखा जाय । निमाड़ी गीत में भी कुछ पंक्तियां तो शब्दशः मिलती हैं, जहां पाठान्तर है वहां स्त्री-पुरुष के पति-पत्नी के रूप मे स्वीकृत सम्बन्ध की अविच्छिन्नता पर जोर दिया है ।

सावन के गीत

वर्षा ऋतु में श्रावण मास सघन सतृण एवं हरीतिमा से आवेष्टित प्रकृति का सहचर बनकर मानव हृदय की उमङ्ग और उल्लास को व्यक्त करने का कारण बन जाता है । उत्तप्त पृथ्वी के साथ मनुष्य का ग्रीष्माकुल हृदय भी हरा भरा एवं भावपूर्ण हो जाता है । वर्षा का आगमन आषाढ़ के प्रथम मेघ के दर्शन से होता है और भाद्रपद की सम्पूर्ण विधियां शरद के आगमन की प्रतीक्षा में गगन के वरदान की झड़ियो से सिंचित होती रहती है । वर्षा काल मे प्रकृति के सौन्दर्य-मय वैभव को निखरता, बिखरता देखकर नारी-हृदय का कोमल स्वरूप भी गीतों मे मुखरित हो उठता है । आम एवं नीम के वृक्षों

---

१. निमाड़ी पाठान्तर

अरे सायब खेलन गई गनगौर, अबोली म्हारा से क्यों लियोजी म्हाराज
अरे सायब अबोलो देवर जेठ, सायब जी सी ना रव्हाँ जी म्हाराज
अरे सायब पड़ी गई रेसम गाठ टूटे पण ना छूटे जी म्हाराज
अरे सायब खाटो दूध अरु दही, फाटयो रे मन जुड़े जी म्हाराज,

—निमाड़ी लोक गीत, पृ० ६ ।

की बाहों पर प्रणय के झूले पड़ जाते हैं और किशोरियां, सुकुमारियां एवं अल्हड़ तरुणियां अपनी-सहेलियों के साथ बरसात की बहार का आनन्द गीतो में व्यक्त करती हुई झूले पर झूलती हैं। सम्पूर्ण वर्षा काल में प्रकृति द्वारा उद्वेलित उल्लास के साथ धार्मिक व्रत एवं अनुष्ठानों के आयोजन की कमी नहीं है। सावन को वर्षा का प्रतीक मानकर इस समय गाये जाने वाले सम्पूर्ण गीतों को सावन के गीत शीर्षक देकर ही विवेचन किया गया है। उक्त शीर्षक में आषाढ़, सावन और भाद्रपद इन तीनों महिनों के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतो का समावेश किया गया है

सावन के गीतो की संख्या बहुत है। मन की मौज एवं व्रत-त्यौहार के प्रसंग पर गेय सावन के गीतों का प्रवृत्ति के अनुसार निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है।
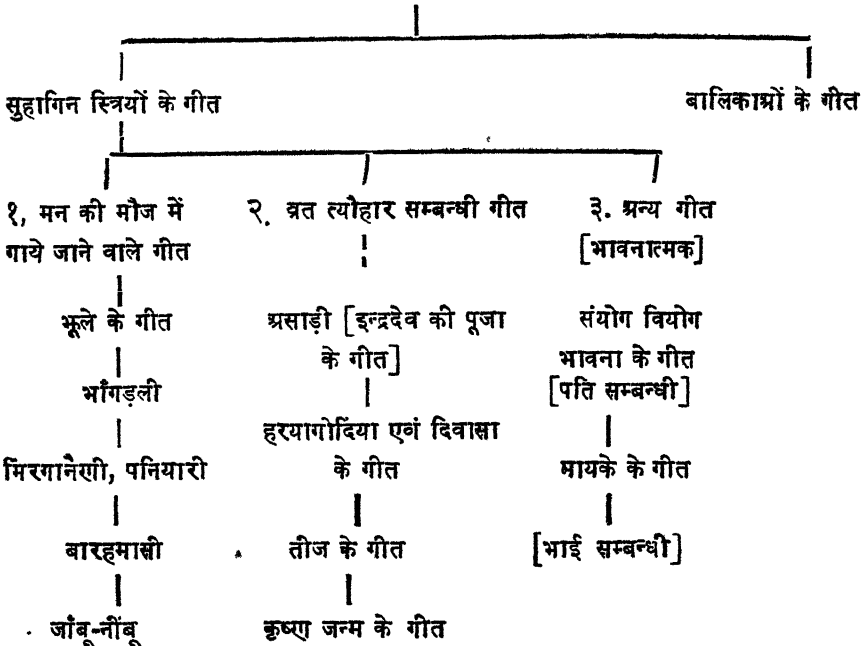
वैसे वर्षा ऋतु का वर्णन झूले के गीत एवं तीज त्यौहार के गीतों को अलग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक प्रवृत्ति के गीतों मे प्रकृति की शोभा के साथ मनोभावना का उभार अवश्य ही प्रकट हुआ हैं।

इन्द्र का आह्वान

इन्द्रदेव के आह्वान के साथ ही वर्षा एवं वर्षाकालीन गीतों की बौछार प्रारम्भ

हो जाती है। ग्राम के किसान भूमि को जोतकर प्रथम मेघ के वर्षण की बड़ी उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा करते रहते हैं। कृषकों के साथ ही कृषक कुमारी एवं ग्राम-महिलाओं की विकलता भी किसी प्रकार कम नहीं रहती है। वे धरा के विदीर्ण हृदय को वर्षा की फुहारों के सिंचन से शीघ्र ही लहलहाता हुआ देखना चाहती है। मालव की कृषक युवतियों की उत्कंठा और जिज्ञासा को कालिदास के मेघदूत ने भी अच्छी तरह समझा था।[1] कितनी ललचाई एवं कामना भरी दृष्टि से इन्द्र की कृपा प्राप्त करने वे अधीर हो उठती है। इस अवसर पर मेघों का नहीं अपितु मेघों के स्वामी इन्दर राजा के स्वागत और आतिथ्य के लिये वे प्रस्तुत रहती हैं—

"चोखा रंडाडूँ ओ इन्दर राजा उजरा हरिया धोला नी ओ मूंग
बिजरी ने कीजो राज, इन्दर आवे पावणाँ ...."

झोपड़ी में रहने वाली किसान स्त्रियाँ स्वर्ग के स्वामी इन्द्रराज को कैसे निमंत्रण दे सकती हैं। संकोच-शीला, लज्जावती महिलायें पुरुष को प्रत्यक्ष निमंत्रण दे भी नही सकतीं। अतः वे बिजली से ही प्रार्थना करती है कि वह अपने स्वामी इन्द्र को पृथ्वी पर आतिथ्य ग्रहण करने के लिये भेजे। लोकगीतों का नारी मानस मनोवैज्ञानिक चतुराई से भी परिपूर्ण है क्योंकि वे जानती हैं कि इन्द्र अपनी पत्नी के कहने को कभी नही टाल सकता। भूमि की महिलाएं स्वर्ग के स्वामी का सत्कार भी क्या कर सकती है स्वर्ग के वैभव-मय उपकरण तो उनके पास नहीं हैं फिर भी वे अपने गृहस्थ जीवन मे आस्वादनीय सभी मीठे भोज्य-पदार्थ इन्द्र राजा के लिये तैयार करती हैं.......

"लाडू बंधाडू ओ इन्दर राजा बाजणाँ
उपर मिसरी ने खाँड.......बिजरी.......
लापसी रंडाडू ओ इन्दर राजा लचपची
उपर लीलड़ो नारेल.......बिजरी ने.......
पोरी पुवा ओ इन्दर राजा नवगजी
उपर गायाँ नो घी......बिजरी ने.......
घेवर घोलूं ओ इन्दर राजा छाँटवाँ
खाजा री खड़क देवाल.......बिजरी ने......
आँसठ बाँसठ मेलूं ओ इन्दर राजा सारणा
चौसठ मेंलूं नी बगार......बिजरी ने......
ऊपर देवाडू ओ इन्दर राजा वेसणा

---

१ प्रीतिस्निग्धैर्जनपद वधू लोचनैः पीयमानः। —मेघदूत श्लोक १६।

नीची परोसी नी थाल.......बिजरी ने
जीम जो चुटी लो इन्दर राजा चरु भर्या
कँई कँई करूं मनवार बिजरी ने ”

उज्वल वर्ण के चांवल, हरे वर्ण के मूंग, मिश्री-शक्कर युक्त लड्डू, लापसी, पचासों तरह के पूरी–पापड़ और घेवर जैसे बहुमूल्य एवं सामान्य पदार्थों को तैयार कर इन्दरराज को उच्चासन पर अत्यधिक आग्रह (मनुहार) के साथ भोजन कराया जाता है। और उसके पश्चात् कत्था, सुपारी एवं इलायची से युक्त पचास ताम्बूल समर्पित किये जाते हैं।

‘कत्थो सुपारी ओ इन्दर राजा एलची
पाका इ पान पचास बिजरी ने.......

इन्द्र कोई सामान्य अतिथि तो है नहीं जिन्हें एक दो पान ही दिये जा सकें। भर पेट भोजन करा देने के पश्चात पान दिये जाते हैं। भोजनोपरान्त विश्राम की भी सम्यक् व्यवस्था है। हीगलू का पलंग तैयार है और वह भी उस कक्ष मे जहां पर सुन्दर दीपक ज्योतित हो रहा है।

हिंगलू ओ ढोल्यो इन्दर राजा ढालियो, दिवलो यो बले रे सरुप
बिजरी ने कीजो हो राज, इन्दर आवे पावणाँ १।२६०

मालव के जन–जीवन में आदर्श आतिथ्य का परम्परा का इस गीत में सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस गीत का अनुष्ठानिक महत्व भी है। गीत में वर्णित पूजा के लिये वाँछनीय खाद्य-पदार्थों की इसी सूची का अन्य देवी-देवताओ के गीतो में भी उक्त क्रम से वर्णन हुआ है। इन्द्र के आह्वान का यह गीत आषाढ़ मास में मेघों की प्रतीक्षा में गाया जाता जाता है और जल तृण के अभाव से मनुष्य तो क्या, जब पशु पक्षी भी त्रस्त हो उठते हैं तब इन्द्र की विशेष पूजा की जाती है! उस समय भी यही गीत गाया जाता है।

भारतीय सभ्यता के आदिम युग वैदिक काल से इन्द्र की मेघों के अधिपति एवं वर्षा के अधिष्ठाता देव के रूप में उपासना होती चली आ रही है। देव-गणों के राजा एवं स्वर्ग के स्वामी इन्द्र का रूप तो पुराण–साहित्य के कल्पना जगत की वस्तु है। लोकगीतों की परम्परा में आज भी इन्द्र की वर्षा के देवता के रूप में उपासना प्रचलित है। प्राचीन काल में जब वरुण देव की अकृपा एवं इन्द्र की कुदृष्टि से वांछित समय पर वृष्टि नहीं होती थी तब पृथ्वी का सरस हृदय उत्तप्त होकर विदीर्ण होने लगता था। ऐसे समय धन-धान्य के अभाव की आशंका से पीड़ित होकर आर्ष ऋषियों का मन सृष्टि के कल्याण के लिए गा उठता था......‘निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु’ और आज भी मेघों के दर्शन के लिये जब आंखें तरसती रहती हैं गरज-गरज कर न बरसने वाले मेघ अपना क्रूर–अट्टहास कर धरा के

वैभव को चुनौती देना चाहते हैं तब विवश होकर मानव का किसान एवं सामान्य जन-वर्षा के देवता को प्रसन्न करने के लिए सामूहिक उपासना करता है। अनावृष्टि के निवारणार्थ की जाने वाली पूजा–पद्धति अत्यन्त सरल है। सप्ताह में किसी भी शुभ दिन ग्राम या नगर की सीमा के बाहर भोजन का आयोजन होता है। देव-मन्दिर या जल के तटवर्तीय स्थान को प्राथमिकता दी जाती है। उस दिन सम्पूर्ण गांव में चूल्हा जलाकर धुआ करना वर्जित रहता हैं। सामाजिकता के इस नियम की बाध्यता के कारण प्रायः सभी लोग उस दिन घर से बाहर जाकर उद्यान गोष्ठी···'पिकनिक' का आनन्द लेते हैं। मालव में इस प्रथा को 'उज्जैणी' कहते हैं। संभवतः यह शब्द उद्यानी का अपभ्रंश है। प्राचीनकाल की वर्षाकालीन उद्यान गोष्ठी की परम्परा का इसमें संकेत मात्र है। दूसरी मान्यता यह भी हो सकती है कि अनावृष्टि के निवारण के लिये उक्त प्रकार की उपासना पद्धति का आविभाव मालव की प्राचीन राजधानी उज्जैन·· उज्जैणी से हुआ है और सम्पूर्ण प्रदेश में प्रचलित होकर स्थान विशेष के नाम से इस प्रथा का नाम उज्जयनी पड़ गया है।

उज्जैणी में इन्द्र के आह्वान की भावना तो है किन्तु अपने अपने आराध्य-देव की पूजा-अर्चना पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अनावृष्टि के निवारण के लिये भैरव, भवानी, गणपति आदि किसी भी देवता की पूजा की जा सकती है। उज्जैनी के दिन सांयम् से पूर्व प्रत्येक परिवार या जाति के लोग समुदाय में आराध्य देव की पूजा के पश्चात् भोजन से निवृत होकर ग्राम की सीमा की ओर प्रस्थान करते हैं। सुहागिन कुल-वधुयें मेघो का आह्वान गीत गाती हुई खेत एवं ग्राम-मार्ग को पार कर घर की ओर जाती हैं। निम्नलिखित गीत वातावरण चित्रण के साथ जन–मानस की आकाँक्षा को प्रकट करता है।

> "झुक जा बादली बरसी जा मेह, पानी बिन पडे यो काल
> नद्दी नाला सूखी र्‌या, सूखे म्हारा हरा निपज्या खेत
> सूखी गयी सगला डोबरा जी, कई ढोर ढंढार प्यासा मरे
> रमझम रमझम बरसो म्हारा इन्दर जी, बद्दल यो ऊंचौ चढायो रे
> कँई अकाश में उगे तारो, बिजली छिपी गई बादल माँय
> अकास में चमक्यो चाँद जी, झुकी जा बादली
> बरसी जा म्हारा पिया के देस·········" १।२०८

राग मेघ–मल्हार की कल्पना करने वाले व्यक्ति ने अवश्य ही इन लोक-गीतों के भावनामय स्पन्दन को समझा होगा। अनावृष्टि की विभीषिका से संत्रस्त हो मेघों के प्रति आत्मीयता की भावना का प्रदर्शन मालव में नही अपितु भारतीय लोकगीतों की संवेदनशील प्रवृत्ति का द्योतक है। मेघों से कितना आग्रह किया जाता है।

> मेघ झुक जा
> पानी बरसा दे मेरे प्रिय के देश में,

महाराष्ट्र प्रदेश की कृषक वधू का मेघ के प्रति प्रदर्शित किया गया अपनत्व भाव तो बड़ा ही सरस है। वह मेघ को कुछ प्रलोभन भी देती है कि तू यथासमय बरस गया और मक्का पक गई तो पुरस्कार के रूप में भुजबन्ध का आभूषण प्रदान करूंगी।

पड़ पड़ मेघराजा काय पडूस वाटेना
पाप धरतीला साठवेना
पड़ पड़ पाऊस नको बन्धूस तालायाला
ताईत बन्धू माझा कुनबी अट्टाल्याँचाँ झ्याला
पडूंवे हाऊस पिकूदे माझा मका
करीन तुझ्या डोरल्या टिक्का[1]

चिर प्रतीक्षा के पश्चात् मेघों का वर्षण एक अनुपम उल्लास को जन्म देता है। प्रकृति की गोद में फलने वाले कृषि-प्रधान भारत के लिए वर्षा का समय जीवन का एक विशेष अवसर होता है। इसी समय त्योहारों की भीड़ लग जाती है। मालव-भूमि में भी उत्साहमय आनन्द का वातावरण छा जाता है। आषाढ़ के प्रथम बादल की उमड़-घुमड़ के साथ ही मालव सुन्दरियो का मन आत्मविभोर होकर गा उठता है।

"काली पोली बादली म्हारो लेर्यो भिजोयोजी राज
चतर रहाँका भायला पचरंग्यो निचौयो जी राज……"

और वर्षा में हरियाली को देखकर बालिकाएं भी मुखर हो उठती हैं :—

"नीम निम्बोली पाकी सावन मइनो आयो जी
उठो उठो म्हारा बाला वीरा लीलड़ो पलाणो जी
तमारी तो प्यारी बेन्या सासरिया में झूले जी
झूले तो झूलवा दीजो अबके सावन लावाजी……

नीम के वृक्ष पर निम्बोली का पकना सावन मास के आगमन का सूचक है। बालक बालिकाओं के लिये निम्बोली का खेल एक आकर्षण का साधन है। इन दिनों कोई अभागिन बहिन ही होगी जो ससुराल में रह जाती है। प्रत्येक भाई अपनी बहिन को उसके ससुराल से ले आता है। उपरोक्त गीत में बहिन द्वारा ससुराल में की गई भाई की प्रतीक्षा का काल्पनिक चित्र भी दिया है। नीम पर निम्बोली के पकते ही बहिन को विश्वास हो जाता है कि सावन मास आ गया है और उसकी माता अवश्य ही भाई से कह रही होगी…'बहिन के प्रिय भाई तुम्हारी बहिन तो ससुराल में ही झूल रही है। जाओ घोड़ी तैयार करो और उसे लिवाने के लिये प्रस्थान कर दो। भाई के आगमन पर स्वागत और मायके जाने का उत्साह कथात्मक रूप में एक गीत से प्रकट हुआ है।

---

१. लोक साहित्याचें लेणें, पृष्ठ ३४—३५।

"सावन की पेली तीज आई राज, म्हारा वीरा जी लेवा के आया.
जद म्हारा वीरा घर से सिदारिया, आछा आछा सगुन विचार्‌यां हो राज
जद राजा म्हारा वीरा घुडल्या सजाया, हाथी पे होदा धराया हो राज
जद राजा म्हारा वीरा काँकड़ आया, खेतों री दूब हरियाई हो राज
जद राजा म्हारा वीरा बागाँ आया, मालन कुअला पे बधाया ओ राज
जद राजा म्हारा वीरा गलियाँ आया, गली की गरद उड़ाई ओ राज
जद राजा म्हारा वीरा बाण्ने आया, बाणने कलस धराया ओ राज
जद राजा म्हारा वीरा तिलक संजोया
मोतियन अखत डाल्या ओ राज !" १।२१०

भाई के सत्कार के पश्चात् बहिन अपने मायके जाने की प्रारम्भिक तैयारी करती हैं, एवं पति से आभूषण बनवाने का आग्रह करती है।

"गेणा घड़ावो पिया मायड़ी घरे जावां
सालू मोलावो पिया मिलनो म्हारे काक्यां से
बिन्दी घड़ाओ पिया, मिलनो म्हारे माम्यां से
माला पोवाओ पिया, मिलनो म्हारे दादा से
लेवाने आया म्हारा माड़ी जाया वीर
अब तो भूला साजन नइ भूलूँ
अब तो भूलो भूलूगाँ पीयर माय
म्हारा वीरा जी लेवा आया........" १।२११

बालिकाओ के गीतो में भाई के सम्बन्ध में बाल-सुलभ कल्पनाएँ प्रश्नोत्तर प्रणाली में आकर्षक ढंग से प्रकट हुई हैं

कुण वीरो चाल्यो चाकरी, कुण वीरो चाल्यो गढ़ गुजरात
मोटो वीरो चाल्यो नौकरी, छोटो वीरो चाल्यो गढ़ गुजरात
कुण वीरो लायो चूनड़ी, कुण वीरो लायो दखणी को चीर
मोटो वीरो लायो चूनड़ी जी, छोटो वीरो दखणी को चीर
कुण वेन्या ओढ़े चूनडी जी, कुण वेन्या दक्षणी को चीर
चूनडी पेरे मोटी बाई जी, छोटी वेन्या ओढ़े दक्षणी को चीर... ....१।२०३

यथा-समय प्रत्येक परिवार से भाई अपनी बहिन को सावन मास में उसके ससुराल से लाने के लिये आतुर रहता है। यातायात की कठिनाई या असुविधा के कारण यदि भाई अपनी बहिन को नहीं ला सका तो वह समय उसके लिए दुर्भाग्यपूर्ण हो जाता है। क्योंकि बहिन के होते हुए भी उसकी कलाई सूनी रह जावेगी, बहिन राखी नहीं बाँध सकेगी। प्रकृति की बाधाओं को चुनौती देने वाले यातायात के साधनों में रेल आदि का

आविष्कार नहीं हुआ था तब सामान्य नदियां भी मनुष्य का मार्ग रोक देती थी। मार्ग बाधा के संकेत के एक भावपूर्ण गीत का उल्लेख डॉ० श्याम परमार ने किया हैं।

राखी दिवासो आयो, लेवा आवो म्हारा वीराजी
हू ँ कैसे आऊँ बेन्या बई, सिपरा नदी हुई गई पूर
सिपरा के कापड़ो चढ़ाव म्हारा बीराजी, हूं चकरी भवर भेजूँ
खेलता खेलता आव म्हारा बीराजी।[1]

भाई राखी और दिवासा के लिए जैसे ही बहिन को लेने के लिए जाता है क्षिप्रा नदी में बाढ़ आ जाती है और वह मार्ग रोक लेती है। बहिन के यहाँ जाने के मार्ग में नदी बाधक बन जाना लोकगीतों की शाश्वत भावना है। गुजराती बहिन तो बाढ़-ग्रस्त नदी को पार करने की एक व्यवहारिक युक्ति भी बताती है जब कि मालवी बहिन द्वारा प्रस्तुत की गई युक्ति अन्ध-विश्वास एवं प्रचलित प्रथा विशेष की ओर संकेत करती है कि क्षिप्रा नदी को कपड़े की भेंट चढ़ा दो वह मार्ग दे देगी।

वर्षाकाल में मालवी कन्या एवं सुहागिन महिलाओं के त्यौहार 'हरयागोंद्या एवं दिवासा' सावन की तीज और राखी रक्षाबन्धन उल्लेखनीय हैं। हरया गोंद्या का त्यौहार देवशयनी एकादशी को मनाया जाता है। आषाढ़ी वर्षा से जब बन और खेतों में हरियाली छा जाती है। मालवी बालिकायें इस अवसर पर आनन्द का सूचक त्यौहार मानती हैं। आषाढ़ शुक्ला एकादशी को वन स्थिति किसी देव मन्दिर में जाकर गुड़-धानी और जुवार की फूली ले जाकर सखी सहेलियों के साथ खेलती हैं। एक मुट्ठी गुड़धानी भर कर किसी सहेली की पीठ पर जोर से मुक्की (घूंसा) लगाई जाती है और इस प्रेम की मार के पश्चात् पुरस्कार-स्वरूप वही मुठ्ठी गुड़धानी भर कर दी जाती है। इसी दिन से चातुर्मास प्रारम्भ होता है। हिन्दुओं के देवता सो जाते हैं। किन्तु बनों के देवता जाग्रत होकर हरियाली का आनन्द और उल्लास बिखेर देते हैं। बालिकायें एवं उनके उत्सव में योग देने वाली महिलायें इस दिन से भूलना प्रारम्भ कर देती हैं। भूले के गीत भी प्रारम्भ हो जाते हैं

दिवासा को हरियाली की अमावस्या भी कहते हैं उक्त दिन से ही मानो किसी

---

१. मालवी लोक गीत, पृष्ठ २२

२. वीर आड़ी छे आरबा नदी
वीर आड़ी छे आरबा नदी·······नदीनां नीर घणेरां
वीर कड़ये लई तुंबड़ा बांधो
वीर कडये लई तुंबड़ां बांधो रे·······तुंबड़ले तरता आवो

—रढियाली रात, भाग १, पृष्ठ ६८

दिव्य आशा का संचार होता है। श्रावण मास की अमावस्या को हरयागोंधा के समान ही स्त्रियों के द्वारा क्रीड़ा-किल्लोलें की जाती हैं। झूले पर गीत गाये जाते हैं। 'बादल घेर घुमेर सावन सेवरो बरसे जी' की ध्वनि झूले के चढ़ाव उतार के साथ तरुणियो के हृदय के आनन्द को प्रकट करती है, और गगन में उमड़ते हुये बादल फुहारें बरसा कर गीतों के स्वर के साथ वातावरण को सजीव बना देते है

झूले के गीत मन की मौज और उमंग के गीत हैं। बसन्त के गीतो की तरह भाँगड़ली के गीत भी इस अवसर पर गाये जाते है। इन गीतो में हृदय के आवेग के सजीव चित्र अङ्कित हुये हैं। सौत के प्रति नारी-मानस की ईर्ष्याग्नि इस ऋतु में अधिक तीव्र हो उठती है—

सुख प्यारी का मेलाँ मति जाजो, ओ राज म्हारी भाँगड़ली
नद्दी किनारे बैठा बना मारु जी
बैठा बैठा भाँगड़ी घोटावे, ओ राज म्हारी भाँगड़ली
आप पीयो ने ढोला साथ का ने पावो
मारुणी ने अदरख चखाओ ओ राज म्हारी भाँगड़ली
भाँग रंगिली ढोला भाँग छबिली
भाँग भरुड़े भाई, ओ राजा म्हारी भागड़ली········ १।२११०

भंग के नशे मे मदस्त पति से पत्नी का निवेदन है कि वह अपनी प्रेयसी के महल में नहीं जावे। यदि उसे भांग की मादकता से ही प्रेम है तो वह खूब पी सकता है। अपने इष्ट-मित्रों को भी पिला सकता है। किन्तु इस मादकता का रस पत्नी को देना भी वाँछनीय है। बेचारी पत्नी तो मधुर रस की प्यासी भी नहीं है। अदरक की कड़वास का कडुवा रस भी उसके लिये पर्याप्त होगा।

वर्षा ऋतु में नारी द्वारा पति के समीप रहने की भावना अधिक उद्दाम रूप में अभिव्यक्त हुई है। सावन के दिनो में जिन तरुणियों के पति विदेश जाने को तत्पर रहते है। सावन की घटाओ के साथ ही उनकी अश्रुधारायें भी बहने के लिये उमड़ पड़ती हैं। विरह की असह्य स्थिति को टालने के लिये विदेश गमनोत्सुक पति से नायिका अनुरोध करती है कि सावन मेघ गरजेंगे बिजली कड़केगी उस समय उसका एकाकी रहना कष्ट साध्य होगा—

ओ पिया अब के चोमासे घरे रेवो, घरे रेवो बाई जी का वीर
म्हारा हरिया बागाँ का केवड़ा, सायब जावाँ नी देवाँजी म्हारा राज
ओ पिया जाओ तौ लीपू आँगणा, रेवो तो माँडू चन्दन चौक
ओ गोरी देख लाँगा पीली लिप्या आँगणा निरख लेवाँगा चन्दन चौक

म्हारा काल बादलाँ की बिजली, सोवा नी देवे जो म्हारा राज
ओ पिया जाओ तो राँदू लापसी रेवो तो छाँटू मोती चूर
म्हारा हरिया बागाँ का केवड़ा, सायब……
ओ गोरी देख लेवाँगा गुड़ की लापसी, जीम लेवाँगा मोतीचूर
ओ पिया जाओ तो ओढ़ूँ पोमचो जी, रेवो तो ओढ़ूँ दखणी को चीर
ओ गोरी देख लेवाँगा मोती पोमचो, निरख लाँगा दखणी को चीर
ओ पिया जाओ तो पोढ़ू काली कामली, रेवो तो फूलां भरी सेज
ओ गोरी देख चलाँगा कालो कामली, पोढ़ी लाँगा फूलों की सेज
म्हारा हरिया बाँगा का केवड़ा, सायब………
ओ पिया साँप ने छोड़ी काँचलो, नदियाँ ने छोड़ी रे करार
बालम ने छोड़ी गोरी नार रे, यो दुखड़ो सयो नी जाय
ओ पिया अब के चौमासे आए घरे रेवो, घरे रेवो हो बाई जी का वीर
म्हारा हरिया बागाँ का केवड़ा, सायब………" १।२१२

यह गीत भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से अनुपम है। मिलन एवं विरह दोनों स्थितियों में उत्पन्न नारी हृदय का उल्लासमय विलास और वेदना मय मलीनता एवं खिन्नता का साथ साथ चित्रण हुआ है। प्रियतम के लिये हरिया बागाँ का केवड़ा सम्बोधन भी कितना सार्थक है। प्रेम की सुगन्ध के साथ नारी-हृदय में व्याप्त शाश्वत मिलन की पिपासा भी प्रकट होती है। प्रकृति के साथ अपनी विरहमयी स्थिति का साम्य स्थापित करने में मालव की नारी कितनी कलामयी एवं चतुर है।

१—साँप ने केचुली छोड़ दी है
२—नदी ने अपने किनारे छोड़ दिए हैं
३—प्रियतम अपनी गोरी को छोड़ रहा है ………

उक्त गीत के भाव सौन्दर्य पर मुग्ध होकर देवेन्द्र सत्यार्थी ने भी इसका गद्यात्मक अनुवाद 'धीरे बहो गंगा' में प्रस्तुत किया है।[1] स्थान-भेद के कारण गीत के कुछ पाठान्तर भी हो गये हैं! श्याम परमार ने प्रभागचन्द्र शर्मा के लेख से गीत का जो उद्धरण किया है वह भी अधूरा है।[2] ओमप्रकाश अनूप ने इस गीत को पूरा लिखा हैं! पाठान्तर होने पर भी अनूप जी द्वारा संकलित गीत में कुछ पंक्तियां अधिक भावपूर्ण हैं।

सावन को बरसे मेवलो भादवा की चमके गाज
याँजू रेवो बाई जी का वीर अब के चौमासे घर रहो

१—धीरे बह गंगा; पृष्ठ १०।
२—मालवी लोकगीत, पृष्ठ २२।

खोल्या खोल्या सोला सिंगार ओ, पीलो ने ओढ़्यो केसरियो जी म्हारा राज
मारुणी ने लीदी पीयर की बाट ओ, मारुणी रूसी चाल्याजी म्हारा राज
घोले घोड़े हुई असवार ओ, सुसरा जी मनावा आविया जी म्हारा राज
मानो जी मोटा घर की नार ओ, घरे चालो आपणा जी म्हारा राज
सुसरा जी थे म्हारा बाप ओ, हिया में हाले फाँस म्हारा राज
लीली घोड़ी असवार ओ, सायबा जी मनावा आविया जी म्हारा राज
मानो मानो बड़ा बाप की लाडली ओ, घरे चालो आपणा जी म्हारा राज
देवाँ देवाँ लाडू की गोठ ओ, रूस्याँ ने मनावाँ जी म्हारा राज …२।२२१

पति-पत्नी मे सामान्य-सी बात पर झगड़ा हो गया। चांदनी छिटकी हुई थी। गोरी (पत्नी) घूमने के लिए घर से बाहर निकल पड़ी। शुभ्र चांदनी का सौन्दर्य अधिक आकर्षक होने से नायिका सम्पूर्ण रात्रि मे चन्द्रिका के प्रकाश में घूमती रही और प्रभात होने पर घर आई। सारी रात पत्नी के गायब रहने पर पतिदेव रूठ गये और महल (मकान) के वज्र जैसे किवाड़ बन्द कर दिये। उस पर लोहे की सुदृढ़ सांकल भी लगा दी। नायिका ने दरवाजा खोलने के लिए अधिक आग्रह भी किया किन्तु नायक के मन में रात भर एकाकी रहने की प्रतिक्रिया ने क्रोध का स्वरूप धारण कर लिया और उसने मकान से नीचे उतरते ही द्वार पर खड़ी पत्नी पर दो-चार हाथ जमा दिये। पति के इस असभ्य व्यवहार से पत्नी रूठ गई और क्रोधित होकर रात्रि के समय किए गये सोलह शृंगारो को त्याग कर पीले रंग की साधारण साड़ी पहने हुये पीयर के मार्ग की ओर चल पड़ी। जब ससुर को बहू के रूठने और अपमानित होने की बात मालूम हुई तो श्वेत अश्व पर सवार हो कर उसे मनाने के लिये आया।

'तुम बड़े घर की बधू हो, मान जाओ और अपने घर चलो'। ससुर की मनुहार का नायिका ने आदरपूर्वक उत्तर दिया' आप तो मेरे पिता के समान हैं किन्तु अपमान के शल्य मेरे हृदय में चुभ रहे हैं।' ससुर नायिका को नही मना सका और वह लौट गया। अन्त में नायक को स्वयं अपनी रूठी पत्नी को मनाने के लिये आना पड़ा। पति के सन्मुख नारी का मान कितनी देर टिक सकता है। पति ने मीठे मोदक की गोष्टी का अभिवचन देकर रूठी हुई पत्नी को मना लिया। पति-पत्नी का सम्बन्ध ही एक ऐसी गाँठ हैं जो टूट सकती है छूट नहीं सकती।[1]

---

१. मन्दसौर से प्राप्त उक्त गीत में पति पत्नी के सम्वाद के रूप में कुछ रोचक एवं प्रस्तुत गीत से अधिक कथात्मक अंश का पाठान्तर है।

सायब तेड़ो मोकल्यो जी म्हारा राज, बेगा बेगा आओ सुन्दर नार ओ
जीमण देरां हुई रई जी म्हाका राज, जिमाड़ो जिमाड़ो लोडी सोक*

श्याम परमार ने मालवी लोकगीत में जो उद्धरण दिया है उसमें शब्दगत पाठान्तर के साथ निम्नलिखित पंक्तियाँ अधिक है।

"राँगा पीयर पड़ोस कातांगा रेट्यों जो म्हारा राज
जावांगा जावरिया री हाट मोंगो तो करि बेचांगाजो म्हारा राज
रुपया रुपया म्हारो तारा मोहरी म्हारी कूकड़ी जी म्हारा राज......[1]

इन पंक्तियों से अपमानित नारी का आत्म-सम्मान अधिक जागरूक है। पति के बिना भी रहकर वह स्वयं अपना निर्वाह करने की क्षमता रखती है। पीयर या उसके पड़ोस में रहकर चरखे से सूत कातकर वह अपना उदर-पोषण कर सकती है किन्तु पुरुष द्वारा अवांछनीय अपमान नहीं सह सकती। यहां नायिका अपनी आजीवका प्राप्त करने की योजना भी स्पष्ट कर देती है कि वह जावरे के हाट बाजार में जाकर काते हुये सूत को मंहगा कर बेचेगी। एक एक तार रुपये की मूल्य का होगा और कूकड़ी तो एक स्वर्ण मुद्रा के मोल में बेची जावेगी। इस गीत में नायिका की पिटाई और नायक द्वारा मिष्ठान की गोठ देने का उल्लेख नहो है। मालव की तरह यह गीत गुजरात में भी प्रचलित है। भाषा और भाव में कोई अन्तर नहीं है। केवल कथा प्रसंग में कुछ कठोरता आ गई है। गुजराती लोकगीत का नायक हृदय-हीन है। वह पत्नी के हृदय में तीर मारकर चला जाता है जब कि मालवी नारियों ने उक्त प्रसंग को मिलन का स्वरूप प्रदान कर दिया है। गुजराती में यह गीत 'रिसामणाँ कहलाता है।[2]

झूले के कथात्मक गीतों में हंसा-हंसणी का गीत भी प्रचलित है। इसमें हंसा प्रेमी हंसनी प्रेमिका या पत्नी का प्रतीक मानी गई है। पति परदेसी के रूप में अपनी पत्नी के प्रेम की परीक्षा करने के लिये ससुराल के गांव में जाता है। पत्नी एवं परदेशी के प्रच्छन्न रूप में आये पति के बीच वार्तालाप होता है। और अनजाने में ही पनिहारियों के मध्य में वह अपनी पत्नी के सौन्दर्य पर रीझ जाता है। एक-दूसरे अपना गांव—ढांव बतला देने के पश्चात् पहचान लेते हैं। नायिका अपने परदेशी प्रियतम को मायके ले जाती है। सखी-सहेलियों को बड़ा आश्चर्य होता है। वे भी इस अनजान व्यक्ति का नाम और पता पूछ

---

*बेगा बेगा आओ सुन्दर नार ओ, पोढ़न देरां हुई रई जी म्हारा राज
पोढ़ावो पोढ़ावो लोंडी सोक, मानो मानो मोटा घर की धिय हो
चाकर थांका बाप का जी म्हाका राज, खोल्या खोल्या बजर किवाड़ हो
सांकल खोल्या सार की जी म्हाका राज, पड़ गई रेसम गांठ ओ
टूटे पणै छुटे नई जी म्हाका राज.........१।२२१

१. मालवी लोक गीत; पृष्ठ २२।
२. रढियाली रात, भाग १, पृष्ठ ३५—३६।

बैठती है नायिका स्पष्ट कर देती है कि वे नवखण्ड महल से आये और तुम्हारे जीजा जी है। अर्थात् नायिका के पति हैं। गीत का उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है।[1] इस गीत का रूपान्तर कुछ भाव परिवर्तन के साथ 'हंस-मोरनी' के गीत के रूप में कुरु प्रदेश में भी गाया जाता है। प्रेमी और प्रेमिका के प्रेम की परख, उसके सतीत्व और प्रेममयी दृढ़ता की व्यंजना से भरे गीत भारत के मध्य प्रदेशों में भी गाये जाते हैं। भारतीय लोक-गीतों की यह सामान्य प्रवृत्ति का विषय बन गया है। ब्रज और बुन्देलखण्ड में प्रचलित 'चन्द्रावली का गीत भी कुछ घटनाओं के हेर फेर के अतिरिक्त उक्त भावों की व्यंजना प्रस्तुत करता है। वर्षा-कालीन गीतों में नारी जीवन से सम्बन्धित प्रेम एवं प्रणय की घटनाओं को लेकर रचे गये गीतों के गाने की परम्परा अक्षुण्ण है। हंस-हंसणी के गीत के अतिरिक्त मालव में प्रेम-भावना एवं प्रणय के आकर्षण की घटनाओं से भरे कथा गीत प्रचलित है। मालव की ग्रामीण नारियों ने पथिक (बटउड़ा) के रूप में आये प्रियतम और नायिका के मिलन को संवादात्मक शैली के आवरण में ग्राम्य-जीवन की मोहक झांकी प्रस्तुत की है—

चार खुण्या चार बावडी रे, चारी पिराले पाट, बटउडा ने मन मोयो
असो दउँगा लात की छोरी, जाय पडे नदिया माय, बटउडा.........
नदिया उतरु तो पगल्या भीगें, बिछियां लगे भारी रेत, बटउडा........
दुपट्टा से पोंछूँ थारा पगल्या, चीमटी से बीणूं बारीक रेत, बटउडा......
वो छोरा, हल हाकन्ता त्हारा कँई लागे,
बछिया फिरन्ता त्हाँरा कँई लागे ? बटउडा......
हल हाकन्ता म्हारा बाजो लागे बछिया फिरन्ता म्हारो गवालो लागे, बटउडा......
भैंसा दुहन्ता त्हारे कँई लागे, घुडला फिरन्ता त्हारे कई लागे ? बटउडा......
भैंसा दुहन्ता म्हारा काकाजी लागे, घुडला फिरन्ता म्हारा मामाजी लागे बटउडा......
कचेरी बैठन्ता त्हारा कँई लागे, सेरी रमन्ता त्हारा कई लागे ? बटउडा......

---

१. लगी हंसा की हंसणी ओ प्यारी कांई छे त्हारो नाम
वणी हंसा की हंसणी ओ प्यारे जो बसी रया परदेश
वणी हंसा को हंसणी रे प्यारे रंभा म्हारो नाम
वणी गांव का हंसा रे प्यारे कांई थाको नाम
वणी गांव की रेवासी ओ प्यारी झुकी रया नो खंड
कई है थाको गांव ओ प्यारी भूली गयो गेलो बाट
ऊँची-ऊँची बांय करिने प्यारी बतई दो म्हारे बाट
ऊँची पाल तलाब की रे प्यारे झुकी रया नो-खंड
या बात सुण के चल दियो रे वणी हंसणी को हंस
कणी परदेस के लई ओ प्यारो कांई छे इनको नाम
नो खण्डा से आया रे प्यारी छे त्हाका जीजाजी राज

कचेरी बैठन्ता म्हारा मासाजी लागे, सेरी रमन्ता म्हारा वीराजी बटउडा……
पानी भरन्ती त्हारी कँई लागे, रोटी पोवन्ती त्हारी कईं लागे ? बटउठा……
पानी भरन्ती म्हारी मामी लागे, रोटी पोवन्ती म्हारी काकी लागे बटउडा……
गोबर हेरन्ती त्हारी कँई लागे, माल जावन्ती त्हारी कईं लागे ? बटउडा……
गोबर हेरन्ती म्हारी माय लागे, माल जावन्ती म्हारी मामी लागे
जांसे लायो वहीं मेलियाश्रा रे छोरा
थारों सोदो रे परवार हिटिश्रायो बटउडा……
हूं त्हने कद लायो श्रो छोरी चार खुण्या को नाम लियो,
बटउडा ने मन मोयो…… ३।७७

कथा-गीतों के अतिरिक्त प्रश्नोत्तर प्रणाली से प्रचलित 'मिरगानैणी-पनिहारी' का गीत भी सावन के सौन्दर्य की भावना को प्रकट करता है। वास्तव में यह गीत राजस्थान की देन है। भारतीय ग्रामों मे पनघट का दृश्य बड़ा मनोरम होता है। नदी सरोवर एवं तालाब से गृह-कार्य के लिये जल लाने का कार्य प्रभात होते ही गृह-लक्ष्मी को करना पड़ता है। जिन गाँवों में तालाब नहीं है वहाँ कुश्रों के पनघट का दृश्य देखने को श्रवश्य मिल जाता है। किन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मानवी सौन्दर्य के श्राकर्षण की झांकी मे उस रसानुभूति का श्रभाव ही रहता है जो लहराते हुए जलाशय में घट को डुबोते समय प्राप्त होती है। ग्राम-जीवन में कर्त्तव्य-पालन की भावना के साथ पनघट सौन्दर्योपासना एवं मधुर जीवन की प्रेरणा का एक श्रनुपम स्थल भी कहा जा सकता है। यह नगर के कृत्रिम जोवन में श्रब श्रप्राप्त है। जलाशयों से जल लेकर समुदाय में गीतों के स्वरों को मुखरित करती हुई पनिहारियों में प्रातः सायं जहाँ कर्तव्य-साधना के साथ एक श्रोर दाम्पत्य का गर्व झलकता है, वहां दूसरी श्रोर कलात्मक सौन्दर्य को निखारने की मधुरता भी है। इस सजीव सौन्दर्य को देखकर ही महाकवि प्रसाद की कल्पना सजग हुई होगी श्रौर तभी वे भारत की सांस्कृतिक महत्ता के शाश्वत चित्र को उतारने मे समर्थ हो सके। 'श्रम्बर पनघट में डुबो रई तारा घट ऊषा नागरी'।[1]

राजस्थान की नैसर्गिक छटा से प्रेरित पनिहारी गीत की प्रेरणा ने मालव में भी प्रवेश किया। यह गीत सम्पूर्ण मालव में प्रचलित नहीं है। राजस्थान की सीमा से संलग्न मन्दसौर जिले में ही इसका विशेष प्रचार है। भावना की प्रेरणा राजस्थान से प्राप्त करने पर भी मालवा में श्राकर इस गीत में कुछ कलात्मक परिवर्तन हो गया है जो नारी मानस की रसानुभूति का परिचायक है। मालव में प्रचलित गीत का स्वरूप निम्नलिखित है

कणी रे खुदाया कुवा-बावड़ी रे, कणी ये खुदाया तलाब……वालाजी
पनियारी श्रो राज मिरगानैणो श्रो राज, सुसरे जी खुदाया कुश्रा बावड़ी रे

१. प्रसाद के एक गीत की पंक्ति… देखे 'लहर' पृष्ठ १६ (भारती भण्डार प्रकाशक)

दादा जी खुदाया तलाब......वालाजी पणियारो ओ राज मिरगाणैनो ओ राज,
जेंठ जी खुदाया तलाब...वालाजी पणिग्रारी जो......
कदी नी जाऊँ कुआ बावड़ी नित नित उठ जाऊं तालाब......वालाजी
पणियारी ओ राज मिरगानैणी ओ राज......

ससुर—जेठ आदि गुरुजनों के खुदाये हुए कुंए बावड़ी पर वधू पानी लेने के लिये जाने की कामना नहीं रखती। किन्तु प्रियतम के द्वारा निर्मित सरोवर पर नित्य प्रति जाने में उसे उल्लास का अनुभव होता है। राजस्थानी गीत में हंसा-हंसणी के कथा-गीत की तरह परदेशी प्रियतम के साथ छेड़छाड़ एवं मिलन का दृश्य अङ्कित कर गीत को संयोग एवं वियोग शृंगार की भावना में गूंथ दिया है।[1] उक्त गीत की प्रारम्भिक पंक्तियां निम्न प्रकार है:—

काली एक कलायण ऊमटी ए पणिहारी ए लो
छोटोड़ी छांटा रो बरसे मेह वाला जी
भर नाडा भर नाड़िया ए पणिहारी ए लो
भरियो भरियो समंदर तलाब वाला जी
किण जी खुणाया तलाब वाला जो[2]

इन पंक्तियों में गीत की टेक 'वाला जो' मालवी गीत में भी प्राप्त होता है किन्तु पनिहारी के साथ मिरगाणेनी शब्द को जोड़कर मालव की नारी ने पनिहारी के वास्तविक सौन्दर्य की ओर संकेत किया है। इसमें लोकगीतों के सम्बन्ध में नारी—मानस की एक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। अन्य प्रान्तों के गीतों को लेकर वे किस तरह परम्परा की वस्तु बना लेती हैं यह विचारणीय है। किसी भी प्रसिद्ध धुन और गीत के बनने और प्रचलित होने में देर नहीं लगती। लोकगीतों की भावनायें रूढ़ियां बनकर लोक मानस में बस जाती हैं, और अवसर पाकर वातावरण और मन की मोज में नवीन गीतों में फूट पड़ती है। राजस्थान में नीबूड़ो, नीमड़लों, बड़लो आदि वृक्षों को लेकर पारिवारिक जीवन के चित्र गीतों में उतारे गये हैं। इन गीतों में राजस्थानी गीतों की भावना एवं विषय वस्तु में किंचित मात्र भी समानता नहीं है। मालवी स्त्रियों ने कल्पना का स्वतन्त्र पथ ही अपनाया है।

माथा ने मेंमद लावजो, जी कई रखड़ी रतन जड़ाव
पिया रतनगढ़ का जाम्बू मंगाड दो
धरती का जाम्बू पिया परतनी भावे
मेलां में रूंख लगाय दो, पिया रतनगढ़......
पानी का सींच्या जाम्बू पिया परतनी भावे
दूधा की मसीना छोडई दो, पिया रतनगढ़........

१. राजस्थान के लोक गीत; पृष्ठ २५४ से २५७।
२. वही, पृष्ठ ४०९ से ४११।

चिमटी का तोड्या जाम्बू पिया परत नी भावे
ए सुन्ना की चीमटी मंगाड दो पिया रतनगढ़......
पइसा का जाम्बू पिया परत नी भावे
रुपया का सेर मंगाडदो पिया रतनगढ़......

आभूषणों की मांग के साथ रतनगढ़ के जाम्बू की माँग करना विचित्र अवश्य है किन्तु मूल भावना नारी के आग्रह एवं हठ की है। इस हठ को प्रियतम पूर्ण कर सकेगा या नहीं, यह प्रश्न ही नहीं उठता। नारी तो असम्भव एवं विचित्र वस्तुओं की माँग प्रस्तुत कर अपने प्रेमी को केवल परखना चाहती है। धरती के जाम्बू अच्छे नहीं लगते जल से सिंचित जम्बू भी स्वादिष्ट नही होते है अतः दूध से सिंचित वृक्ष के फल ही चाहिएं। फिर जाम्बू के फलों को तोड़ने के लिए लोहे की नही सोने की चीमटी चाहिए। जाम्बू की तरह नीम्बू के नामोल्लेख के साथ विभिन्न आभूषणों की मांग नीम्बू शीर्षक गीत में प्रस्तुत की गई है (१।२२२)।

वर्षाकालीन त्यौहारों में कृष्ण--जन्म-महोत्सव स्त्री और पुरुषों के लिए समान रूप से महत्व रखता है। इस अवसर पर पुरुष वर्ग द्वारा भजन कीर्तन का आयोजन किया जाता है और स्त्रियां भक्ति रस से परिपूर्ण एवं कृष्ण के जीवन-चरित से सम्बन्धित अनेक गीत गाती हैं। प्रसंग के अनुसार कृष्ण के जन्म-सम्बन्धी पौराणिक गाथा को लेकर जो लोकगीत प्रचलित हैं उसमें कल्पना वैचित्र्य के साथ ही ग्रामीण महिलाओं की वर्णन शक्ति का परिचय मिलता है :—

सावन गरजे भादो बरसे
रोली की आवी रेण
बंई म्हारो भीज्यो रंग गुलाल
चार सखी मिल पानीडा चाली
विनको अपणो कँई हेत
केवड़ो मेल्यो सरवर पाल
वोमली हिली चम्पा डाळ
केवड़ो उठई ने घरे आई
वोमली हिल गई चम्पा डाल
नानड़ियो लई ने कैसे जाऊँ
सांकल लग गई ताला लग गया
लग गया रे बजर किवाड़
कीचड़ मच्यो भारी

नानरिया व्हारे लई ने कैसे जाऊँ
बिजली भी उड़ री अखरोल
तलवार का फेरा लगी रया
दई ऊबी पास रे......
नानड़ियों तो इ नी लेवे गुड़की
गुड़की पानी छाती छाती आया
जदे बसुदेव घबराया
रे छबड़ी में रख लेना
जसोदा पास रे
छोरा होय तो आपुस रेणाँ
छोरी होय तो
सांकल खुल गया ताला खुल गया
खुल गया बज्जर किवाड.

दई सूती रे पास
नानरियो ने लई कैसे जाऊँ
नाँगी तलवार का फेरा सुई गया
छोरा दई ने छोरी लई ने
जदे वसुदेव घरे आया
सिंग ऊबा दोनों भारी रे
खून की बे रई नही रे
जिमे महादेव जी हिटी आया
उत्तो भी होय तो छबडी में धर लेणा
जदे वसुदेव ने मती उठायों
गोकुल जी का रस्ता लेणा
बई म्हारी भीज्यो रंग गुलाल
जदे गुरुजी घरे आया

मथुरा चराया केड़लां
गोकुल चराया केड़ला
म्हारी गोकल रमवा जाय
म्हारी मथुरा रमवा जाय
किसण जी सूता रंग मेल में
रुखमण ढोली छाव
ढोलत ढोलत छाला पड़ गया
पल पल गरमी सतावे
किसण जी ने मनावा चालो
ऊबी बड़ की छाव
म्हारा मनाया क्रस्न जी नी माने
रोई रोई हुई आँख्या लाल रे
मथुरा का वासी......... ३।७४

शरदकालीन त्योहारों के गीत

शरद काल में विजयादशमी एवं दीपावली जैसे साँस्कृतिक एवं राष्ट्रीय त्योहारों का महत्व है। वहाँ स्त्रियो के व्रत और अनुष्ठान सम्बन्धी आयोजन भी अपनी विशेषता रखते है। भाद्रपद की पूर्णिमा से ही श्राद्धपक्ष प्रारम्भ हो जाता है एवं कुमारियों का सांजी-पूजा का त्यौहार शरदकालीन व्रत एवं उत्सवों की परम्परा का श्रीगणेश करता है। सांजी-पूजन के गीतों पर बालकों के गीतों में प्रकाश डाला जा चुका है। स्त्रियों एवं पुरुषों के द्वारा आश्विन मास में देवी-पूजा का आयोजन होता है। चैत्र मास की नवरात्रि की पूजा की अपेक्षा इस समय शक्ति-पूजा के आयोजन को विशेष महत्व प्राप्त है। इस समय देश भर में माता, भवानी की पूजा धूमधाम से की जाती है। उन्हें प्रसन्न करने के लिये रात्रि जागरण होता है। भजन और अर्चन के गीत गाये जाते हैं। बगाल के दुर्गा-पूजा का महोत्सव प्रसिद्ध ही है। ब्रज एवं बुन्देलखंड में भी नवरात में अचरियों (अर्चना) के गीतों से वातावरण गूंज उठता है। गुजरात में गरबा के आयोजन द्वारा वहाँ की महिलाएं नृत्यों एवं गीतों के द्वारा भवानी (अम्बा) को प्रसन्न करती हैं।

गरबा के गीत

वास्तव में गरबा की सांस्कृतिक परम्परा की जन्मभूमि गुजरात है। संगीत एवं नृत्य के आयोजन के लिये शरद् की रात्रियों में आश्विन मास का शुक्ल पक्ष प्रकृति के विराट सौन्दर्य को लेकर प्रकट होता है। मेघ-मुक्त आकाश में तारकों की दिव्य छटा के साथ शरद पूर्णिमा की चन्द्र ज्योत्सना धरती के मानवों को रस-विभोर कर देती है। प्रकृति के

इस रमणीय समय एवं रजत-आभा से मंडित रात्रि को श्रीकृष्ण ने रास क्रीड़ा का आयोजन कर और भी अधिक सरस एवं महत्वपूर्ण बना दिया है। गोपिकाओं के मधुर मिलन एवं प्रेम क्रीड़ाओं की स्मृतियां गरबा के नृत्यों एवं गीतों में सुरक्षित है। गरबा पूजा के समय श्रीकृष्ण एवं गोपिकाओं की प्रणय लीला के सम्बन्ध में जो गीत गाये जाते हैं वे इसके प्रमाण हैं। इन गीतो की संख्या का निर्धारण नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के वर्णन के अतिरिक्त भक्ति, प्रेम, विरह, मिलन एवं दाम्पत्य-जीवन की अनेक दशाओं का चित्रण इन गर्बा गीतों से मिलता है। 'रढ़ियाली रात'[1] शीर्षक से गुजराती के इन लोक गीतों के चार संग्रह भी प्रकाशित हो चुके है। किन्तु यह एक विचारणीय बात है कि कृष्ण की रास-लीला एवं शक्ति पूजा का समन्वय गरबा प्रथा मे किस तरह व्याप्त हो गया।

गरबा प्रथा के आदर्शों के पीछे एक धार्मिक पृष्ठभूमि है अवश्य किन्तु परम्परा की लम्बी दौड़ में नारियों के कलात्मक हृदय ने इस प्रथा को सांस्कृतिक स्वरूप भी प्रदान कर दिया है। कला, संस्कृति एवं संगीत की ऐसी अनुपम त्रिवेणी भारतीय नारी के किसी अन्य व्रत या अनुष्ठान में प्राप्त नहीं होती। गरबा में निम्नलिखित परम्पराओ का सम्मिश्रण विद्यमान है।

नृत्य—रास की परम्परा
गीत—कृष्ण की प्रणय लीलाएं
पूजा—अम्बा देवी (शक्ति पूजा का स्वरूप)

भावना की दृष्टि से नृत्य और गीत तो केवल गरबा के बाह्य रूप हैं एवं आनन्द-भावना को प्रकट करने के माध्यम बन गये हैं। इसका मूल उद्देश्य तो स्त्रियों के अन्य व्रत एवं त्यौहारों की तरह एक ही है। गरबा भी नारियो द्वारा व्यक्त सौभाग्य-सुख एवं मंगल कामना का प्रतीक है। गौरी-पूजा के सौभाग्य व्रत की तरह गरबा-पूजन भी उसी परम्परा की एक शृंखला है। सौभाग्य की अधिष्ठात्री देवी पार्वती की पूजा का यह एक परिवर्तित स्वरूप कहा जा सकता है। गरबा की स्थापना जिन मंगल-घटों को लेकर की जाती है। वहाँ भी अनुष्ठान के साथ हमारी सांस्कृतिक परम्परा की पृष्ठ-भूमि है। छोटी छोटी दो मटकियों के ऊपर रखे हुए प्रज्वलित दीप की अखण्ड ज्योति भारतीयों की 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की दार्शनिक भावना के साथ मिल कर जीवन के व्यवहार में व्याप्त होने की अभिव्यक्ति है।

मालवा में गरबा-पूजा की प्रथा गुजरात से आई है। सम्पूर्ण नव-रात्रियों में पूजा और गीत का आयोजन होता है। गुजराती गीतों ने मालव की सीमा में आकर अपना स्वरूप बदल दिया है। मालवा में स्त्री और पुरुषो के गरबे अलग अलग आयोजित होते हैं।

---

१. स्वर्गीय झवेरचन्द मेघाणी द्वारा सम्पादित एवं गुर्जर ग्रन्थ-रत्न भण्डार अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित।

पुरुषों के गरबे आश्विन शुक्ला एकादशी को प्रारम्भ होकर शरद पूर्णिमा की समाप्ति पर विसर्जित हो जाते हैं। गीतो में मालवी संगीत एवं लोक भावनाओं का अलग ही स्वरूप है। स्त्रियों के गरबा गीत इस भूमि की अपनी देन है। इन गीतों से हास्य के प्रसंग, सास और ननन्द भौजाई के झगड़े एवं सौत के प्रति ईर्ष्या आदि को प्रकट किया गया है। कृष्ण के माध्यम से गरबा–गीत में स्त्री–पुरुष की प्रकृत ईर्ष्या–भावना को देखिये—

"सीसे रा चीरा कां भूली आया, माथा नी भम्मर कीनो चोरी लाया
ओ स्याम कां रमी आया, मथरा में गेंद खेली आया
ओ स्याम का रमी आया, काना को मोती काँ भुली आया
बाजू तम कीनो चोरी लाया, ओ स्याम का रमी आया······३।७०

इसी तरह सौत की दुर्दशा के चित्र में मालवी स्त्रियां रस लेती हैं·········

"सोकड़ बई आया पावणाँ नादान रानी
कँई कँई मिजवानी, मिजाजन काँ चाली म्हारी फूला दे रानी
थूली राँदू चोखा रादूं नादान रानी
ऊपर मेलूं समदर खार मिजाजन कां चाली
सोकड़ बई जिमिल्या नादान रानी
सोकड़ बई तो मरीग्या नादान रानी
रोवा लागो ऊंको सुसरो नादान रानी
उने खरच्या था दाम मिजाजन कां चाली
नम नम लागति पाँव मिजाजन कां चाली
रोवां लागो ऊंको छोरो नादान रानी
ऊंकी मरीगी माय मिजाजन कां चाली
सोकड़ बई मरीग्या नादान रानी
काय का मिस रोऊं मिजाजन कां चाली
चूला में लगाऊं आडो छाणो नादान रानी
धुंवा का मिस रोऊं मिजाजन कां चाली
रोवे म्हारो घूंघटो नादान रानी
हड़ हड़ काढू दांत मिजान कां चाली
काय का मिस जऊं मिजाजन काँ चाली
कांख में लियो टोपलो नादान रानी
छाणा का मिस जाऊं मिजान कां चाली·········" ३।६९

सौत का अतिथि के रूप में सम्मान सत्कार करने के पश्चात् उसकी मृत्यु एवं दुर्दशा का काल्पनिक चित्र भी नारी के सुख का एक कारण बन सकता है। जिन जातियों में बहु-पत्नी-प्रथा का प्रचलन है वहाँ नारी की सौत के प्रति इस प्रकार की भावना का प्रकट होना

स्वाभाविक ही है। पारिवारिक जीवन में भारतीय नारी ने सौत के कारण अनेक मानसिक व्याघात भी सहे हैं। दाम्पत्य जीवन की मधुरिमा से वंचित नारी की यह ईर्ष्या- भावना अनेक स्थल पर प्रकट हुई है।

गुजराती पद्धति पर भी गरबा के अनेक गीत प्रचलित हैं, जो श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित है। इन गीतों में भावों के साथ भाषा का अमिट प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है :—

१—सरद पूनम की रातड़ी चन्दा चढ़यो अकास रे
जीमण देऊं लापसी ने मोती केरा भात रे
चाबण देऊं एलची ने कई देऊ पान पचास रे
पोढ़न देउ ढोलियो जी कई भण्डा केरो ढोलियो रे १।२६३

२—तांबा का लोटा भर्या पाणी रे, पीवानो वालो परदेस छे रे
नई म्हारो कानूडो कलेजा री कोर छे रे, कोर छे रे कोर छे रे……
कई म्हारी सोना री अंगूठी उपर मोर छे रे …… ३।७१

गरबा के इन छोटे–छोटे गीतों को गरबी कहते हैं। गरबा दीर्घ एवं कथानक से परिपूर्ण गीतो का सूचक है। गरबी में भावों की लघु–लहरियाँ आन्दोलित होती हैं।

दीपावली एवं कार्तिक मास के गीत

दीपावली का अवसर लक्ष्मी–पूजन, दीप महोत्सव के आयोजन के अतिरिक्त गीतों की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नही है। इस समय गीतों का स्वर प्रायः मन्द ही रहता है। केवल छोटे छोटे बालक हीड़ को लेकर तेलदान एवं पैसे की भेंट माँगकर गीत गाते नजर आते हैं ! दीप–अमावस्या के दूसरे दिन गोधन की पूजा होती है। इस समय भी स्त्रियों के कण्ठों का स्वर सुनाई नहीं देता। सम्पूर्ण मास जनसामान्य के लिये गीत–शून्य ही रहता है। केवल भक्त स्त्रियाँ प्रातः सायं धार्मिक भावना के गीत गाती है। शरद पूर्णिमा से ही कार्तिक स्नान प्रारम्भ हो जाता है। नदी के तट पर स्नान करने के पश्चात् स्त्रियाँ राधा–दामोदर की पूजा करती हैं, एवं गीत गाती हैं। लोक-संगीत की दृष्टि से इन गीतों का महत्व है। वैसे अधिकाँश गीतों में भक्ति का समावेश रहता है। किन्तु स्त्रियों द्वारा स्वयं की भावनाएं इन गीतों से ढलकर आती हैं। वास्तव में कृष्ण की जीवन–गाथाओं में मानव जीवन के यथार्थ का ऐसा व्यापक रस है कि जन साधारण उसके माध्यम से अपने हृदय के रागों को प्रकट करने में बड़ी सुविधा का अनुभव करता है। स्त्रियों का प्रणय, दाम्पत्य एवं वात्सल्य श्रीकृष्ण और राधा के आवरण में प्रकट हुआ है। कार्तिक मास में प्रभात के समय स्नान के लिये जाती हुई महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले गीत झूमर में उक्त माधुर्य-भावना लोक-संगीत में उर्मिल हो उठती है :—

म्हाने लादी हो तो दीजो ओ नन्दलाल कुंवर
न्हावता झूमर म्हारी पम गई

गंगा रे धोरे गम गई, जमना रे धोरे गम गई, त्हाने लादी……
थे जावो सांवरिया जोइ लावो थे जावो गिरधारी जोइ लावो
थे लई ने म्हारे सौपो हो नन्दलाल कुंवर न्हावता झूमर म्हारी गम गई
नन्दलाल रे पागां, नन्दलाल जी रे पेंचा
त्हारी पेंचा रा अनसरजा हो नन्दलाल कुंवर
न्हावता झूमर म्हारी गम गई, त्हाने लादी………"१।२६१

दाम्पत्य–सुख की भावना राधा के सौन्दर्य एवं आभूषण–प्रेम में प्रकट हुई है :—

"आंगणा में उबी राधा भम्मर पेरे, लूम रया गिरधारी
आंगरणा में उबी राधा बाजूबन्द बांधे, लूमे गिरधारी
च्यों परण्या दो-दो नारी स्याम च्यों परण्या दो नारी
दोई की महिमा न्यारी-न्यारी, एक निराली दूजी छन्दवाली
लूम रया गिरधारी १।२६२

इन स्फुट गीतों के अतिरिक्त चन्द्रसखी के गीतों में मालवी नारियों के द्वारा समय समय पर अपने हृदय की भक्ति भावना प्रकट की जाती है। कार्तिक मास के शुक्लपक्ष में देव-प्रबोधिनी एकादशी को तुलसी का विवाह सम्पन्न करने की धार्मिक प्रथा भी पुण्य-कार्य एवं श्रद्धालु जनता की मोक्ष कामना से परिपूर्ण है। तुलसी के विवाह पर विभिन्न विवाह के गीतों के अतिरिक्त तुलसी के पौधे के प्रति श्रद्धा प्रकट की गई है।

'तुलसी हरि की लाडली रामा प्रान आधार' पंक्ति को गीत की टेक बनाकर भक्ति एवं अध्यात्म सम्बन्धीं दोहे गाये जाते हैं। (२।११९)

विभिन्न देवी देवताओं के गीत

रतजगा में जिन देवी देवताओं का आह्वान किया जाता है, गीत गाये जाते हैं उनकी पूजा और गीतों में अनुष्ठानिक प्रवृत्ति है। उनकी पूजा करने की भावना में अनिष्ट की आशंका एवं भय की पृष्ठभूमि के समक्ष स्वयं की मंगलकामना और संरक्षण की प्रवृत्ति रहती है। तामसी एवं राजसी स्वरूप के देवताओं की वन्दना का मंगलमय स्वरूप अलग ही है। जहां भक्ति का मानस उल्लास को भावना से प्रेरित होता है। चोंसठ जोगनी, लालबई फूलबई एवं बिजासनी आदि देवियों को एवं नाग आदि देवताओं की पूजा तामसी श्रेणी की पूजा है। विष्णु के विभिन्न स्वरूप रामकृष्ण एवं सत्यनारायण आदि देवताओं की पूजा में सात्विक भावना निहित है। इसमें मोक्ष एवं पारलौकिक सुख प्राप्ति की प्रच्छन्न कामना अवश्य रहती है। तामसी-पूजा के देवताओं के गीतों में कुछ रूढ़ियों का अवलम्बन सर्वत्र दिखाई देता है। पूजा की सामग्री की सूची का उल्लेख एवं पूज्यनीय देवों के स्वरूप का वर्णन मात्र रहता है। इन गीतों में लौकिक स्वार्थ या किसो अभाव पूर्ति की कामना अवश्य

ही प्रकट की जाती है। नागदेव को भी पुत्र-प्रदाता देव माना जाता है। उनकी पूजा और मानता का उद्‌देश्य गीत में स्पष्ट हो जाता है :—

नागजी कैलग आवै बांझा बांझूली, के लग बालूडा की माय
बासग राजा फूलां की बाडी में रमी रया
नागजी नो-लख आवै बांझा बांझूली
नागजी दस-लख आवै बालूडा की माय, बासग राजा······
नागजी कँई तो मांगे बांझा बांझूली
नागजी कँई मांगे बालूडा की माय, बासग राजा······
नागजी पुत्तर दिया बांझा बांझूली, अनधन दिया बालूडा की माय
ओ नागण का जाया प्यालो पीवो नी काचा दूध को"······ १।२६५

सत्यनारायण (भगवान) की पूजा एवं कथा श्रवण के पश्चात् जो भजन गीत गाये जाते है उनमें भी लौकिक सुख अन्न-धन एवं पुत्र आदि प्राप्त करने की कामना प्रकट हुई है :—

"कांई देग्या रामजी ने कांई देगया लछमन
कांई देग्या हो म्हारा सिरी सतनारायन
अन्न दई गया रामजी ने धन दे ग्या लछमन
पुत्तर दई ग्या हो म्हारा सिरी सतनारायन"······ १।२५८

साधारणतः देवी-देवताओं के इन गीतों का रचना-विधान भी बड़ा सरल है। इस तरह के गीतों में प्रश्नोत्तर-शैली का प्रयोग होता है। मानस के विभिन्न भावों की अपेक्षा श्रद्धा का स्थूल रूप इन गीतों से प्रकट हुआ है। प्रश्नोत्तर शैली के कुछ गीतों में अभिव्यक्ति-कला का निखार भी आ गया है। प्रश्नोत्तर शैलो के सती के कुछ गीत इसी तरह की विशेषताओं से युक्त हैं। सती होने के कारणों पर प्रश्न करते हुए शनैः शनैः सती की महिमा दृढ़ता और आत्म-त्याग की भावना को चरम सीमा पर पहुँचाया जाता है-

ओ म्हारी सती माता भरया ओ जोबन सत लियो
माता जणी चढ़ हेमा सती जोवता
माता जणी चढ़ चौखा सती जोवता
सेवग सरग नेडो ने घर दूर, ओ म्हारी······
माता कणीपत छोड्या मेढ़ी ओवरा
माता कणीपत छोड्या सूरज पोल, ओ म्हारी········
माता कणीपत छोड्या सासु सूसरा
सेवग मलकत छोड्या माय ने बाप; ओ म्हारी········

माता रोटी पोवत दाजे आंग्ल्यां
माता कणीपत डोयी झोणो आग, ओ म्हारी·······
सेवग ज्यूं जल डोयो रे माछली
सेवग हेमा सती डोयी झीणी आग, ओ म्हारी·······
ओ माता तारयो पीयर सासरो
माता तार्या आपरा सोई परिवार
माता तारया अपणा परण्या पातळा, ओ म्हारी······· २।२६४

सती के द्वारा अग्नि प्रवेश करना कष्ट सहिष्णुता का परिचायक है। सामान्य जिज्ञासु व्यक्ति की गृह–नारी के मानस से प्रश्न उठता है कि रोटी बनाते समय यदि अंगुली पर जरा सी आंच (अग्नि की ज्वाला) लग जावे तो कितना कष्ट होता है, किन्तु सती अपने सम्पूर्ण शरीर को किस प्रकार अग्नि में डाल देती है। प्रश्न का उत्तर बड़ा सुन्दर है।

जिस तरह मछली जलाशय के अन्तराल को चीरती हुई उसमें प्रवेश कर जाती है, सती भी चिता की लपलपाती हुई अग्नि में प्रविष्ठ हो जाती हैं। पति के अभाव के कारण जो नारी संसार के सुख वैभव, धन, सम्पत्ति, बाप, ससुर आदि परिजनों को छोड़कर हँसते–हँसते अग्नि–आरोहण करती है और पतिव्रत धर्म का आदर्श बन जाती है, उस सती का जीवन धन्य एवं बन्दनीय बन जाता है क्योंकि············

वह मायके को तार देती है,
वह ससुराल को तार देती है,
वह अपने पति को भी तार देती है·······

सामाजिक दृष्टि से जहाँ कुल और वंश की प्रतिष्ठा और नारी जाति के शील का प्रश्न रहता है, जौहर ओर सती प्रथा ने कितनी ही हिन्दू रमणियों के शील एवं चरित्र की रक्षा कर संसार में स्त्री हृदय की पवित्रता एवं दाम्पत्य-प्रेम की दृढ़ता का आदर्श स्थापित किया है।

—:o:—

चतुर्थ अध्याय

पुरुषों के गीत

(अ)

१. स्त्री और पुरुषों के गीत

२. लोकगीतों में स्त्रियों के गीत का आधिक्य

३. स्त्री-पुरुषों के गीतों में मौलिक भेद

४. पुरुषों के गीतों का वर्गीकरण

स्त्री और पुरुषों के गीत

भारतीय लोकजीवन की सरस अनुभूति का वास्तविक दर्शन लोक-गीतों में प्राप्त होगा, यहां मनुष्य का व्यक्तित्व सर्वभावेन समष्टि में लीन होता हुआ दिखाई देता है। व्यक्ति की सहज भावना भी यदि उद्दीप्त होती है तो वह सामूहिक रूप में ही प्रकट होगी। वैसे समूह में गाये जाने वाले एवं मन की मौज में अकेले ही गाये जाने वाले गीतों की श्रेणी का विभाजन किया जा सकता है। किन्तु बालक, स्त्री एवं पुरुष आदि में समान रूप से एक ही प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे गुनगुनाने में अपने सहजानन्द को प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। शिशु एवं बालकों के गीत तो उनके शैशव के अनुकूल तुतली बोली में गुंजरित होते हैं। किन्तु स्त्री और पुरुषों के गीतों मे, लोक-जीवन की पृष्ठ-भूमि में जो हर्ष-विमर्ष एवं अश्रु-उल्लास पूरित गीत-लहरियां तरंगित होती रहती हैं, उनमें स्त्री और पुरुष का व्यक्तित्व अलग से परखा जा सकता है। पुरुष जहां गीतों के द्वारा मनोरंजन करता हुआ अपने श्रम की थकान को हल्का करता है वहाँ नारी की मांगलिक परम्परा, धर्म-भावना, आत्मीयता, सौख्य एवं प्रेम धार्मिक-अनुष्ठान, व्रत, उत्सव आदि के आयोजनों के साथ जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर गीतों में प्रतिबिम्बित होता है। नारी के गीतो की छाया में ही भारत का जन-जीवन अंकुरित होता है, पल्लवित एवं पुष्पित होता है, तथा उसका अवसान भी गीतों में ही होता है। लोक-गीतों के क्षेत्र में स्त्रियों का गीत-दान अनन्त है। पुरुषों के लोकगीतों में स्त्रियों के गीतों जैसी मार्मिकता का अभाव है। इस दृष्टि से पुरुषों के गीत नगण्य कहे जा सकते हैं।

लोकगीतों में स्त्रियों के गीतों का आधिक्य

स्त्रियों के अधिक गीतमय होने का कारण है हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्परा की दिव्य चेतना। भारत के सामाजिक जीवन में नारी की पूजा और प्रतिष्ठा का महत्व उसकी मातृत्व की साधना में निहित है। शिशु को लेकर अनेकों संस्कारों की सृष्टि होती है। जन्म और विवाह के प्रसंगो पर नारी के हृदय का उल्लास घनीभूत होकर गीतों में बरस पड़ता है। संक्षिप्त में यदि यह कहा जावे कि भारत की गृह-लक्ष्मी, कल्याणी नारी अपने गीतों के अमृत-रस से जीवन की बेल को सिंचित करती है तो अतिशयोक्ति नही होगी क्योंकि यहाँ पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक भावना-प्रधान होती हैं और पुरुष नारी की भावनाओं के उद्वेलन की स्थिति तक पहुंच भी नहीं सकता। जीवन की कठोरता के साथ जूझने के पश्चात् परिश्रान्ति एवं विश्रान्ति के क्षणों में हृदय और मस्तिष्क के बीच बोझ को हल्का करने के लिये मनुष्य गाता अवश्य है, किन्तु हृदय के उभार के ये क्षण उसे बहुत ही कम प्राप्त होते हैं। मनोरंजन के लिये स्वयं की थकान को मिटाने के लिये हृदय को संचित भाव-निधियों को बिखेरते के लिये अवकाश कहाँ ? भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में

किसान के हृदय का गीत तो उसको फसलें गाती हैं। उसके परिश्रमरत-जीवन की झांकी तो नारी के गीतों में प्रतिबिम्बित होती है। विवाह आदि अवसरों पर नृत्य के साथ गाने का अवसर भी आता है। होली के अवसर पर फाग में प्रेम और शृंगार भी उमड़ता है। सावन में विरह के गीत भी गाये जाते हैं और अपने आराध्य को प्रसन्न करने एवं भव-बाधा से छुटकारा पाने के लिये कुछ अर्चना के गीत गाकर भी आत्म संतोष कर लिया जाता है, किन्तु इन गीतों की संख्या एवं विविधता इतनी सीमित है कि उंगलियों पर गिनी जा सकती है और स्त्रियों द्वारा गेय गीत के प्रवाह महासागर की अनन्तता में इन बूंदों का अस्तित्व भी क्या हो सकता है ?

भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा मालव में पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों की संख्या बहुत ही कम है और उनमें जीवन की बहुमुखी भावनाओं का प्रायः अभाव ही है। फाग, छल्ले और कुछ स्फुट भक्ति रस के गीतों के अतिरिक्त अधिकांश गीत प्रबन्धात्मक प्रवृत्तियों के लिए हुए हैं।

स्त्री और पुरुषों के गीतों में मौलिक भेद

विधाता की सृष्टि से प्रकृति एवं पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित होने वाले नारी और नर में परिस्थितियों के कारण मानव-हृदय की भावनाओं में कुछ विभिन्नता होना स्वाभाविक ही है। मानव के हृदय की भावनाओं के स्पन्दन में बहुत कुछ साम्य होने पर भारतीय संस्कृति में अर्धनारी-नटेश्वर की अनुपम प्रतिष्ठा के पश्चात् भी प्रकृति-सिद्ध विभिन्नता स्त्री और पुरुष के स्वभाव से दृष्टिगत होगी। नारी दया, ममता, स्नेह और वात्सल्य की अधिष्ठात्री बनकर पुरुष के बज्र-पाषाणी हृदय को स्पर्श कर उसमें कोमलता का संचार करती हैं। नारी की स्निग्ध सरलता में पौरुष का दम्भ, अभिमान और कठोरता मोम-सी पिघल जाती है। अतः नारी कोमलतम भावनाओं का प्रतीक सिद्ध हुई है और पुरुष कठोरता का उद्घोषक है।

भारत की सामाजिक व्यवस्था ने नारी और पुरुष की प्रकृति के निर्माण में उक्त भावना की ओर अधिक प्रश्रय दिया है। अतः इनके गीतों में पौरुष का अहम् भावनाओं की शौण्डता और हृदय के आवेग को प्रकट करने में तीव्रता एवं ओज आदि प्रकट होते हैं। जब कि स्त्रियों के गीतों में कोमलता, मधुरता मंगल-कामना (स्वार्थ-परक नहीं) आदि भावनाएं दृष्टिगत होती हैं। स्त्रियों के लोकगीतों में भी पुरुषों के स्वभाव में पाई जाने वाली चंचलता का प्रायः यहाँ अभाव ही मिलेगा। भावनाओं के उभार को प्रकट करने के ढंग में मौलिक अन्तर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पुरुषों के गीतों में छन्द प्रायः दीर्घकाय होते हैं और स्त्रियों के गीतों में छंद लघुकाय होते हैं। गाते समय पुरुषों के स्वरों के आरोह में उग्रता होती है जब कि स्त्रियों के गीतों का स्वर सहज मृदुलता को लेकर चलता है। उसके आरोह में भी मन्थर गति रहती है। यहां तक कि चल-समारोह के गीतों में यह मन्थरता चरणों की गति में भी प्रकट होती है। 'मायरा' के गीत इसके प्रमाण में प्रस्तुत किये जा सकते

हैं। मायरे की मन्थर चाल मालव में प्रसिद्ध है। इसी मन्थरता के कारण मालवी में एक लोकोक्ति भी प्रचलित हो गई है। यदि कोई व्यक्ति धीरे-धीरे चलता है तो उसे सावधान करने के लिये व्यंग्य किया जाता है—'कँई' मायराँ की चाल से चलर्‌या हो'।

भारतीय स्त्रियों के जीवन का कार्यक्षेत्र प्रायः घर की व्यवस्था में ही अधिक रहता है। घरणी को ही घर कहा जाता है।[1] अतः स्त्रियों के गीतों में उनके गार्हस्थ्य एवं पारिवारिक जीवन से संबन्धित अनेक बातों का समावेश होता है। विभिन्न संस्कार एवं लोकाचारों का उल्लेख, वेषभूषा-आभूषण और भोजन-सामग्रियों का सांगोपांग वर्णन, पूजा के उपादान एवं टोने-टोटके आदि ऐसी अनेक बातें हैं जो स्त्रियों के गीतों की अपनी विशेषतायें कही जा सकती हैं। इन गीतों से नारी अपने सगे-संबंधी और परिवार के लोगों को नहीं भुला पाती। अनेक गीतों में विशेषकर जन्म और विवाह के संस्कार के गीतों में क्रमशः वंश से सम्बन्धित युग्म का बार-बार उल्लेख किया जाता है। माता-पिता, काका-काकी, मामा-मामी, फूफा-बूआ (फूफी) मौसा-मौसी ये पांच संबंध ऐसे हैं जिनके नाम प्रायः मांगलिक आयोजनों में लिये जाते हैं। परिवार के लोगों के नामों की गीतों में इतनी अत्यधिक पुनरावृत्तियाँ होती हैं कि सुनने वालों को अरुचि भी होने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु इस प्रवृत्ति में निहित भावना वस्तुतः नारी के उदार हृदय को प्रकट करती है। नारी अपने परिवार की सम्पन्नता एवं विपुलता के गर्व को प्रायः प्रदर्शित करती रहती है। वह भरे-पूरे घर की लक्ष्मी है। उसके परिवार में सभी लोग विद्यमान हैं। पति के पक्ष की ओर से एवं स्वयं के मातृ पक्ष की ओर से संबंधी एवं परिजन आकर उसके 'हरख'.....हर्ष के मंगल-मय अवसर पर उपस्थित होते हैं, वह आत्मीय जनों के नामों को बार-बार अपने गीतों में घोषणा करती है।

स्त्रियों के गीतों में सामाजिक जीवन का वैषम्य, गृह-कलह, पारिवारिक ईर्ष्या और प्रेम की भावना के साथ युग की प्रतिक्रिया व परिवर्तन की छाप भी अवश्य मिलेगी। युग-भावना की गृहणशीलता का पुरुषों के गीतों में प्रायः अभाव ही पाया जाता है। रसात्मकता एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से स्त्रियों के गीतों का स्तर अलग ही दिखाई देता है। भावनाओं को प्रकट करने के लिए नारी किंचित मात्रा में ही सही, कला का आवरण अवश्य लेती है। प्रेम, शृंगार एवं यौन भावों को प्रकट करने में उसका चातुर्य देखा जा सकता है।[2] परन्तु पुरुषों के गीतों में यौन-संकेत एवं हृदय की कुंठित वासना इतने खुले रूप से प्रकट होती है कि लोग उसे अश्लीलता की संज्ञा दिये बिना नहीं रह सकते। पुरुषों के द्वारा गेय होली की फाग, छल्ले एवं मांच के मनोरंजक प्रसंगों में यह प्रवृत्ति स्पष्टतः देखी जा सकती है जहाँ यौन-क्रियाओं पर खुलकर बकवास की जाती है!

---

१. गृहणी गृहिमुच्यते।

२. उदाहरण के लिये 'गाल् गीत' प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

पुरुषों के गीतों का वर्गीकरण

मालवी लोकगीतों में पुरुषों द्वारा गेय गीतों को शास्त्रीय दृष्टि से प्रमुखतः मुक्तक एवं प्रबन्ध इन दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। भाव एवं वर्ण्य विषय के आधार पर मुक्तक एवं प्रबन्ध के दो-दो उपभेद होंगे।
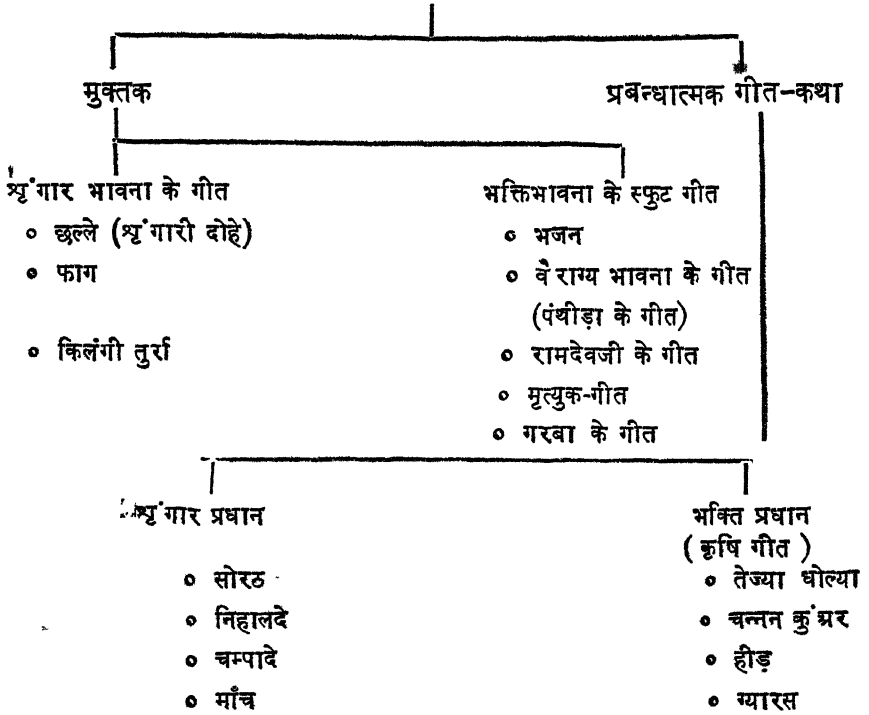
पुरुषों के गीतों में केवल शृंगार और भक्ति भावना से युक्त गीत पाये जाते हैं। इन गीतों की विविधता का क्षेत्र नगण्य ही है। कुरु प्रदेश की मल्होर, व्रज और बुन्देलखण्ड के बिरहा, श्रम करते समय के गीत, फसल आदि बोने और काटने के समय के गीत, चरवाहों एवं गड़रियों के गीतों जैसी विविधता मालवी किसानों के गीतों में अप्राप्त है। बकरी और भेड़ चराने वाले अथवा गाय भैंस के चरवाहों के अलग से गीत नहीं होते हैं। मन की मौज में 'छल्ले' अथवा माँच के शृंगारी दोहे प्रायः उनकी जिह्वा पर नाचते रहते हैं। सिनेमा के कुप्रभाव से मालवा भी नहीं बच पाया है। अनपढ़ कृषक तरुणों के हृदय से परम्परागत गीतों के आकर्षण का प्रभाव धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है।

होली के अवसर पर जो फाग के गीत गाये जाते हैं उनमें शृंगार और भक्ति दोनों

ही भावनायें अभिव्यक्त हुई हैं। राम और कृष्ण की जीवन गाथा पर आधारित फाग के गीतों को भक्ति भावना के अन्तर्गत माना जा सकता है। किन्तु वहाँ भी लौकिक शृंगार छिप नहीं सका है। अतः फाग के गीतों को शृंगारी भावना के अन्तर्गत ही माना जावेगा। लावणी एवं तुर्रा-किलंगी के वर्गीकरण में भी उपरोक्त दृष्टिकोण रखा गया है। वैसे लावणी से जीवन की विविधता के अनेक दृश्य सुन्दरता के साथ व्यक्त किये जा सकते हैं किन्तु जन सामान्य के अधरों पर लावणी में शृंगार ही अधिक झलकता है। तुर्रा-किलंगी माँच की तरह लिपिबद्ध साहित्य के रूप में प्राप्त होता है। चाहे वह प्रकाशित हो अथवा प्रकाशित न हो, और उसके निर्माताओं के सम्बन्ध में भी निश्चितता रहती है। ऐसी स्थिति में माँच एवं तुर्रा-किलंगी की गणना लोक-साहित्य के अन्तर्गत होगी। लोकगीतों की कोटि में रखकर परम्परा-निर्वाह की दृष्टि से इन पर विचार वांछनीय है।

वैराग्य भावना के गीतों में रामदेव जी के गीत भी सम्मिलित किये जा सकते हैं किन्तु वीर पूजा का भाव होने के कारण उनका वर्गीकरण अलग ही किया गया है। वैसे रामदेव जी के गीतो की पृष्ट-भूमि में दार्शनिकता का कुछ स्वरूप भी मिल जाता है। वैराग्य भावना के गीत प्रायः अनपढ़ जोगड़ों द्वारा भीख मांगते समय गाये जाते हैं। वैराग्य भावना का प्रतिपादक एक गीत प्रसिद्ध है। 'जुग में अमर राजा भरतरी.........' इस गीत की कथा वस्तु बड़ी रोचक है। राजा भरथरी एवं रानी पिंगला के सम्वादों में कुछ नाटकीय प्रभाव आ गया है। अतः प्रबन्धात्मक कथा गीतों में उनकी गणना नहीं की जा सकती।

प्रबन्धात्मक गीतकथायें मालवा के किसानों की सामाजिक एवं धार्मिक भावना को प्रकट करती है। शृंगार प्रधान गीतकथाओं में माँच (लोकगीत नाट्य] को भी सम्मिलित कर लिया गया है। सोरठ, चम्पादे एवं निहाल्दे आदि गीत-कथाओं के कुछ ही अंश संकलित किये जा सके हैं। ग्रामीण जनता की लौकिक प्रेम सम्बन्धी मान्यता, रुचि और शृंगार भावना इन गीतों में प्रतिबिम्बित होती है। भक्ति-प्रधान प्रबन्ध-गीतों में ग्रामीण जीवन के सौन्दर्य के चित्र मिलते हैं। ग्राम को सामान्य जनता द्वारा गीत गाये जाते हैं, मौखिक परम्परा से रहकर भी गीत युग के परिवर्तनों के प्रभाव से बचे हुए हैं। आदिमानव के गोप जीवन की प्रवृत्ति, अन्ध-विश्वास, कौतूहल पूर्ण धारणाओं से ग्रस्त इन लोक-प्रबन्धों को कृषि गीत को संज्ञा इसलिए दी गई कि ये गीत भूमि कृषि, बैल एवं गौचारण के प्रति एक विशिष्ट दृष्टि को लेकर चलते हैं। हीड़ तथा 'तेज्या' धोल्या, एवं 'चन्दन-कुंअर' आदि लोकगीत-प्रबन्ध ग्रामीणों की अपनी मान्यता के, मनोरंजन के अनुपम साधन हैं। 'ग्यारस, में केवल पौराणिक गाथाओं की धुंधली पृष्ठ-भूमि प्राप्त होती है, किन्तु उसमें भी किसानों की धर्म-सम्बन्धी कल्पनायें एवं ग्रामीणों की मानसिक-स्थिति स्थूल रूप से उद्भासित होती हैं। भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से शृंगार पूर्ण गीत-कथायें मालव के किसानों की अद्वितीय वस्तु हैं।

(आ)

पुरुषों के गीत (क्रमशः)

प्रबन्ध गीत

- कृषि गीत
- कृषि-गीतों की विशेषताएं
- प्रबन्ध गीत
- प्रबन्ध गीतों का कथानक
- शैली और रोचकता
- गीतों की धार्मिक भावना और अंध-विश्वास
- हीड़
- ग्यारस

कृषि गीत

जनजीवन के प्रकृत विकास का अध्ययन करने के लिये नगर की अपेक्षा ग्रामों की लोक-संस्कृति की ओर उन्मुख होना पड़ेगा। कृषि और गौ-पालन भारत की जनता के प्रमुख जीविका-साधन रहे हैं, भारत की महान संस्कृति की आधारशिला गोप-जीवन एवं कृषि ही कही जा सकती है, कृषि एवं गौचारण से संबंधित जीवन की अनुभूतियां अपने प्रारम्भिक एवं प्रकृति रूप से जिन परम्परा-गत गीतों में सुरक्षित रही है उन गीतों को कृषि-गीत की संज्ञा दी गई है। मालव के कृषक एवं कृषक-श्रमिकों के द्वारा भक्ति-सम्बन्धी स्फुट भजनों को छोड़ कर जो गीत गाये जाते हैं वे किसी कथा को लेकर चलते हैं। कथा एवं गेयता का अविछिन्न सम्मिश्रण होने के कारण ये गीत-कथाएं जहाँ एक ओर प्रबन्ध की शैली लेकर चलती है, वहाँ दूसरी ओर मौखिक परम्परा में रहने के कारण इन कृषि-गीतों में ग्रामीण जीवन की अनेक स्मृतियाँ एवं धारणाएं छिपी हुई हैं। हीड़ एवं तेज्या-धोल्या की गीत कथाओं को मालव के कृषि जीवन का महा-काव्य कह सकते हैं, इनके अज्ञात निर्माताओं ने मानव एवं मानव-जीवन से सम्बन्धित पशु-पक्षियों में विशेष अन्तर न रखते हुए तादात्म्य स्थापित किया है, मानव की तरह अपने जीवन के चिर सहयोगी अश्व तथा बैल की पूजा एवं स्तुति-गान भी किया गया

है, गौ–पूजा तो भारतीय संस्कृति की पुरातन देन है, और उनकी कीर्ति के सूचक ये लोक-गीत उसी परम्परा को जीवित बनाये हुए हैं। हीड़ की गीत-कथा दो प्रकार की है।

१. धोल्या की हीड़ २. चालर हीड़

धोल्या की हीड़ की पूरी गीत-कथा अप्राप्त है कृषकों की मान्यता के अनुसार जिसे वे धोल्या की हीड़ कहते है, स्पष्ट रूप से वृषभ पूजा और उनकी स्तुति का गान है।[1] चालर हीड़ ग्वालों और गूजरों की प्रिय वस्तु है।

कृषि–गीतों की विशेषताएं

मौखिक परम्परा में जीवित गीत-कथाओं के इतिहास की छायाओ को प्राचीन युग में देखा जा सकता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह विश्वास है कि पद्य-बद्ध लोक-कथाओं को लिखने की परम्परा गुणाढ्य की बृहत्कथा-मंजरी से प्रारम्भ होती है।[2] किन्तु मौखिक परम्परा में जन-सामान्य की गेय लोक-कथाएँ प्रत्येक युग की छाप लेकर इतिहास को कल्पना के धुँधले आवरण में छिपाकर न जाने कितने युगों से कल-कण्ठों में प्रवाहित होती चली आ रही है। इन गीत-कथाओं में युग का प्रभाव व्यंजित अवश्य होता है, किन्तु उनकी मूल प्रवृत्तियों में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आने पाता। रुद्रट ने महा-कथा लिखने के जो लक्षण बताये है उनमे गुरु एवं देवता आदि की वन्दना से कथा प्रारम्भ करने का विधान है।[3] इन लक्षणो के निर्धारण का आधार उस युग की प्रचलित लोक-कथाएँ ही हो सकती है। क्योकि आज भी अपने आराध्य देवी-देवताओं की वन्दना से गीति नाट्य (माँच) एवं गीत-कथाओ का श्रीगणेश होता है।[4] भूतकाल में समाज की सरल व्यवस्था एवं कृषि जीवन में व्याप्त वेदना, विपत्ति एवं शोक की जो भावनाएँ अनुभूत की गई हैं उनका हल्का आभास इन गीत-कथाओं में देखने को मिलता है। इन कथाओं में जीवन के संघर्ष, जय-पराजय एवं उत्साह के स्वर भी मिल गये हैं। लोक-रुचि ने अपनी भावनाओ को अक्षुण्ण रखने के लिये इतिहास का आधार अवश्य ढूँढा है, किन्तु असाधारण पुरुष से सामान्य व्यक्ति का सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा में, युग-युगों के तीव्र-गामी प्रवाह में जन मानस की स्मृति इतिहास को सुरक्षित रखने में असमर्थ रही है, एवं शनैः शनैः इतिहास और व्यक्ति के नामों में कल्पना का असत्य मिश्रित हो गया है। इन कथागीतों में घटना,

---

१. धरत्यां पे दो जोदा बड़ा
एक है सूर्या नो जायो, दूजो है घोड़ी नी जायो।
एक तो पाले संसार, दूजो जाय रण में असवार।

२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ५६।

३. श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान गुरून्नमस्कृत्य……काव्यालंकार, पृष्ठ १६।

४. हीड़—पेलां सुमरा गणपत देव ने नमी नमी लागाँ भवानी के पाव,
कंठे बिराजे देवी सारदा, हिरदा में बोलो गणेश
ग्यारस—अरे पेली तो बिनवां सारदा गणपत के लागाँ पाँय रे !

कथा-वस्तु और पात्र तो गौण रहते हैं तथा धार्मिक-विश्वास और जन-मानस की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति के साधन मात्र होते है। मुख्य रूप से तो इनमें जीवन के रहस्य-मय व्यापार एवं जन-मानस द्वारा समझे गये कार्य-कारणों की व्याख्या भर होती है। कभी-कभी जीवन की किसी घटना को कथासूत्र में इस प्रकार जोड़ दिया जाता है कि जहाँ कृषक-जीवन का वातावरण सजीव हो उठता है, और इसके साथ हो गीत गोप-संस्कृति की अभिव्यक्ति के मुख्य माध्यम बन जाते है। ग्वाल जीवन एवं कृषि-सभ्यता की शाश्वत धारा से स्फूर्जित बूंदें गीत-कथाओं के रूप में भूमि और समय की गति को अपने में समेट लेती हैं। इनमें जीवन व्यापन करने की विधि एवं गौरवमय जीवन का निर्माण कर जीवित रहने का मार्ग-दर्शन भी रहता है।[1]

चन्दन कुंवर, गीत-कथा का प्रारम्भ कृषक परिवार की अनुभूति को लेकर चलता है। एक गूजर के घर में गायें हैं, बछड़े हैं, पशुधन की दृष्टि से वह सम्पन्न है। मटकी में ताजी छाछ रखी है। छींके पर राबड़ी धरी है; कृषक-महिला अपने कार्य में व्यस्त है। उसका देवर आकर गरम भोजन मांग बैठता है। भौजाई ताना देती है कि गरम भोजन करना है तो अपने भाई के लिये कामरूप देश की 'कामणी' ले आओ।[2] चन्दन कुंवर घर से निकल पड़ता है और अनेक चमत्कार पूर्ण कार्य करता है। यहाँ कथा-तत्व का उतना महत्व नहीं है जितना कि कौतूहल-प्रवृत्ति एवं सर्पो के प्रति मानवी अभिव्यक्ति का। इसी तरह 'हीड़' एवं 'ग्यारस' आदि प्रबन्ध-गीत में धर्म के प्रति निष्ठा और भक्ति-भावना का महत्व प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति ही अधिक परिलक्षित होती है।

प्रबन्ध गीत

लोकगीतो में जीवन की विभिन्न घटनाओं को लेकर ये कथा-गीत रचे गये है। करुणा, प्रेम एवं गृह–कलह आदि जीवन की किसी भी आंशिक घटना को लेकर रचे गये इन गीतों में कथात्मक प्रवृत्ति अवश्य है। और इस दृष्टि से जन–सामान्य के जीवन की बहु–मुखी धाराओं को कथा एवं कल्पना के सूत्र में बांधकर परम्परा-प्राप्त ज्ञान को अक्षुण रखने वाली ये गीत-कथाएं विशेष महत्व रखती हैं। इनमें वीर-पूजा का भाव सुरक्षित है, जहां मानवी भाव-विकास का सहज एव आदिम स्वरूप देखा जा सकता है। इसके साथ ही महा–काव्य एवं प्रबन्ध काव्यों के विकसित रूप का प्रारम्भिक एवं मूल–स्वरूप इन लोक प्रबन्धों में दृष्टिगोचर होता है। भारत की गीत-कथाएं एवं यूरोप के परम्परा-प्रचलित लोक प्रबन्ध

---

१. BOTKIN— A Treasury of western Folk lore.
भूमिका पृष्ठ २३।

२. नाना गोल्या में रे मोली छाछ, छीका पे पड़ी ठण्डी राबड़ी
झोल्यां में रोवे रे नानो भतीजो, गोबर भरिया रे म्हारा हात
ऊबी ऊबी भोजन नी वर्णां, रे चन्दना ऊना को सावलो
दादा ने परणा रे कामरु देस की कामनी
—चन्दन कुंअर कथा गीत का प्रारम्भिक अंश

'बेलेड' में प्रवृत्तियों की दृष्टि से बहुत कुछ समानताएं पाई जाती है। गेय तत्व के साथ ही कथा-तत्व, कल्पना, कथा की प्रवाहमयी गति एवं निश्चित शैली के कारण प्रबन्ध काव्य का आभास इन गीत कथाओं में प्राप्त होता है। गीत कथाओं की निम्नलिखित प्रवृत्तियां अधिक व्यापक हैं।

१ नायक की वीरता को प्रदर्शित करने के लिए विभिन्न विशालता पूर्ण परिस्थितियों की कल्पना।
२. युद्ध में नायक के वीरतापूर्ण एवं दुर्घष-मय व्यक्तित्व का चित्रण।
३. नायक की अविरल प्रेम की वृत्ति।
४. युद्ध प्रेम, नायक और खल नायक का संघर्ष।[1]

इन प्रवृत्तियों में सामान्य जन-मानस की आदर्श-भावना प्रतिबिम्बित होकर जीवन का दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। भय एवं संकट की चरम स्थिति में वीरता एवं धैर्य, युद्ध में प्रचण्ड पराक्रम, प्रणय के मधुर जीवन में हार्दिक प्रेम-बन्धन की दृढ़ता को बनाये रखने की कामना ही मानो जन-साधारण का जीवन-दर्शन है। महा-काव्य की रचना जिन उद्देश्यों को लेकर की जाती है उनकी पूर्ति इन गीत-कथाओं के द्वारा अधिक व्यापक रूप से होती है। गीत कथाओं के अन्य लक्षणों में उनका महाकाव्य के निकट होना अधिक महत्वपूर्ण लक्षण है। यह इन गीतों की प्राथमिक एवं सर्वोपरि विशेषता है। वास्तव में इन कथा-गीतों में राष्ट्र के वीरत्वमय जीवन की व्यंजना होती है।

प्रबन्ध गीतों का कथानक

मालवी लोक-कथाओं को वास्तव में धर्म-शास्त्र की संज्ञा दी जाती है। इन गाथाओं में यद्यपि मौलिक दृष्टिकोण का अभाव नहीं है फिर भी पूजा-भावना में परम्परागत विचार-धारा एवं आर्य-संस्कृति का आदिम स्वरूप छिपा हुआ है। 'हीड़' की गाथा में ऐतिहासिक तत्व को निश्चित रूप से खोज निकालना बड़ा कठिन है। हीड़ की गीत-कथा में प्राचीन गौधन-पूजा के साथ बगड़ावत वंश के गूजरों के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन आया है। इतिहास में चूड़ावत, शक्तावत, राणावत, चैलावत आदि राजपूत वंशों का उल्लेख तो मिल जाता है किन्तु बगड़ावत वंश के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं है। सम्भवतः बगड़ देश के गूजरों की कोई शाखा होगी जिसका प्रभाव राजस्थान और मालवा में रहा है। हीड़ में बगड़ावत वंश का अनेक बार उल्लेख आया है। बगड़ावत चौबीस भाई थे जो युद्ध में मारे गये थे। एक स्थान पर मंडोवर के राजा से बदला लेने का उल्लेख आता है और

---

1. George Sampson : The Concise Cambridge History of English literature, Page 108.

चित्तौड़गढ़ में बगड़ावतों के मारे जाने का उल्लेख।[1] बगड़ावत शायद बघरावत शाखा से सम्बन्धित होंगे। क्योंकि बघेरवाल, बगरावत आदि शब्दों का उल्लेख तो इतिहास में प्राप्त हो जाता है।

हीड़ के कथा-गीत का नायक देवनारायण बगड़ावत गूजर राजा भोज का लड़का था। देवनारायण की माता का नाम साडू था। साडू माता के भाई सातल-पातल उज्जैन में रहते थे। गीत-कथा में अन्य नामों का भी उल्लेख आता है। देवनारायण की पत्नी का नाम पीपलदे और उसके भाई का नाम भुवनाकुंवर था। ये सब नाम कल्पित जान पड़ते हैं। सम्भव है इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम इस कथानक के साथ जुड़े हों एवं कालान्तर में जन-मानस ने उसमें कल्पित नामों का समावेश कर दिया हो। देवनारायण को अवतार माना है। भगवान कृष्ण की तरह धर्म-संस्थापन एवं पाप को पाताल में उतारने के लिये ही इनको अवतार लेना पड़ा था।[2] कथा का प्रारम्भ पनघट के दृश्य से होता है। पनिहारियो के द्वारा देवनारायण को अपने पिता के युद्ध में मारे जाने की घटना की जानकारी मिलती है। घर जाकर वह अपनी माता से पिता के सम्बन्ध में पूछता है। माता पहिले तो प्रश्न को टालने की चेष्टा करती है किन्तु बालक की जिज्ञासा एवं हठ को देखकर वास्तविक रहस्य प्रकट कर देती है कि देवनारायण के पिता युद्ध में अपने चोबीस भाइयों के साथ वीर गति को प्राप्त हुए। उनकी घोड़ी और भूल शत्रु के पास है। देवनारायण अपने कुल के भाट को सपना देते हैं। उधर भाट देवनारायण के भाई भानकुंवर को ढूंढ निकालता है। ये दोनों भाई अपने शत्रु पर चढ़ाई करते है और 'युद्ध' में विजयी होते हैं। हीड़ का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त है किन्तु विविध प्रसंगों की आयोजना रोचकता की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। देवनारायण का कोप भवन में जाना, भाट को सपना देना, राणा और भाट का संवाद, युद्ध में धूल–कोट का निर्माण आदि प्रसंग लोक–मानस की कौतूहलमय रुचि की ओर संकेत करते हैं।

तेज्या-धोल्या, चन्दन कुंवर आदि कथागीतों का कथासूत्र भी ग्रामीणों के लौकिक-जीवन की सामान्य अनुभूतियों से गुँथा हुआ है। विविध घटनाओं का समावेश यद्यपि

---

१. (१) अरणा लक्खरण बगड़ावत टल्या — हीड़ की पंक्ति ४७
(२) म्हारा बाप ने मारिया गढ़ चितोड़ के मांय — ,, ,, ४८
चोबिस घोड़ा फिरता उरदू का बाजार — ,, ,, ८१
(३) चोबिस चढ़ता रसिया बागड़ी — ,, ,, १७५
(४) धन धन बगड़ा लेवे नाम — ,, ,, २१९

२ आपणी आपणी कला से धरण पे
आया आप ही रे नारायण
धर्यो है जमीन उप्पर पांव
भारी लाती पाप पाताल उतार्‌यो — ,, २५–२९

कथा-प्रसंग से कोई विशेष सम्बन्ध नही रखता किन्तु जनता की भावनाओं का निर्देशन उसमें अवश्य हो जाता है। धार्मिक कथा-गीत ग्यारस में एकादसी-व्रत की महिमा को प्रदर्शित करने के लिये पौराणिक कथाओं के विभिन्न प्रसंगों को एक व्यवस्थित कथा में आबद्ध कर लिया गया है। इसमें इन्द्र का मृत्यु लोक के किसी मानव द्वारा की गई व्रत-साधना से शंकित होना, तपस्वी की साधना को भ्रष्ट करने के लिये स्वर्ग की सुन्दरी अप्सराओं के आकर्षण का जाल फैलाना आदि पौराणिक कथाओं के सुने सुनाये रोचक प्रसंगों का समावेश भी मिलता है। ग्यारस की सम्पूर्ण कथा इसी तरह पुराणों की विभिन्न कथाओं में उलझी हुई है। कथा का संक्षिप्त सार निम्नलिखित है :—

१. राजा रुकमीचन्द और रानी संजावली द्वारा एकादशी व्रत का प्रारम्भ।

२. भगवान (धरमराज) ने व्रत-भंग के लिये अप्सरा को भेजना चाहा। अप्सरा सती रानी के द्वारा श्राप दिये जाने की संभावना से डर गई। धरमराज जी ने इन्द्र और शंकर को भी भेजना चाहा। इन दोनों देवताओं ने भी इन्कार कर दिया। भगवान स्वयं मोहिनी का रूप धारण कर नारद को साथ लेकर राजा की परीक्षा लेने गये।

३. नारदजी ने सूअर का रूप धारण कर राजा का बाग उजाड़ दिया। राजा सूअर का शिकार करने के लिये प्रस्थान करता है तो मार्ग में मृग-मृगी मिल जाते है। राजा उसका शिकार नहीं करता। मृग-मृगी का संवाद जोगिड़ो·······के लोकगीतों का प्रक्षिप्त अंश है। जन-मानस ने पतिव्रत धर्म भावना की अभिव्यक्ति के लिये यह प्रसंग भी जोड़ दिया है।

४. राजा जैसे ही शिकार के लिये आगे बढ़ता है, सूअर तो गायब हो जाता हैं और मोहिनी प्रकट हो जाती है।

५. राजा मोहिनी के आकर्षण में आ जाता है और उससे विवाह कर विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये महल में रहने लगता है। नारदजी पंडित बनकर विवाह में पुरोहित का कार्य सम्पन्न करते हैं।

६. राजा की रानी संजावली और नव परिणीता मोहिनी में झगड़ा हो गया। मोहिनी ने जैसे ही सती संजावली को केश पकड़कर पृथ्वी पर गिराया मोहिनी का मोहक रूप भ्रष्ट हो जाता है। वह बदला लेने के लिये राजा से अपने दो वचन पूरा करने को कहती है।

अपने पुत्र (धरमाराज) का सिर काटकर दो—या—एकादशी का व्रत वापस कर दो। राजा व्रत छोड़ने की अपेक्षा जैसे ही अपने पुत्र का सिर काटने के लिए तलवार उठाता है ग्यारस माता राजा का हाथ पकड़ लेती है।[1]

---

१. हीड़ और ग्यारस की मूल गीत—कथा इसी अध्याय में प्रस्तुत की गई है।

ग्यारस की सम्पूर्ण कथा पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण जनता के मस्तिष्क में राजा हरिश्चन्द्र एवं राजा मयूरध्वज की पौराणिक गाथाएं अवश्य ही विद्यमान है। सरल और भोली प्रकृति के ग्रामीण एवं ग्वालों में धर्म-भावना जाग्रत करने के लिए पंडितों की पुराण—कथाओं की अपेक्षा बिना पोथी का यह पुराण अधिक प्रेरक एवं व्यापक प्रभाव रखता है।

शैली और रोचकता

अभी तक मालव के लोक-प्रबन्ध······कथागीतों का (पूर्ण एवं अपूर्ण) जितना भी संकलन मैं कर सका हूं उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन सभी कथा गीतों के प्रारम्भ में एकरूपता है, धार्मिक प्रवृत्ति की गीत-कथाओं में प्रस्तावना के रूप में हीड़ और ग्यारस में, मूल-कथा प्रारम्भ करने के पूर्व प्रस्तावना का निम्नलिखित व्यवस्थित क्रम है······

हीड़·········१. देवस्तवन (गणपति एवं शारदा की वन्दना)
२. हीड़ की ज्योति का वर्णन
३. भूमि और गौमाता की स्तुति
४. सूर्य और चन्द्र
५. देव-स्थान एवं देव-महिमा का वर्णन
६. अवतार वर्णन (प्रस्तुत कथा का संकेत)

ग्यारस······१. गणपति एवं शारदा की वन्दना
२. गौमाता (गउतरी) की स्तुति
३. वासुकी नाग की वन्दना
४. चामुण्डा — स्मरण
५. सूर्य और चन्द्र (कथा का प्रारम्भ)

धार्मिक गीतों के अतिरिक्त चन्नन कुंवर एवं तेज्या-वोल्या आदि कथाओं का प्रारम्भ गृहस्थ जीवन के मार्मिक प्रसंगों से निश्चित होता हैं। देवर-भोजाई के बीच किसी प्रश्न को लेकर कुछ कहा सुनी हो जाती है और भोजाई के व्यंग बाणों से मर्माहत होकर देवर काम-रूप देश की कामिनी प्राप्त करने के लिए दौड़ पड़ता है। इस तरह कथा से सम्बन्धित पात्रों का विशेष परिचय दिये बिना कथा-गीत को प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति सार्वभौमिक है।[1] जन-जीवन की किसी भी घटना से कथा का प्रारम्भ होता है

---

1. Prof James Child, "English and Scottish Balads".

ग्रौर कथा प्रसंग को घटनाग्रों के प्रवाह में ले जाकर छोड़ दिया जाता है, इन कथा-गीतों में कथा-प्रवाह बड़ी तीव्रतम गति से बहता है ।

कथा-गीतों की वर्णन-शैली सीधी ग्रौर सरल होती है किसी घटना के चढ़ाव, उतार ग्रथवा मोड़ के बिना ही लोक-कथाग्रों का कवि-मानस ग्रपने मूल विषय पर जा पहुँचता है । वर्णन शैली में ग्रन्य लोक-गीतों की रूढ़ियो का यथावत समावेश भी मिलता है । उदाहरणार्थ ग्यारस में मोहिनी का स्वरूप वर्णन उल्लेखनीय है, जिसमें नारी-शरीर के लिये निम्नलिखित परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया गया है ।

१. सीस	वागड़ियो नारेल (नारियल)
२. जंघा	देवरा रा खम्ब (देव मन्दिर के खम्बे)
३. ग्रांख	नीबू की फाँक
४. नाक	सूग्रा की चोंच
५ दाँत	दाड़म के बीज
६. हाथों की ग्रंगुलियाँ	मूंगफली
७. बाहु	चम्पा की डाल [1]

उक्त उपमाग्रों का प्रयोग देवी के स्वरूप वर्णन में भी किया गया है [2] । रीति-कालीन कवियों के रूढ़ नखशिख-वर्णन की तरह लोक गीतों के उपमान परम्परा की वस्तु बन गये हैं । नाक, दाँत, ग्रौर बाहुग्रों के लिए प्रयुक्त उपमानों के ग्रतिरिक्त मस्तक के लिए नारियल जंघा के लिये देव-स्थान के खम्भे एवं ग्रंगुलियों के लिए मूंगफली ग्रादि उपमानों के ग्रहण करने में जन-मानस की स्थूल द्रष्टि के साथ ही मौलिक सूझ भी प्रकट है । ग्रंगुलियों के लिए मूंगफली की उपमा किसी ग्रन्य काव्य ग्रन्थ में नहीं मिलेगी । बीसलदेव रासो में लोक-गीतों की ग्रनेक मान्यताग्रो को ग्रपनाया गया है । इसमें कवि ने काव्य की रूढ़ियों से मुक्त होकर लोक-प्रचलित उपमानों को ग्रहण किया है । ग्रंगुलियों के लिए मूंगफली का उपमान केवल इसी काव्य में प्राप्त होता है ।[3]

ग्रंगुली के लिये मूंगफली का उपमान लोकगीतों की परम्परा से ग्रपरिचित व्यक्ति के लिये कुछ उलझन ग्रौर कौतूहल का विषय ग्रवश्य बन सकता है । श्रीमती किरणकुमारी गुप्ता को कवि के द्वारा दिया गया यह उपमान व्यर्थ ही दिखाई देता है । "कवि ने उंगलियों के लिए मूंगफली ग्रौर नखों के लिए कुसुम कली दो नवीन उपमानों की उद्भावना की है । किन्तु इनमें कवि ने तनिक भी साहश्य का विचार नहीं रखा मूंगफली

---

१. देखें, ग्यारस कथा गीत, पंक्ति ७१ से ७९ ।

२. देखें, तीसरा ग्रध्याय, रतजगा के गीत ।

३. मूंगफली सी ग्रांगली
कुसमकली को नख जी —बीसलदेव रासो, तृतीव सर्ग; पृष्ठ ७२ ।

में न तो रूप ही है, न गुण का न क्रिया का न जाने किस फेर में पड़कर कवि ने इन उपमानो का प्रयोग कर डाला ।"[1]

वस्तुतः उंगलियो के लिए मूंगफली की उपमा केवल आकृति-साम्य के कारण दी गई। वहां गुण, क्रिया आदि पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि जन-सामान्य की द्रष्टि किसी भी वस्तु के स्थूल रूप को ग्रहण करती है। मूंगफली की तीन पैरी एवं उंगलियों की पैरियो में आकृति-साम्य है। यह उपमान बीसलदेव रासो के रचयिता कवि की नवीन उदभावना नही अपितु लोक-गीतो की देन है। लोकगीतो द्वारा दिया गया एक और उपमान भी विचारणीय है। आँखो की सुदीर्घता, बांकपन आदि स्थूल रूप, पुतलियों की चंचलता एवं कटाक्ष-पात द्वारा हृदय-बेधकता आदि उसकी क्रियाओं के प्रमाण को लेकर मृग, मीन और खंजन के उपमान भारतीय काव्य मे में परम्परा से प्रचलित है। नेत्रों की मादकता और ललाई के साथ उसका आकृति-सौन्दर्य अर्ध-स्फुटित कमल से भी मेल खाता है। किन्तु नींबू की आधी फांक से नेत्रों की उपमा देने की ओर किसी का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। कानो तक खिची हुई 'बडरी अखियां' के सौन्दर्य की अपेक्षा स्त्रियों की गोल आंखे अधिक अच्छी लगती है। लोकगीतो में आंखो को नीबू की भी गोल फांक से उपमा देने में वर्णन की स्थूलता अवश्य प्रकट होती है। किन्तु यह उपमान भी मौलिक उद्भावना का परिचायक है। मालवी की तरह मराठी लोकगीतों में भी स्वरूप वर्णन मे बड़ी एवं गोल आँखो के सौन्दर्य के लिये नींबू के उपमान को ग्रहण किया है।[2]

स्फुट लोकगीतों की तरह कथा-गीतों के प्रसंग विधान मे कवि-प्रसिद्धि के समान निम्नलिखित मान्यताओ का उल्लेख अवश्य रहता है।

१. पनघट पर नायक–नायिका का अनजाने में मिलन।
२. चम्पा बाग में डेरा लगाना।
३. गंज मोतियों से बधाना।
४. हृदय के बज्जर किवाड़ (वज्र कपाट) खुलना और लगना।
५. पक्षियों के लिये सोने और चांदी के पींजरे।
६. कज्जरी बन।
७. कामरुप देस की कामणी का आकर्षण
८. भवन, अट्टालिकाओं के प्रवेशद्वार के लिये 'सूरज पोल' शब्द का प्रयोग।

---

१. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण; पृष्ठ ८५।
२. मोठं मोठं डोलं जशी लिब्याची टोपणं।
३. रूप लाल च दैखणं—सौ० दाण्डेकर, लोक साहित्याचें लेणे; पृष्ठ १५२।

इन लोक-प्रसिद्धियों के अतिरिक्त कथा में रोचकता उत्पन्न करने के लिये जन-जीवन के कुछ कौतूहल-पूर्ण एवं मनोरंजक प्रसंगों को कथागीतों में स्थान दिया गया है। नट और बाजीगर के खेल सपेरे के द्वारा पुंगी के संगीत से सर्पों के विविध करतब जोगियों की करामात, जादू-टोने, मंतर-जन्तर, परकाया-प्रवेश एवं देह-परिवर्तन आदि मानव से संबंधित मानवेतर सृष्टि के रहस्यो से प्रायः सभी कथा-गीतों का कलेवर आवेष्टित रहता है। उद्भव, विकास और अवसान की दृष्टि से ये कथा-गीत एक ही शैली, एक ही प्रणाली को लेकर चलते हैं।

धार्मिक-भावना और अन्ध-विश्वास

जन-सामान्य की धार्मिक भावनाओं का अध्ययन करने के लिये वेद, पुराण एवं धर्म शास्त्रों के पृष्ठ उलटने की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ेगी जितनी उच्च-वर्गीय एवं पठित संस्कृत-समाज की धार्मिक भावनाओं का आधार खोजने के लिये धर्म-ग्रंथो का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। वस्तुतः जन-साधारण की धर्म-धारणाएं एवं विश्वास परम्परा और अनुभूतियों पर टिके रहते है। भारत की सांस्कृतिक परम्परा में युग-युगों से विभिन्न जातियों की धार्मिक भावना का जो सम्मिश्रण हुआ है उनमें आदिम जातियों की अन्ध-धारणाओं का समावेश अलग ही स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन युग की बर्बर एवं संस्कृति-प्रधान अन्य जातियों में भूत प्रेत सम्बन्धी मान्यताएँ, बलि की प्रथा, जादू-टोने, सूर्य-चन्द्र आदि गगन-मंडल के ज्योति-पिण्डो की उपासना एवं लोक-परलोक सम्बन्धी धारणाओं को लेकर देवी-देवता, धर्म और दर्शन सम्बन्धी सिद्धान्तो का विकास हुआ है।[1] जिन अनुश्रुति एवं दन्त कथाओं को लेकर लोक-मानस अपनी धार्मिक भावना को अभिव्यक्त कर जीवन की जिज्ञासाओं की तुष्टि करता है वहाँ दार्शनिक एवं समाज-शास्त्री समाज की स्थिति एवं संरक्षण के लिये लोक-भावना को पचाते हुए सैद्धान्तिक आधार भूमि पर धर्म, नीति और आचरण-सम्बन्धी विधिनिषेधों की रचना कर डालते हैं। मनुष्य की प्रकृत प्रकृत्ति भय और लोभ से लाभ उठाने के लिये अनेक इतिहास एवं कल्पना-मिश्रित अवदान और दन्त-कथाओं की सृष्टि हो जाती है। साधारण जन एवं समाज का जीवन इन्हीं अवदान और अनुश्रुतियों से संचालित और प्रेरित होता रहता है।

भारत में प्रचलित कथा गीतों की तरह मालवी कथा-गीतों में भी लोक-मानस की सरल, विस्मयभरी धार्मिक जिज्ञासाएँ एवं अन्ध-विश्वास प्रकृत रुप में भी विद्यमान है। जहाँ यह विश्वास सुदृढ़ है कि उपवास करने से, भूखे रहने से स्वर्ग मिलता है, स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से यहाँ सोचने का अवसर ही नहीं है। इसी तरह सुकर्म एवं कुकर्म करने वाले व्यक्तियों के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण रहता है। रोग दुःख एवं अन्य कष्टदायी अथवा अनिष्टकारी तत्व कुकर्म के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होते है। सती को चोट पहुँचाने के

---

१. Taylor, Anthropology, Vol.II, pp. 106 ff.

कारण उसके मस्तक से जो खून बहा, उससे खटमलों का उत्पन्न होना,[1] किसी देव-तुल्य बालक को स्तनों के द्वारा विष पिलाने की चेष्टा से जेरबाज (स्तनरोग) की उत्पत्ति[2] आदि उपरोक्त अन्ध धारणाओं के परिचायक हैं। इन कथा गीतों में इस प्रकार की लोक-मान्यता और अन्ध-विश्वासों की भरमार है।[3]

हीड़

भारत के प्रमुख त्यौहारों में दीपावली का अवसर लक्ष्मीपूजन के साथ ही देश की श्री, सम्पन्नता एवं वैभव को प्राप्त करने की सामाजिक कामना का एक प्रदर्शन है। इस कामना को प्रकट करने के लिये दीपक एक प्रतीक बनकर आता है। प्रकृति के प्रांगण में व्याप्त अमावस्या के तिमिराच्छन्न अस्तित्व को चुनौती देने के लिये गगन के नक्षत्र जब धरती के प्राणियों को प्रकाश एवं ज्योतिर्मय जीवन की प्रेरणा देते रहते हैं, तब धरती का पुत्र मानव स्वयं के जीवन में व्याप्त दैन्य-दारिद्रय के अंधकार को चुनौती देने के लिये दीप की ज्योति जगमगा कर समृद्ध होने की कामना प्रकट करता है तो यह उसके दुर्धर्ष पौरुष का सूचक है।

हीड़-पूजन की प्रथा सम्पूर्ण राजस्थान एवं मालवा में प्रचलित है। दीपोत्सव की तरह हीड़ भी ज्योतिर्मय पूजा का एक स्वरूप है। दीपावली के अवसर पर हीड़ का पूजन होता है। हीड़ शब्द का मालवी अर्थ भी ज्योति या प्रकाश होता है। मिट्टी के सरावले[4] में तिल्ली का तेल एवं कपास्ये[5] रखकर ज्योति प्रज्वलित की जाती है। दीप अमावस्या की संध्या को दीपमालिका एवं लक्ष्मी पूजन करते समय इस 'हीड़' दीप विशेष की पूजा भी की जाती है पूजन के पश्चात् बांस या चपटी लकड़ी के डंडे पर हीड़ को प्रस्थापित कर अपने सम्बन्धी परिचित एवं मित्रों के यहां पर जाते हैं। और 'हीड़' के दीप में स्नेह प्रदान करने की आकाँक्षा प्रकट करते हैं। 'आई दिवाली मेलो तेल' प्रत्येक द्वार पर हीड़ का स्वागत होता है और हीड़ लाने वाले व्यक्ति को प्रसाद में मिष्टान्न प्राप्त होता है। जिस समय हीड़ में तेल डाला जाता है उसकी जोत अधिकाधिक प्रज्वलित हो उठती है। भावुक मनमें सोच ही बैठता कि आत्मीय-जनों के ये स्नेह दीपक को चिर-ज्योतित बनाये रखने की कल्पना मालव के भूमि-पुत्रों के निश्छल हृदय की परिचायक होकर उनकी सामाजिकता की द्योतक भी है।

---

१. देखे, ग्यारस के कथागीत का अन्तिम विवरणात्मक अंश।

२. हीड़ की कथा का साढू माता से सम्बन्धित प्रक्षिप्त अंश।

३, अन्ध विश्वास एवं जादू टोने पर ५वें अध्याय में विस्तार के साथ विचार किया गया है।

४. कटोरी के आकार का बड़ा दीपक ५. बिनौले

हीड़ का समारोह कृषि–जीवन से सम्बन्धित ग्रामों की वस्तु है। नगर में प्रायः इसका आयोजन नहीं होता। मालव के कृषकों का यह वास्तविक दीपोत्सव कहा जा सकता है। हीड़ की पूजा के पश्चात् ही भाई-दूज तक रात्रि के समय एक कथामय गीत गाया जाता है उसको भी हीड़ कहते हैं हीड़ दीवाली के दिनों ही गाई जाती है। अन्य अवसरों पर इसका गाया जाना निरर्थक अथवा अप्रासंगिक समझा जाता है। अप्रासंगिक कार्य करने वाले के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के लिए इससे सम्बन्धित एक कहावत भी प्रचलित हो गईः—'गई दिवाली गावे हीड़', इससे हम दिवाली एवं हीड़ गान की अभिन्नता का अनुमान लगा सकते हैं।

हीड़ ग्रामीणों का एक लोक-प्रबन्ध है जो गीत के आवरण में मौलिक परम्परा के रूप में कुछ सुरक्षित रह सका है। मैने हीड़ की पूरी गीत-कथा को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा कोई भी व्यक्ति नही मिल सका जिसे पूरी हीड़ याद हो। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को जितना अंश याद था उसको लिपिबद्ध कर कथा-प्रसंग को समझते हुए हीड़ के कथा-गीत का संकलन किया गया है।[1]

---

१. निम्नलिखित ग्रामीणों से हीड़ की विविध पंक्तियां लिपिबद्ध की गई हैं।

१. बींजा (भांबी)	ग्राम फतेहाबाद	उज्जैन
२. नागू (नाई)	,, सोडंग	,,
३. मोतीराम पटेल	,, ऐरबास	,,

हीड़ (गीत-कथा)

गणपति-वन्दना

पैलां सुमरूं गणपत महाराज, फेरी सुमरां माता सारदा १
गणपत ने चढ़ावाँ मोदक लाड़ला, सारदां फ़ूलाँ की माल २
हिरदां में विराजे गणपत देव, कण्ठे विराजे देवी सारदा ३
भूल्या चूक्या ने मारग बताव[1]

हीड़ की जोत, ज्योति का वर्णन

तिल्ली नी तेलाँ जोताँ जले सिरी इन्दरासन मांय ४
दूसरी जले पोखर जी का घाट
तीसरी जले भुवानी दक्खण माय
चौथी जोत जले फरणा जी माय
एक तिल्ली ने दूजो कपास
तिल्ली नी तेलां जोतां जले
कपास ने ढांक्या जुग-संसार १०

---

१. श्री चन्द्रसिंह झाला ने अपने एक लेख में हीड़ के प्रारम्भिक अंश की केवल आठ पंक्तियों का उद्धरण दिया है, उसका पाठान्तर है—

पेला सुमरा गणपत देव ने
नमी नमी लागां भवानी के पांव
कण्ठे विराजे देवी सारदा
हिरदा में बोलो गणेस
धरत्या में दो जोदा बड़ा
एक लीली दूजी सूर्यागाय
सूर्या का जाया हल चले
लीली का रण में जाय

देखें – मालवा के किसानों का संगीत प्रेम, वीणा इन्दौर, अक्टोबर १९३९।

धरती के जोधा (योद्धा)

अणा कलौ में जोदा दो बड़ा, एक धरती एक इन्दर मेह
राजा इन्दर बरस्यां धरतो नोबजे, दुनिया गावे मंगलाचार
धरत्याँ पे दो जोदा बड़ा
एक है सूर्या नो जायो १५
दूजो है घोड़ी नो जायो
एक तो पाळे संसार
दूजो जाय रण में अस्वार
दुनियां में दो जोदा बड़ा, एक चन्दो दूसरो सूर्याभान
चन्दा बणाई कैसो चान्दनो सूर्या बणायो कैसो तेज
चन्दा उगता रे रेण लागे सूरज उगता उछरै सूर्यगाय २०

देवस्थान एवं देव महिमा का वर्णन

ऊंचा ऊंचा मन्दर रे दीखे ऊंकार सरका
नीच्या बन्दाया माता नरबदा ना घाट
दूरां देसानां जात्री जात्रा आवे
बांझा घरे दे पालना बन्दाय २४

अवतार वर्णन

आपणी आपणी कला से धरण पे
आया आप ही रे नारायण
धरयो है जमीन उपर पांव
मारी लातां पाप पाताल उतार्यो
दीदी धोळी धजा उड़ाय
काली काली गुवालूं माता काळका ३०
काला काला कीजो किसनामुरार
आपणी कला से नारायण आया आप ३२

कथा का प्रारम्भ

नत उठ बैठ्या पनघट जावे
लाल कमाण हाथ विराज्या
नतना मारे छुट्टा सेल
रीस करिने पण्यारी यूं बोली ३६

सुणलो सासूजी म्हारी बात
यो गुजरनो डावडो सासूजी छोटो दिखे
नतना मारे छुट्टा सेर
नतना भन्डाड़े सतनी साड़ू[1] ४०
तांबा पीतलना घड़ा लई
गई समदरियानी पाल
दई झकोलो पण्यारी बेवड़ों भरयो
ऊबी जई सरवरिया के माय........ ४५

---

१. हीड़ के प्रधान नायक का नाम देवनारायण है। उनकी माता का नाम साड़ू माता है। उज्जैन के पास सोढंग के बड्डे पर देवनारायण का स्थान (ठान) है जहाँ हजारों ग्रामीण 'मान्ता' और पूजने के लिए आते रहते है। उज्जैन के निकट भैरवगढ़ के उत्तर में साड़ू माता की बावड़ी के नाम से एक वापी अपना धार्मिक महत्व रखती है। यद्यपि कथा के प्रारम्भ में देवनारायण के जन्म की कथा का समावेश नहीं किया गया है फिर भी मेरा ऐसा अनुमान है कि साड़ू माता की कथा एवं देवनारायण के जन्म की कथा का प्रसंग हीड़ से सम्बन्धित है। संक्षेप में साड़ू माता के पुत्र के जन्म से सम्बन्धित प्रचलित गद्य-पद्यात्मक लोक-कथा को प्रस्तुत कर देना प्रासंगिक होगा। हीड़ का यह एक प्रारम्भिक अंश समझना चाहिए।

साड़ू माता स्नान करता था वां भगवान आया अने साधू वेस में अलख जगई; साड़ू माता बोली—

'हीरा (दासी का नाम) साधू ने भिक्स्या मेल्या'
सादू बोल्या — हीरा का हात की भिक्स्या नी लूंगा, साड़ू जैसा बी हो अइने भिक्स्या दे'

साड़ू माता भिक्स्या मेलवा चाली। तन बदन पे बस्तर (वस्त्र) तो था नी। माया से केश पग तक हुई ग्या। माता ने भिक्स्या मेली तो सादू बोल्यो—

'माता आजती छट्टो महनो
सर सनीवार को दन
माह नो महनो
हूं जन्मूंगा त्हारी गोद में

माह महनो आयो। अज् छट्ट नो दन, सनीवार बी। वणी दन गुलाब ना फूल में जनम लेई भगवान बावड़ी में दिखवा लाग्या। सारा सेरनी सहेल्यां वां पानी भरवा गई। तिरतो फूल पकड़वा लागी। फूल हाथे नी आयो। साड़ू बी पानी भरवा गई। फूल देख्यो ऊंके बात याद अईगी। बावड़ी का पंगत्या (सीढ़ी) पे जई बैठी। खोलो (गोद एवं अंचल के लिये प्रयुक्त शब्द) लम्बो करने बोली—

'थारे गरज होय तो म्हारा खोला में अई जा'

सुणो कालू कसन म्हारी बात
अणा लक्खण तो बगड़ावत टल्या
थारा बाप ने मारया गढ़ चितौड़ के माय
चढ़ी ने मारजो राणो मण्डोवर नो
कर जाजो इना गुजरनो बदती बैलड़ी···· ५० ह
जल उठ्या रे कसनजी
कढ़ाया में उबले जैसे तातो तेल
करियावां रे राणा बागा ठण्डा सेल
फेर देखांगा पण्यारी थारो मुखड़ो
लाल कमान कसनजो भांगी डाल्या ५५ द

फूल झट से उड़ी ने माता साडू की गोद में बेठी गयो। माता घरे आई गी। घर अई ने देख्यो तो पालना में बालक खेली रयो थो। अंई तो देवनारायण ने जनम लियो ने बँई राणाजो को एक मैल (महल) धँसी पड्यो। राणाजी का मन में विचार आयो के असो म्हारो कूण वैरी जन्म्यो। राज का पण्डत ने मूरतां करी ने बतायो— म्हाराज उदेरई नाम को लड़को पैदा हुओ जनमता इ इत्तो नुक्सान कर दियो है। कोई दन सन्मुख लड़ेगा तो या आखी रांण (प्रदेश) को पत्तो नी लगेगो। राणाजी ने चार विरामण के भेजा ने यो बचन दियो के जो ऊ लड़का के खतम करि देगा ऊंके आदो राज दई दूंगा।

जब चारि बिरामन साडूमाता के यां गया। वा गंगाजी में पानी भरवा गई थी। बिरामण होंण के बालक नी अलग अलग कला दिखई। कोई के जवान आदमी दिख्यो कोई के छोटो सो बालूड़ो। विरामण बालक के मारवा बहुल तैयार हुआ तो थोड़ी देर में आफरतां किवाड़ बन्द हुई ग्या वी सब घिरी ग्या ने बालक नी रक्स्या तो बड़ा बड़ा वासग नाग करि रया था। वी बिरामण जान लई ने भाग्या के अपणे आदो राज नी चइये। खड्यो फेर ने पेट भर लांगा।

राणाजी ने दो दूती भेजी। एक दांत काढ़ती अई : दूसरी रोती अई। एक बोली हूं थारी मासी। दूसरी ने कयों हूं बगड़ावत की बेन हूं। साडूमाता गंगाजी में पानी लेवा गई। बैन बण के अई हुई दूती ने आंगली में जेर (जहर) लगई ने बालक का मुं में दियो तो ऊंको आखो हाथ सूजी गयो। जद से लौकने व्हाली—बिसाली (एक रोग का नाम) निकलणी सुरु हुई गी।

दूसरी दूती ने कई काम करयो के बोबा (स्तन) में जेर लगई ने धवाड़वा लागी तो देव म्हाराज ने जेर एसो खेंच्यो के ऊं रांड को बोबो आखो सूजी गयो।

अँई तो वा ने ऊबी हात पकड़ी ने अड्ड़ाटा करे। जद से बयरां (स्त्री) के जेरबाज (स्तनरोग) होवा लाग्यो। गंगाजी ने माता साडू से कयो—

जई पड्या कांकड़ ऐ नेट्यां मेलां माय
बारा बरसाँ से सूनो पड्यो मेल
जिमें जई पड्यो तीन भवन को नाथ
सांझ पड़ी ने सूर्या घरे आई
माता ने चूड़ले लागी भोजा भोर
आज म्हारो बालू किसन घर कोनी ६०

'माता तू है सत नी साडू
हूं गत नी गंगा
वी थारा पीयर की नी है
तू घड़ी घड़ी भोली क्यूं बणे
कां की मासी ने कांकी बैन'

उज्जैन नगरी में साडू माता को पीयर थो। ऊका भई होण को नाम आम्बयो लिम्ब्यो थो। भांगराव जी का चौबिस भई होण के अड़तालीस बयरा थी। साडू माता ने राणाजी की रांण छोड़वा को विचार करयो। जावा के पैलां सोला सिणगार कर चौबीस भई होण का गात्या पूजवा बल्ले गई। नियोकुंवर का पैला गाता पै गाबरो नाखी ने रोवा लागी......

'चौबिस भई आता म्हारे घरे पावणां
लेती गजमोत्यां से बधाय
उमग उमग भोजन रालती
चोबिस भई चोपड़ खेलता
जि में खुलती लीली पीली सार
चोबिस भई भोजन खावता
जि मे खुलती चम्पा नी डार
गांत्यो फोड़ी ने नियोकुंवर निकल्यो
सुणलो भाभी म्हारी बात
आवत करम है म्हे कर्या
कर लिया अब पत्थर में वास
दुनियां में अम्मर कर दो नाम तम
पीयर जाव तो भले जाव
पण या लीली अवेरी ने राख जो
कोई दन रण में देगा काम।

पीपलदे बोली माता आगे केवी रेहण आगे गई
पाछले रई मज आधी रात
सासूजी नाम म्हारो मत लीजो
परभु पड्या है कांकड़ मेलाँ जाय ६५

एक हात में दीवलो लीदो
एक हात में संजवारी
झाड बुहारता साडू माता वां गया
काकड़ नैय्या मेलां ना माय
उठो रे बालू कसन लाड़ला ७०

सूना मेलां में किने आवे या बैरन नींद
खूंटी माता हतियार किना टंग्या
इनका बांदण बाला कठे सिदारिया
दूराँ देसना आया पावणां
नै रई ग्या गोठानां में दन चार ७५

इत्तरी सैलाणी दई ग्या सूरमा
आम्बा-आमली कंई बताड़ो म्हारी मायड़ी
अणका बांदवा वाला कठे सिदार्या
ये हिरदे जड्या बजर किवाड़
यो म्हारो उल्टो हियो समल्यो नी जाय ८०

चोबिस्या घुड़ल्या फिरता रिया
उरदू का भर्या बजार
जई ने टांडो ढाल्यो खारी नद्दी मांय
भरी झाज डूबी समदर मांय
जणीरा हाड़ गया हिमाचल के मांय ८५

सब गात्यां पे धूप दई ने साडू माता घरे आई गी। मेल से बायर निकलते बखत बोली :—

'या तो दिवाली नो है तेवार
छः छः मण तेल पूरती
अब उगेगा मेलां पे हरिया घास'

मेल बोल्यो—'सुण लो माता म्हारी बात
धणी म्हारो ऐसो जन्म्यो
पूरेगा नौ नौ मण घी…'

बताड़ तो माता कुल नो भाट
गंगा न्हाया गोमती ७८ तीरथ एकज न्हावी
जे म्हारा आसूं में सन्मार धोवतो
सरजू छोड़ ज्यो रे रण खेतां का मांय ९०

सूता भाट के सपनो दीदो
सम्हलजे भड़जी म्हारी बात
घोटा में आज पड्यो है काम
आदी रात चांचल्यो बिराज्या है भगवान
सुणजे माता बिल्लू म्हारी ९५

आज असो सपणो आवियो
जिजमान म्हारो लाग्यो है
छाती पै हाथ रख्यो थने अईग्यो ओचको
अरे अई ग्यों जीवन को जंजाल
हवेर ने भाट उठी आयो
घोटा राँण का माँय
भोली रे घोड़ी नाना असी रे
५२ फोज फाटाँ ने आगेवान
ऐसी रे लई ग्यो भायरे
बन्दी सातल पातल ना देस १०५

जेरे मंगलो हाथी ऐसे रेतो थो
५२ फोज फांटा ना माँय
भुकाड़े बिलौदा ने कुम्हार
काली कुन्डल नी भैस्या ऐसी रे थी
रेती थी बावन फोजा माय ११०

बढ़ती थी पेटां ती पेठां जोड़
जण दुवे है लोड्यो लीमदे
भाट ग्यो राणा का दरबार मांय
रीस करीने भाट जी बोले
सम्हल जो म्हारी बात
घणा दन सूता अम्मल में
आज म्हने दाता अम्मल दो
भरी कचेरी राणो जी बोले
समल जो भरमा मोदी म्हारो बात

सेर तराजू लई जावो भाट ग्रमल तोल दो
दो भाट ने ग्रमलां की दातारी
रिस करी ने भाट जी बोले
समलजे राणा जी म्हारी बात
घणा रे दन में ग्रमल जाग पड़या १२५

बारा मनासा नी ग्रमल कोठरी
जर में लई बोड़यो मतवाले भाट
काला गोरा सकती ने बुलाविया
दीदा ताला झड़ि पड़्या
ग्रमल साका खाइग्या १३०

रिस करी ने राणा जी बोल्या
समलजे भरमा मोदी म्हारी बात
भाट ने कोठरी से बायर लाव
ग्रब बेचाड़ेगा त्हारा घोड़ा टट्टू
भुनो कंवर काँ मिलेगा
चौदसनी परको
सिदवट भूनो कुंवर न्हावे [1]
पूनमी न्हावे रेती नो घाट
के तो मलेगा काली जी का मन्दर
के मलेगा उड़द का बजार [2] १४०

चल्यो चल्यो भट जी ग्यो
गयो उड़दू का बजार
दई गोड़ी ने धूलो भेलो कर्यो
जणी धूलानी रची खण्डार
लई ढाल उफण लाग्यो
ढाक दियो सूर्याभान
रीस करिने भुणो कुंवर बोले
सुण जे हजूर्या म्हारी बात
खबर लावो रे उड़दू का बजार
कुण जी देवा ग्रायो जो ढक्यो सूर्याभान १५०

१—सिद्धवट उज्जैन में क्षिप्रातट पर प्रमुख स्थान है।
२—उज्जैन के एक मोहल्ले का नाम।

समलजे बावन फोजां रा सिरदार
अपणा सेर में कुमारिया घणा बसे
जणी रच्यो दिवालो रो सिनगार
दोड्यो दोड्यो हुजुरयो उड़दू का बजार
समलजे रे परदेसी म्हारी बात १५५

घड़ोक धूला नी धार धोवजे
म्हारी केसर भरी बाळद रजवाय
लाल सरीखा लख गया
गया अणा उड़दू का बाजार
कांटे मोतो वो पोई गया १६०

दोडयो दोड़यो हजुरयो भुवना पे गयो
सुण जो भुवनां कुंवर म्हारो बात
अपणा सेर में परदेसो आयो
धूल उफणे उड़दू बजार
भूवनो हाथो छोड़ घोड़ो पै बैठयो १६५

हांकी उना उड़दू के बाजार
रोस करिने भुवनों कुंवर बोले
सुण जे परदेसो म्हारो बात
वणो या धूल नो घर थोबले
म्हारी केसर नो बाळद रजवाय १७०

हूँ धूलां नो धरर नो थोबू
जौ मजूरया लगाया लाख दो लाख
रोस करीने भड़ जो बोले
सुण जो भुवना कुंवर जो म्हारो बात
चोबिसा चढ़ता रसिया बागड़ा १७५

घुड़ला फेरता उड़दू का बाजार
भोलो घोड़ो नी एक लाल लगाम
हूं ठंडो रियो उड़दू के बाजार
भुवना ने भाट मिलि गया
दोई ग्या देवनारायण के पास १८०

इ तोन जणा गया सातल पातल का देस
वां जई ने तम्बू तासिया
खेंचो रया रेशम थालो डोर

खबरां करजो रे म्हारा मामाजी ने
अब लेवांगा म्हारा आगल्या रो बेर १८५

ओरां पदारो भाणेज ओरां आव नी
गज मोत्यां से लेवां बधाव
घणा रे दन में भाणेज पावणा
जण रुढ़ी रुढ़ी करूं मनवार
भुवनो कुंवर लई तलवार १९०

चढ़यो मेलां का मांय
बताड़ो माम्यां म्हारा मामाजी ने
अब लेवांगा म्हारा आगल्या रो बेर
सातल पातल ना सीस उतारिया
झोली में रख लीदा संवार १९५

वां से भुवना कुंवर नीचे उतरया
गया बोहिरा के मांय
घोड़ी के जइने पांव लग्या
साँड का गले बांदी रेशम डोर
चाली ने आया राणा नगर मांय २००

खबरां कर जो रे म्हारी भाभी ने
अब लेवांगा आगल्या रो बेर
विने बदावा भाभी थाल लई ने आई
टीको काढ्यो ने थाल्यां मेल्या दोई सीस
अरे भुवनो आज यो कईं करयो २०५

डुबाड्यो थने पीयर नो नाम
जल्दी बताड़ो म्हारी घोड़ी नी भूल
बिजरु नांचे बांस पे
धन बगड़ा, धन बगड़ा लेवे नाम
राणा बोले बगड़ावत ना वंस को उतार २१०

गेंदाजी ने कीदो जई भाट ने
या लेवे थारा बापदादा को नाम
इने बांस में से नीचे उतार २१३

———o———

(मेंदा को लेकर देवनारायण, भुवनाकुंवर और भाट मेवाड़ में आ गये)

ग्यारस

एकादशी के व्रत के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक गाथाएं हैं जिसमें वृत का महात्म्य एवं वृत धारण करने वालों को स्वर्ग प्राप्त होने का उल्लेख है। संस्कृत में लिखे पुराणों की कथा सुनने का सौभाग्य नगर के मध्यवर्गीय परिवारों को ही अधिक प्राप्त होता है। ग्रामों में बसने वाली कृषक जनता ने सुनी-सुनाई पुराण की कथाओ की धुंधली पृष्ठभूमि पर एकादशी वृत की महिमा के सम्बन्ध में एक प्रबन्ध की रचना कर डाली। यह रचना गेय है एवं ग्यारस के नाम से लोकगीतों की मौखिक परम्परा की अमूल्य निधि है। लेकोड़ा ग्राम से सन् १९५० में लगभग दो हजार पंक्तियों में ग्यारस की गीत कथा को लिपिबद्ध किया गया था। उसका सम्पादित एवं संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

गणपति एवं शारदा की वन्दना

अरे देवी तो सारदा बिनवा
गणपत के लागाँ पाय रे
गणपत चढ़ावा मोदक लाड़ला
सारदा कु फूलाँ हल्दी माल
हल हाँकता रे हालीड़ो सुमरे ५
सुमरे गाय को गुवाल
हथणी बैठो महाजन सुमरे
लाभ चौगण होय
रण में जाता छतरी सुमरे
जिन कदी नी आवे हार १०

गौमाता (गउतरी) का स्मरण

धन धन ओ गऊतरी माता
तने रतन उघाड्याँ दुनियाँ माय
थ्यारा जाया मावेसरी हल चले
खेंचे धरम की चांस

वासुकी वासग नाग का स्मरण

नागण लागां पाय रे
धन धन ओ माता नागणी
तने जाया वासग नाग
सेस फण से माता धरतो थोबे
थोव्यो यो युग संसार १९

चामुण्डा स्मरण

तेल सिन्दुर देवी पूजा चढ़े भैंसा का मांगे भोग
सूरज का चक्कर चलता तो रे झूठ बोलता उनका झड़े सीस

चन्द्र-सूर्य का स्मरण

दन उगे ने सूरजभान रथ चढ़्या
अरे पंछीड़ा चुगवा तो जाय
राम जी गाय का बन्धन छुटवा लाग्या २४
अरे पंथीड़ो मारग जाय
कुलवन्ती ने कुल संभालियो
मरद ने संवारी पाग
जो कोई सुमरे चाँद सूरज देवता
जी की नारायण करे साय २९

ग्यारस की मूल कथा का प्रारम्भ

हां रे रांण नरियाबा सेर माय राजा रुकमाचन्द कहिये
जिका घरे संजावली नार

राजा राणी दोई चौपड़ खेले मांडया चौपड़ केरा ख्याल रे ३२

चौपड़ खेलते हुए राजा रानी की बात-चीत एवं राजा द्वारा एकादशी के व्रत और और उसके महत्व का उल्लेख

बरस का दन तिरिया बारा मइना
कँईं कँईं आवे तेवार
सब रे तेवार मोटा एकादशी
अरे साय तो भवानी मांय
रामजी बरत करां एकादशी को
अरे पावांगा बैकुण्ठा बास हरि.......... ३८

राजा के आदेश को केसरिया परधान (प्रधान) ने सम्पूर्ण राज्य में घोषणा द्वारा प्रसारित कर दिया एवं एकादशी के वृत को करने की विधि भी बतला दी।

गाय गलावा छोड़ो मती
मती निराओ घोड़ा को घास ४०
बाला को सौत बई बेन दीजो मती
अब मती करो अन्न परसाद
जो दोई असो दन आवे
करजो गंगा स्नान
सकताँ मुजब धरम पुण्य करजो ४५
तो हरि का दरसन होय
छतरी नो होय तो छोड़ दीजौ नलिया देस ४७

राजा और प्रजा ने मिलकर छः महीने ग्यारस का वृत किया। स्वर्ग में इन्द्र का सिंहासन डोला। राजा इन्द्र ने नारद जी को धरमराज के पास भेजा। धरमरन्ज जी से इन्द्रासन डोलने का कारण पूछा। पोथी बांची, भगवान नारायण ने नारद को जांच पड़ताल के लिये तीनो लोक मे भेजा। 'पनौती' को बुलाया एवं राजा रुकमाचाद के वृत को भंग करने का आदेश दिया। पनौती रानी के सतीत्व से डर गई और उसने राजा के यहां जाना अस्वीकार कर दिया।

सुन लो रे सिरी भगवान
म्हारा जाणा से तो नी जावां
जबरी करो तो तम करत्तार
रूपा का पाय हरिचन्द हम जावाँ
कर दो सब रूपा रेल ५२

पनौती को धक्के मारकर निकाल दिया। नारदजी दालिद्दर (दारिद्रय) को बुलाकर लाये। दालिद्दर ने भी राजा के यहाँ जाने से इन्कार कर दिया तब भगवान ने इन्द्र को बुलाकर आज्ञा दी।

काली घटा लई तम चढ़ो
कायरो हियो देख मारे जाय
अगिन की बिरखा तम करो ५५
उना नगर के दीजो जलाय
भाटा की बरसा तम करो
माणी ने मणासा केवाय

पानी की बरसा तम करो
बरसो तो मूसलाधार ६०
उना नगर के खोदी ने बेवाड़ जो।

सती रानी के श्राप से इन्द्र भी डरा और उसने भी जाने से इन्कार कर दिया। नारदजी शंकरजी को बुलाने दौड़े वे तो छः महिने से सोये हुए थे (समाधि से तात्पर्य है) नारदजी ने आवाज लगाई—

नवकोड़ी बाग ने छप्पन कोड़ी देवता
अठ्ठारा कोड़ी वनस्पति जोवे थारी बाट······· ६३

भाँग और गाँजा पीकर महादेव भगवान से मिलने चले। भगवान ने सम्मान दिया। और सिंहासन पर बैठाया एवं राजा के व्रत को भंग करने के लिये विनति की। शिव ने इन्कार किया क्योंकि राजा उनका परम चेला (भक्त) था। नारायण क्रोधित हो शिव को कोसने लगे :—

तू कँई जाय रे बापड़ा जोगड़ा
थारी तो कला म्हारा हाथ
भांग पीये ने भक्या करे
नाचे भिलणी का साथ
तू कँई जाय रे जोगड़ा······ ६८ ख

शिवजी भी चले गये। भगवान ने क्रोधित हो अपने पसीने के मैल से मोहिनी का निर्माण किया।

मोहिनी के स्वरूप का वर्णन

अरे ताता तो त्यारा उकले
सैला समुअल होय ७०
नाना मोती बाल छाणी नाख्या
जांग देवल का खम्ब करिया
पीली बेलण की बेल
आंगली मूगफल्या बनी
अरे बइयाँ चम्पा री डाल ७५
नाक सुआरी चोंच
दांत दाड़म का बीज बन्या
सीस नारेल की रंग
आगम को झोला पाछम जाय ८०

पाछम आगम चाल्या जाय
चारि देसा को बायरो लाग्यो
टुकड़ा टुकड़ा हुई जाय
कसी रे वणी कलियन कामणी
उठे तो होली सी झाल

नारदजी मोहिनी को लेकर नलियावा नगर की सीमा पर गये। नौलखा बाग में मुकाम बनाया। वहाँ पर नारदजी ने सूअर का रूप धारण कर राजा के बाग को उजाड़ना शुरु किया। बाग के साढे सात सो बागवान राजा के पास बाग उजड़ने की सूचना देने गये। राजा दलबल सहित सूअर को शिकार के लिये चल पड़ा। मार्ग में मृग और मृगी मिले। राजा के द्वारा मारे जाने का भय उनमें समा गया। मृगी ने युक्ति सोची और बोली—

सुण लो पति म्हारी बात
बाण छूटता म्हारी आड़ लीजो
अरे तम तो जाजो बंद माय
नो नोगदा धरती हूं कूदी जऊं   ९०

मृग बोला —

हीरो मिरगड़ो बोले बेनड़ा
सुण तिरिया म्हारी बात
नारी के आड़े हूँ जो दबूँ
तो धिक्कार जमारो पुरस को   ९५

राजा से मृगी की विनति

सात सो पचास हम बेनली
जिको एकज है भरतार
इकां मारिया हम मरी जांवां
हमारी जिनगी ऐड्या जाय
पांच पचीस मिरगी मार दो
इनापति से मती घालो घाव।   ९९

राजा ने मृग-मृगी को छोड़ दिया। राजा सूअर की शिकार के लिये आगे बढ़ा। रानी गोखड़े से बोली :—

घर घोड़ा ने पिउ पातलां कांठत केरा पांव
नित का बाजे ढोल नगारा राखजो चुड़ला की लाज   १०१

रानी ने महल में सुमरनी लेकर हरि-स्मरण प्रारम्भ किया और प्रतिज्ञा की कि राजा के आने पर ही अन्न-जल ग्रहण करेगी। जैसे ही राजा बाग में पहुँचा सूअर अन्तर्धान हो गया और मोहिनी प्रकट हो गई। उसने राजा को मोहित कर लिया।

राजा की वचन-बद्दात

तू चले तो त्यारे लई चलू
लई चलू नलियाबा सेर गुजरा
सात राणी में तू पटराणी
संजा वाली पनियार
तू केगी राजा जल में उबो
नी तोडूँगा त्हारी कार १०७

मोहिनी और राजा के लिये विसकरमाजी (विश्वकर्मा) ने नया महल बनाया नारदजी बूढ़े ब्राह्मण बनकर लग्न करवाने के लिये आगये।

नलिबाला नगर में सती थी और प्रतिदिन सत को निबाहने के लिये अपने पति को पांच जूते लगाया करती थी। पति जब तीन दिन के लिये बाहर गया, तो १५ जूते लगाना शेष रहे। पति जब वापस आया तो वह सतवन्ती नियमानुसार पतिपूजा करने के लिये उद्यत हुई। जूता हाथ में लेते ही वह गिरगट हो गई और आकाशवाणी हुई कि उसकी मुक्ति रुकमाचन्द राजा के चरण-स्पर्श से होगी। रानी संजावली ने जब यह सुना कि राजा ने नया विवाह कर लिया है तो उसने दलबल सहित राजा को बचाने की तैयारी कर ली।

दल का वर्णन

तीन बजार में दल आयो गयां यो तो नागर बाट
एक बजार रानी ने छोड़ी क्यों अबगयो हो दूसरो बजार
दूसरी बजार रानी ने छोड़ी दियो अब गयो हो तीसरो बजार ११०
तीसरी बजार में एक डोकरी काते झीणों सूत

डोकरी के वचन

काँ तो यो चाल्या सिकार
काय रे मिस राजा राणी लायो
इना नगर को कर्‌यो खंखाल
अब इना राजा को आयो है काल ११५

वरत मांगेगा एकादसी को
नी तो या मांगेगा धरमागज को सीस······ ११७

संजावली नारी ने बुढ़िया को अलग बुलाया। बुढ़िया ने नई रानी के द्वारा संभावित विपत्ति की मीमांसा की। बुढ़िया को पाँच स्वर्ण मुद्राएं पुरस्कार में दी गई। संजावली ने बाग में पहुँचकर राजा का सम्मान न करते हुए राजा के घोड़े को तिलक लगाया। राजा को बात बुरी लगी और वह नीचे उतरा तो गिरगिट ने पांव पकड़ लिये और स्त्री के स्वरूप में प्रकट होकर वह बैकुण्ठ चली गई। मोहिनी और राजा विश्वकर्मा-रचित नये महल में गये। राजा सतखण्डे महल में गया था, जैसे ही राजा प्रत्येक खंड में जाता दरवाजे के ताले अपने आप खुल जाते। सातवें खण्ड में जाकर शय्या पर मोहिनी सो गई और राजा पैर दबाने लगा। संजावली ने अपने पति को नवेली मोहिनी के पैर दबाते देख लिया। उससे चुप न रहा गया वह बोली।

अरे पति सुनलो हमारी बात ११८
घणा तो हेत टूटवा को
अरे नो रंग बस्तर फाटी जाय
दिलड़ा की बात हमकूँ केता नई
अब इनका दाबो पाँव १२२

इस उक्ति पर मोहिनी और संजावली में कहा सुनी हो गई। संजावली ने पतिधर्म का उपदेश दिया परन्तु झगड़ा बढ़ गया और मोहिनी ने सती संजावली को केश पकड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया और उसकी छाती पर बैठ गई। सती के स्पर्श से ही मोहिनी का स्वरूप प्रकट हो गया। मुँह काला हो गया, हाथ बँध गये और डाकन जैसी दिखने लगी। राजा यह काण्ड देखकर 'नोसर धार' रोने लगा। मोहिनी ने राजा को वचन की याद दिलाई।

सुण लो हो राजा म्हारी बात
यो कई छोरा छोरी बातो ख्याल मांड्यो
ने तू रोवे नोसर धार १२५
वचन सम्हालो रे राजा उना बन्द को
फिरी तोड़ जो म्हारी कार
बरत लूंगा एकादसी को
नी तो लूंगा धरमागज को सीस। १२९

रानी यह सुनकर सन्नाटे में आ गई। यह बरत (व्रत) लेने को आई है। चुड़ैल कहीं की। फिर भी नम्रता से बोली—

अब तलक तो म्हारी सोकड़ मानती
अबे तू धरम की म्हारी बैन
धरमी बेन्या तम यो कँई करो
इना धरमा ने हेड़ी बांझ की गाळ , १३३

मोहिनी टस से मस नही हुई। रानी ने दृढ़तापूर्वक अपना निश्चय प्रकट किया। मै अपने पुत्र का मस्तक दे सकती हूं किन्तु व्रत नहीं दूंगी। राजा ने आशंका प्रकट की कि यदि लड़का नट गया तो ? रानी ने अपने पुत्र पर विश्वास प्रकट किया—

म्हरो धरमो रे पति नटो जावे
इनो धरती पे नी उगेगा हरी हरी घांस
धोहरी तो नई फलेगा
ने चांद सूरज उगता रई जाय……. १३६

रानी ने अपने बेटे धरमागज को बुलवाया। मार्ग में धरमा की बहिन तारामती रोकर कहने लगी।

सुण ले रे वीरा म्हारी बात
पिता ने कियो है जीव को काल
म्हारा तो घरे हाथी नौसर आवे
अजी गेरा मण्डप छवाय
देराणी जेठाणी का भाई बीरा आवे…. १४२
अरे बिना रे भई के होयगा तारा बेन
म्हारो तो बरजो बीरा मानी जाव

धरमा के बचन

रे बेन्या बई सुणो म्हारी बात
मात पिता यो दुःख पड्यो
अब म्हारो जीवणो धरकार १४७

पुत्र पिता के महल में गया। राजा रुकमाचन्द बेटे को गले लगाते ही फूट पड़ा। पुत्र पिता को समझाता है।

मुलक बेचा जिनने मालवा
बेची सोना की थाल
राणी बेची तारा लोचणी
कुंवर बेच्यो रोई दास
राख्यो हर बरत आपणो
अरे दऊंगा म्हारो यो सीस १५३

धरमा को मोहिनी के सामने लाड़ा बनाकर खड़ा कर दिया । वह भी असमंजस में पड़ गई कि सिर काटा जाय या नहीं । पर उसने अपना निश्चय प्रकट किया

सीस लूंगा नवलख बाग में — १५५
उबी दस जणा के बीच

धरमा की सगाई हो गई थी । उस राजकन्या का नाम रूपावती था । उसने एक सपना देखा और पति के लिये अमरता की कामना करते हुये एकादशी के व्रत की दृढ़ प्रतिज्ञा ली । नवलखा बाग में राजा रुकमाचन्द जैसे ही अपने पुत्र के सिर को काटने के लिए खड्ग उठाता है, अदृष्ट रही ग्यारस माता खाण्डे को पकड़ लेती है । मोहिनी को लात मार कर पाताल में भेज देती है । जिस समय ग्यारस माता ने मोहिनी के केश पकड़ कर उखाड़े, उसके मस्तक से खून के जो छींटे उड़े उससे खटमल उत्पन्न हो गये ।

रुकमाचन्द राजा और संजावली रानी अपने बेटे को राजपाट देकर जीते ही स्वर्ग चले गये ।

भरतवाक्य जैसी मंगलकामना

अरे ग्वाल सुण समलो रे — १५६
अरे राजा पायो यु बैकुण्ठा बास
धन-धन राजा रुकमाचन्द
धन धन संजावली नार
बरत करया माता ग्यारसी
सबका होय बैकुण्ठा बास — १६१

(६)

पुरुषों के गीत (क्रमशः)

संगीत—नाट्य

- मांच, मंच और रंग-मंच
- मांच की परम्परा
- मांच-पद्धति का अविर्भावक, उज्जैन
- माँच के निर्माता
- मांच की मंडली के गुरू
- माच में संगीत का समाहार, गीत-वाद्य-नृत्य-अभिनय
- माँच एक गीति-नाट्य
- मांच की कथा-वस्तु का मूल-आधार
- मांच की अन्य विशेषताएं
- माँच और जन-रुचि (मनोरंजन के उपादान)

माँच, मंच और रंगमंच

'मांच' शब्द संस्कृत के मंच शब्द का अपभ्रंश है। मंच शब्द के अनेक तद्भव रूप सुनने को मिलते हैं, जैसे—मचान् माँचा, मांचली, आदि। मंचान मकान बांधते समय बनाया जाता है, अथवा खेती में फसलों की रखवाली भी मचान बाँधकर कीं जाती है। माँचा बड़े पलंग एवं मांचली छोटी खटिया के लिये प्रयुक्त शब्द है। मंच से सम्बन्धित उपरोक्त तीनों मालवी शब्दों का प्रच्छन्न किन्तु मूल भाव यह है कि जमीन से ऊपर उठे हुए उस कृत्रिम स्थान को मांच कहेंगे जहां पर बैठने की सुविधा हो सके। लकड़ी के तख्तों आदि के सहारे बनाया गया मंच यदि सजाकर किसी विशेष प्रदर्शन आदि के उपयोग में लाया जावे तो उसे रंगमंच की संज्ञा दी गई है। रंगमंच पर नाटकों का प्रदर्शन किया जाता है। भरतमुनि ने रंगमंच की सजावट आदि के लिए विशेष निर्देश भी दिये हैं। इस प्रकार नाटक, कथा रूपक एवं उनको प्रदर्शित करने के स्थान के लिये संस्कृत में अलग से दो शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु मालवी लोक-नाटक एवं रंगमंच दोनों शब्दों के भावों को प्रकट करने के लिये 'माँच' शब्द मालवी में अपनी विशेष अर्थ सत्ता रखता है मांच बाँध कर उस अभिनीत किये जाने वाले खेलों (ख्याल) लोक नाटकों के अर्थ में माँच शब्द का प्रयोग किया जाता है। मंच शब्द से उत्पन्न होने वाला मांच रंग-मँच की विशेषता एवं प्रयोजन को सूचित करता है।

किया गया है।[1] नृत के द्वारा मनुष्य अपने हृदयगत भावों को प्रकट करता है। यह जन-सामान्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति का सूचक है।[2] विवाह आदि मांगलिक प्रसंगों पर, विनोद आदि हृदय-रंजन के प्रसंगों पर, नृत की प्रवृत्ति सहज ही जागृत हो जाती है। प्राचीन भारत में इस प्रकार नृत मनोरंजन का भी प्रमुख साधन था। नृत् एवं नट् क्रियाओं का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है।[3] नाट्य एवं नृत्य शब्द क्रमिक विकास की वस्तुएँ हैं। नाट्य में रस की अभिव्यक्ति प्रमुख है।[4] नृत्य, अभिनय प्रधान है एवं उसकी अभिव्यक्ति ताल और रस पर आश्रित है।[5] नृत् नाट्य एवं नृत्य ये तीन प्रकार के मनोरंजन के स्वरुप अपनी विशिष्टता लिये हुए हैं।

माँच के प्रदर्शनों में शास्त्रीय नृत्यों का प्रयोग नही होता बल्कि नृत की स्थिति का ही प्रदर्शन होता है। जिसमे आगिक-चेष्टाओं के द्वारा भावों को प्रकट किया जाता है। यह नृत्य की प्रारम्भिक स्थिति है। ठीक यही स्थिति अभिनय गीतों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। माँच के खेल के प्रारम्भ होने के पूर्व निम्नलिखित आयोजन भी विचारणीय है।

१. भंगी आता है। (सफाई करने का अभिनय एवं गीत)
२. भिश्ती आता है। (छिड़काव करने का अभिनय एवं गीत)
३. फर्रासन आती है। (जाजम बिछाने का अभिनय एवं गीत)
४. मालन आती है। (फूल बिखेरने का उल्लेख गीत में)
५. हरकारा आता है। (प्रधान नायक के आने की सूचना)
६. गीत में गुरु की वन्दना की जाती है।
७. मंच पर अलग गणेश, सरस्वती आदि की पूजा की जाती है। दुर्गा, भैरु आदि देवताओं का समवेत स्वर में स्तुति गायन होता है।
८. प्रधान नायक मंच पर आकर आत्म-परिचय देता है।

मांच में नायक के मंच पर आगमन के पश्चात् खेल का प्रारम्भ समझा जाता है। माँच के प्रत्येक खेल में उपरोक्त कार्य विधिवत सम्पन्न किये जाते हैं। माँच की इस परम्परा का शास्त्रीय नाटकों में पूर्ण विकसित रूप देखा जा सकता है। नान्दी, पूर्व-रंग और

---

१. गात्रविक्षेपमात्रं तु सर्वाभिनयवर्जितम्।
आंगिकोक्त प्रकारेण नृत्तं नृत्य विदो विदुः॥ संगीत-रत्नाकर, अ० ७, श्लोक २६
२. प्रायेण सर्वलोकस्य नृतमिष्ट स्वभावतः
—भरत, नाट्य-शास्त्र; अ० ४, श्लोक २४४। (निर्णय सागर प्रेस)
३. RV. X-18-3; X-29-2.
४. नाट्य शब्दो मुख्यो रसाभिव्यक्तिकारण —संगीत-रत्नाकर, ७।२८
५. भावाश्रयं तु नृत्तं नृत्य ताललयाश्रयम् —प्रतापरुद्रीय, पृष्ठ १००-१०१।

प्रस्तावना की जिस पद्धति का निर्देश भरत मुनि के द्वारा किया गया है सम्भवतः उसका आधार इसी प्रकार के लोक-नाट्य रहे होंगे। नाटक का अभिनय प्रारम्भ होने के पूर्व उसके निर्विघ्न एवं सफलतापूर्वक सम्पादित हो जाने के लिये जिन कृत्यों के किये जाने का शास्त्रीय विधान है, उनको भरत ने पूर्व-रंग संज्ञा दी है।[1] नगाड़ा बजाकर अभिनय के प्रारम्भ की सूचना देना, गायक, वादक का आगमन, गायन तथा वादन के लिये क्रमशः प्रत्याहार, अवतारणा एवं आरम्भ, आश्रवण शब्दों का प्रयोग किया है। इसके पश्चात् इन्द्र-ध्वज लेकर सूत्रधार मंच पर आता है और पुष्प बिखेरता है। मार्जन एवं स्तुति पाठ होता है। यहाँ तक नान्दी समाप्त हो जाती है।

संस्कृत के नाटकों के अतिरिक्त प्राचीन युग की लोक-नाटक सम्बन्धी रचनाएँ यद्यपि प्राप्त नहीं होती किन्तु उस युग की पद्धति का अनुमान लगाना कठिन नही है। विकसित समृद्ध एवं सुसंस्कृत साहित्य के सम्बन्ध में यह एक शाश्वत सत्य है कि उसका निर्माण जन-सामान्य की Crude रचनाओं पर होता है। जिस प्रकार जन-भाषा संस्कृत भाषा एवं व्याकरण-शास्त्र की जननी है। लोक गीतों का विकसित रूप काव्य है, उसी प्रकार भारतीय नाट्य-साहित्य का विकास भी लोक-नाटकों पर होना सम्भव है। पुरानी रचनाएँ नष्ट हो जाती हैं और उनका स्थान नवीन कृतियाँ ले लेती हैं। किन्तु परम्परा में आबद्ध होने के कारण अभिनय एवं अन्य प्रवृत्तियों में कोई परिवर्तन नहीं हो जाता। पूर्व-रंग एवं नान्दी की परम्परा के बीज माँच की पद्धति में विद्यमान है। भिश्ती का आना एवं जल-सींचन करना (गीत के रूप में) तथा फर्रासन का उल्लेख मुसलमानी युग की दरबारी पद्धति का प्रभाव कहा जा सकता है।

लोक-नाट्यों की परम्परा एवं उनका नियमित काल-क्रम के अनुसार इतिहास देना बड़ा कठिन है, फिर भी रामलीला, रास-लीला, नौटंकी, यात्रा भवाई, कीरतनिया एवं ख्याल आदि भारत की विभिन्न नाट्य-शैलियों एवं लोक-मंच की उन प्रवृतियों के द्योतक हैं जहाँ शास्त्रीय विधानों का बन्धन स्वीकार नहीं किया जाता। उपरोक्त लोक-नाटकों की तरह मांच भी अपना स्थान रखता है। इसकी परम्परा का सम्बन्ध एवं प्रेरणा का स्रोत राजस्थान में प्रचलित लोक-नाट्य, ख्याल से माना जावेगा। श्री अगरचन्द नाहटा ने राजस्थानी ख्यालों की एक विस्तृत सूची प्रस्तुत की है।

१. अभय जैन ग्रन्यालय, बीकानेर में संग्रहीत	५८	ख्याल
२. खत्री भीलमचन्द जोधपुर द्वारा प्रकाशित	५३	,,
३. श्रीधर शिवलाल किशनगढ़ द्वारा प्रकाशित	२४	,,
४. व्यंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित	४४	,,
५. गोपालदेव जयदेव सुन्दरलाल गोपालवाड़ी द्वारा प्रकाशित	२५	,,
६. पूनमचन्द सिखवाल द्वारा लिखित	२५	,,

---

१. भरत, नाट्यशास्त्र, अध्याय ५, श्लोक ७–११।

७. बालकृष्ण लक्ष्मण पाठक द्वारा प्रकाशित २५ ,,
८. ईश्वरलाल बुकसेलर, जयपुर द्वारा प्रकाशित २५ ,,
९. हरिप्रसाद भागीरथ जी बम्बई द्वारा प्रकाशित ११ ,,
१०. रामलाल नेपाणी कलकत्ता द्वारा प्रकाशित २१ ,,

इनमें गोपीचन्द, भरथरी, ध्रुव, नलराज, नागजी, निहाल दे, दो गोरी का बालमा, पूरणमल, हीर-रांझा, राजा मोर-ध्वज, राजा रिसालू, बूढ़ा बनड़ा, देवर-भोजाई आदि धार्मिक, शृंगार-पूर्ण एवं सामाजिक ख्यालो के नाम विशेष उल्लेखनीय है। राजस्थानी में लगभग ३२५ ख्यालों की छोटी-बड़ी पुस्तकें प्राप्त होती हैं।[1] ख्याल राजस्थान की अपनी वस्तु है, जहाँ सरल एवं आडम्बर-विहीन खुले मंच पर जन-मानस की रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार मनोरंजन के अनेक उपादान, कथा-वस्तु मे गूँथकर नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं। कथावस्तु, मंच-निर्माण, अभिनय, परम्परा एवं शैली आदि की दृष्टि से राजस्थान के ख्याल और मालवी के माँच दोनों में कोई अन्तर नही होता। वैसे सांस्कृतिक दृष्टि मे राजस्थान, मालवा और गुजरात इतने अभिन्न है कि किसी एक प्रदेश विशेष की कला-गत चेतना का अध्ययन करने के लिये एक-दूसरे को विच्छिन्न नहीं किया जा सकता।

राजस्थानी ख्यालों में निम्नलिखित रचनाएँ अधिक प्रचलित हैं।[2]

१. लैला मजनू
२. हीर रांझा
३. ढोला मारुणी
४. विक्रम शशिकला
५. नल दमयन्ती
६. सहजादा भटियारी
७. राजा हरिश्चन्द्र
८. राजा गोपीचन्द
९. राजा रिसालू
१०. राजा भोज
११. अम्मर सिह

उपरोक्त शीर्षक की कथाओं के नाम से मिलते-जुलते मालवा के मांच भी बनाये गये हैं। अतः कथा-साम्य कुछ महत्व रखता है। इसी प्रकार ख्याल के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक की जो पद्धति है वह भी माँच और ख्यालो में समान रुप से पाई जाती है। दोनों ही गीति-नाट्य की प्रवृत्तियों को लेकर चलते है।

उज्जैन (माँच पद्धति का आविर्भावक)

उज्जैन एक धार्मिक तीर्थ होने के कारण भक्ति-भावना का प्रेरक स्रोत रहा है।

---

१. ख्यालों की परम्परा शीर्षक लेख लोक-कला वर्ष १ अंक २।
२. लोक-कला (राजस्थान अंक) प्रथम भाग; श्री मनोहर शर्मा का लेख ; 'राजस्थान के लोक नाटक ख्याल' पृष्ठ ४४।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में १७वी एवं उन्नीसवीं शताब्दी का रीतिकालीन युग शृंगारी रचनाओं की चरमता के लिये प्रसिद्ध है। भक्ति ने शृंगार का भौतिक आवरण धारण कर लिया था और राधा-कृष्ण के नाम पर राज-दरबारों में विलासिता की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन मिल रहा था। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में मालव की धार्मिक नगरी उज्जैन भौतिक एवं अध्यात्म के दोनो कूलों से टकराती क्षिप्रा को लेकर भी मन्थर गति के शैलिल्य से आक्रान्त होकर सामाजिक चेतना एवं क्रान्ति की भावना से कोसों दूर थी। मोतीवाले का राज था। लोग खाते-पीते और मौज करते थे। ऐसे शिथिल, अवकाशमय एव निष्क्रियता से भरे युग में मालवा के लोक-मंच पर जनता के मनोरंजन के लिये उज्जैन नगरी के एक ब्राह्मण ने मालवी भाषा में एक नवीन लोक-नाट्य-शैली का आविर्भाव किया जो माँच के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह ब्राह्मण उज्जैन के जयसिंह पुरा में बालमुकुन्द गुरु के नाम से प्रतिष्ठित था। धर्म-क्षेत्र उज्जैन में प्रचलित पुराण-सम्बन्धी कथाओ को लेकर, अन्य प्रदेश की परम्परागत प्रेम-गाथाओं का आश्रय ग्रहण कर गुरु ने भक्ति एवं शृंगार की लोकग्राही भावनाओ को लेकर माँच का श्रीगणेश किया। जयसिंह-पुरा माँच के कारण एक प्रसिद्ध स्थान बन गया और यही से सम्पूर्ण मालव में माँच के खेलों का प्रसार हुआ। जयसिंह-पुरा के अतिरिक्त उज्जैन के अन्य मोहल्ले भी प्रसिद्ध हैं जहाँ कुछ नये माँचकार उत्पन्न हुए और उन्होने अपनी परम्परा का अलग से अस्तित्व रखा। उज्जैन में निम्नलिखित चार परम्पराओं का जन्म हुआ।

१. जेसिंहपुरा	बालमुकुन्द गुरु
२. नयापुरा अब्दालपुरा	भैरूलाल गुरू
३. दोलतगंज, मालीपुरा	कालूराम उस्ताद
४. बिल्लोटीपुरा	राधाकिशन जी

मांच के निर्माता

श्री त्रिभुननाथ दवे ने जनश्रुति के आधार पर माँच के आदि-प्रवर्तक भैरूलाल गुरु को माना है।[1] किन्तु उनका यह अनुमान सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है क्योंकि भागसीपुरे[2] में होने वाले माँचों से भैरुलाल गुरू का जो सम्बन्ध जोड़ा है वह निराधार है। भैरुलाल गुरू की परम्परा नयापुरा[3] में आज भी विद्यमान है उनका सम्बन्ध भागसीपुरे की लुप्त -परम्परा से नही हो सकता। भैरुलाल की तीसरी पीढ़ी शिष्य-परम्परा के रूप में अभी विद्यमान है। पीर जी सुनार उसका प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः भैरुलाल जी

१. मालव के लोक-नाट्य स्वर्गीय 'श्री त्रिभुवननाथ का लेख' विक्रम, मासिक जुलाय-अगस्त १६५२ का अंक, पृष्ठ ५४।
२. उज्जैन के एक मोहल्ले का नाम
३. " " " "

को माँच-पद्धति का आदि-प्रवर्तक नहीं माना जा सकता। श्री श्याम परमार ने जयसिंहपुरा[1] के बालमुकुन्द गुरु का मांच का आदि प्रवर्तक माना है[2] एवं उक्त गुरु की वंशावली की तालिका में चार पीढ़ियों का वर्णन किया है।[3] जिस जनश्रुति को लेकर श्री दवे जी ने भागसीपुरे में मांच के खेल होने का उल्लेख किया है वह भी भ्रमपूर्ण है, क्योंकि भागसीपुरे में लोक-मंच पर लोक रंजन के लिये जो ख्याल (खेल) हुआ करते थे उनको माँच की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इन खेलों को 'ढांड़ा ढाड़ो' (का खेल) कहते हैं। इसमें कृष्ण-जन्म की कथा से सम्बन्धित घटनाओं का अभिनयात्मक प्रदर्शन होता है। उस युग में उज्जैन के प्रमुख मन्दिरों में प्रायः इन खेलों का प्रदर्शन किया जाता था 'ढाड़ा ढाड़ो' के खेलों का आकर्षण इतना अधिक था कि उज्जैन के निकटवर्ती ग्रामों से भी जनता उमड़ती चली आती थी। इस प्रकार के खेलों के प्रमुख केन्द्र थे— भागसीपुरा, सिंहपुरी एवं अब्दालपुरा। भागसीपुरे में होने वाले इन प्रदर्शनों से बालमुकुन्द जी को माँच लिखने की प्रेरणा अवश्य प्राप्त हुई। इसके सम्बन्ध में भी एक रोचक दन्तकथा प्रचलित है कि भागसीपुरे में प्रदर्शित होने वाले एक खेल में बालमुकुन्द गुरु भी दर्शक के रूप में गये हुए थे। दर्शकों की भीड़ अधिक होने से वे मंच के एक कोने पर बैठ गये उनका वहां से किसी ने अपमान-सूचक शब्द कहकर उठा दिया। अपमान की असह्य ज्वाला एकदम अदम्य प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुई और उन्होंने स्वयं के खेल निर्मित कर प्रदर्शित करने की दृढ़ शपथ ली। उनके द्वारा लिखे गये ख्याल 'मांच' के नाम से प्रसिद्ध हुए, आज से सवा सौ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होकर मांच मालवा के ग्राम एवं नगरों की जनता के मनोरंजन का प्रमुख साधन बना हुआ है।

बालमुकुन्द गुरु के प्रपौत्र बाबूलाल का कहना है कि गुरु ने बत्तीस खेल लिखने का प्रण किया था परन्तु उन्नतीस खेल लिखने के पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया। संवत १९३२ में उनकी मृत्यु हुई। गुरु द्वारा लिखित प्रकाशित अप्रकाशित मांच की सौलह पुस्तकें ही उपलब्ध हैं।

१ सेठ सेठानी
२ देवर भौजाई
३ ढोला मारुणी
४ सुदबुद सालंगा
५ कुंवर खेमसिंह
६ हीर रांझा
७ चारण बंजारा
८ शिव लीला
९ नागजी-दूदजी
१० राजा हरिश्चन्द्र
११ राजा भरथरी
१२ रामलीला
१३ कृष्ण-लीला
१४ खेल रावत
१५ नवल गेंदापरी
१६ बेताल-पच्चीसी

---

१. उज्जैन से संलग्न एक ग्राम का नाम।
२. मालवी और उसका साहित्य (भारतीय साहित्य परिचय सीरीज) पृष्ठ ३९।
३. वही, पष्ठ १११।

इन खेलों में देवर-भौजाई, सुदबुद-सालंगा, एवं राजा भरथरी इतने लोकप्रिय हुए कि उक्त पुस्तको के दस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।[1]

बालमुकुन्द गुरु द्वारा माँच के प्रवर्तन के पश्चात् उज्जैन ने दो और प्रसिद्ध माँच-निर्माताओं को जन्म दिया। जैसिंगपुरा के मांचों की लोक-प्रियता के कारण उज्जैन के अन्य मोहल्लों में भी प्रतिस्पर्धा की भावना जाग्रत हुई और कुछ लोगों में माँच की नवीन रचनाओं के निर्माण की प्रेरणा जाग्रत हुई। नयापुरा और दौलतगंज[2] में मांच के क्षेत्र में गुरु भैरुलालजी एवं कालूराम उस्ताद की रचनाओ का प्रचार भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। भैरुलालजी द्वारा रचित १२ मांच के खेलों की हस्तलिखित प्रतियां मुझे देखने को मिल सकी। उनकी सूची इस प्रकार है।

१. गोपीचन्द
२. राजा विक्रमाजित
३. पूरणमल
४. हीर–राँझा
५. कुंवर केसरी
६. लाल सेठ
७. छैल-बेटा मोयना
८ चन्नन कुंवर
९. खेमसिंह-आंवल-दे
१०. मदनसेन
११. सीता-स्वयंवर
१२. सिंगासन-बत्तीसी

उपरोक्त सभी पुस्तकें अप्रकाशित है किन्तु भैरूलाल जी के मांच की परम्परा आज भी विद्यमान है। प्रतिवर्ष नयापुरा में कम से कम पांच खेलों का प्रदर्शन किया जाता है।

प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से बालमुकुन्द की दूसरी पीढ़ी (ओकार गुरू) एवं कालूराम उस्ताद में अनेक दिनो तक द्वन्द्व चलता रहा। सम्वत् १९५० के पश्चात् कालूराम उस्ताद की रचनाओ को लोक प्रियता प्राप्त हुई। उनके द्वारा लिखे हुए मांचों की संख्या २५ से कम नहीं हैं, किन्तु इनमें से सात रचनाएं अधूरी[3] हैं अन्य १८ मांचों के नाम हैं[4]—

१ मधु-मालती
२ चित्र मुकुट
३ जान आलम
४ नागमती
५ राजा छोगरतन
६ सूरजकरण-चन्द्रकला
७ छबीली-भटियारी
८ प्रहलाद लीला

---

१. श्री श्याम परमार ने बालमुकुन्द गुरु के मांच की प्रकाशित पुस्तकों की सूची संवत् एवं आवृत्ति-क्रम पर विस्तृत प्रकाश डाला है। देखें — मालवी और उसका साहित्य; पृष्ठ ४१।

२. उज्जैन के एक मोहल्ले का नाम।

. कालूराम उस्ताद के द्वितीय पुत्र श्री सालिगराम जी ने व्यक्तिगत चर्चा में अधूरी रचनाओं की संख्या का उल्लेख भर किया। वे नाम नहीं बता सके।

४. क्रमांक १ से लेकर ७ तक की रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

९ हरिश्चन्द्र
१० रामलीला
११ चन्द्र-कला
१२ हीर-रांभा
१३ निहालदे-पुल्तान
१४ ढोल सुल्तानी
१५ इन्दर सभा
१६ राजा रिसालू
१७ हीरा—मोती
१८ त्रिया चरित

माँच की परम्परा के निर्माण में बालमुकुन्द एवं भैरुलाल गुरु और कालूराम उस्ताद की त्रिधारा का ही अधिक महत्व है। चौथी परम्परा राधाकिसन जी की है। यह परम्परा क्षीण रूप में बिल्लौटीपुरे में अब भी विद्यमान है। राधाकिसन जी ने बालमुकुन्द गुरु के मांचों के आधार पर कुछ नये खेल बनाये। कथा और शैली की द्रष्टि से इन खेलों में कुछ नाविन्य नही। बिल्लौटी-पुरा के केवल दो खेल ही अधिक प्रसिद्ध हो सके हैं, हीर-रांभा एवं विक्रमाजित। राधाकिसन गुरु की परम्परा के विशेष आकर्षण है। उन्होंने केवल पाँच खेल ही बनाये। इस प्रकार मालवी माँच की रचनाओं का लोक-साहित्य एवं प्रादेशिक भाषा की द्रष्टि से महत्वपुर्ण स्थान है, और आज भी माँच निर्माण को परम्परा का स्रोत अवरुद्ध नहीं हुआ है। उज्जैन के सेवाराम परमार ने सन् १९३६ में ध्रुव लीला, प्रह्लाद लीला, और निहालदे तीन माँच को पुस्तकें लिखी; जो अप्रकाशित हैं। सन् १९४९:५३ के मध्य में सिद्धेश्वर सेन ने छः पुस्तकें लिखी ····हरिश्चन्द्र, नलदमयन्ती, नरसी मेहता, प्रह्लाद, राजा रिसालू और दयाराम गूजर। आधुनिक मांचकारों ने युग-धर्म का विशेष पालन किया है और उपरोक्त मांचों में शृङ्गार की उद्दाम प्रवृत्ति का एकदम तिरस्कार हुआ है। अन्य माँचकारों ने शृङ्गार और प्रेमभावना की अभिव्यक्ति के लिए अश्लीलता का खुलकर प्रदर्शन किया था, सिद्धेश्वर सेन इस दिशा में अधिक सजग दिखाई पड़ते हैं। इनके माँचों को स्त्रियां भी देख सकती है।

मांच की मण्डली के गुरु

मांच के प्रमुख चार प्रवर्तकों का निर्माताओं के रूप में उल्लेख किया जा चुका हैं। ये ही व्यक्ति वर्तमान पीढ़ी के द्वारा गुरु के रूप में प्रतिष्ठित होकर श्रद्धा और आदर के पात्र बने हुए हैं। मांच के खेलों का प्रदर्शन करने वाली मंडली अपने गुरु के नाम को श्रद्धा के साथ गीत एवं सम्वादों मे बारम्बार स्मरण करती रहती है और कभी-कभी अपने गुरु के महत्व एवं गौरव [1] को प्रतिष्ठित करने के लिए अन्य परम्पराओं के गुरु जी की खिल्ली भी उड़ाई जाती है। प्रतिस्पर्धा की इस भावना ने बालमुकुन्द गुरु की दूसरी पीढ़ी एवं कालूराम उस्ताद एवं उनके अनुयायियो में अखाड़ेबाजी के

१. 'गूरू हमारे बालमुकुन्द जी जिनके घर धूमत हैं हस्ती' गुरू के द्वार पर हाथियों के घूमने की कल्पना उनके वैभव को प्रदर्शित करने के लिये की गई है। (मांच, राजा भरथरी पूर्व रंग) भिश्ती का कथन; पृ० ३।

रूप में उग्र रूप भी ले लिया था। अधिकांश आक्षेप एवं चुहलबाजी जेसिंगपुरा वालों की ओर से हुई। बालमुकुन्द गुरु के शिष्यों ने कालूराम उस्ताद पर जमकर कीचड़ उछाला। इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण भी था। गुरु बालमुकुन्द जी माँच के आदि-प्रवर्तक के रूप में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे और उनकी होड़ में यदि कोई अन्य व्यक्ति माँच की नई परम्परा स्थापित करता है तो उसके प्रति ईर्ष्या एवं कटुता की भावना का प्रकट होना स्वाभाविक था। निम्नलिखित उक्ति में गुरु के विरुद्ध होड़ करने वालों को कलंकित कर उसके नरकगामी होने की अभिशाप मयी भावना प्रकट की गई है।

"कालूराम का काला मूंड़ा, गन्दे नाले न्हावे
बालमुकुन्द की होड़ करे तो नरक कुण्ड में जावे...
ढोलक सच्ची बाजे...

कालूराम उस्ताद की मण्डली के प्रति रोष की भावना प्रकट होने का कारण और भी था। मांच के खेलों में मनोरंजन के लिये अश्लीलता का निम्नतम पुट भी दे दिया जाता था। कथा-प्रसंग से अलग कुछ गजलें एवं लावनियां इस प्रकार गाई जाती थी कि जिनमे यौन-भावनाओ का खुला एवं निर्लज्ज पुट रहता। इस कारण गुरु बालमुकुन्द जी ने मंच के लिए स्त्री पात्रों का प्रवेश वर्जित कर दिया था। पुरुष ही स्त्री पात्रों का अभिनय कर लिया करते थे। कालूराम उस्ताद ने एक स्त्री को मंच पर उतार कर अपने खेलो में एक नवीन आकर्षण उत्पन्न कर दिया और इस स्त्री का नाम कोई नहीं जानता। वह बाबाजन के नाम से ही प्रसिद्ध थी। वह नाथ-सम्प्रदाय की एक जोगन थी जो प्रायः पुरुष वेष में रहा करती थी। हृष्ट-पुष्ट शरीर के साथ ही कण्ठ माधुर्य के कारण मांच के खेलों में उसके द्वारा गाये जाने वाले गीतों का बड़ा आकर्षण रहता था। इस मधुर-गायिका के कारण कालूरामजी के माँचो का खूब प्रचार हुआ।

प्रतिस्पर्धा के मौखिक प्रदर्शन के अतिरिक्त कुछ प्रचलित दंतकथाओ में जादू एवं मंत्र के प्रयोग की मनोरंजक घटनाएं भी सुनने को मिलती है। इसमें मंत्र के द्वारा किसी मधुर गायक के कण्ठ मे अवरोध उत्पन्न करना, नृत्य करने वाले के पैरों को गतिहीन एवं स्थिर कर देना माँच के प्रमुख वाद्य ढोलक का फूट जाना और ढोलकियो के हाथों का बँध जाना आदि कृत्य मांच के खेल मे विघ्न उपस्थित करने लिये किये जाते थे। इन दन्त-कथाओं के प्रचलित होने मे केवल एक भावना सर्वोपरि लक्षित होती है। मांच के आदि-गुरु की अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन! कहते है कि बालमुकुन्द गुरु स्वयं ही मंत्र द्वारा, किये गये अवरोधो के प्रति सजग रहते थे और तत्काल ही किसी द्वारा किए गये मन्त्र प्रयोग को निष्फल कर देते थे। मुकुन्दा धोबी गुरु का अतिप्रिय साथी था। जिस समय 'मांड़' एक राग की लम्बी खेच में अपने गीत को उठान पर ला रहा था कि उसकी हिचकी बँध गई और गर्दन लटक गई। बालमुकुन्द गुरु ने तत्काल ही मंत्र पढ़कर नीबू को तलवार से काटकर चारों दिशाओं में फेंक दिया। मुकुन्दराम के कण्ठ से रुका हुआ गीत फिर फूट निकला।

बालमुकुन्द गुरु के सम्बन्ध में लोगों में अनेक अन्ध-धारणायें विद्यमान हैं। गुरु के ऊपर बटुक भैरव को बड़ी कृपा थी और भैरव नाथ की कृपा से ही वे अनेक मांच लिखने में सफल भी हुए। माँच की पुस्तकों से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि गुरु को भैरव का इष्ट था और वे माँच के प्रारम्भ होने के पहिले मंगल-विधायक विघ्नहर्ता गणेश की वन्दना के साथ भैरव का ध्यान कर स्तुति करते थे।[1] वास्तव में गुरु बालमुकुन्द का जीवन भैरव की साधना में इतना तल्लीन था कि उनका दाह संस्कार भी बटुक भैरव की शरण में स्थित स्मशान चक्रतीर्थ[2] में हुआ था। श्रद्धालु शिष्यों ने गुरु के मांच-मय जीवन को ध्यान में रखते हुए उनका शव-दहन भी मांच के सुरम्य गीतों से ही किया था। मांच के गीत मानो वैदिक मन्त्र बन गये। इससे बढ़कर माँच के आदि-प्रवर्तक को और क्या सम्मान दिया जा सकता था। गुरु के शिष्य आज भी उनको बटुक भैरव का अवतार मानते हैं।

'गुरूजी हमारे बालमुकुन्द जी, जिनको बालक भेष'

और उनके गुणों को गाते लोग थकते ही नहीं। गणपति, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के साथ गुरु का नाम स्मरण किया जाता है।[3] मांच की विभिन्न मंडलियाँ अपने प्रवर्तक गुरुओं का नाम इसी तरह श्रद्धा के साथ लिया करती है।

मांच मे संगीत का समाहार

भारतीय मान्यता के अनुसार संगीत के अन्तर्गत गीत Vocal music, वाद्य instrumental music एवं नृत्य तीनों का समावेश होता है।[4] मांच में गीत वाद्य एवं नृत्य की त्रिधारा का समन्वय अवश्य है किन्तु कण्ठ द्वारा राग-रागिनी अथवा अन्य निर्धारित पद्धति में गेय मौखिक संगीत ही मांच की प्रधान वस्तु है और उसको अधिक प्रभावशाली बनाने में वाद्य संगीत का पूरा योग रहता है।

गीत

माँच के खेलों में गाने की एक अलग ही पद्धति है जो शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोक-धुनो के माधुर्य को भी नही छोड़ती। माँच की प्रकाशित एवं अप्रकाशित पुस्तकों में गाने के सम्बन्ध में कुछ निर्देश किये गये हैं जो लोक धुनों से सम्बन्धित है :—

---

१. रंगीला भैरव का है ध्यान
शारदा है हिरदा में ज्ञान
काला गोरा मालिक मेरा
खेल रहा चौगान —माँच भरथरी प्रस्तावना (पूर्वरंग) पृष्ठ १–२।

२. उज्जैन में शिप्रा-तट पर स्थित श्मशान का नाम।

३. मांच, भरथरी, प्रस्तावना पृष्ठ ६।

४. गीतं वाद्यं नृत्यं त्रयंच संगीतमुच्यते।

१. रंगत खड़ी
२. रंगत इकेरी
३. रंगत दोहरी
४. रंगत हलूर
५. रंगत सिन्दु दूनी
६. रंगत सिन्दु डेढ़ी
७. रंगत झोका, आदि

इन शब्दों का प्रयोग लोक-धुनों की विशेष टेकनीक को व्यक्त करने के लिये किया गया है।[1] बाल-मुकुन्द गुरु के माँचों में रंगत सिंदू, मझोला रंगत, छोटी रंगत, बड़ी रंगत, जनानी रंगत, छोटी हलूर आदि धुनों का संकेत मिलता है।[2] मांच के खेलों के कथानकों से सम्बन्धित विवाह आदि मांगलिक प्रसंगों पर अभिनेता स्त्रियों के गीत गाने में भी नहीं चूकते। 'पारयो' एवं गाल.गीत आदि स्त्रियों के लोक गीतों की धुनो को भी मांच पर गाया जाता है।[3] इन लोक-धुनो पर गाने वालो की संख्या अब घटती जा रही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मांच में गाये जाने वाले गीतों की विशेष प्रकार की तानें होती हैं। मांच के प्रत्येक अभिनेता अथवा गायक में आवाज की बुलन्दी और ऊँची तानें भरने की क्षमता होना चाहिये। भावो को अभिव्यक्त करने के लिये गायक का यह एक आवश्यक गुण माना गया है।

जब नायक किसी गीत की टेक को दुहराता है उस समय ढोलक फड़क उठती है और मंच पर बैठे हुए अन्य गायक सामूहिक रूप से टेक की पंक्ति को दुगनी लहरदार लय के साथ घुमाते है। मांच की संगीत-पद्धति से सम्बन्धित शब्द इस प्रकार है :—

१. कथानक में आये संवादों को 'बोल' कहते हैं।
२ गीत के प्रारम्भिक आलाप को 'गैरो' कहते हैं।
३. अन्तरे की पंक्तियों को 'उड़ापा' कहते हैं।
४. तानों को 'चलत' कहते हैं।

लोक-धुनों के अतिरिक्त वातावरण-निर्माण की दृष्टि से शास्त्रीय रागरानियों में भी गाया जाता है। मांच के कुशल गायकों को हृदय-द्रावक एवं करुण रस के संगीत से दर्शकों को तल्लीन करने के लिये भैरवी आदि राग-रागनियों का यथासमय प्रयोग किया जाता है, मध्य रात्रि की नीरवता में 'माँड़' की अच्छी समा बँध जाती है और प्रभात होते होते प्रभाती के रूप में भैरवी के साथ प्रायः सभी खेलों की समाप्ति होती है। मांच के खेल पूरी रात ले लेते हैं। लगभग रात्रि के ग्यारह बजे से प्रारभ होकर प्रातः समाप्त होते है। छः सात घंटों तक

१. भैरुलाल जी द्वारा हस्तलिखित पुस्तक 'विक्रमादित्य' के आधार पर।
२. देखें, मांच भरथरी, पृष्ठ १, ३, १७, २४।
३. ,, वही, ,, २६, २८।

दर्शकों को निद्रा के चंगुल से बचाकर मनोरंजन के साथ रसमय करना मांच के कलाकारों की अनुपम क्षमता का परिचायक है। इसमें कोई संदेह नही है कि गायन-कला कि खूबियां भिन्न-भिन्न लोक-धुनें और राग, आलाप, तान और मूर्च्छनाएं इत्यादि सब बातों का ज्ञान मंच के अधिकांश गायकों को रहता है तभी खेल समाप्त होने तक दर्शक मंत्र-मुग्ध सा होकर अपने स्थान से उठकर नहीं जा पाता।

वाद्य

मौखिक गीतों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये माँच के खेलों में वाद्यों का बड़ा महत्व है। सारंगी एवं हारमोनियम[1] से स्वर-वाद्यों का काम चला लिया जाता है। ताल-वाद्य के लिये ढोलक का प्रयोग किया जाता है। ढोलक माँच के लिये एक आवश्यक वाद्य है और कुशल ढोलक वादक के अभाव में माँच का कोई भी खेल जम नहीं सकता। ढोलक के कच्चे खिलाड़ी मंच पर टिक नहीं पाते। ढोलक बजाने की कला-प्रवीणता के साथ ही हथेलियों का सशक्त होना भी आवश्यक है। फिर भी माँच के पांच सात खेलो में लगातार भाग लेने वाले ढोलकियों को अपनी सुदृढ़ कलाई एवं हथेलियों की मालिश करवाना पड़ती है। ढोल के बिना मालवा में हिन्दुओ का विवाह नहीं हो सकता। उसी तरह ढोलक के बिना माँच का खेल भी सम्भव नहीं है। ढ़ोलक की चाल ही माँच के संगीत की पृष्ठभूमि को सशक्त बनाती है जिस समय गायक किसी गीत की टेक अथवा बोल कहता है और गान में तीव्रता लाने की दृष्टि से ढोलकिया ढोलक पर जैसे ही थाप मारता है, भावों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिये गाने वाला बोल उठता है।

ढोलक ताल फड़क्के, ढोलक सच्ची बाजे......

उक्त पदावली के द्रुततर उच्चारण के साथ ही ढोलकिया बड़े जोर के साथ तिये में थापें मारता है। ढोलक की ताल अथवा चाल की फड़क के साथ ही समा बांधने की दृष्टि से बीच-बीच में मंच पर बैठे हुए अन्य गायक जब उक्त स्वर में उच्चतम अलाप भरते हुये, आहिस्ते से बहादरों की जय हुँकार करते हैं तब मौखिक एवं वाद्यगत संगीत एकाकार होकर रात्रि की एकान्तता में ऐक कम्पन पैदा करता है। मीलों की दूरी तक ढोलक की फड़कती चाल एवं जय-हुँकारों की ध्वनि स्पष्टतः सुनी जाती है।

---

१. मांच के लिए सारंगी ही केवल उपयुक्त स्वर-वाद्य है। किन्तु आजकल हारमोनियम एवं वायलिन बजाने के शौकिन भी मंच पर आने लगे हैं। मांच की संगीत पद्धति से पूर्णतः परिचित व्यक्ति ही इन वाद्यों के प्रयोग में सफल हो पाता है क्योंकि संगीत के झटके एवं श्रुतियों से पूर्ण सूक्षतम मीड़ों को अनभ्यस्त व्यक्ति वायलिन अथवा हारमोनियम पर नहीं बजा पाता।

नृत्य-अभिनय

मांच में नृत्य और अभिनय की प्रारम्भिक स्थिति शास्त्रीय नृत्य एवं सिने-संसार की अभिनय कला के सम्मुख माँच जैसी लोक-नाटिका का नृत्य एवं अभिनय चाहे कला-पारखियों का मनोविनोद नही कर सके किन्तु परम्परा की दृष्टि से उनका अपना आकर्षण है। माँच में नृत्य और अभिनय साथ-साथ चलते है। नृत्य के द्वारा अभिनय की कमी को पूरा कर लिया जाता है। राजा अथवा नायक का अभिनय करने वाला व्यक्ति तो अपनी मुख भंगिमाओं के द्वारा भाव-प्रदर्शन कर सकता है किन्तु किसी स्त्री-पात्र का अभिनय करने वाला पुरुष केवल नाच एवं हाथ के लटके-झटके से अभिनय करता है, क्योंकि घूँघट के कारण उसका मुख छिपा हुआ रहता है। कण्ठ-माधुर्य एवं हाथ के संकेत ही उसके लिये अभिव्यक्ति के साधन है। मच पर स्त्रियों का जाना प्रायः वर्जित है। इसलिये पुरुषों को ही विवश होकर स्त्री का स्वांग धारण करना पड़ता है।

पुरुष एवं स्त्री पात्रों की वेशभूषा में साज-सज्जा का अधिक प्रपंच नही किया जाता। राजा या नायक बनने वाले व्यक्ति को जरी का दुपट्टा एवं 'मंदील' पहिनाया जाता है। मंदील के अभाव में जरी का साफा बांध दिया जाता है। प्रायः सभी खेलों के नायक चूड़ीदार पाजामा, रेशमी या जरी का अचकन, कमर पर दुपट्टा और सिर पर साफा अथवा पगड़ी धारण करता है। प्रत्येक अभिनेता चाहे वह भिश्ती हो या पुजारी, चोपदार हो या राजा, अभिनय करते समय तलवार अपने हाथों में अवश्य रखता है। तलवार को दोनों हाथों से पकड़कर नृत्य किया जाता है। खेल के नायक और नायिका के पैरो में घूँगरु भी बांधे जाते है। वैसे स्त्री पात्रों को सजाने में भी कोई कसर नहीं रखी जाती। कभी-कभी तो मांच में अभिरुचि रखने वाले शर्राफ अपनी दूकानों से बहुमूल्य आभूषण भी पहिनने कों दे देते हैं।

माँच में नृत्य और अभिनय का ढंग बड़ा ही सरल होता है। केवल कमर हिलाकर लटके-झटके वाला व्यक्ति अभिनेता के रूप में माँच पर प्रवेश कर सकता है। इन लोक-नाटकों में अभिनय आदि को प्रमुख महत्व दिया भी नहीं जाता। प्रदर्शन का आकर्षण तो केवल संगीत होता है। दूरी पर बैठे हुए दर्शकों को यदि अभिनेताओं के मुँह दिखाई भी नहीं पड़े तो वे मांच का आनन्द उठाने से वञ्चित नहीं रहते। इसका कारण यह है कि दर्शक गीतों पर अधिक ध्यान देते हैं। मंच के गायकों के बोल, सम्वाद एवं गीत प्रस्तुत करने की शैली ही दर्शकों के लिये रस-प्रदान करने की कसौटी है। लोक-नाटक मांच के रसास्वादन का माध्यम नेत्र नहीं, कान हैं। सामान्य नाटकों में आंख और कान दोनों इन्द्रियों से काम लेना पड़ता है, किन्तु माँच की यह विशेषता है कि वह दृश्य-काव्य बनकर भी श्रव्य काव्य के रस की अनुभूति प्रदान करता है।

माँच, एक गीति-नाट्य

नाटकों में सामान्यतः गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग होता है। पद्य-प्रधान सम्पूर्ण

रचनाओं को भावभूमि के आधार पर काव्य के अन्तर्गत माना गया है। वैसे अभिनय एवं विभिन्न आंगिक चेष्टाओं द्वारा गेय पद्यात्मक रचनाओं को 'राग काव्य' कहा गया है। अभिनव भारती में राग काव्य का उल्लेख हुआ है।[१] इन राग-काव्यों को आजकल की भाषा में हम गीति-काव्य कह सकते हैं। मांच की सम्पूर्ण रचनाएं भी पद्य-बद्ध होने के साथ निर्धारित रागों में गाई जाती है। मांच के सभी कथानकों में गद्यात्मक भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल कथोपकन का संकेत एवं राग के गायन का निर्देश ही गद्यात्मक पंक्तियों में लिखा गया है।[२] मांच प्रारम्भ से अन्त तक गेय रचना है। भावों का प्रदर्शन, कथा का प्रवाह, गीत, नृत्य और अभिनय को एक साथ लेकर वह आगे बढ़ता है। मांच का कोई पात्र किसी अन्य पात्र के लिये यदि संबोधन के शब्द का प्रयोग करता है तो उसमें भी एक प्रकार की लचक एवं संगीत की लयपूर्ण ध्वनि रहती है। स्वर का आरोह व अवरोह रहता है। मांच के विदूषकों के नाम प्रायः तीसमार खां, शेरमार खाँ आदि रखे जाते हैं। स्त्री का अभिनय करने वाले पुरुष कंठ से प्लुत स्वर में जब किसी तीसमार खां को संबोधित किया जाता है तब उसमें भी एक लय होती है जो दर्शकों को मंत्र-मुग्ध किये बिना नहीं रहती। कहने का तात्पर्य यह है कि माँच की रचना में प्रयुक्त संगीत एंव उसकी मिठास से आवेष्टित रहता है। अतएव लोक-गीति-नाट्य के लिये जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे सभी मांच में सन्निहित हैं। गीति-काव्य में तीन बातें प्रमुख रहती हैं। आत्मीयता, भावमयता और व्यापक सहानुभूति।[३] ये तत्व मांच में भी पाये जाते हैं। मांच में लोक-रंजन की विपुल क्षमता दर्शको की सहानुभूति को प्राप्त कर लेती है। मांच के अभिनेताओ में भावारितरेक का बहाव इतना तीव्र रहता है कि साधारण पद्य भी संगीत की स्वर लहरी में तरंगित होकर दर्शकों को रस-सिक्त कर देता है। गीत के द्वारा गायक के हर्ष का विस्तार दर्शकों की आत्मा तक पहुँच जाता है और मांच का अभिनेता गायक, एवं मांच के दर्शक, इन तीनों का व्यक्तित्व एकाकार हो जाता है। रागात्मक सम्बन्ध की ऐसी चमत्कार-पूर्ण सिद्धि साहित्य की अन्य किसी रचना में नहीं मिलेगी। लोक-गीतों में भाव एवं रस को उत्पन्न करने की जो क्षमता है वह लोक-रंजन के साथ गीति तत्वों को लेकर मांच में प्रकट हुई है।

मांच की कथा-वस्तु का मूलाधार

माँच की कथा वस्तु का आधार पौराणिक एवं ऐतिहासिक महापुरुषों के सम्बन्ध में प्रचलित दन्त-कथाएँ है। इनमें कुछ कल्पित कथाओं का समावेश भी है! कल्पित कथाओं

---

१. अभिनव भारती, अध्याय ४, प्रकरण राग-काव्य।

२. जबाब राजा भरथरी का, टेक पलटी····रंगत छोटी।
बोल रानी सामदे का, रंगत दुहरी····
—बालमुकुन्द जी कृत मांच भरथरी पृष्ठ ३ से ५।

३. साहित्य-विवेचन (क्षेमचन्द्र सुमन) पृष्ठ २७३।

का मूल स्रोत बृहद्कथा पर आधारित 'कथा-सरित-सागर' कहा जा सकता है। जिन कथाओं के आधार पर मांच का निर्माण किया गया है, विषय एवं प्रवृत्तियों की दृष्टि से उनका निम्नलिखित वर्गीकरण होगा।

१. पौराणिक कथाओं पर आधारित

देवता एवं अवतार सम्बन्धी

१. शिव लीला (बा०)
२. कृष्ण लीला (बा०)
३. राम लीला
४. इन्दर सभा
५. सीता स्वयंवर (भैं०)

धर्म-प्रधान चरित्र वाले महापुरुषों की कथाएं

१. प्रहलाद लीला (का०)
२. राजा रिसालु
३. राजा हरिश्चन्द्र (बा०,का०)

लौकिक महापुरुषों के दिव्य एवं विलक्षण कृत्यों की कथाएँ

१. बैताल पच्चीसी
२. गेंदा परी
३. राजा विक्रमादित्य
४. सिंहासन बत्तीसी

२. लोक कथाओं पर आधारित

प्रेम कथाओं पर आधारित

१. हीर रांझा (बा.मे.का.रा.)
२. ढोला मारुणी (बा)
३. मधु मालती (का)
४. नाग मती (का)

किंवदन्तियों पर आधारित नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव को प्रकट करने वाली गाथाएँ

१. राजा गोपी चन्द
२. राजा भरथरी

लोक गीतों में प्रचलित एवं कल्पित ऐतिहासिक कथाएँ

१. निहालदे–सुलतान
२. नागजी–दूदजी
३. पूरणमल

३, कल्पित प्रेम-कथाएँ (उद्दाम शृंगारी भावना पर आधारित)

१. सेठ-सेठानी (वा)
२. देवर-भौजाई (वा)
३. सुद-बुद सालंगा (वा)
४. सूरज-करण शशिकला (का)
५. जान-आलम (का)
६. कुंवर-खेमसिंह आवलदे (बा० मे०)
७. कुँवर केसरी
८. हीरा मोती (का)
९. कुंवर केसरी (भै)
१०. लाल सेठ (भै)
११. चन्नन कुंवर (भै)
१२. मदन-सेन (भै)
१३. छैल-बेटा मोयना (भै)
१४. चारण बणजारा

रामकृष्ण आदि अवतारों की कथा को लेकर जन-सामान्य के भक्ति-मानस को रस-सिक्त किया जाता है। मन्दिरों में रामकृष्ण की पौराणिक कथा और भागवत आदि सुनने में श्रद्धा का अंकुश रहता है। मांच के द्वारा आनन्द-प्राप्ति एवं मनोरंजन के साथ श्रद्धा जाग्रत होकर भक्ति-भावना को प्रेरित करती है।

प्रह्लाद लीला एवं हरिश्चन्द्र आदि मांच के कथानकों में नीति और भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। सत्य के लिये संकट सहने एवं भक्ति के मार्ग से अत्याचारों के विरुद्ध जूझने की भावना का मांच में अधिक जाग्रत किया जाता है। बैताल-पच्चीसी एवं सिंहासन-बत्तीसी आदि मांच परम्परागत जादू और चमत्कारपूर्ण प्रवृत्तियों के प्रति आस्था के परिचायक हैं। यही बात विक्रमादित्य खेल के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है, जहां अन्ध-विश्वास से ग्रस्त जनता की रुचि के अनुसार जिज्ञासा तुष्ट होती है। ऐसे कथानकों में रहस्यमयी अलौकिक घटनाओं का समावेश होता है।[1]

१. पनिहारियों ने रानी के चौबोला की आन से रेट बन्द कर दी। प्रधान ने राजा की आन (शपथ) से रेट फिर चालू कर दी।
२. रानी का पलंग बोल उठता है।
३. रानी के गले का हार बोलता है।
४. रानी की········बोलती है।
५. महल का चिराग भी बोलता है।

राजा विक्रमादित्य, भरथरी, गोपीचन्द आदि के सम्बन्ध में भी लोक कथाएं प्रचलित हैं। वीर विक्रमादित्य की कहानी के प्रचलित होने का उल्लेख सत्येन्द्र जी ने भी किया है।[2] इसी तरह पंजाब की प्रसिद्ध प्रेम-कथा 'हीर-रांझा' एवं राजस्थान की लोक-प्रिय प्रेम-गाथा 'ढोला-मारु' भी लोक-गीतों के रूप में ब्रज में विद्यमान हैं।[3] ढोला तो हिन्दी क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकमहाकाव्य है। हिन्दी के विभिन्न क्षेत्र यदि इसे अपनी प्रादेशिक अनुकूलता को लेकर प्रस्तुत करते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। प्रचलित लोक-गीतों के कथानकों के आधार पर निर्मित किये गये मांचों में पूरणमल, निहालदे, एवं नागजी-दूदजी प्रसिद्ध हैं। पूरणमल की कथा में भक्ति के साथ वासनामय मिलन-श्रृंगार प्रकट हुआ है जहां माता ही अपने पुत्र पर मोहित हो जाती है। चाहे वह जननी न होकर विमाता ही हो, पर मातृत्व के नाम पर कलंक अवश्य है। इस विचित्र-कथा के आविर्भाव के पीछे अशोक के पुत्र कुणाल की ऐतिहासिक कथा का प्रभाव अवश्य रहा होगा।

---

१. भैरुलाल जी कृत विक्रमाजीत, मांच की हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर।
२. देखें — ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० ८६।
३. देखें — वही, पृष्ठ ८६।

ब्रज एवं बुन्देलखण्ड में प्रचलित चन्द्रावती के लोक-गीत की तरह गुजरात, राजस्थान एवं मालव में निहालदे का लोक-प्रबन्ध प्रेम, शृंगार-मयी अभिव्यक्ति के लिये अपनी विशेषता रखता है। मांच में इस लोक-प्रचलित कथा-गीत की घटनाओं को लेकर मौलिक उद्भावना हुई है। नागजी-दूदजी सम्बन्धी लोक-कथा एवं गीत भी मालवा में प्रचलित हैं। राजा भरथरी और गोपीचन्द के कथानक भी जनश्रुतियों के अतिरिक्त लोकगीतों की अतिप्रिय वस्तु बने हुए हैं। नाथपंथी लोगो के मुख से वैराग्य-भावना का प्रतिपादक गीत.... 'जुग में अम्मर राजा भरथरी' प्रायः सुनने को मिल ही जाता है।[1] प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्ग के द्वन्द्व को प्रदर्शित करने वाली इस लोक-कथा को मांच-कार ने बड़ी कुशलता के साथ अपनाया है। लोकगीतो में तो केवल रानी पिंगला का ही उल्लेख किया गया है किन्तु मांच में कमला और स्याम दे, दो और रानियों की कल्पना की गई है। भरथरी की बहिन मेनावन्ती भी गोरख से सवाल-जबाब करती है।[2] गोपी चन्द और भरथरी की कथाएँ गोरखनाथ के प्रभाव को स्पष्ट करने के साथ ही निवृत्ति पथ की विजय-घोषणा करती हुई जन-मानस पर अपना जय-चिह्न अंकित करती चली आ रही हैं। विक्रमादित्य एवं भरथरी के सम्बन्ध मे माँचकारों की निश्चित मान्यता मे कोई अन्तर नहीं। भैरुलाल जी ने विक्रम का परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

गन्धर्व सेन, पिता, ससिकला, (नार-पत्नी)
भर्तहरि, छोटा भाई चन्द्रावल माता

बालमुकुन्द जी ने इसी परिचय की पुष्टि की है—

राजा इन्दर के नाती कहिये इन्दरसेन पिता हमारे
विक्रम सर का बड़ा भाई हमारा गोपीचन्द भानेज खरे........[3]

जायसी के पद्मावत की तरह विक्रमाजीत मांच मे भी राजा के सिहल जाने की कथा है। विक्रम ने वहाँ जाकर मलकान देश की रानी चन्द्रावल के पति को सिंहल की जादूगरनी रानी के चंगुल से छुड़ाया एवं उसपर अपना जादू चलाकर विवाह के लिये आकर्षित कर लिया। नागमती एवं हीरामन सुए की लोककथा के प्रचलित होने का उल्लेख पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी किया है। मालवा के माँचकारो को उसकी जानकारी अवश्य होगी। उन्होंने भी प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी कवियो की तरह नागमती, मधुमालती चन्द्रकला, जानआलम आदि रचनाएँ लौकिक-प्रेम की अभिव्यक्ति के लिये लिखी। माँचकारों का उद्देश्य सूफी कवियों की तरह अलौकिक प्रेम का आभास पाना किंचित मात्र भी नहीं है।

---

१. उज्जैन की मूली जोगन एवं मूंडला (इन्दौर के पास का एक ग्राम) के एक झोपड़े से लिपि-बद्ध गीत के आधार पर।
२. बालमुकुन्द जी कृत, मांच भरथरी, पृष्ठ ३।
३. वही, पृष्ठ ४।

भक्ति एवं नीति-कथाओ didactic fables की अपेक्षा माँच का प्रमुख उद्देश्य कल्पित प्रेम-कहानियों को प्रस्तुत करना अधिक जान पड़ता है प्रेम-कहानियो से सम्बन्धित मांच के शीर्षक विभिन्न हो सकते है किन्तु अभिव्यक्ति की शैली में एकांगीपन है। पात्रों के नाम बदलकर केवल उद्दाम श्रृंगार को प्रकट करना ऐसे खेलों की विशेषता है। इनमें पात्रों की संख्या भी अधिक नही होती। नायक-नायिका और उनके प्रेम को प्रेरित एवं पोषित करने वाले दो-तीन पात्र और उनके नाम भी बड़े सुरुचिपूर्ण रखे गये है। नायकों के नामों में मदनसेन, कमलसेन[२] एवं नायिका के नाम कीर्तिलता, रंभा, फूलादे[३] आदि, नायक का सहयोगी पात्र या तो प्रधान मंत्री होता है अथवा चोपदार। शेर खां, तीसमार खां आदि। नायिका की सहायता करने वाली मालन, नाईन, अथवा लौंडी होती है। इन प्रेम-कथाओं में कथा-तत्व प्रायः क्षीण ही रहता है। यदि संगीत का सहारा न हो तो व्यवस्थित वस्तु-विधान के अभाव में मांच की रोचकता किसी भी क्षण समाप्त हो सकती है। संगीत की शैली ही कथा-सूत्र को सँभाले रहती है और ढोलक की फड़कती हुई चाल रस का संचार करते हुए लोगो का ध्यान आकर्षित किये रहती है। घटनाओ का समावेश नही के बराबर होता है। संवाद की अधिकता रहती है और इसी से कथा का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, एवं खेल की समाप्ति हो जाती है। उद्यान, वाटिका या पनघट पर नायक-नायिका का मिलन होता है। नायक कभी-कभी मालन पर आसक्त हो जाता है, कभी लौंडी के सौन्दर्य की ओर खीचता है, तो कभी भौजाई पर ही रीझ जाता है और एक करारी फटकार लगने पर सिंहल की सुन्दरी अथवा कर्नाटक की कामिनी के लिये दौड़ पड़ता है। लौंडी और नायिका में सम्वाद होता है, नायक और नायिका में प्रेम-भरी बातचीत होती है और दोनों के मिलन में खेल का अन्त हो जाता है। मांच के सभी खेल प्रायः सुखान्त होते है।

मांच की अन्य विशेषताएँ

वैसे नाटकों का उदय ही अनुकरण की प्रवृतियों पर आधारित है। किन्तु गाँव के स्वरूप से ऐसी विशेषता का निर्वाह हुआ है कि परकीय तत्वों का प्रभाव उस पर नहीं पड़ सका। नाटक के चार मूल तत्व सम्वाद, गीत, अभिनय और रस का निर्वाह लोक-नाटक मांच में बड़ी चतुराई के साथ किया गया है। लोकनाटकों में अभिनय-तत्व अपनी विशेषता रखता है। कभी-कभी मूँछों पर ताव देने वाले मुछन्दर भी जब स्त्री-पात्रों का अभिनय करते समय नारी के कोमल कंठ में बोलने का कृत्रिम अनुकरण करते है तब दर्शकों को वस्तु-स्थिति का ज्ञान होते हुए भी हास्य के साथ श्रृङ्गार रस का आनन्द प्राप्त हो जाता है।

---

१. मांच मदनसेन (भैरुलाल जी कृत, अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति)

२. देवर-भौजाई के दो स्त्री पात्र।

मांच में कथानक की अपेक्षा सम्वादों पर ही अधिक जोर दिया जाता है।[1] सम्वादों में वाक्‌चातुर्य, रोचकता और वैचित्र्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक रहती है। यहां कथा-सूत्र की व्यवस्थित योजना का तो सर्वत्र अभाव ही मिलेगा। केवल संवादों में ही पूरा मांच समाप्त हो जाता है। इसी तरह प्रसंग-निर्माण की अक्षमता को भी मांच में स्पष्ट देखा जा सकता है। शृङ्गार भावना के उद्दीपन के लिये प्रत्येक मांच में कुछ शब्दों के हेर फेर से पुनरावृत्तियां चरम सीमा पर पहुँच गई है।

मांच की कल्पित कथाओ में लोक-रुचि और लोक-भावनाओं को भी यत्र-तत्र स्थान मिलता है। शृङ्गार की अभिव्यक्ति के लिये शरद ऋतु एव बारहमासी का वर्णन भी लोकगीत की पद्धति पर हुआ है। गर्भिणी की प्रसव-पीड़ा के कष्ट से मुक्ति के लिये बंदीछोड़ को मनाना, पुत्र-प्रसव, जन्मोत्सव एवं बधावे आदि प्रसंगों का भी समावेश किया गया है।[2] लोकगीतों की ननद-सम्बन्धी मान्यता को भी व्यक्त किया गया है।[3] भाषा-सौन्दर्य की दृष्टि से मालवी के मांच साहित्य ने अपनी विशेषता को सुरक्षित रखा है जब कि राजस्थानी ख्यालों में भाषा के निर्वाह की ओर किंचित भी ध्यान नही दिया गया। ख्यालों में खड़ी बोली, राजस्थानी ब्रज और बुन्देली आदि की खिचड़ी-भाषा के कारण राजस्थानी का मूल सौन्दर्य लुप्त हो गया है। मालवी के मांच-कारों ने भाषा के स्वरूप को यथासाध्य विकृत होने से बचाया है। इस प्रसंग में केवल दो उदाहरण ही पर्याप्त हैं —

१. अजी टींकी बिन फीकी नार तरसे आंखड़ली
हिंगलू बिन फीकी मांग तरसे पाटड़ली
बेसर बिन फीकी नार तरसे नाखंडली
ढोला बिन सूनी सैज तरसे रातड़ली........[4]

---

१. बालमुकुन्द जी कृत सेठ-सेठानी मांच में निम्नलिखित सम्वाद उल्लेखनीय हैं।
 १. पण्डा-सेठानी सम्वाद पृष्ठ ३।
 २. सेठानी-देवी सम्वाद ,, ४–५।
 ३. कासिद-सेठानी सम्वाद ,, ६–७।
 ४. बोल मर्दानी, बोल जनानी आदि पृ० ३५।
 ५. सेठानी-दाई का सम्वाद।

२. (क) अच्छी चतर दाई ने
 बेगा तो बुला दोजी म्हारा सायबा —सेठ-सेठानी पृष्ठ ३३।
 (ख) बंदी छोड़ मनावां, दाता छोड़ बन्दी छोड़ मनावा
 हूं तो नगर बधावा सारु आयी म्हारा लाल परेवा —वही, पृष्ठ ३५।

३. चन्दा सरिका पति जी हमारा सूरज सरको तेज
ननदल हमारी कड़क बिजली, चमके चारों देस —नागजी-दूदजी, पृष्ठ, ११।

४. बालमुकुन्द जी कृत ढोला-मारुणी, पृष्ठ २–३।

२. देवर फगवादे भाभी के छः मण सिरणी तोली
सब लोगों को वाटी है टुंगे नावी ढोली
बीस ग्वाला दोघर वाली दो भायां की जोड़
दो है म्हारी बेटी कुंवारी जिनको करणो ठोड़ ... ... [१]

मांच और जन-रुचि (मनोरंजन के उपादान)

मालवी लोक-नाट्य 'मांच' में लोक-रंजन की विपुल-क्षमता है। मांच-रचना में मनोरंजन के लिये जन-रुचि को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार के प्रसंगों की उद्भावना की गई है। मांच-पद्धति का आविर्भाव उस समय हुआ था जब जन-सामान्य के मनोरंजन के लिये सिनेमा जैसा सर्व-सुलभ एवं सस्ता साधन अप्राप्त था अतः साधारण श्रमिक एवं कृषक वर्ग के लिये मांच एक विशेष आकर्षण की वस्तु बन गया था। सामान्य जनता की रुचि धार्मिक भावनाओ के क्षेत्र में पवित्र एवं उच्च भावनाओं से ओतप्रोत हैं, किन्तु जहाँ वासना के विकारमय उभार का प्रश्न है, वहां समाज के नैतिक बन्धन सहजतः स्वीकृत नहीं होते। नारी का सम्बन्ध एवं सुप्त वासना के तत्व इस प्रकार गुँथे हुए है कि असस्कारित मनुष्यों के मानस में हलचल उत्पन्न कर देते है। साहित्य एवं अभिव्यक्ति-कला के आवरण में उक्त भावना, सौन्दर्य एवं सहानुभूति की वस्तु मानी जाती है और जहां नारी-सम्बन्ध एवं यौन-विकारों की भावना का खुलकर प्रदर्शन होता है उसे शिष्ट समाज अश्लील एवं हेय समझता है। किन्तु साहित्य एवं काव्य के दिव्य-आनन्द से वंचित अपढ़ एवं साधारण जन के सम्मुख संसारी नारी का चित्र आता है तो वह उसके मनोरंजन के लिये प्रर्याप्त है। मांच के शृङ्गार की एवं प्रेम की अभिव्यक्ति से पूर्ण प्रसंगों में जन-रुचि को तुष्ट रखने की धारणा लेकर एवं स्वयं को भी आनन्दित करने की दृष्टि से मांचकारों ने नारी-विषयक अश्लीलता का खुलकर प्रदर्शन किया है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति को दो श्रेणीयों में रखकर विचार किया जा सकता है।

नारी के नख शिख का वर्णन करने में रीतिकालीन कवियों ने जिस कला का आवरण लिया था वहां शयन-कक्ष में सेज पर आमन्त्रण रति-क्रीड़ा आदि के प्रसङ्ग में किंचित् संकोच नहीं किया। राजस्थानी ख्याल एवं मालवी मांच की प्रेम-कथाओं में नारी के स्थूल शरीर का, कुच, कमर, शैय्या-पलंग एवं छेड़छाड़ के वर्णन के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं।

१. स्त्री-प्रसंग को लेकर वासनाजन्य उद्दाम अभिव्यक्ति जिन पर सीमित मर्यादा में रहकर विचार किया जा सकता है।
९. यौन-प्रक्रयाओं पर निर्लज्ज बकवास, जहां स्पष्ट उद्धरण देकर उनकी आलोचना करना भी शील-संकोच-भय हो जाता है।

---

३. नागजी-दूदजी ... पृष्ठ १४ एवं १८।

१. लूम टूट छतिया पर, अटक्यो भटक्यो नवसर हार
सेज पलंग पर साज करो, हो सावन बदली गाज.......[१]

२. पलंग बिछावा पेलां पेल,
पसीनो छूटे प्रेम को म्हारा राज.......[२]

३. सिर पर साड़ी केसरिया सी आसमानी चोली
घेरा घुमारो घाघरो सो नाड़ी अनमोली
भरभर रंग ढोला पिया पर बराबर की जोड़ी
हाथ पकड़ म्हारी छाती मसको चूनड़ भिजई कोरी ।[३]

४. सोभावंती सुन्दरी त्हारे लाग्या दो अनार
सांचौ केदो सायबा सोगन म्हारी खाय
रंग रोशनी करूं मेल में ढोलियो देऊ बिछाय

५. सेज पर करां पिया की आस
चतर हंस आवो पिया के पास[४]

कथा-प्रसंग के अश्लील शृङ्गार के अतिरिक्त मांच प्रदर्शन के बीच में गजल, कव्वाली और लावनी भी गाई जाती है। इनमें नारी से सम्बन्धित बकवास रहती है। कुछ लावनियां गेयता की दृष्टि से मनोरंजन का साधन सिद्ध हुई हैं। उज्जैन के प्रसिद्ध माँचकार कालूराम उस्ताद के लावनीबाज साथी पन्नालाल सुखदेव की लावनियों को माँच में गाया जाता है। कथा-प्रवाह के विवाह आदि प्रसंगों पर पारसी, गाल-गीत गाकर कुछ समय के लिए हास्य की स्थिति भी उत्पन्न की जाती है। संस्कृत नाटकों में विदूषक आदि के द्वारा हास्य का वातावरण तैयार किया जाता है। मांच में कथा-प्रसंग से सम्बद्ध (एवं असम्बन्ध भी) नानकसाई साधुओं को प्रस्तुत कर गृहस्थाश्रम से भागने वाले तथा-कथित साधुवेष-धारी की मखोल उड़ाई जाती है।

हरदम बेपर वाई के लज्जा रखे माहम भाई
मां बाप का कया नी माना हो गये नानक साई
आये नानकसाई के बाबा सोदा बेपरवाई[५]

---

१. राजा भरथरी पृ० ११।
२. ,, ,, २४।
३. मांच, भरतरी, बालमुकुन्दजी कृत, पृ० ३०।
४. मांच, बिक्रमाजित (भैरुलाल) हस्तालिखित।
५. मांच, सेठ-सेठानी, बा०, पृष्ठ २२।

नारी एवं प्रेम-भावना के वर्णन में अभिव्यक्ति कला के अभाव के कारण मालवी मांचकारों में अश्लील प्रवृत्ति का होना अस्वाभाविक नहीं है। कुछ मांचकार एसे भी हैं जिन्होंने शृङ्गार को कलात्मक रूप में भी प्रस्तुत किया है।

चम्पो खुल्यो बाग में जाकी निर्मल बास
काले पन रस भर्यो जी बांयरनी आवे बास
भंवरो लोभी बास को कलियां का रस लेय
कमल फूल पे बैठ के मन चायो सुख लेय
कोमल फूल गुलाब को धूप पड़े कुम्हलाय
माली चातुर होय तो पल पल पानी पिलाय [1]

---

१. विक्रमाजीत।

(३)

पुरुषों के गीत (क्रमशः)

श्रृङ्गार एवं भक्ति भावना के गीत

- o होली (फाग)
- o मालवी दोहे एवं संस्कृत-काव्य की परम्परा
- o जोगिड़ा (नाथों के गीत)
- o मृत्यु-गीत
- o रामदेव जी के गीत
- o छल्ला (मालवी दोहे)
- o काव्य-प्रतियोगिता तुर्रा-किलंगी एवं राम-दंगल
- o पंथीड़ा के गीत
- o मृत्यु-गीतों की वैराग्य-भावना
- o भजन, कीर्तन एवं अन्य गीत ।

होली फाग

होली के वसन्तकालीन अवसर पर पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों में स्त्रियों के गीतों में व्याप्त भाव-सौन्दर्य का अभाव है। फाग के गीतों में सामान्य जीवन की उछल-कूद, हास-परिहास, व्यंग-विनोद आदि का स्थूल रूप से अंकन हुआ है। मालव का किसान-वर्ग एवं साधारण जनता होली के अवसर पर जीवन की धीर,गंभीर स्थिति को छोड़ कर हृदय को हलके वातावरण में रमा देती है। परम्परा के अनुसार फाग के गीत राम और कृष्ण की जीवन गाथाओं के विविध प्रसंगों को लेकर चलते है। किन्तु अधिकाँश गीतों में अश्लीलता का ही पुट अधिक रहता है। पौराणिक गाथाओं के प्रसंग में प्रश्नोत्तर-शैली का प्रयोग अधिक हुआ है, वहाँ किसी घटना का उल्लेख मात्र है। भावनाओं की सरस अभिव्यक्ति नहीं।[1] फाग के गीत फाल्गुन पूर्णिमा से ठीक एक

---

१. क. उठ मिललो, उठ मिललो रे, राम भरत आया उठ मिललो।
किस्ते बरस के राम रंगीले, किस्ते बरस की सिया सुख-वासी २।८५

ख. रथ रोको महाराज तुमारे संग चालूँ वनको,
कायन को रथ है बनायो कायण का रे पइयाचार,
अगर चन्नन को रे रथ है बनायो कंचन पइया चार..........२।८०

मास पूर्व 'डांडा-रोपणी पूनम' (माघपूर्णिमा) से प्रारम्भ हो जाते हैं। रात्रि को अवकाश के समय ढप लेकर ग्रामीणों की मंडली जम जाती है और मध्य-रात्रि पर्यन्त उद्दाम श्रृङ्गार गीतों के स्वर में गूंजता रहता है। होली जलने के पश्चात् दिन के समय फाग के रंग की मादक मस्ती में पुरुषों की गैर (चल-समारोह) निकलती है। पुरुष वर्ग के वसन्ती गीता में श्रृङ्गार को उद्दामता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। श्लीलता की मर्यादा का ध्यान रखकर पुरुष की उदण्ड प्रवृत्ति का आभास पाने के लिये निम्न-लिखित गीत का उदाहरण ही पर्याप्त होगा।

सुवो पाल्यो रे हां सुवो पाल्यो रे बाण्या की छोरी
जुल्म कियो, सुवो पाल्यो रे
सुवो उड़ उड़ वाकी छतिया पै बैठो
छतिया को रस-कस सुवा न लियो, सुवो पाल्यो..............

उक्त गीत नारी के अधर, कपोल, वक्ष आदि पंचाँगों के क्रमबद्ध उल्लेख में समाप्त होता है। होली का प्रसंग एक ऐसा अवसर है, जहाँ पुरुष की भावनाओं को गीतों के रूप में नारी-सम्बन्धी वासनाजन्य विकारों को लेकर उभरने का खुला अवसर मिलता है। सामान्यतः प्रत्येक पुरुष के हृदय से यह उभार आता है और वह उसको प्रकट भी करता है। अशिक्षित एवं वाणी-विलास की कला से शून्य साधारण मनुष्य के पास अपने भावों को प्रकट करने के लिए खुले एवं कपट-विहीन शब्द होते हैं। वहां तथा-कथित सभ्यता का आवरण नहीं होता इसलिए उस अभिव्यक्ति को नग्न एवं अश्लील कह दिया जाता है। किन्तु नारी के स्वाँग पर ही द्रष्टि रखने वाले सौन्दर्य के पारखी श्रृङ्गारिक कवियों की स्थूल कलाभिव्यक्ति में एवं लोक-मानस की नारी-भावना में प्रवृत्ति की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं आता। उक्त गीत में नारी के जिन पाँच अंगों का उल्लेख किया गया गया है, संस्कृत-मना विद्वानों की इसी स्तर की निम्न-प्रवृत्ति से भिन्न नहीं है।

'गणिका गणिकौ समानधर्मौ, उभौ पंचाँग निदर्शकौ'

अन्तर केवल इतना ही है कि पंचाग शब्द के श्लेष में उक्त भावना को प्रकट करने के लिए सभ्य-समाज में कोई आपत्तिजनक स्थिति उत्पन्न नही होती।

जन सामान्य के हृदय में स्फूर्जित होने वाली श्रृङ्गार और हास्य की फुहारों के हल्के छींटे ही फाग के गीतों में मनोरंजन एवं रोचकता की दृष्टि से आकर्षक ही होते हैं।

ए परणया की तो आंख्या दुखे, जाने म्हारो जूतो रे
छैल-भँवर की आंख्या दुखे, हूं तो सुरमो सारूं रे
पतला पतला फुलका पोया, तोरिया की तरकारी रे
जीमता होय तो जीमो धनाजी हाजर उभी गौरी रे २।८२

ग्रामीण जीवन की दाम्पत्य-भावना में विवाहित पत्नी द्वारा पति की उपेक्षा एवं छैल-भंवर (प्रेमी) के प्रति आकर्षण का भाव व्यक्त होना आश्चर्य की बात नहीं है। यहाँ नारी के मानस का आकर्षण सामाजिकता के नियमों में बँधकर चलने की अपेक्षा प्रकृत-प्रवृत्तियों से अधिक प्रेरित होता है। पुरुष भी नारी को अपनी व्यवहार-कुशलता एवं वैभव से, पौरुष के आकर्षण से ही वश में रख सकता है। अन्यथा निम्न-समाज की ग्रामीण नारी अनचाहे पति को फारगति (तलाक) देने के लिये स्वतन्त्र है। पुरुषों ने नारी के प्रणय सम्बन्धी व्यवहार एवं आचरण का जो उल्लेख किया है वह जीवन की वास्तविकता से परे नहीं है। फाग के गीतों की तरह मालव की कृषक जातियों के छल्ले (दोहे) भी शृङ्गार की उद्दाम भावना को लेकर चलते हैं।

छल्ला [मालवी दोहे]

देशभाषा प्रारम्भिक हिन्दी का छंद दोहा अपने मूल नाम दूहा[1] से भी मालवी में भी प्रचलित है। मालवी लोक-गीतों में दूहों ने लालित्य और भाव सौन्दर्य की दृष्टि से कबीर और तुलसी आदि संतों की परम्परा को न अपनाते हुए बिहारी की शृङ्गारी प्रवृत्ति को ही अधिक अपनाया है। दोहे जैसे छन्द में यौवन की उद्दाम भावनाओं को प्रकट करने की प्रवृति काव्य की अपेक्षा लोकगीतों के क्षेत्र में अधिक व्यापक हैं। कुरू प्रदेश का श्रमगीत 'मल्होर', गढ़वाल का 'बाबूबन्द' एवं पंजाब का टप्पा गान या माहिया और मालवी का दोहा मानो लोक-जीवन को स्नेह से सींचने के लिये ही अपना अस्तित्व रखते हैं। छन्द और भाव एवं भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से मालवी दूहे और मल्होर-माहिया में बहुत कुछ साम्य है।[2]
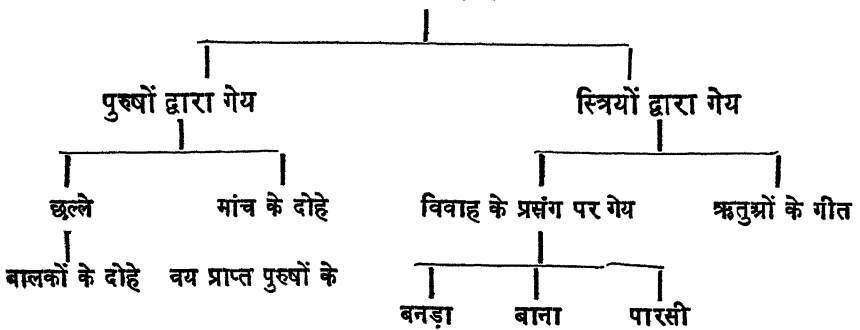
१. पं० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास; पृ० ३।

२. (क) मल्होर के लिये देखें""श्री गणेशदत्त गौड़ का लेख।

—जनपद, त्रैमासिक खंड १ अङ्क २।

(ख) माहिया की शैली""आजकल, दिल्ली, जुलाई १९५१।

छल्ले पुरुषों के द्वारा गाये जाते हैं। 'छल्लो बोल्यो रे' पंक्ति को गीत की टेक के रूप में प्रयुक्त कर विवाह आदि अवसरो पर शृङ्गार-भावना से पूर्ण दोहे गाये जाते हैं। 'छल्ला' शब्द की व्युत्पति भी बड़ी रोचक है। छल्ला और छैल शब्द में बहुत कुछ साम्य है। 'छैल' शब्द का विकृत स्वरूप छल्ला भी मालवी में प्रियतम के अर्थ में प्रयुक्त होता है।[1] किसी ग्रामीण युवक की शृङ्गारी प्रवृति से युक्त उच्छृंखल, अभिव्यंजना पर व्यंग्य करने के लिये कह दिया.........'लो सुन्यो, यो छैलो बोल्यो' .... और तभी से रसिक जीव छैलजी गीतों में छल्ला बन गये। छल्ला शब्द बहुवचन है और छल्लो एक वचन है। इस प्रकार छल्ला पुरुषों-द्वारा गेय दोहों का पर्यायवाची शब्द बन गया। छल्ले में दोहे गाने के पूर्व कुछ पंक्तियां टेक के रूप में जोड़ी जाती हैं —

सुण छल्ला रे के हाँरे....छल्ला रे
<u>मांजो बूज्यो बाटको रे....जिमें धर्यो कमल को फूल</u>
ल्हारी सौ म्हारी सौ जिमें धर्यो कमल को फूल
<u>असा मोळिया से काम पड़्यो रे फल लागे ना फूल</u>

इसमें रेखांकित पंक्तियां मूल दोहे की है एवं शेष पंक्तियां लय उत्पन्न करने एवं दोहे को छल्ले की पद्धति पर गाने की दृष्टि से जोड़ी जाती हैं। छल्ला गाते समय दोहे का प्रथम पद (पंक्ति) बड़ी मन्थर गति से गाया जाता है। दूसरी पंक्ति को द्रुत गति से गाकर समाप्त कर लिया जाता है। एवं छल्लो बोल्यो रे.........' की ध्वनि के साथ नृत्य किया जाता है। छल्ला गाने वाला एक ही व्यक्ति होता है। कुछ देर नाचने के पश्चात् दूसरा छल्ला शुरू किया जाता है।

पुरूषों द्वारा गेय दोहे

बालकों एवं स्त्रियों द्वारा गेय दोहों का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। पुरुषों द्वारा गेय छल्लों का प्रमुख विषय भी शृङ्गार है। शृङ्गार-भावना की चरम सीमा में काम वासना की कुण्ठा प्रकट हुई है। मन की रसिकता, सौन्दर्यानुभूति पुरुषत्व-हीन पुरुषार्थ से शून्य व्यक्ति की स्त्री की दुर्दशा एवं मनोव्यथा और सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य आदि कला के आवरण में सुन्दर ढंग से प्रकट हुए हैं। इन दोहों में यौन-सम्बन्धों का प्रतीकात्मक प्रयोग भी उल्लेखनीय है। पुरुषत्व-हीन-व्यक्ति को संतान नही होती। इस कटु सत्य का उद्घाटन करने में शृङ्गार रस का पुट देखिये

माँजो बूज्यो बाटको रे जीमे धर्यो कमल को फूल
असा मोळिया से काम पड्यो रे फल लागे ना फूल....[2]

---

१. एक छल्ला के कारणे छोड़्या मायड बाप....मालवी दोहे, दोहा क्रमांक १००।
२. वही, दोहा क्रमांक २७।

मांज कर स्वच्छ किये हुए कटोरे में कमल का फूल रखा हुआ है किन्तु ऐसे पुंसत्व हीन व्यक्ति से काम पड़ा कि फल और फूल भी नहीं लग पाते। यह दोहा प्रतीक शैली का सुन्दरतम उदाहरण है। स्वस्छ, निर्मल शरीर के लिये 'बाटको' शब्द का प्रयोग किया है। कमल का पुष्प नारी के पूर्ण यौवनागम का प्रतीक है। फल-फूल लगना सन्तान होने का सूचक है, किन्तु 'मोल्या' अर्थात् पुरुषत्वहीन व्यक्ति से कहीं सन्तान की कामना पूर्ण हो सकती है। हीन-पुरुष की नार पर लोक गीतों में काफी व्यंग किये गये हैं —

'बाडी सूखे वाथलो कुए' सूखे कचनार
गोरी सूखे बाप के हीन पुरुष की नार'[1]

जिस प्रकार बथुवा बाडी में ही सूख जाता है कुए की कचनार भी सूख जाती है उसी प्रकार हीन-पुरुष की नव-यौवना पत्नी भी अपने मायके में ही सूख जाती है। बथुआ और कचनार कोमलता के प्रतीक है। जल के अभाव में इनके सूख जाने में देर नहीं लगतो। युवा स्त्री का उमंग भरा यौवन कुसुम भी पति के स्नेह सलिल के अभाव में तुरन्त ही मुरझा जाता है। कुरु प्रदेश की मल्हार में भी इस मालवी दोहे से मिलती-जुलती भाव-व्यञ्जना है।

'कल्लर सुक्खी कांगनी रे, कोई डहलो सुक्से धान
मरमन सुखी बाप के, एजी कोई केल गोभ समान[2]

पुरुषों द्वारा गेय इन दोहा में श्रृङ्गार के भोग-पक्ष की अभिव्यक्ति में वासना की उद्दामता चरम सीमा पर पहुंच जाती है और भाषा के असंयमित होने के कारण कुछ दोहों में अधिक अश्लीलता आ गई है। जहां अभिव्यक्ति में कला का आवरण लिया गया है, वहां अश्लीलता की भावना कुछ दब गई है। अपरिपक्व फल के प्रतीक को लेकर यौवनागम के पूर्व वासना-पूर्ति का निषेध कितने प्रच्छन्न ढंग से व्यक्त हुआ है।

कच्ची केरी कच्चपच्ची पाकन दे दिन चार
काची के मत तोडजो म्हारो जोवन अकारथ जाय'[3]

कच्चे फल का आस्वाद मधुर नहीं होता। कच्ची केरी का रसास्वादन करने के प्रयास में मुँह का जायका बिगड़ जाता है। पक्का हुआ आम ही मधुर रस प्रदान कर सकता है। इसी प्रकार पूर्ण यौवन की प्राप्ति के पूर्व वासना-पूर्ति की चेष्टा यौवन को निस्सार बना देती है। किन्तु प्रेम करने की कला में निपट अनाड़ी व्यक्ति तो यौवन-वापी में गोते खा ही जाता है।

चार खुण्या की बावड़ी भरी अकोला खाय
हाथी जैसा डूब मरे मूरख गोता खाय[4]

---

१. वही; दोहा क्रमांक ३६।

२. जनपद, खण्ड १ अंक २, मल्हौर १८, पृ़ठ ८४।

३. मालवी दोहे, दोहा क्रमांक ३२। ४. वही; दोहा क्रमांक ३१।

श्रृङ्गारी दोहों के अतिरिक्त कुछ दोहों में नीति भक्ति और हास्य के प्रसंग भी उपलब्ध होते है। किन्तु इस प्रकार के दोहों की संख्या बहुत ही कम है। पुरुषो के दोहों में लोक-प्रचलित सामान्य मान्यता एवं सामाजिक जीवन की विषमता पर तीखे व्यंग किये गये है। पिता के नाम से पुत्र की वंश स्थिति एवं अस्तित्व धारण की संज्ञा का परिचय मिलता है। नारी के मातृत्व की घोर उपेक्षा से पूर्ण समाज के विश्वास पर एक व्यंग्य है।

तेल जले, बत्ती जले नाम दिया को होय
गोरी तो बेटा जरो नाम पिया को होय [1]

तेल जलता है, बत्ती जलती है और नाम दीपक का होता है कि वह अंधकार को दूर करता है, प्रकाश को फैलाता है। इसी तरह बेचारी गृहणी प्रसव-वेदना की सम्पूर्ण पीड़ा सहते हुए वंश के नाम को ज्योतित करने वाले पुत्र को जन्म देती है, किन्तु नाम उसके पति का होता है, कि अमुक के यहां पुत्र का जन्म हुआ।

मालवी दोहे एवं संस्कृत काव्य की परम्परा

लोक-भाषा में प्रचलित श्रृंगार-पूर्ण दोहो की परम्परा भावना की दृष्टि से अपभ्रंश के दोहो, प्राकृत की गाथा एवं संस्कृत के श्लोको से सम्बद्ध है। यह बात अवश्य है कि लोक गीतो की प्रकृत्त भावना का स्वरूप काव्य के क्षेत्र में जाकर कुछ निखर जाता है, और समय के परिवर्तनशील प्रवाह में भावना की अभिव्यक्ति का वही स्वरूप स्थिर रहना कठिन होता है। फिर भी मालव से प्रचलित स्त्री और पुरुषो द्वारा गेय दोहों की भावना का अल्पाधिक रूप संस्कृत-काव्य की श्रृंगार रस से सिक्त रचनाओ में यत्र-तत्र देखने को मिलता है। संस्कृत काव्य में ऐसे अनेक श्लोक पाये जाते हैं जब पति कार्यवश विदेश जाने के लिए सन्नद्ध है। चलते समय पास में खड़ी हुई पत्नी से वह विदाई माँगता है। पत्नी वाणी से तो कुछ उत्तर नही दे पाती किन्तु नेत्रों से छलकते हुए आँसुओं के द्वारा अपने हृदय की स्थिति का परिचय करा देती है।

यामः सुन्दरि याहि पान्थ दयिते शोकं वृथा मा कृथाः
शोकस्ते गमने कुतो मम ततो बाष्पं कथं मुञ्चसि ?
शीघ्रं न व्रजसीति मां गमयितुं कस्मादियंते त्वरा
भूयानस्य सह त्वया जिगमिषोर्जीवस्य मे सम्भ्रमः ॥

प्रियतम के वियोग से उत्पन्न असह्य वेदना की विकलता के कारण नायिका के प्राण भी प्रिय के साथ प्रस्थान करने के लिए आतुर हैं। प्रणय की अनन्यता में नायिका का यह भावावेश मालवी के दोहे में प्रकट होता है।

---

१. वही; दोहा क्रमांक ३५।

रायचन्द चाल्या चाकरी खांदे धरी बन्दूक
साथे म्हने ले चलो के कर डालो दो टूक[1]

प्रेमी युगल के रूप में ही नारी का जीवन सार्थक है। अतः नौकरी के लिए विदेश गमन को उत्सुक पति के सम्मुख वह दो शर्तें प्रस्तुत करती है—'या तो तुम मुझे अपने साथ ले चलो' अथवा 'मेरे शरीर के दो टुकड़े कर डालो'। यहाँ नायिका के द्वारा स्वयं के अस्तित्व को समाप्त करने की भावना में उसके प्रेम का उत्सर्ग-मय दिव्य-रूप में प्रकट होता है। प्रियतम के अभाव की वियोग-पूर्ण स्थिति में वह मृत्यु को ही श्रेयस्कर समझती है। संस्कृत के एक श्लोक में यह भाव कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है।

गच्छ गच्छसि चेत् कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः।
ममापि जन्म तत्रैव भूयात् यत्र गतो भवान्[2] ॥

हे प्रियतम यदि तुम जाना ही चाहते हो जाओ तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो। जहां तुम जाओगे अब मेरा जन्म भी वहीं होगा। अर्थात् मेरी मृत्यु निश्चित है।

नव-विवाहिता नारी के जीवन में वह अवसर बड़ा ही उर्मिल होता है जब अप्रत्यासित रूप से उसका पति सम्मुख उपस्थित हो जा जाता है। पति के आगमन का समाचार एवं मिलन की कल्पना से प्रेरित उत्साह के कारण उसकी मनःस्थिति में आनन्द का उद्रेक इस चरम सीमा पर पहुँच जाता है कि वह नेत्राँजन भाल पर, अधरराग आँखों में एवं तिलक कपोल पर लगाकर शीघ्र ही पति-मिलन के लिये तैयार हो जाती है।

श्रुत्वा यान्तं बहिः कान्तंसमाप्तविभूषया।
मालिन्जन दशालक्षि कपाले तिलकः कुलः ॥[3]

प्रियतम की अप्रत्याशित उपस्थिति से उत्पन्न नायिका के हृदयोद्वेलन का शब्द-चित्र निम्नलिखित दोहे में अंकित हुआ है।

आंटी डोरा कांगसी सीस गुंथावा जाय,
सामे मिल गया सायबा छाती धड़का खाय।

नारी प्रियतम से मिलने की आकाँक्षा को लेकर अपने जीवन का शृङ्गार करती है। मिलने के आनन्दमय क्षणों को प्राप्त करने की कामना में अत्यधिक उल्लास रहता है। दुर्भाग्यवश प्रिय का सामीप्य उसे प्राप्त नहीं हुआ तो उसकी निराशा चरम सीमा पर पहुँच जाती है। किन्तु वह किसी अन्य को दोष न देकर स्वयं के भाग्य को ही विपरीत मान बैठती है।[4]

---

१. वही दोहा क्रमाँक ८६।
२. और ३. साहित्य-दर्पण में उद्धृत।
४. टीकीं दे मेला चढ़ी बीच काजल की रेख
सायब को सारो नहीं लिख्या लिख्या विधाता लेख—मा० दो० १०२

स्नातं वारिदवारिभिर्विरचितो वासी घने कानने
शीतैश्चन्दनबिन्दुभिर्मनसिजो देवः समाराधितः
नीता जागरणव्रतेन रजको क्रोड़ा कृता दक्षिणा
तप्तं किं न तपस्याऽ.................. [1]

प्रिय-मिलन के लिये क्या-क्या तप नहीं किये किन्तु आज भी वह (प्राणपति) क्यों नहीं मिल सका। विधाता को इच्छा ही ऐसी थी।

प्रकृति के रमणीय दृश्य भी मिलन की अभिलाषा को उद्दीप्त करते हैं। दिवस-रजनी की समागम बेला में सांध्य गगन की अनुरागमयी लाली नायिका के हृदय में प्रिय-दर्शन की लालसा उत्पन्न करतो है। किन्तु यहां भी भाग्य की बड़ी विचित्र गति है कि वे क्षण उसे प्राप्त नहीं होते।

अनुरागवती सन्ध्या दिवस्तत्पुरस्सरः
अहो दैवगतिश्चित्रा, तथाऽपिन समागमः[2]

उक्त संस्कृत श्लोक की अपेक्षा मालवी के एक लोकगीत में कितना भाव सौन्दर्य निखर उठा है?

दल बादल बीच चमके तारो
सांझ पड़े पियु लागे जी प्यारो
कँई रे जुबाब करूँ रसिया से? २।१६

अपने आत्मीय एवं प्रियजनों की मार्गयात्रा में अमंगल और दुःखप्रद बाधाओं के लिये यह मंगल कामना की जाती है कि उसका मार्ग कल्याणमय हो, निष्कंटक हो, सूर्य के प्रचण्ड आतप से बचने के लिये सघन वृक्षावलियाँ संयुक्त हो और मार्ग में चलने के श्रम से उत्पन्न थकान को मिटाने के लिये शीतल, मन्द अनुकूल पवन भी चलता रहे।[3] अपने स्नेहीजनों को सुख पहुँचाने की मङ्गलकामना इष्ट मित्र एवं गुरुजनों के द्वारा प्रकट की जाती है, किन्तु अपने पथिक 'प्रियतम' को आतप के कष्ट से बचाने के लिये लोकगीतों की नायिका तो स्वयं बदली बनकर अपने प्रिय पर छाया और शीतलता प्रदान करना चाहती है।[4]

---

१. रस मंजरी में उद्धृत।

२. रस मंजरी में उद्धृत

३. अभिज्ञान शाकुन्तल, अङ्क ४ श्लोक ११।

४. धूप पड़े धरती तपे, चन्द्रवदन कुम्हलाय
जो मैं होती बादली, सूरज लेती छिपाय। —मा० दो० ६६।

काव्य-प्रतियोगिता

तुर्रा किलंकी एवं राम दंगल

मालवा और निमाड़ में तुर्रा किलंकी का आज से बीस वर्ष पूर्व बहुत अधिक प्रचार था। जिस तरह आजकल कवि-सम्मेलन के आयोजन की भरमार रहती है, जन साधारण के लिये तुर्रा-किलंकी की काव्य-प्रतियोगिताऐं मनोरंजन का प्रमुख साधन रही हैं, वस्तुतः काव्य-दंगल की यह पद्धति अधिक पुरानी नहीं है। सम्भवतः रीतिकाल के प्रारम्भिक होते ही इसका प्रयोग लोकगायकों में हो गया है। तुर्रा एक दल की ओर से गाया जाता है और किलङ्गी दूसरी ओर से। इस प्रकार दो दलों में बुद्धिपरक काव्य का द्वन्द्व छन्दों के बन्ध और संगीत के माध्यम से प्रकट होता है। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय के अखाड़ो की तरह तुर्रा और किलंकी सम्प्रदाय के अलग अलग अखाड़े बन गये थे और उनका नेतृत्व दल का गुरु (मुखिया) करता था। इस पद्धति को धार्मिक स्वरूप भी प्रदान किया गया एवं धार्मिक सिद्धान्तों के खण्डन-मण्डन को लेकर दोनो दलों में एक तरह से पद्यात्मक शास्त्रार्थ हुआ करता था। तुर्रा पक्ष के लोग शङ्कर को अपना आराध्य मानते हैं और किलङ्गी दल वाले शक्ति (पार्वती) के आराधक हैं। एक पक्ष की मान्यता है कि शिव आदि-पुरुष हैं और कलंगी तो आदि पुरुष की अनुचरी हैं। दूसरा पक्ष इसका उत्तर देता है कि किलङ्गी (पार्वती) ही आद्य-शक्ति है और उसी से शिव उत्पन्न हुए हैं। किलङ्गी शिव की अनुचरी नहीं प्रत्युत उनकी माता है।

शिव का प्रतीक तुर्रा एवं शक्ति का प्रतीक किलङ्गी को मानकर धार्मिक सिद्धान्तों का यह छन्द-द्वन्द्व बड़ा रोचक है। गाँव में उक्त दोनों दलों को आमन्त्रित किया जाता था। प्रत्येक दल अपने झण्डे-निशान के साथ हस्त-लिखित पोथियों को लेकर मोर्चा जमा लेते थे। तुर्रा-किलङ्गी की होड़ में उत्तर-प्रत्युत्तर एवं दलीलों का जितना महत्व है उतना ही काव्य के बाह्य स्वरूप को निभाने की क्षमता भी विद्यमान है। यदि एक दल ने किसी प्रसंग में एक छन्द विशेष का प्रयोग कर लिया तो दूसरा दल उसी छन्द की अन्तिम पंक्ति को लेकर बिना किसी छन्द परिवर्तन के उत्तर देने में तत्पर रहता था अन्यथा उनकी पराजय मान ली जाती थी। आशुकवित्व एवं प्रत्युत्पन्न-मति की परख के लिये तुर्रा-किलङ्गी के द्वन्द्व का आयोजन बड़ा ही रोचक रहता है। धार्मिक भावना से पूर्ण तर्क-वितर्कों के अतिरिक्त युग की विशेष घटना एवं यथार्थ जीवन की ओर भी लोक-गायकों का ध्यान रहता था। अनावृष्टि से उत्पन्न काल की स्थिति का चित्रण देखिये.......

'दल इन्दर ने अपना समेट लिया, वरषा की सभी बहार गई
पानी के बिनों फसल नहीं पकी, दुनिया सब हिम्मत हार गई

यह आया वक्त मुसीबत का, सब के गले में तलवार गई
नाज भी खेतों में सूख गया, मूंग, मक्का, जुवार गई ।[1]

आजकल मध्य-भारत के मन्दसौर जिले एवं दक्षिण भाग में स्थित निमाड़ के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में यदा-कदा तुर्रा-किलङ्गी का आयोजन कर लिया जाता है। नीमच के स्वर्गीय ओंकारलाल किलङ्गी के गायन के लिये प्रसिद्ध थे। मन्दसौर में भी तुर्रा और किलङ्गी के दोनों दलों की परम्परा विद्यमान हैं। निमाड़ की परम्परा में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही तुर्रा और किलङ्गी के अखाड़ों में सम्मिलित होते हैं। तुर्रा की परम्परा का प्रवर्तक गुसाई तुखनगीर था एवं किलङ्गी दल का प्रस्थापक सायरली मुसलमान माना जाता है। इन दोनों दलों की मध्यस्था करने के लिये एक तीसरे दल का भी आविर्भाव हुआ। इसको टुन्डा कहते हैं।

मन्दसौर क्षेत्र में भी इसी तरह का एक तीसरा दल है जिसे अनघड़ कहा जाता है। प्रतिभा और सम्मान की दृष्टि से अनघड़ दल का कोई विशेष महत्व नहीं। सभी दल काव्य प्रतियोगिता में अपने दल की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने की चेष्टा करते है। रामदंगल में भी गीत और छंदों के द्वारा होड़ चलती हैं, जवाब-सवाल होते है। गीतों में वर्णित तथ्य के विरोध में दूसरा दल अपनी मान्यताओं को प्रस्तुत कर पहिले दल की उक्ति एवं युक्ति दोनों की काट करता है। राष्ट्रीय आन्दोलन सुभाष, नेहरू और गाँधी जी की महता पर अपने-अपने विचार प्रकट किये जाते हैं। वस्तुतः रामदँगल शहरी लोगों के मनोरंजन का साधन है, और लोक-भाषा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका आविर्भाव इन्दौर नगर में हुआ था। मिल के श्रमिकों में इसका विशेष प्रकार से प्रचार है। ज्ञानी के दल को इस क्षेत्र में बहुत यश मिला। जिस प्रकार धार्मिक दृष्टिकोण के व्यक्ति सत्यनारायण की कथा आदि का आयोजन संगीत के साथ करते हैं, किसी आनन्द-विशेष के अवसर पर व्यक्ति और समिष्ट रूप के रामदंगल का आयोजन भी इन्दौर नगर के सामाजिक जीवन में महत्व रखता है। रामदंगल का प्रचार-क्षेत्र सीमित होने के कारण इस पद्धति का व्यापक विस्तार नही हो सका। शनैः शनैः इस प्रथा का अब लोप होता जा रहा है। सन् १९४४ से ४८ तक रामदंगल की बड़ी धूम रही।

जोगीड़ा नाथ-पन्थी लोकगीत

नवीं और दसवीं शताब्दियों में नेपाल की तराई में शैव और बौद्ध साधनाओं के समिश्रण से नाथ-पंथी योगियों का जो एक नया सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ था, कालक्रम से हिन्दी भाषी जन समुदाय को बहुत दूर तक प्रभावित करने में समर्थ हो सका था।[2]

---

१. देखें, श्री चन्द्रसिंह झाला का लेख। 'मालवी के किसानों का संगीत प्रेम' वीणा-इन्दौर, अक्टूबर १९४४।

२. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ ६।

इन नाथ-पंथी साधुओं को सामान्य जनता जोगी कहती है। पांडित्य के अभिमान एवं श्रेष्टता के दंभ से पोषित अभिजात वर्ग के लोग उपेक्षा एवं तिरस्कार का भाव प्रकट करने के लिए 'जोगड़ा' शब्द का प्रयोग भी करते है। जोगियों की परम्परा यद्यपि अधिक प्राचीन है किन्तु गृहस्थ जीवन में रह कर स्वयं को जोगी अथवा जुगी कहने वाले नाथ पंथियों की एक जाति ही अलग बन गई। ये भीख मांगकर अपनी आजीविका चलाते हैं। यह जाति सम्पूर्ण भारत में व्यापक रूप से फैली हुई है। पंजाब में गृहस्थ जोगियों को रावत, कहा जाता है। गढ़वाल के जोगी 'नाथ' कहलाते हैं और वे भैरव की उपसना करते हैं! बंगाल में योगी (जुगी) नाम की जाति ही अलग है। वैसे वहां की वयण-जीवी जातियां—तांती, गडरिये दर्जी आदि नाथ पंथ को मानती है।[1] मध्य-भारत एवं राजस्थान के गांवों में भी यत्र-तत्र नाथ-पंथी जोगियों के दर्शन हो जाते हैं। इन जोगियों की वेशभूषा भी परम्परागत विचारो की तरह अक्षुण्ण बनी हुई है शरीर पर गेरूआ वस्त्र, मस्तक पर उसी रंग का साफा, हाथ में चिकारा (किंगरी) गले में रुद्राक्ष आदि एक गृहस्थ जोगी की सामान्य वेश भूषा है। भैरव का स्वरूप धारण करने वाले कनफटे जोगी भी विचित्र वेश धारण करते हैं। कमर के नीचे काले अथवा लाल रंग का कपड़ा अधोवस्त्र के रूप में लपेट लिया जाता है। हाथो की कलाई और भुजबन्द के स्थान पर काले ऊन की डोरियाँ बांध लेते हैं। गले में सेली पहिनते हैं। एक कन्धे पर झोली और दूसरे कन्धे पर काली डोरी से बंधा हुआ सिंगी बाजा लटका रहता है। दोनों जांघ और पांव पर घुंघरू बांध लेते हैं। मस्तक पर जटा और कपाल पर सिन्दूर की 'आड़' लगाकर भैरव का रूप प्रस्तुत किया जाता है नेत्रों में रौद्र भाव लाने के लिए कनफटे जोगी पलकों के ऊपर सिन्दुर भी लगा देते हैं। आज के जोगियो का यह स्वरूप एवं सौलहवी शताब्दी में जायसी द्वारा वर्णित योगियों का वेश एक समान है। अभी तक इसमें कोई अन्तर नहीं आया है।[2] ये जोगी चिकारे पर भरथरी गोपीचन्द एवं गुरू गोरखनाथ के सम्बन्ध में गीत गाते फिरते हैं। इन लोक-गीतों में नाथपंथ की साधना एवं परम्परा के तात्विक सिद्धान्त छिपे हुए है। नाथ लोग गोरखनाथ को अधिक महत्व देते हैं। गोरख के सम्बन्ध में अनेक दन्त कथाएं भी प्रचलित हैं, जो उनकी महिमा को प्रकट करती हैं। गोरखनाथ साधना के क्षेत्र में इतने महान माने गये हैं कि स्वयं के गुरु मछेन्द्र नाथ को भी राग-पक्ष में रम जाने पर सचेत करते हैं। 'जाग मछन्दर गोरख आया' की प्रचलित उक्ति में गोरख का प्रभाव जन-मानस पर आज भी अमिट रूप से अंकित है।

---

१ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ संप्रदाय पृष्ठ २०–२१।

२ ………… औ' किंगरी कर गहेउ बियोगी ॥
तन बिसंभर मन बाउर लटा। अरुझा प्रेम परी सिर जटा ॥
चन्द्र बदन औ चन्दन देहा। भसम चढ़ाई कीन्ह तन खेहा ॥
मेखल सिंघी चक्र धंधारी। जोग बाट रुदराछ अधारी ॥
कंथा पहिरि दण्ड कर गहा। सिद्ध होइ कहं गोरख कहा ॥
—जायसी ग्रंथा० (ना० प्र०) जोगी खण्ड, पृष्ठ ५३

गुरु गोरखनाथ सम्प्रदाय (योगी) सम्प्रदायः के सर्व-प्रथम नेता थे। इनका कार्यक्षेत्र नेपाल, उत्तरी भारत, आसाम, महाराष्ट्र और सिन्ध तक फैला हुआ था।[1] विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित लोकगीतों में गोरखनाथ के सिद्धान्तों का कथावस्तु के आवरण में प्रचलित होना उक्त तथ्य को सिद्ध करता है। गुरु गोरखनाथ के सिद्धान्त को प्रकट करने वाला एक कथा गीत मालवी में भी प्रचलित है। लोकगीतों की परम्परा में जोगड़े द्वारा गाये जाने वाले इस गीत को भी 'जोगड़ा' कहते हैं। योग-साधना एवं आत्म चिन्तन सम्बन्धी दार्शनिक तत्वों की अपेक्षा उक्त गीत में भर्तृहरी और रानी पिंगला के कथानक को लेकर जीवन के विराग और राग पक्ष के द्वन्द्व का कलात्मक ढंग से विवेचन किया है। रानी पिंगला जीवन के आकर्षणमय राग-पक्ष एवं प्रवृत्ति मार्ग का प्रतीक है। और भरथरी वैराग्य एवं निवृत्ति मार्ग का प्रतिनिधित्व करता है। राजा भरथरी की दृढ़ता द्वारा राग-पक्ष की विजय प्रदर्शित की गई है। प्रणय, दाम्पत्य एवं शृंगारमय भावों की अभि-व्यक्ति के साथ शान्त रस की उद्भावना और अध्यात्म के तत्वों को कथा में सरल रूप से प्रकट करने का यह प्रयास बड़ा ही रोचक है। मालवी में जोगिड़े का गीत राजा भरथरी द्वारा मृग के शिकार की तैयारी के नाटकीय दृश्य से प्रारम्भ होता है:।

मूली जोगन उज्जैन
से सुना हुआ अंश[2]

सवा रे पेरी पक्का दन चढ़या
राजा भरथरी हुआ तैयार
चुन चुन बाँधे रे राजा पागड़ी
बावन खिड़की रचाया....रामः
खिड़की खिड़की रे राजा नई धरिया
असा सच्चा रे राजा भरतरी
चढ़ या सिंग री सिकार

मुण्डला ग्राम इन्दौर
के एक जोगिडे से प्राप्त अंश

झटपट घोळी कसी लई
चढ़ि ग्या मोती पाग
डाबी बाजू बोले कागलो
बुरा हुआ रे सकुन
खोटा सुगन्या

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ६१।
२. प्रस्तुत जोगिड़ा भिन्न भिन्न व्यक्तियों से सुनकर लिपिबद्ध किया गया है। कथा-प्रसंगों को ध्यान में रखकर, एक गीत के रूप में व्यवस्थित क्रम से संकलित करने की चेष्टा की गई है।

पानी की प्यास लगी
सुण जो गुरूजी म्हारी बात
बारा बारा कोस भटकिया
नइ मिला सिंग सिकार
घोड़ी बाँधी सरवर ताल पै
जाजम दई बिछाय ।

राजा ने सिंगी बजाविया
ऐसे बिन कौन बजाविया
सिर पर डोले है काल
वे बिन बजावे पापी दूसरी
सिर पर डोले है काल
जुग में अम्मर राजा भरतरी.......

वा मिरगा ने मिरगी चालिया
सुण लो वचन हमार
इत्ता सुण मिरगी क्या बोले
प्यास लगी रे कोरे कालजें
गऊ का खुर में मिरगी
जल भरियो
सुण लो वचन हमार
जुग में.......

पाणी होय तो मिरगी पी लेना
सुण लो वचन हमार
नर का पेलां नारी ना पिये रे
क्षत्री धरम घट जाय
जुग में......

वां से मिरगा मिरगी चालिया
गया बिजावन के मांय
जाय ऊबा ठण्डी छाँव में
सोलासे मिरगी में मिरगो एकलो
पम्नी की लग गई प्यास

इत्तासुण मिरगी क्या बोले

राजा ने घेरा डालिया
एजी मिरगी बोली या बात
मिरगी चइये तो दसी बीस मारजे
नी तो हुई जावागां राँड

सुण राजा म्हारी बात
एके ज मारो सो पर बेनली
है नारी पर हाथ मिरगी ना डाला
छतरी धरम घटि जाय
जुग में........

इत्ता सुण भरतरी क्या बोले
सुण मिरगी म्हारी बात
भगना होय तो मिरगा भग जायगा
इत्रा सुण के मिरगी क्या बोली
सुण मिरगा म्हारी बात
आस पास टाटी पुड़ जावां
थ्हारे लेवांगा बचाय
नारी के आड़े ना छिपा
छतरी धरम घट जाय
सुण लो वचन हमार
जुग में........

इतना सुण के भरतरी क्या बोले
सुण ले मिरगा म्हारी बात
भगना होय तो मिरगा भग जाणा
सिर पै डोले है काल
एक झलको राजा मारियो

एक बाण राजा मारियो
लाग्यो जमीन मांय
दूजो बाण राजा मारियो
मिरगी घूमि आड़े जाय
मिरगो तो बची गयो
इत्तो देख राजा क्या बोले
जंगल का जानवर कैसा समझे
तीसरो बाण राजा मारियो
चन्द्रमा लियो बचाय
चौथो बाण राजा मारियो
लियो सूर्यदेव बचाय
पाँचवो बाण फेरी राजा मारियो
सींग दीजो गोरखनाथ ने
घर घर अलख जगाय
खाल दीजो साधु संत ने
लेगा म्हने बिछाय

पाँचवा पे मिरगा गिर गया
पड़्या पड़्या रे मिरगा क्या बोलै
सिंगी देना सिंगी नाथ ने
खाल साधू को देना

आंख देना चंचल नार को
राखे घूंऊट मांय

पाँव देना काबरिया चोर ने
पापी हाथ नी आवे
जिनसे पवितर हुई जावां
खुर्या देना सूर्या गाय ने
लेगा अङ्ग से लगाय
जिनसे पवितर हुई जावां
आंत देना सिरी गौड़ ने
जारी जणोई बनाय
जिनसे पवितर हुई जांवा
इत्ता कहके मिरगो मरि गयो
मिरगा उप्पर मिरगी गिर गई

धुनि पानी की सेवा में रेवूं
नैना देना चंचल नार कू
राखे घूंघट में छिपाय
आंख दीजो भलघर नार ने
लेगा अबी नी फड़काय
पाँव दीजो काला चोर ने
झट से भागी जाय

मट्टी दीजो पारदी ने
देगा दुनियां में बपराय

नाथ-पंथी जोगिड़ों में मृग के शिकार का उल्लेख विचारणीय है ! उक्त मालवी गीत की कुछ पंक्तियों के भाव से मिलता-जुलता हुआ एक गीत शिमले की पहाड़ियों में एवं पंजाब के कागड़ा जिले से भी प्रचलित है ।[1] मालवा , शिमले की पहाड़ी और पंजाब में प्रचलित गीत के भाव साम्य का यह रहस्य श्री श्याम परमार की समझ में नहीं आया और वे इसे कौतूहल का विषय मान बैंठे कि मालवे का गीत पंजाब तक कैसे पहुँचा ?—'कौन जाने लोकगीतों के अपने भाव सदियों से यात्रा करते चले आ रहे हैं, कौन जाने कब इन्हें अपने साथ पंजाब के जिलों या शिमले की पहाड़ियों में लेकर पहुँचा ।[2] वस्तुतः नाथ-पंथी लोक गीतों में मृग के शिकार का प्रसंग कोई रहस्य या जिज्ञासा की वस्तु नहीं है । यह एक आध्यात्मिक रूपक मात्र है । लोभी मृग मन का प्रतीक है एवं शिकारी आत्मा का साढ़े

---

१. चरता चरता हिरण कहता है
ओ मिया शिकारी
मेरे सिंग किसी साधु संत को दे देना
साधु या संत को देना
जो दूर दूर नाद बजावेगा
ओ मिया शिकारी
खलड़ी तो मेरी किसी पंडित को देना
पंडित या उपाध्याय को देना
जो उसपर आसन लगाकर बैठेगा
ओ मिया शिकारी
मेरी आँखे तो किसी नारी को देना
रानी या सुन्दर रानी को देना
जो उन्हें डिबिया में डालकर रखेगी
—देवेन्द्र सत्यार्थी, 'धरती गाती है' ।

२. मालवी लोक गीत, पृ० ३६ ।

तीन हाथ के पर्वत (शरीर) में माया रूपी बेल सुन्दर रूप से फूली-फली है। इसमें मुक्ता फल (मुक्ति) भी लगते हैं। इस बेल का लोभी मृग (मन) इसमें सदा विचरण किया करता है। उसकी शिकार करने के लिए उसके पास संगीत की स्वर-माधुरी को उत्पन्न करने वाला वाद्य भी नहीं है और न मारने के लिए हाथ में धनुष-बाण ही है। ऐसी स्थिति में रहते हुए भी शिकारी अपना अचूक निशाना मार ही देता है। शिकारी जब यह अनुभव करने लगता है कि उस मृग के वास्तव में सींग पूछ आदि कुछ भी नही है। गोरखनाथ का कहना है कि यही मृग योगी है।[1]

गुरू गोरखनाथ ने मृगया के रूपक में मनोमारण की क्रिया को समझाया है। विभिन्न प्रदेशों के नाथपंथी लोकगीतो में उक्त भावना को सैद्धान्तिक दृष्टि से० यक्त करने की पद्धति रूढ़ हो गई है इसलिए भाव-भूमिका आधार एक ही रहता है। प्रदेश-विशेष का लोक-मानस कल्पना का रंगीन स्वरूप इसमें अवश्य प्रदान कर देता है और गीतों में मनोराग और सामाजिक भावना के कुछ यथार्थ चित्रों का अंकन हो जाता है। मृगया के उल्लेख के पश्चात प्रस्तुत गीत में राजा भरथरी और रानी पिंगला का संवाद एक मार्मिक प्रसंग को लेकर चलता है, जहां नारी की वियोग-व्यथा साकार हो उठती है।

कथा सँकेत

मृग के मारे जाने के पश्चात् पारधी-पारधन आते हैं। पारधी को भी राजा का बाण लग जाता है। पारधन सती हो जाती है, मृग पर उसकी सोलहसौ मृगियां भी सती हो जाती हैं। यह देख कर राजा के मन में रानी पिंगला के सत की परीक्षा लेने की भावना जाग्रत होती है। मार्ग में गुरू गोरखनाथ के दर्शन हो जाते हैं। भरथरी उसका शिष्य हो जाता है। गीत का कथा प्रसंग आगे बढ़ता है।

चेला करलो बाबा आपणा
जामे लऊंगा फकीरी राम
अम्मर कर्या काय कारणे
चेला हुई राजा क्या लेगा रे
सुण लो वचन हमार

कांख में झोली हाते चिमटा
धरती मेलां री बाट
अलख जगाया बादळ मेल में
इत्ता सुण के पिंगला क्या बोले
सुण लोंडी म्हारी बात

कँईका जोगी ही द्वारे आविया
जाके भिक्स्या दई आव
काली जंजोरी लोडी पैरली
करल्या सोला सिन्गार
रुमक झूमक मेलाँ उतरी
मन में कर्यो विचार
जुग में.......

ये अलख जगायो बादळ मेल में
भिक्स्या देना री म्हारी मांय
कब का खड़ा रे जोगी द्वार

1. गोरखबानी, पृ० ११९-१२०।

पति बिन झूरे रे कामणी
चन्दा के बिन कैसी चाँदनी
तारा बिन कैसी रात
पति बिन कैसी भामिणी रे
सुण लो बात हमार
जुग में·······

इत्ता सुण भरथरी क्या बोले
सुण रानी म्हारी बात
हमारी इच्छा पे छोड़ देना
करना उज्जैण का राज
के तो राजा ने भांग खाई रे
के तो वेरी ने भरमाया
गुरु के गाली नुगरी नहीं देना
गुरु म्हारा देवन का देव
इत्ता सुण पिंगला क्या बोले
नइ रे भीजी खावन्द कांचली
नइ म्हने गोद रमाया रे
अब तो समज नार धरम ने
अब तो समज धन माया रे
भई का लड़का रानी
धर ले गोद में
गुरु का चेला साथ मर्‌यो
गुरु को गालो नूगरी मत दीजो
गुरू तो म्हारा देवन का देव
दे त्हारा तकदीर ने दोष
जुग में······

भई का लड़का रख ले गोद में
पिंगला करजे उज्जैन नगरी को राज
जाया जिना घर का पूत
पराइ पूत को नइ म्हाने आसरो
नइ म्हने बादलां री छांव
बुरो ने रंडापो देवर जेठ को
कुंवारी रई जाती राजा पिपल पूजती
परणी ने लगायो दोष
परणी ने लगायो राजा दाग
ऐसी विपदा राजा जानती
फेरा नी फिरती लार
छोड़ी ने मती जाओ एकला
किन पै काढूं म्है जिन्दगी
जुग में······

जनम का जोगी राजा जानती
फेरा नी फिरती लार
तोडं रे बामण की जनोया को तार
खोटा सुगन्या में फेरा पड़ गया
भगवाँ कराइदो रे रेसम चूनड़ी
संग में चालू लार
म्है जोगन को भेष धरुं
खाइग्या राजा लोट्या भांग
घर की तिरिया ने मा बाप कैवे
सोनो देखियो राजा संग करियो
निकलो जात कथीर
सोना सरकी पिंगला ऊजरी
चम्पा बराबर म्हारो अङ्ग
चन्दरमा बिना राजा चान्दनी
तारा बिन सूनी रे रैन
बिन दीपक मन्दिर सूनो
त्हारा दरस बिन सूना नैन
उठो बी पिंगला
म्हारे से दूर बैठो
क्यों म्हारी भेख लजाव
तिरया ने संग नी ले जावां

पंथीड़ा के गीत

श्रद्धालु एवं धार्मिक जनता की यह सामान्य प्रवृत्ति रही है कि किसी भी धार्मिक महा-पुरुष के नेतृत्व में विश्वास रखकर स्वयं को एक संयुक्त परिवार का सदस्य समझने लगती है और अपनी सामुदायिक एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न भी करती है। कबीर के सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले व्यक्तियो ने जिस प्रकार 'कबीर-पंथ' को जन्म दिया उसी प्रकार अन्य धर्म-प्रचारको का ध्यान भी अपने पंथ को प्रवर्तित करने की ओर प्रेरित हुआ। फलतः उत्तर-भारत में लाल-पंथ, दादू-पंथ, मलूक-पंथ आदि प्रचलित हो गये।[1] निर्गुण-उपासना के दार्शनिक दृष्टिकोण में एकता रखते हुए भी साधना-सम्बन्धी विभिन्नताओं ने पंथ-निर्माण की प्रवृत्ति को सजग किया। यह सम्भव है कि विभिन्न पंथों का जन-सामान्य के प्रति अलग-अलग आकर्षण रहा हो किन्तु कालान्तर में जन-मानस में पंथ की धार्मिक-भावना स्थूल रूप से टिक सकी और उसके विभेद प्रायः लुप्त हो गये। निर्गुणी संतों के विभिन्न भजनों एवं उद्देश्यों का प्रभाव जनता पर अमिट रूप से अङ्कित रहा है और कबीर, दादू आदि संतो की भावनाओं के आधार पर जनता ने अपनी धार्मिक प्रवृत्ति को प्रकट करने के लिये जिन गीतों का निर्माण किया है, वे लोकगीतों की परम्परा में आज भी सुरक्षित हैं। यह सम्भव है कि निर्गुण पंथ के आदि-प्रवर्तकों की वाणी और उपदेशों का प्रभाव शनैः शनैः क्षीण होता गया और उनके शिष्यों द्वारा व्यक्तिशः रचे गये गीतों ने लोकगीतों का स्वरूप ले लिया। निर्गुण सम्प्रदाय की भावनाओं को प्रकट करने वाले लोकगीतों को मालव में 'पंथीड़ा' के गीत या भजन कहते हैं। अभी तक के संकलित गीतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पंथीड़ा के इन गीतों में कबीर का प्रभाव स्पष्ट होकर अलग ही मुखरित हो उठता है।

इन लोकगीतों में निर्गुण पंथ की निम्नलिखित प्रवृतियाँ परिलक्षित होती हैं :—

१. गुरु सत्गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा।
२. पंच-तत्व-मय विश्व की सृष्टि।
३. आत्मा का स्वरूप।
४. आत्मा एवं परमात्मा का मिलन।
५. संसार की नश्वरता।
६. जीवन का उद्देश्य।

संत मत में गुरु के महत्व को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण होने पर मनुष्य की अज्ञान-जन्य स्थिति परम तत्व तक पहुंचने में बाधक होती है और साधक हृदय में प्रेम और तप-साधना का अपार उल्लास लेकर भी इष्ट-सिद्धि तक नहीं पहुँच पाता। ज्ञान का सद्मार्ग बताकर ईश्वर तक पहुँचाने का 'गुर' बताने वाले किसी ज्ञानी की प्रत्येक जिज्ञासु को आवश्यकता रहती है। कबीर ने गुरु की अनन्त महिमा का इसलिये गुणगान किया कि उनके अभाव में ईश्वर की प्राप्ति असम्भव है। कबीर गुरु को ईश्वर से

१. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तर भारत की संत-परंपरा; —पृष्ठ ३८६—८७।

अधिक महत्व प्रदान करते हैं[1]। गुरु ही अज्ञानी एवं मूर्ख मनुष्य को देवत्व प्रदान करने की क्षमता रखता है[2]। पंथीड़ा के लोकगीतों में परम्परा के अनुसार गुरु के गुणगान किये गये हैं कि आत्म-स्वरूप की वास्तविकता का ज्ञान सद्‌गुरु ने ही प्रदान किया और तब यह अनुभव हुआ कि ईश्वर तो सर्वव्यापी है, घट-घट में रमा हुआ है[3]। सद्‌गुरु के ज्ञान की ज्योति अपार है। वह स्वयं ही ब्रह्म के समान है। जैसे मणि स्वयं प्रकाशमान होकर जगत की अन्य वस्तुओं को प्रकाशित करती है उसी प्रकार गुरु भी ज्ञान की अनन्त ज्योति प्रदान कर शिष्य को ईश्वर के समान बना देता है[4]। कुछ गीतों में परब्रह्म को सद्‌गुरु की संज्ञा प्रदान की गई है। उस अनन्त गुरु का सामिप्य प्रदान करने के लिये, संसार सागर को पार करने के लिये 'ओम' शब्द का जप आवश्यक है[5]।

लोकगीतों का सृष्टि-सम्बन्धी चिन्तन भी सन्त-परम्परा से आबद्ध है। दार्शनिक चिन्तन की यह धारा अत्यन्त ही प्राचीन है। भारतीय दर्शन के अनुसार आदि-पुरुष परमेश्वर ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। सृष्टि की यह परम्परा अनादि है। जिस संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष को अक्षय एवं अनन्त कहा जाता है उसकी जड़ें तो ऊपर की ओर और शाखाएं नीचे की ओर स्थित हैं[6]। आदिपुरुष ब्रह्म के नित्य और अनन्त होने के कारण सबसे ऊपर

---

१. क. सत्गुरु की महिमा अनन्त अनन्त किया उपकार।
लोचन अनन्त उघारिया अनन्त दिखावन हार॥ —कबीर ग्रंथावली, साखी ३।
ख. गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागुं पांय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥ —सं. बा. स. २।

२. बलिहारी गुरु आपणे द्यो हाड़ी के बार।
जिनि मानस ते देवता करत न लागी बार॥ —कबीर ग्रंथावली, साखी २।

३. लाल लाल तू कई करे
सब के पल्ले लाल।
मेरे सत्गुरु ने दीनी बताय
लाली मेरे लालन की
लाल दड़ी चौकन से पड़ी —२।१०५

४. सत्गुरु ऐसा जानता रे, जैसे मणिका झाड़ रे
घोटत घोटत रंग चढ़ै रे, जैसे दीन दयाल रे —२।१०५

५. क. दोई कर जोड़ अणन्त गुरु बोल्या —२।९१
ख. ओम शब्द लई उतरो पार
सेवत सकल घर गुरुजी का मेला
परथम रट लो रणु रणुकार
गुरुजी हो निराकार म्हारा सायबा ने ध्यावाँ —२।९०

६. ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्—भगवद्‌गीता, अध्याय १५ श्लोक

के नित्य धाम को उर्ध्व स्थिति का माना है। और ब्रह्मा द्वारा विरचित संसार वृक्ष को 'अध शाखा' कहकर परम-तत्व को सृष्टि-विधाता ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। आत्मा, परमात्मा एवं जगत की उत्पत्ति-सम्बन्धी दार्शनिक विचारों का यह प्रवाह प्रत्येक युग के संत और विचारकों को तत्व-चिन्तन का आधार प्रदान करता रहा है।

नाथ-परम्परा से प्रभावित कबीर ने वेदान्त के विचारों की पृष्ठ-भूमि पर एवं गीता द्वारा प्रतिपादित संसार-वृक्ष की भावना को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने अक्षर ब्रह्म को ही एक वृक्ष का रूपक देकर संसार को उसके पत्ते माना है[१]। इस वृक्ष की विशेषता में ब्रह्म के अनादि और अविकारी स्वरूप का संकेत भी दिया है[२]। सामान्य मनुष्य अपने चर्म-चक्षुओं से, स्थूल दृष्टि से प्रायः यही देखता है कि वृक्ष की जड़ें तो भूमि मे होती है और उसकी शाखा एवं पत्ते ऊपर की ओर; वृक्ष की जड़ को ऊपर एवं पत्तों के नीचे होने की जो बात कहता है वह पंथ उल्टा ही है[३]। इस उल्टे पंथ की बात को अगम मानते हुए भी लोगों ने अपना विश्वास प्रकट किया है, अगाध श्रद्धा प्रकट की है चाहे वे इसके गूढ रहस्य को समझने में अपने को असमर्थ पाते हैं। कबीर के अनुकरण पर लोकगीतों में भी 'उल्टुड़े पंथ' के उल्टे वृक्ष की चर्चा अवश्य हुई है[४]। पंच-तत्वों को लेकर सृष्टि का निर्माण हुआ है। आठ कोड़ी (१६०) [बीस की संख्या को मालवी में एक कोड़ी कहते हैं] पर्वतों की खूंटियों को गाड़कर सुमेरु पर्वत का स्तम्भ प्रस्थापित किया। पाताल लोक से भी नौ कोड़ी (१८०) नागों को उत्पन्न कर सर्वश्रेष्ठ शेषनाग के मस्तिष्क पर इस पृथ्वी को एक छत्र के समान प्रतिष्ठित किया है। अनन्त ज्योति के चकाचौंध को उत्पन्न करने वाले प्रकाश में विधाता ने इस सृष्टि की रचना कर डाली। निराधार गगन मे नव-लख तारों का समूह प्रकट कर उनमें चन्द्र और सूर्य के दो दीप भी रख दिये। ईश्वर ने इस विश्व का सृजन कर मानव के लिये जोग और भोग ये दोनों तत्व प्रदान किये है[५]। उक्त प्रसंग में आठ कौड़ी और

---

१. अक्षय वृक्ष एक पेड़ है निरंजन वाकी डार
त्रिदेव साखा भये पात भया संसार —कबीर वचनावली पृष्ठ १।

२. तरवर एक पेड़ बिन ठाड़ा, बिन फूला फल लाग्या रे
साखा पत्र कछु नहीं वाके अष्टगगन मुख बागा रे —कबीर ग्रंथावली पृष्ठ १४३।

३. उल्टूड़ा पंथा अगम करने जोओ
जोओ लेना नगर बजारा
अरे कोई परखेला संत कोई प्यारा —२।१११

४. हां ए म्हारी हेली में तो पुरबिया उनका देस की
बिना पेड़ दरखत एक ठाड़ा, छाय नजर नी आवे रे
पान फूल तो दिखे नहीं, बास गगन चढ़ जावे रे —२।११५

५. धमण धमाया पवन उपाया रे
पवनारा जल पाणी किया....हो....जी
पाणी उपर धरती बेपाणी
जिण पे संसार घड़िया रे ×

नौ कोड़ी की संख्या का उल्लेख विचारणीय है। मालवी-परिगणन के अनुसार १६० एवं १८०·की संख्या का महत्व यहाँ पर नहीं। पांच कोड़ी से तात्पर्य है पंचतत्व···पृथ्वी, सलिल, अग्नि, वायु, आकाश एवं मन, बुद्धि और अहंकार यही इस चेतन विश्व की सत्ता का प्रकट एवं सर्व-व्यापी रूप है। आर्यो की अष्ट-मूर्ति शिव के सम्बन्ध में जो कल्पना है वह दार्शनिक पृष्ठ भूमि की प्रतीक है। कबीर आदि संतों ने अष्ट गगन मुख बागा[1] एवं आठ महल[2] का रूपक देकर अष्टधा प्रकृति का उल्लेख किया है। नो कोड़ी का संकेत तो स्पष्ट ही है। मानवी शरीर को नो द्वार का पिंजड़ा कहा जाता है। वज्रयानी तांत्रिक एवं सिद्धों की इस मान्यता ने परम्परा के रूप में रूढ़ विचारों का स्थान ले लिया है। सृष्टि-सम्बन्धी चिन्तन में नव-द्वार का उल्लेख किया जाता है। भारतीय लोक-दर्शन से प्रभावित सूफी कवि जायसी ने भी पदमावत में इसी रूढ़ विचार को ग्रहण किया है[3]।

सृष्टि की उत्पति के पहिले की कल्पना भी बड़ी मनोरम है। भावमय दृश्य जगत का अभाव ही सृष्टि के पहिले की स्थिति कही जा सकती है। यह शून्य-मय स्थिति है। जिससे केवल ब्रह्म की सत्ता ही विद्यमान थी। बीज-ब्रह्म रूप की 'एकोऽहम्बहुस्यामः' की आत्म-विस्तार-भावना पंथीड़ा के एक गीत में आकर्षक ढंग से व्यक्त हुई है—

आप अलख हुई बैठा बूंद अमी रस छूटा
इक बूंद का सकल पसारा पुरस नर फूटा
अवधू मन बिन करम नी होता····

आदो अङ्ग नारी को कहिये आदो हर गुरु नर को
माता पिता का मेल मिलिया करी करम की पूजा
पेला पिता एकला होता पूत जन्म्या दूजा, अवधू····

---

५. × आठ कौड़ी परबत खूंटो रोपिया
सुनो परबत खम्ब धारिया
नो कोड़ी नाग पाताल परगटिया
सिरी नाग पे छत्तर धरिया रे
धुन्धकार से आत्मन रचिया
असंग जुगा में दियाऊं कासा
चांद सूरज दोई दीप धरिया रे
ओगढ़ दन्ता में सब जुग जाने जोग भोग
दोई सापड़िया रे —२।६७

१. कबीर ग्रंथावली पृष्ठ १४३।

२. आठ महल के अन्दर माहीं
संत विलास करें तेही ठाई —रत्नसागर पृष्ठ १५।

३. नवौं खंड नव पौरी, औ' तहँ बज्र केंवार
············नव पौरी पर दसवँ दुवार —सिंहलद्वीप वर्णन, पृष्ठ १६।

धरी असमान सुन बिच नइ था, तभी आपण दोइ कुण था
साती सायर आठ कोड़ी परबत, नव कोड़ी नाग नइ था
आठ रे बाहर बनस्पति नइ थी, नइ था नवलख तारा
बारा मेघ इन्दर नहीं होता, बरसन वाला नर कुण था
बरमा नइ था बिसनू नइ था, नइ था शंकर भोला
कहै कबीर मंड़प नहीं होता, मांडन वाला नर कुण था —२।११८

सृष्टि एवं सृष्टि-कर्ता की अनन्यता को अनुभूति को प्रकट करने में कबीर के वचनों का आश्रय लिया गया है। 'लाल लाल तू काँई करे सब के पल्ले लाल'[1]। आत्मा उसी परमात्म स्वरूप का अंश है। इस सम्बन्ध-भाव को व्यक्त रूप देने के लिये पत्नी और पति के दाम्पत्य सम्बन्ध का, लौकिक रूपक का सहारा लिया गया है। आत्मा तीन गुणों से युक्त (सत, रज, तम) साकार शरीर में व्यक्त होती है।

'सगुण सरुपी नार···· सायब रा गुण पतिदेव मनावो' —२।१११

आत्मा को हंसला (हंस) शब्द से सम्बोधित किया गया है। निर्विकार आत्मा में सद्-असद् का निर्णय करने की क्षमता होती है। किन्तु माया-जन्य अज्ञान के कारण स्वरूप दर्शन के लिये व्यर्थ ही उसे ससार में भटकना पड़ता है। ईश्वर को मन्दिर और तीर्थों में खोजने से क्या लाभ?[2] परमात्म तत्व के मिलन की अनुभूति निर्गुणी संतों ने सांध्य एवं स्पष्ट भाषा में प्रकट करने की चेष्टा की है। ईश्वर की प्रियतम के रूप में कल्पना की गई है और यह उसके आवास की विचित्र कल्पना है[3]। दाम्पत्य-प्रेम के प्रतीक में ईश्वरीय प्रेम प्रकट हुआ है–

लख चौरासी भटकत भटकत अब के मौसम आया रे
अब के मौसम चूकि जाय तो कहीं ठौर नहीं पाया रे
बनड़ा थे भले रिझाया रे····
त्हारी सूरत सुवागन नवल बनी सायब भर पायो रे
हेत की हल्दीने प्रेम रस पोलो तन को तेल चढ़ायो रे
मन पवन हतलेवो जोड्यो वीर परण घर आयो रे
बनड़ा थे ·······

---

१. लाली मेरे लाल की जित देखू उत लाल

२. क्यों रे हंस बायर भटके
उठ पदमिनी पांव पदम तेरे पग माँहि
ऐसा तीर्थ और बताऊं, दरसन कर ले डेरे माय —२।१२४

३. धरन गगन बीच आसमान हमारा
रंग सो बोले सायब न्यारा
एक सून्य भरी पवणा जल पाणी —२।१११

राम नाम का 'मोड़' बंधाया बीरमा वेद बुलाया रे
अब न्याती को हुयो समेलो वीर परण घर आयो रे
राम नाम का मोड़ बंधाया परलो प्रेम सवाया रे
घांच घलन में सेज बिछाई ओढ़े प्रेम सवाया रे

बनड़ा थे……२।११७

नववधू-रुपी आत्मा का विवाह-रूपक लौकिक दृष्टि रस की अनुभूति के आधार उस महा-मिलन के अलौकिक रस का आभास मात्र देने के लिये अपनाया गया है। गगन मण्डल पर अविनाशी प्रियतम के 'समेले के' (सम्मेलन का) आनन्द-भाव कबीर ने भी स्थान-स्थान पर व्यक्त किया है[1]। आत्मा और परमात्मा की एकाकार स्थिति के लिये 'सुरत' शब्द का प्रयोग कबीर आदि निर्गुणी संतों ने अपनाया। नाथ-पंथी योग-साधना की पद्धति अन्तरमुखी है, और साधक विभिन्न, योग-क्रियाओं को सफलता के साथ जब साध लेता है तब उसे इसी व्यक्त शरीर से अव्यक्त रस का अनुभव होता है। योग-साधना में शून्य मण्डल या गगन शब्द ब्रह्म-रंध्र का सूचक है[2]। योग के मतानुसार हमारे शरीर के भीतर मेरु दण्ड की हड्डी की भिन्न भिन्न ग्रन्थियों के रूप में नीचे से ऊपर तक क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणि-पूर्वक, अनाहत, विशुद्ध, एवं आज्ञा नामक छः चक्र पाये जाते हैं। जिनकी बनावट कमल के समान होती है। इन सब के ऊपर अर्थात् हमारे मस्तिष्क के सर्वोच्च भाग में एक सातवां कमल भी है। जो अपने दलों की अधिकता के कारण सहस्त्रसार कहलाता है[3]। प्राणायाम, ध्यान, धारणा आदि से मन की बिखरी हुई वृत्तियों को संकुचित कर शीर्ष कमल में सम्पूर्ण शक्ति का केन्द्रीयकरण एक दिव्य ज्योति के अनुभव का आनन्द देता है। सहस्त्रसार अर्थात् सातों गगन के ऊपर चढ़ जाने के पश्चाद् सद्गुरु 'ब्रह्म' का दर्शन होता है। इस अन्तःसाधना के सम्बन्ध मे इङ्गला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का उल्लेख भी आता है। अन्तर्मुखी त्रिवेणी का प्रयाग शून्य है। ब्रह्म-रन्ध है, कहीं पर इस शून्य चक्र को 'मानसरोवर' भी कहा गया है[4]। मालवी लोकगीत में योग-साधना सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्यों का उल्लेख भी हुआ है—

ओम शब्द ले उतरो पार, परंथम रट लो रणु रणु कार
इंगला जो पिंगल सुकुमाण नार, उई साधा मिल तीन तंत तार

---

१. क. कह कबीर हम ब्याई चले हैं
पुरुष एक अविनासी —कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ८६।

ख. दुहलिन को पिया का संग
दुल्हा तेरा गगन बसेरा —सार वचन पृष्ठ ३७७।

ग. सुनी मंडल में सौध ले परम ज्योति प्रकास —कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १२७।

२. डा० पीताम्बर दत्त बड़वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय; प्रस्तावना।

३. उत्तरी भारत की संत परम्परा; पृष्ठ २०५।२०६।

४. जो पिन्डे सो ब्रह्माण्ड जानो
मानसरोवर करी अस्नान —कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १९९।

बंक नाल का धोहरे लूंब्या, अमरत बरसे वा अखण्ड धार
तिरवेणी में गुरु ध्यान लगाओ, रंग मेल में हुआ परकास
गगन मंडल बीच रच रया रास, सवन-मेल में हुआ परकास
इन मंदर मंदरियों में मुरली बाजे, और बाजा का छ्य्यन पार —२।६०

सहस्रसार कमल में अमृत की अखण्ड धारा प्रवाहित होती है। योगी या साधक इस अमृत-पान के पश्चात् आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है। गुरु की कृपा से एवं नाम-स्मरण से इस अमृत की प्राप्ति होती है।[1]

संसार की नश्वरता के प्रति चेतावनी देने वालों में कबीर को अधिक महत्व दिया गया है। कबीर का नाम ही अपढ़ जनता के लिए आकर्षण का विषय है। कबीर के नाम पर लोगों ने उपदेश देने के लिये अनेक गीत रच डाले। अपनी बात कहकर कबीर की साक्षी दी जाती है···'के गयो कबीरो रे'···। यह संसार नाशवान है, क्षण-भंगुर है, यही भावना ईश्वर के भजन की प्रेरणा देती है। अस्थि-चर्ममय देह को सजा-सँवार कर अभिमान करने वाले व्यक्ति को सावधान किया जाता है।

अरे सांवलिया रट लो····भजन कर लो
चामड़ा की पूतली चाबे बीड़ा पान
आछा आछा कपड़ा पेरे भूठो रे अभिमान
अरे चामड़ी री पुतली रामयो रट लो
चामड़ा का हत्ती घोड़ा, चामड़ा का ऊंट
चामड़ा का सतरंग बाजा बाजे चारी खूंट अरे सांवलिया····
चामड़ा रा राजा परजा चामड़ा रा अदीत
के गयो कबीरो रे···· अरे सांवलिया··· —२।१०८

संसार की स्वार्थ-प्रवृत्ति लोभ एवं मृग-तृष्णा के प्रति ग्रामीण किसान का दार्शनिक चिन्तन देखिये—

चलती को नाम गाड़ो रे, बिगड़ी को बंडी वाड़ो रे
हां पीपल काट के मकान बनायो, घर में घर दियो आड़ो रे चलती····
हंसली बेच के भैंस आणी, भैंस बियाणी पाड़ो रे, चलती····
सत्ती हुई ने रोवण लागी, घर को मर ग्यो पाड़ो रे, चलती····
नरसी मेता ने मामेरो बुलायो, किसनो आइ ग्यो आड़ो रे, चलती··· २।१०७

कबीर आदि संतों ने अपने मत के प्रचार के लिये जिस लोक-भाषा को अपनाया था उसका सर्वाधिक लाभ दलित, निम्न-स्तर की जातियों को हुआ। इसलिए लोकगीतों पर इनका प्रभाव अमिट रूप से छाया हुआ है। ज्ञान, विद्या और युग की वैभवमयी संस्कृति से वंचित एवं तिरस्कृत जनता के लिये लोकगीतों के भाव-भजन ही आत्मतोष प्रदान करने के लिये पर्याप्त हैं।

---

१. गगन मण्डल में ऊंधा कुआ तहां अमृत का वासा
सुगरा होय सुभरि भरी पिये [illegible] जाय पियासा —गोरखवाणी, पृष्ठ ६।

मृत्यु—गीत (मसाणिया गीत)

तत्वज्ञानियों के लिए मृत्यु भय का कारण नहीं बन सकती । मानव-जीवन धारण कर अपने कर्तव्य को सफलता के साथ पूर्ण किये जाने के पश्चात् वृद्धावस्था में कोई व्यक्ति यदि देह-त्याग करता है तो वह शोक एवं वेदना को अपेक्षा गर्व और कर्तव्य की प्रेरणा का विषय बनता है। मालव एवं उसके दक्षिणी अञ्चल में स्थित निमाड़ प्रदेश में किसी वृद्ध एवं संत की मृत्यु पर भजन गाये जाते है । गीतों के आयोजन में मृत व्यक्ति की शव-यात्रा श्मशान भूमि तक ले जाई जाती है। झांझ एवं मजीरे मृदंग आदि वाद्यों के संगीतमय वातावरण में वैराग्य-भावना का एक शान्त वातावरण बन जाता है । मृत्यु के अवसर पर गाये जाने वाले इन गीतों को मसाणिया गीत एवं 'नारदो भजन' कहते हैं । मृत्यु-गीतों को नारदी भजन की संज्ञा शायद उनमें निहित वैराग्य-भावना के कारण दी गई है । नारदी-भक्ति का उल्लेख कबीर ने भी किया है[1] । संसार की माया-ममता के सब बन्धनों को तोड़कर आत्म-रूप में रम जाने वाले जीवनमुक्त साधक को भक्ति का आदर्श आत्म-ज्ञानी एवं परम भक्त नारद ही हो सकते हैं। नारद भगवान के अधिक निकट हैं। आत्मा भी परमात्म तत्व में मिलने के लिए भौतिक शरीर को छोड़कर परलोक के लिये प्रस्थान करती है। अतः मृत्यु के पश्चात् परब्रह्म के निकट जाने पर गाये जाने वाले गीतों को नारदी भजन की संज्ञा देना उपयुक्त ही जान पड़ता है। मसाणिया गीत किसी युवा, बालक अथवा स्त्री की मृत्यु पर नहीं गाये जाते।

मृत्यु गीतों की वैराग्य भावना

वैसे मरण का अवसर ही शोक के वातावरण को उत्पन्न करता है । किन्तु मृत्यु गीतों की वैराग्य-भावना एवं वर्णित विषय इतना प्रभावमय है कि स्थिति का उल्लास, आत्म-स्वरूप का ज्ञान आदि भावनाएं और चिन्तनाएं हृदय को झकझोर देती हैं । उसका प्रभाव श्मशान वैराग्य की अपेक्षा स्थायी होता है। यहीं लोकगीतों में दार्शनिक-चिन्तन से काव्य का रस उमड़ता है। आकर्षण और राग की डोर में बंधा हुआ मनुष्य जब संसार को छोड़ता है, उसके परिजनों का, विशेषकर उसकी पत्नी का मनोविज्ञान, विलाप और करुणा के साथ संसार की असारता एवं मानवी-देह की नश्वरता का भाव जाग्रत करता है।

अरे म्हारा हंसा रे लोभी जीवड़ा रे
काया री बाड़ी मेली मती जाओ
हंसा तू ने आपुण आया दोई जणा
अब अन्त अकेले जाय रे म्हारा हंसा....
तू ने आपुण पिया दूध रे
अब जाता पियो तम नीर रे म्हारा हंसा....
ओ हंसा माय बाप आपण सेव्या दोइ जणा
अब माय बाप छोड़्या मकान —३।१४२

---

१. भगति नारदी मगन सरीरा —कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १९८

प्राण-पंछी के उड़ जाने की कल्पना में नश्वर देह और आत्मा के चैतन्य एवं शाश्वत स्वरूप का संकेत किया गया है।

पींजरा से पोपट उड़ी गया, अरे बैठ्या जमना किनार
जमुना में पोपट न्हइ रया, भई पोपट थारा कारणे
अरे खासी बाग लगाई रे, चम्पा चमेली दोई मोगरी
पड़ो रे पोपट श्रीराम का —३।१४३

वैराग्य-भाव के साथ ही सृष्टि एवं जीवन-सम्बन्धी चिन्तन अधिक गूढ़ एवं गम्भीर हो उठा है। वस्तुतः अन्य गीतों के समान मृत्यु-गीतों पर भी मध्ययुगीन संतों की वाणी का अभीष्ट प्रभाव पड़ा है। सबद, तिरवणी (त्रिगुण), अणहद, सूरत, अष्टकमल आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग निर्गुणी विचारधारा को स्पष्ट करता है।

अरे सोवन वालो हालरो रे, जाकी निरमल जोत
सबद धात को पालणो, अरे पाट्या तीन सौ साठ
एक खील का जड़ाव, अरे जाये ठठिया ठाठ सोवन वालो....
आगासी फूलवारो बाँदिया, लागा तिरवणी डोर
जुगत से झूला चला दिया, अरे हेचा मन रंग मोल सोवन वालो....
अणहत घुगरु बाजिया, अरे सूरता करो विचार
अष्ट कमल दिया जल चड़िया, अरे लागा साँकल डोर सोवन वालो....
नद्दी सिपरा के घाट पै, अरे बैठ्यो ध्यान लगाय
आवता देख्या हो पिंजड़ा, अरे गोद लियो उठाय सोवन वालो... —३।१४४

आत्मा और परमात्मा के प्रेम की अभिव्यक्ति का लौकिक आधार दाम्पत्य—सम्बन्ध है। आत्मा एक नव—वधू है और परब्रह्म उसका प्रियतम ! यह संसार आत्मा का नैहर (मायका) है। प्रियतम आकर अपनी वधू को अपने घर ले जाता है। विवाह के पश्चात् ससुराल में वधू को ले आने की प्रथा को 'आणा' कहते हैं। मृत्यु का आना ही मानो प्रियतम की ओर से प्रेषित किया गया प्रणय का आह्वान है। शव की अत्येष्टि क्रिया के पूर्व जो शृङ्गार सज्जा की जाती है वह आत्म-रूप वधू का प्रिय के महामिलन के समारम्भ का उल्लास है।

आणो आयो रे परिब्रह्म, को सासरिया को जाणो रे
चालो म्हारा सांत की सई होण, अरे अपणा न्हावण जांव
अरे कँई देवा मन्दिर सिदारां, आणो आयो....
चालो म्हारी सांत की सई होण, अरे अपण माथो गुंथावां
कई गुंथ्या कई गूंथणो, मोतियन माँग पुरावां आणो आयो.... —३।१४५

रामदेवजी के गीत

रांमदेवजी के गीतों में वीर-पूजा के साथ धार्मिक-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। रामदेवजी की पूजा एवं गीतों का प्रचार राजस्थान से आई हुई जातियों के साथ हुआ है[1]। रामदेवजी एक ऐतिहासिक पुरुष है। इनका जन्म तंवर वंश में हुआ था। लौकिक मान्यता के अनुसार मारवाड़ का रुनीजा नामक गांव इनका जन्म स्थान माना जाता है[2]। इनकी माता का नाम मेलादे एवं पिता का अजमल था[3]। अजमल इतिहास प्रसिद्ध तंवर वंश के थे। अजमल की वंश-परम्परा के सम्बन्ध में एक दन्तकथा भी प्रचलित है कि सम्राट् अनंगपाल के भाई रणछी और अजमल थे। अजमल की तीन संतानें थीं। दो पुत्र एक कन्या। बड़े पुत्र का नाम ब्रह्मदेव था एवं पुत्री का नाम सुगना। बलराम, कृष्ण एवं सुभद्रा की तरह ब्रह्मदेव, रामदेव एवं सुगना बहिन के प्रति जन-मानस में पौराणिक श्रद्धा आज तक बनी हुई है। राजस्थान और मालव की कृषक-जातियों में रामदेवजी एक अवतार माने जाते हैं। इनका जन्म संवत् १४६१ एवं समाधि-धारण संवत् १५१५ माना जाता है।

रामदेवजी की पूजा के प्रचलन में इतिहास एवं तत्कालीन धार्मिक भावनाओं का बड़ा विचित्र समावेश हो गया है। रामदेवजी के जिस चित्र की पूजा की जाती है उसमें एक अश्वारोही वीर पुरुष का अंकन होता है जिसके हाथ में सेल, (भाला) एवं कमर पर तलवार लटकी है। इसी वीर वेषधारी पुरुष के चित्र की भक्तों द्वारा आराधना की जाती है। सम्भवतः रामदेवजी ने पृथ्वीराज चौहान के समय में धर्मयुद्ध किया होगा। विशेषकर गौ-संहारक मुसलमानों से गायों की रक्षा की होगी। इसीलिये मालव और राजस्थान की कृषक जनता में इनकी पूजा का विशेष प्रचार है। वीर-भावना के साथ ही कबीर आदि संतों की निर्गुण धारा का प्रभाव भी निम्न वर्ग की जातियों पर अधिक पड़ा है। रामदेवजी के चित्र एवं प्रतिमा की पूजा करते हुये गीतों में निर्गुण भाव-धारा के विषयों का प्रतिपादन हुआ है। एक ओर तो अवतार मानकर रामदेवजी के स्वरूप की पूजा एवं उनके द्वारा किये गये कार्यों का अतिशयोक्ति पूर्ण एवं अन्ध-विश्वास से भरा हुआ वर्णन जन-सामान्य की सरल

---

१. क. भली करी कुंवर द्वारका से आय हो
   जद तवरां घर आया हो —२।८९

   ख. मूलक चढ्यो थो तवरां को —२।१००
   तवरा री साग घरई हो —२।८५

२. क. रुनीजा में रामदेव जी मलप्या हो —२।९५

   ख. रुणिजे आयो लम्बो किसन कुमार —२।९४

   ग. रमता रामदेव रुणिजे यो आया —२।९३

३. क. माता मेलादे पिता अजमल, तवरा री साख घरई हो —२।९५

   ख. माता मेलादे गोद में रमिया, पालना में लियो अवतार —२।९८

एवं संस्कृति–शून्य स्थिति का परिचय देता है, वहां दूसरी ओर संत–परम्परा के सम्बन्ध में अस्पष्ट एवं अज्ञान–मिश्रित धारणा भी पाई जाती है।

अश्व पर आरूढ़ एवं वीर की वेशभूषा से सज्जित रामदेव जी के स्वरूप का वर्णन अनेक गीतों से दोहराया गया है[1]। उनके चरित्र की अलौकिक महिमा को प्रकट करने वाली अनेक चमत्कारपूर्ण कल्पित घटनाओं का उल्लेख भी गीतों में स्थान स्थान पर प्राप्त होता है। कुछ रोचक कल्पनाएं उदाहरण के लिये पर्याप्त होंगी—

१. व्यापारी बनिये का जहाज समुद्र में डूबते-डूबते रामदेवजी के द्वारा उबार लिया जाता है[2]

२. रामदेव जी की कृपा से अन्धे को आँख, लंगड़े को पाँव, एवं बन्ध्या को पुत्र प्राप्त होते हैं[3]।

३. असम्भव एवं आश्चर्यजनक कार्य भी रामदेवजी द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। उनके प्रभाव से सूखे हुए बाग एकदम हरे हो जाते हैं। लकड़ी के घोड़े दाना-पानी मांगने लगते हैं और कागज का घोड़ा 'थाई थाई' नाचने लगता है[4]।

रामदेव जी को आराध्य मानने वाली जातियों में बलाई, चमार, धोबी, तेली आदि अनेक अस्पृश्य जातियां हैं किन्तु भांबी (बुनकर जाति) लोगों में रामदेव जी की पूजा

---

१. क. हे पीरजी घोला ने जावे
घोली घोडी ने कुंवर रामदेव चढ़िया —२।८८

ख. लीले घोड़े जीण काठी राम अस्वार —२।९४

ग. हो...हुई घोडा अस्वार
रामदेव जी आया जी, मोटा है रे लिलाट
कण्ठी माल सोवनी जी, असल गेंदुयावाली ढाल
कब्बा कटारी बांकड़ी जी, कमर में बांधी तलवार
हातां लीदी सेलरी जी —२।१०३

२. क. बानियो चाल्यो है बनज वेपार, सारो कुटुम्ब लियो लार
जद झाज समुन्दर में डाली आया कुंवर उबारया झाज २।८८

ख. अरे बूडी झाज बानिया की तारी, बन्जर सिल्ला सरकई हो —२।९५

३. रामदेव जी आया...हो जी, थारी कंचन काया करिया
धनी आन्धा आंदी आया रे, आंदा री आंख खुलाया रे
धनी बांझ बांझी आया रे, बांझ घरे पालणो बंधाया रे —२।९६

४. लाकड़ा रा घोड़ा दाना मांगे, कागद का घोड़ा थइ थइ नाचे हो —२।९९

का विशेष प्रचलन है। मालवी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि रामदेव जी को पण्डा मिल्या तो 'भांबी इ.भांबीज्'.....रामदेव जी के पण्डे (उपासक) भांबी एवं कबीर की जाति के जुलाहों में बहुत कुछ समानता है। भांबियों की तरह जुलाहे भी गृहस्थ थे और इनका पेशा बुनिये का था। इनमें जो साधु हुआ करते थे उनका निर्वाह भिक्षा-वृत्ति से होता था। ब्राह्मण-धर्म में यद्यपि इनका कोई स्थान नहीं था परन्तु मुसलमान धर्म में परिवर्तित हो जाने पर भी नाथ-पंथी जोगियों की धर्म भावना को ये लोग अपनाये हुए थे[1]। रामदेव जी के भक्त सम्प्रदाय को भी नाथ-परम्परा की एक शाखा माना जा सकता है। 'पीर' शब्द के द्वारा नाथों के साथ रामदेव जी की परम्परा को सरलता के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है। क्योंकि रामदेव जी के लिये गीतों मे 'पीर' शब्द का प्रयोग किया गया है[2]। पीर शब्द सिद्ध-पुरुष के लिए प्रयुक्त होता है। नाथों में पीर जी आदि नाम आज भी प्रचलित हैं। गोरखनाथ के गुरु पीर मच्छन्दर की समाधि उज्जैन में आज भी पूजा का स्थान बनी हुई है। यद्यपि उसका स्वरुप अब दरगाह के रूप परिवर्तित हो गया है। नाथ-सम्प्रदाय की भावना और प्रवृतियों को लेकर रामदेव जी के भक्तो की धार्मिक सिद्धान्तों की मान्यता में सरलता अधिक है। सन्मार्ग पर चलना, पर-स्त्री को माता समझना आदि उपदेशो के साथ रामदेव जी से सम्बन्वित भक्ति गीतों में मोक्ष की कामना भी प्रकट की गई है[3]। कहीं कहीं पर संत मत के मर्मज्ञ इन भक्तों ने कबीर की उलट वासियो की पद्धति पर लोक-साधना और विश्व सम्बन्धी चिन्तन भी प्रस्तुत किया है[4]। अनुकरण की प्रवृत्ति पर ही सही मालवी लोक-गीतों में संत-मत का यह सामान्यीकरण इस भूभाग के जन-मानस को भक्ति रस से सिंचित करता रहता है।

---

१. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ३०–३१।

२. क. माता मेला दे हालरियो हलराया
 पीर जी पदारिया ने सत्जुग आया —२।६३

 ख. पीर जी...हो...., सरण आया के तम राखो लाज —२।८८

 ग. म्हारा धनी रामदेव जी मल गया हो, झाड़ी में पीर जी मल ग्या हो
 म्हने धजा–वाला मिल ग्या हो, गोकल में पीर जी मल ग्या हो
 दुवारका में पीर जी मल ग्या हो —२।६५

३. क. साधा घर में नार करकसा डोले, अब धनी गुरु चोरी का मीठा होय
 खलमल हुई जाजे साध सदा मारग चालो रे, पई की नार आंगनिया ऊबी हो
 इनके माता करी बतला जो रे, साधा दूजो रे खेत मत बोओ
 अब धनी बीज अकारथ जाय —२।१०१

 ख. हरि सरने भाटी जी बोले, तारो तारनहार जी —२५२

४. आम्बा पाकी आमली रे पाकी डाड़म दाख, नारे लारा सूवरा घुंमा लंग आवे रे
 कुड़जा हुंडा मेलियन बंट सायर मार, माता जारी ऊबी वन में सुरता बलिया जाय
 आलो संता ये खेती वावां म्हने काला बीज, लेवा नर हुसियार —२।१९४

भजन कीर्तन एवं अन्य गीत

धार्मिक भावना की पुष्टि एवं मनोरंजन की दृष्टि से विविध प्रसंगों पर गाये जाने वाले स्फुट लोक-गीतों में भजन, गरबे, लावणी आदि विशिष्ट गेय पद्धति के गीतों के अतिरिक्त कंजर, बंजारे आदि जातियों के गीत भी उल्लेखनीय है। देव मन्दिरों में राम-जन्म, कृष्ण-जन्म और अन्य धार्मिक उत्सवों पर भजन-मण्डलियों द्वारा गीत और कीर्तन का आयोजन होता है। इस अवसर पर पौराणिक गाथाओं के विभिन्न रोचक प्रसंगों को वर्ण्य विषय बनाकर भजन गाये जाते हैं। स्त्रियों की तरह पुरुष वर्ग भी शरद ऋतु में गरवा उत्सव का आयोजन करता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गरबा गीतों में धार्मिक कथाओं का विवरण मात्र रहता है। भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से इन गीतों का कोई विशेष महत्व नही। संगीत की दृष्टि मे इन पर विचार किया जा सकता है। शरद पूर्णिमा की सम्पूर्ण रात्रि को गरबा गीतों की पूरी धूम रहती है। गणपति, भवानी एवं देवी-देवताओं के आह्वान के साथ उनकी महिमा इन गीतों में गाई जाती है[1]।

लावणियों में ग्रामीणो के सरल उद्गार झलकते हैं। वैसे लावणी की परम्परा महाराष्ट्र एवं सम्पूर्ण उत्तर भारत में विद्यमान है। यह गेय पद्धति मराठों की देन है। और मराठी सैनिक उत्तर भारत में इसे अपने साथ ले गये। लावणी मूल रूप में शृंगार-भावना को लेकर चलती है[2]। किन्तु इसमें जीवन के अन्य अङ्गों का समावेश भी हो गया है। सिनेमा के प्रचलन के पूर्व लावणी-बाजों का जल्सा रात भर जमा करता था। इसमें लोक-भाषा के माधुर्य की अपेक्षा खड़ी बोली की तुकबन्दी ही अधिक रहती है[3]।

सर्व साधारण में प्रचलित गीतों के अतिरिक्त जाति विशेष द्वारा गाये जाने वाले

---

१. क. सुणो गणपति म्हराज सुणो गणपति म्हारा, म्हारा गरबा में वेगा आव जो

ख. यां दूखड़ा में छोड़ी चलिया म्हाराज, हल बल्लड दे हाथ

जाय गिरजा बलि के द्वारे, माता लक्ष्मी साथ

दैव म्हारा गरबा में वेगा आवजों

२. वैसे राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी में भी शृङ्गार-भावना की दृष्टि से लावनी एक लोक धुन के रूप में प्रतिष्ठित है।

३. अरे सुण प्यारे आई असाढ महिने घटा घुमड़ के काली

" " धन्धे से लगे किसान ले लेकर हाली

" " सपने होवे जैसी हों गई हरियाली

" " कहीं पड़ा था पानी पर कई खेत थे खाली

गीतों का लोक गीतों की परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु कंजरों के गीत इसी कोटि में आते हैं। राजस्थानी क्षेत्र के कंजरों में 'लूगर' नाम का गीत विशेष प्रचलित है। परम्परा-गत मान्यता के अनुसार कंजर लोग बगड़ावत गूजरों के मंगत (भिखारी) हैं, और ऐसा कहा जाता है कि उन्हीं के यहां भीख मांगते समय 'लूगर गीत' गाया जाता है। मालव की सीमा में बसने वाले कंजरों में बगड़ावत गूजरों के नायक भोजा की विलासता और वैभव का वर्णन निम्नलिखित गीत में किया गया है—

परमात्मा परमात्मा भोजा सरिया दाता करे दातेर
ये ऊँची ऊँची चढ़िया डागली रे छोरा देखे रे बजार
क्यों ये कठे देखे म्हारे भदवा भोजन ने छाती फाटे
ये कठे देखे रसिया भोजा ने म्हारी छाती फाटे
ये कठे घाँस काटन वाली, ये मोती बेचन वाली
मरजे सो, ने पचास, ये रसिया भोज्या तू मत मरजे
त्हारी पातूरी करे दन उठ थारी आस —१५५

पंचम अध्याय

मालवी लोकगीतों की विशेष प्रवृत्तियां

(अ)

१. लोकगीतों की मानव प्रकृति
२. चिरंतर भावनाओं का उद्रेक
३. कुण्ठा की अभिव्यक्ति एवं वासना-विकार
४. यौन संकेत एवं प्रतीक-शैली
५. गीतों में जादू-टोने और अन्ध-विश्वास
६. प्रश्नोत्तर शैली संवादात्मक प्रवृत्ति

लोकगीतों की मानव प्रकृति

मनुष्य जन्म से ही भय (आत्म-संरक्षण) एवं काम की (वंश विस्तार) की सहज-वृत्तियों को लेकर इस संसार में आता है। विशेष परिस्थितियों में हृदय के अन्य विकार भी उत्पन्न होते हैं। किन्तु मानव-हृदय के मूल भाव वस्तुतः दो ही हैं, सुख और दुःख। उक्त दोनों भावनाएँ सामाजिक धारणाओं पर भी आधारित होती हैं। जीवन की स्थूल क्रिया में अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिये उसे प्रकृति से निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है। प्रकृति की भयंकरता के कारण सबसे प्रथम उसके मन में भय उत्पन्न होता है और अपनी सुरक्षात्मक स्थिति को बनाये रखने के लिए उसका जागरूक मस्तिष्क सक्रिय होता है। प्रकृति की विभीषिका से बचने के लिए अन्ध-विश्वासपूर्ण क्रियाएँ, मान्यताएँ, धर्म, जादू-टोने आदि प्रसारित होते है। आदि-मानव की भय-युक्त प्रवृत्ति शनैः-शनैः अनेक धाराओं में फूट पड़ती है। धर्म का भय, समाज का भय, शत्रु का भय, एवं मृत्यु का भय लोक-मानस में अपनी गहरी जड़ें जमा देता है। मानव की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति लोकगीत में भी प्रकट होती है। भारतीय लोकगीतों मे अभिव्यक्त हुई मोक्ष-कामना की पृष्ठ भूमि में नरक-यातना एवं सांसारिक-कष्टों के साथ ही जन्म-मरण से युक्त आवागमन के चक्र के भय की भावना छिपी हुई है।

लोकगीतों में मानव की दूसरी प्रकृति 'काम' के रुप में प्रकट हुई है। उसके हृदय की उत्फुल्लता एवं क्रीड़ात्मक प्रवृत्ति विलास के अनेक रुपों में अभिव्यक्त होती है। दृश्य जगत के अनेक रमणीय दृश्य, नारी का आकर्षण, उसके सहवास का सुख एवं जीवन का राग पक्ष गीत, क्रीड़ा, नृत्य और विभिन्न उत्सवों के आयोजन के रूप में विशेषता के साथ प्रकट होते हैं।

चिरन्तर भावनाओं का उद्रेक

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की कामना मानव-जीवन के चरम लक्ष्य के रूप में भारतीय लोक-जीवन को क्रियाशील बनाने के लिए निरन्तर प्रेरणा प्रदान करती रहती है। लोकगीतों में धर्म और मोक्ष के अतिरिक्त ऐषणात्रय पुत्र, धर्म और लोक की अभिव्यक्ति व्यापक रूप से होती है। मानव-जीवन की जो चिरन्तर भावनाएं हैं, आकांक्षाएं हैं, वे विविध परिस्थितियों में प्रकट हुई हैं। पुत्र की ऐषणा भारतीय लोक-यात्रा में विशेष महत्व रखती है। चिरन्तर काल तक इस भावना का अविरल प्रवाह गतिमान होता ही रहेगा। पुरुष की अपेक्षा भारत का नारी-मानस पुत्रैषणा से अधिक उद्वेलित होता आ रहा है। पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में पुत्र के अभाव की पीड़ा एवं पुत्रैषणा, (पुत्र-प्राप्ति की आकांक्षा) मानवी रूप में प्रकट हुई है। इस पुत्रैषणा का प्रकृत स्वरूप काम है। जो नारी और पुरुष के प्रथम आकर्षण के रूप में प्रेम की भावना बन कर प्रकट होता है और वासना के रूप में परिणत हो जाता है। काम और वासना की सत्ता अपने व्यापक रूप से जीवन और जगत में पूर्णतः व्याप्त हो जाती है। मनुष्य के हृदय की यह वासना अनेक भावों के रूप से प्रकट होती है। जहाँ भाव है, वहाँ जीवन का शृङ्गार, आकर्षण,

वैभव एवं सुख प्रकट होता है। अभाव एवं अल्पता की स्थिति में वेदना, राग-द्वेष, कुण्ठा एवं घृणा आदि भावों का संचारण होता है। अभाव में दुःख की कल्पना सजग होती है और रुदन, अश्रु, विलाप की मनोस्थिति को प्रकट करने वाले शारीरिक विकार अनुभाव लोकगीतों के स्वरूप में प्रकट होते हैं[1]।

लोकगीतों की स्त्री-प्रकृति ने धार्मिक-भावना और पूजा-कृत्यों में भाव की अपेक्षा रूप को अधिक महत्व दिया है। यहां भावना में उतना विशिष्ट रस नहीं है, जितना मन की मस्ती और उमंग में है। स्त्री और पुरुष की प्रणय-भावना में स्पर्श का आनन्द एक विचित्र सुखानुभूति लिए हुए होता है। स्पर्श में कोमल-स्निग्धता बड़ी सुख-प्रद होती है। अपने प्रेमी के अंगों का स्पर्श सुख-प्राप्त करने की तीव्र लालसा मानव हृदय में होती है। चुम्बन, आलिंगन आदि की प्रेरणा वहीं प्राप्त होगी जहां प्रेम की कोमल भावना पवल्लित होती है[2]। प्रियतम के हृदय से लगने की कामना के साथ नारी आकर्षण का ऐसा जाल बिछाती है जहां उसे प्रिय के स्पर्श का सौख्य प्राप्त हो सके। नारी की यह चिरन्तर कामना मालवी लोकगीतों में रोचक ढंग से अभिव्यंजित हुई है —

> दरजी भंवर जी का भायला, सुई कतरणी हाथ
> ऐसी सिवजो कांचली, फिरे भंवर जी को हाथ —३।९९
>
> सुख दुख पाछे पूछजो, हिरदे लो नी लिगाय[3]
>
> रतन सियालो आवियो जी, ठंड पड़े कटघाव
> मोकल माता सासरे जी, सियाँ मरे भरतार
> स्यालो आयो रे सजन सिलगाओ सिगड़ी
> राजा रा ढोल्या के सिराने उबी जीव की जड़ी —३।१००

स्त्री और पुरुष के साहचर्य-मय जीवन का यह एक शाश्वत सत्य है। जहाँ पति के लिये स्त्री एवं स्त्री के लिए पति अनन्य मित्र हैं, प्रिय पात्र है! मित्रता, आशा और कामना का यह प्रकृत रूप अनन्त भावों की सृष्टि करता है।

कुण्ठा की अभिव्यक्ति एवं वासना-विकार

व्यक्तिगत जीवन में ऐसी अनेक परिस्थितियां आती हैं जब मनुष्य अपने हृदय में उत्पन्न होने वाले भावों को प्रकट नहीं कर पाता। किसी बाह्य परिस्थिति के कारण मनुष्य को विवश होकर अपने मनोभावों को दबाना पड़ता है। मनोभावों का अवरोधन करने की

---

१. C. E. M. Joad द्वारा लिखित The mind and its working. पुस्तक पर आधारित, पृष्ठ ६२-६३।

२. Darwin, 'The expression of emotions in man and animals' pp. 105 ff.

३. मालवी दोहे, दोहा क्रमांक ८९।

विशेष स्थिति भारतीय नारी के जीवन में तो पग-पग पर उत्पन्न होती है । भारतीय सामाजिक व्यवस्था में नारी के भावों के कुण्ठित होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

१. समाज का भय, २. नियमों की बाध्यता
३. लोक-लज्जा का ध्यान, ४. गौरवमय जीवन का मोह

पुरुष तो अपनी अधिकार सत्ता एवं पौरुष के अहं में वैध-अवैध, उचित-अनुचित के परिणाम की चिन्ता किए बिना ही भावों को प्रायः खुलकर प्रकट कर देता है किन्तु नारी के लिए कुल-वधू का शील, सदाचार एवं पतिव्रत-धर्म के आदर्शों का एक ऐसा अंकुश रहता है कि वह धर्म, मर्यादा एवं लोक-लाज के बन्धनों के कारण अपने हृदयगत भावों को व्यवहारिक जीवन में खुलकर प्रकट नहीं कर पाती । प्रणय के क्षेत्र में, दाम्पत्य-जीवन में नारी के लिये स्वयं की रुचि-अरुचि का प्रश्न ही नहीं उठता । जिस पुरुष के साथ माता-पिता या अभिभावकों के द्वारा उसका गठबन्धन कर दिया जाता है, वहीं उसके जीवन का हर्ष-विमर्ष, सुख-दुःख बँधकर जड़ एवं स्पन्दन-हीन हो जाता है । पति चाहे उस पर कितने ही अत्याचार करे, उसके नारीत्व को अपमानित एवं पददलित करे, सास और ननंद का क्रूर-कठोर अनुशासन उसके जीवन को रौंद डाले, किन्तु भारत की गृह-लक्ष्मी, कुल की लाज बचाने के लिये अपने माता-पिता के वंश को लांछित एवं कलंकित होने से बचाने के लिये मौन होकर जीवन में भावों का हलाहल पीकर मन ही मन खीजती रहती हैं । किन्तु मानव-हृदय के उद्वेलित भावों को जब संचरण का अवरोध-विहीन क्षेत्र नहीं मिलता वहां एक भयंकर प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है । नारी के लिये उस प्रतिक्रिया का कार्य और व्यवहार में प्रकट करना सम्भव तो नहीं होता किन्तु उसके हृदय की भाव-घटायें उमड़-घुमड़ कर घनीभूत होती रहती हैं और अवसर पाते ही गीतों में बरस पड़ती हैं ।

लोकगीतों में सामूहिक-गान की प्रवृत्ति होने के कारण व्यक्ति की कुण्ठित भावना को व्यक्त होने का खुला एवं निर्विरोध अवसर मिल जाता है । मालवी लोकगीतों में नारी-मानस की कुण्ठा दो रूपों में प्रकट हुई है—

१. स्वयं के प्रति किए गए अत्याचारों के विरोध के रूप में
२. प्रणय के क्षेत्र की अतृप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति के रूप में

पति, सास-ससुर ननंद आदि के कठोर व्यवहार जो होते हैं, गीतों में उनका यथातथ्य अङ्कन होता है । इसमें घृणा एवं रोषपूर्ण भावों की मृदुल व्यंजना होती है । गृहस्थ या पारिवारिक जीवन में नारी को उत्पीड़न की जो अनुभूति होती है, बना-बनी एवं विवाह के अन्य गीतों में, जहाँ परम्परा-निर्वाह का प्रश्न नहीं रहता स्वच्छन्द रूप से प्रकट की गई है[1] । दाम्पत्य सम्बन्ध को लेकर नारी ने स्वयं की त्रस्त वेदना के साथ जिन अभावों को लेकर वस्तुस्थिति का चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की है, उससे समाज की अनेक छिपी हुई प्रवृत्तियों का उद्घाटन भी होता है । विवाह के धार्मिक एवं सामाजिक बन्धन में बँध जाने के

---

१. देखें गाल-गीत (अध्याय तीसरा)

पश्चात् भी मनोनुकूल पति न मिलने के कारण नारी को असन्तुष्ट रहने का कारण बनता है। अनमेल विवाह का दुष्परिणाम नारी–मानस पर भी पड़ता है। प्रणय की आकांक्षा से पूर्ण यौवन की उमङ्गों में वासना को अतृप्ति से उत्पन्न रोष, अयोग्य पति के विरुद्ध बरस पड़ता है।

दारी बांगड़ सरिकी नार, बालम छोटा सा····
मर जावे त्हारा माय ने बाप
म्हाने लाजा मती मारो भरतार, बालम छोटा सा···· —१।१५२

यौवनमयी स्त्री की यह शिकायत हास्य के आवरण में व्यापक रूप से प्रकट हुई है[1]। भारतीय स्त्रियों की प्रकृति स्वपीड़न प्रधान होने के कारण जीवन की चरम असन्तोषमय स्थिति को भी पचाने की क्षमता रखती है। इसलिये उसकी वासना की अभिव्यक्ति में संकेत भरा रहता है। उस संकेत में हमारे सामाजिक जीवन का वीभत्स चित्र छिपा रहता है। पति के असन्तुष्ट रहने के कारण नारी की दबी हुई वासना में, यौन-सम्बन्धों की ऐसी विचित्र कल्पनायें प्रकट होती हैं, जो व्यवहारिक जीवन में असम्भव होती हैं। मालवी गीतों में पर–पुरुष के सम्बन्ध को लेकर सम्बन्ध-भावना के अनेक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, जहां एक नारी के साथ चार-चार पुरुषों को 'पोढ़ाया' जाता है[2]। पर-पुरुषों द्वारा वस्त्र, आभूषण एवं मिठाई आदि का पुरस्कार दिये जाने के संकेत में अमर्यादित सम्बन्ध कराया जाता है[3]।

---

१. क. बार वरसनी गरणगारी गूजरी
सवा वरस को परण्यो रे —रढियाली रात, भाग ४ पृष्ठ ३७।

ख. पांच वरसनो परन्यो रे हींचके नानेरु वाल्
वीस वरसनी नार रे —वही पृष्ठ ३६।

ग. नाहक यौन दिहे मोर बाबा
बालक कन्त हमार रे····
चौलर अस दुई देवर हमरे
बलमा मुसे अनुहार रे —कविता कौमुदी, भाग ५ प्रस्तावना पृष्ठ १०६।

२. क. चुनचुन कलियां सेज बिछाई, पोढ़न को तैयार
पोढ़न वाली एकलीजी, पोढ़ाने वाला चार —१।२४७।

ख. म्हारी राय····करसदी, ····वाली चढ़ि गई रे
नाचण को खोलो भर् यो रे, " आड़े फिर् या
घड़ई सोना का छोगा दोई चार, बरणई दो झूमका दस पचास —१।१४९।

३. ऊंची सी नगरी नीची सी नगरी, ····वाली रमझम चाली रे
वा तो छम छम चाली रे, ····तो आड़े फिर् या
ओ दारी लाडु की मिजवानी, ओ दारी पेड़ा की मिजवानी

और कुछ स्थलों पर तो 'यार' और 'रसिया' शब्द के संकेत में रतिक्रीड़ा का स्पष्ट उल्लेख भी कर दिया है[1] ।

वासना-विकार की यह चरम स्थिति है । किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाय तो नारी-मानस में अन्य पुरुषों के प्रति आकर्षण का जो भाव रहता है, सामाजिक नियमों के दबाव से उसे रोकना सम्भव नहीं है । पुरुष जिस प्रकार अनेक रमणियो की ओर आकर्षित होता है, नारी भी पुरुष के सौन्दर्य की ओर अपनी प्रकृत प्रेरणा से आकर्षित होती है । भारतीय कला-साहित्य में जहां एक कृष्ण के प्रति अनेक गोप-वधुओं के आकर्षण का चित्रण है, वहां उपपति का पक्ष भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उतना कमजोर नहीं है । नारी और पुरुप के परस्पर सहज आकर्षण के प्रति जहाँ विवाह की रोक बाधक बन जाती है वहाँ गुप्त रूप से पति के अतिरिक्त पति के अन्य सम्बन्धियों की ओर नारी का आकर्षण केन्द्रित होता है । लोकगीतों में देवर–भौजाई की प्रणय-सम्बन्धी कथाएं तो प्रसिद्ध ही हैं । गुजराती लोकगीतों में भाभी और भानेज के अनुचित सम्बन्ध की अभिव्यक्ति का संकेत भी मिलता है[2] । मालवी के एक लोकगीत में वधू एवं नणदोई (पति की बहिन के पति) के सम्बन्ध और प्रणय का उल्लेख मिलता है । वधू अपनी ननंद से क्षमा माँगती है कि नणदोई और पति की एक जैसी वेषभूषा और अनुहार के कारण उससे भूल हो गई[3] । ननन्द के सन्मुख भोजाई के द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण चाहे ननंद को कुछ क्षणों के लिये परितोष दे सके किन्तु नारी हृदय में छिपी हुई वासना के विकार का समाधान तो मनोविज्ञान ही कर सकेगा । सहज प्रवृत्ति से प्रेरित होने के साथ ही इस विकार का प्रमुख कारण पुरुष-विशेष का व्यक्तिगत आचरण भी हो सकता है । पुरुष यदि नारी के प्रति अनन्यता की भावना के साथ

---

१. क. सूनी बाखल को नीम कसों हले
घमचक दे गयो ऊंको यार···दफोरी में —३।५१

ख. ए मोती सरको पानी दियो उतार —३।५२

ग. सालूड़ा में ठण्डा मर गई रे, आजा म्हारी गोंद में —३।४८

२. क. हाँ रे भाणेजड़ा ओवर जाऊं तो ढोले रमे रे
माथानी चूंदड़ी लई गयो विठलो, के गयो ते घाघरो लई गियों विठलो····

ख. जे संग भीणी पियाली जले भरी रे
जे संग दातण करता जाव रे, अचरज लागी अमे संग भाणेज नी रे

ग. एकड़ा पोढ़ण केम करी ए रे, करशुं करशुं भेळा भाभी ने भाणेज
के लाल पियारो भाणेजड़ो —रढियाली रात, भाग ४, प्रवेशक पृष्ठ ३४–३५ ।

३. साजन का भरोसे म्है तो भूली गई, नणदोई सा०
बालम का भरोसे म्है तो भूली गई, नणदोई सा०
अबै बाईजी घणी खम्मा म्है नइ जाणी नणदोई सा० —३।१३६

पुष्प का प्रतीक उल्लेखनीय है [१]। कन्या के लिये चिड़िया एवं वन की कोयल प्रतीक भी कुछ गीतों में प्रयुक्त किये गये हैं [२]। इन प्रतीकों के द्वारा भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ ही अनुभूतियों की तीव्रता एवं गहराई का वर्णन समास-शैली में पूर्ण होने के कारण लोक-जीवन की अभिव्यक्ति को कलात्मक बना देता है।

गीतों में जादू टोने एवं अन्ध विश्वास

ईश्वर के सम्बन्ध में गलत एवं अन्ध-धारणापूर्ण विचार प्रकट करने की अपेक्षा यही अच्छा होता यदि उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के विचार व्यक्त नहीं किये जाते। उसके सम्बन्ध में कुछ गलत बातें कही जाती है, तो देवत्व की प्रतिष्ठा एवं दिव्यता के प्रति एक अपमानपूर्ण तथा हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न होती है और यदि उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में सन्देह एवं अविश्वास प्रकट किया जाता है तो नास्तिक के नाम से कलंकित होना पड़ता है। किन्तु ऐसी आस्तिकता भी किस काम की जो मनुष्य को अन्ध-विश्वास के गर्त में ढकेल कर उसके मस्तिष्क के चिन्तन की स्वतन्त्रता को छीन लेती है। यद्यपि नास्तिकता ग्रहण करना समाज के अनुकूल न हो सके किन्तु आस्तिकता मे परे होने की स्थिति में मनुष्य शुद्ध ज्ञान, चिन्तन एवं प्रकृति के दिव्य क्षेत्र में प्रवेश कर पाता है जहां सत्य का आलोक मानव-मस्तिष्क को ज्योतित करता है। परम्परा से प्रचलित ईश्वर-सम्बन्धी अन्ध-मान्यताओं ने धर्म के स्वरूप को भी इतना विकृत कर दिया है कि बिना किसी कलात्मक आवरण के अन्ध-विश्वासो का खुला एवं नग्न-स्वरूप बड़ा ही भद्दा लगता है और उसका यह कुत्सित रूप उस समय और भी अधिक विकृत हो जाता है जब धर्म के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है [३]। किसी कार्य-कारण के विशेष ज्ञान के अभाव में भ्रान्त मान्यताएँ पलती है और अन्ध-विश्वास तथा टोने-टोटके का प्रचलन प्रारम्भ हो जाता है। जादू-टोने और अन्ध-विश्वास प्राचीन युग की आदिम जातियों की देन है और उसका प्रभाव संसार की सभ्य कही जाने वाली सभी जातियों पर अमिट रूप से छाया हुआ है। वस्तुतः संसार के विभिन्न धर्मों का प्रारम्भिक रूप आदिम जातियों की अन्ध-धारणा और विश्वासो की परम्परा में विकसित हुआ। किन्तु धर्म ने भी अपने ज्ञान-वैभव के पाखण्ड में अन्ध-विश्वासो को नहीं छोड़ा है। सम्पूर्ण विश्व (कुछ वैज्ञानिक चिन्तकों को छोड़कर) अन्ध-विश्वासों से जकड़ा हुआ है। सभ्य और असभ्य जाति के धार्मिक विश्वासों में कुछ अन्तर हो सकता है किन्तु उनकी मूल प्रवृतियो में कोई भी भेद नहीं आ पाया है, चाहे सांस्कृतिक आवरण में कितने ही दार्शनिकता के सुन्दर कलात्मक एवं आकर्षण आवरण डाले जाँय, धर्म अन्ध-विश्वास के बल पर ही टिकता

---

१. क. मांज्यो बूज्यो बाटको रे जिमें धर्‌यो कमल को फूल —मा० वो० २८
   ख. नद्दी किनारे केवड़ो जी नम नम झोला खाय —वही, १२१

२. क. म्हारा हरिया बन की कोयलड़ी, म्हारा बिन सूनो रेगा यो बाग —१।१७६
   ख. चाँदे बैठी चिरकली, उड़ाव म्हारा दादाजी —१।२७८

३. फ्रांसिस बेकन के विचारों पर आधारित, —देखें,
   १. Francis Bacon Selection (Matheson) pp. 59 ff.
   २. Bacon'sEssays by F. G. Selgy. p. 43.

है [1]। किन्तु ज्ञान के मिश्रण से वह आडम्बर-शून्य अवश्य हो जाता है। भारत की धार्मिक-संस्कृति एवं दर्शन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

भारतीय लोक-जीवन में देवी-देवताओं की पूजा एवं उनके सम्बन्ध में अन्ध-विश्वास-पूर्ण मान्यता और टोने-टोटकों की जड़े इतनी गहरी जम गई हैं कि उनको विलग करना कष्टसाध्य प्रतीत होता है। आर्य एवं आर्येतर संस्कृतियों के सम्पर्क-समन्वय के कारण अनेक परम्पराओं का भारतीय जीवन में जो समावेश हुआ है उसका अविच्छिन्न प्रमाण आज के शिक्षित-अशिक्षित, सभ्य-असभ्य सभी स्तर की जातियों में देखा जा सकता है। लोक-जीवन में व्याप्त विश्वास, अन्ध-धारणाएँ एवं विभिन्न आदिम प्रवृतियां लोकगीतों मे प्रतिबिम्बित हुई हैं। देवी-देवताओं की पूजा, मान्यता, लोकाचार, अनुष्ठान, टोना-टोटका एवं लोकेतर सृष्टि-सम्बन्धी अन्ध-विश्वास को व्यक्त करने वाले निम्नलिखित प्रसंग मालवी लोकगीतों में उल्लेखनीय हैं।

१. वृक्षों में देवताओं का वास स्थान
२. रोग को देवता मानना (शीतला)
३. सन्तान-प्राप्ति के लिये मृतकों की पूजा
४. सौभाग्य कामना के लिए वट और पीपल वृक्ष की पूजा
५. वृक्षों में पितरों (पूर्वज) का वास-स्थान
६. मनुष्य-जन्म-सम्बन्धी अन्ध-धारणाएं
७. नजर लगना
८. भूत-चूड़ैल और डाकन
९. कामण (वशीकरण का टोना)
१०. वर्षा के देवता एवं टोने-टोटके
११. जल देवता को नर-बलि
१२. बुधवार को यात्रा करना वर्जित

अनेक भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध में जंगली जातियां अन्ध-विश्वास-युक्त श्रद्धा से अनेक मान्यताओं को अपनाती चली आ रही हैं और उनका यह विश्वास दृढ़ होता है कि उनमें और भौतिक पदार्थों में कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है। अन्ध-श्रद्धा से देखे जाने वाले इन भौतिक पदार्थों के समुदाय को पाश्चात्य विज्ञान के विशेषज्ञों ने टोटेम (Totem) संज्ञा दी है [2]। भारत की विभिन्न जातियो में टोटेम की कमी नहीं है। इन टोटकों का सम्बन्ध यद्यपि आदिम एवं जंगली जातियों से जोड़ा गया है किन्तु भारती लोक-जीवन में इस प्रकार की मान्यताओं को सांस्कृतिक महत्व दिया गया है। हमारे यहां वट और पीपल के वृक्ष का धार्मिक महत्व है। बोधि-वृक्ष के रूप में पीपल का वृक्ष बौद्ध धर्म में भी धार्मिक श्रद्धा का विषय बना हुआ है। स्त्रियाँ अपने सौभाग्य की सुरक्षा एवं मंगल-कामना के लिये वट औ

१. The Riddle of the Universe, Page 247.
२. Dr. Frazer, Totemism, vol. I P. 1.

पीपल का पूजन करती हैं [१]। कुमारी कन्याएँ सौभाग्य प्राप्ति के लिये अपने कुल की प्रतिष्ठा एवं मर्यादा के लिये पीपल की पूजा करती चली आ रही हैं। अश्वत्थ वृक्ष से पितरों का भी सम्बन्ध है। जन-मानस में यह अन्ध-धारणा है कि वृक्षों में भूत, प्रेत, भैरव एवं पूर्वज आदि निवास करते हैं [२]। पूर्वजों के सम्बन्ध में मालवी स्त्रियों के मस्तिष्क में बड़ी विचित्र कल्पनाएँ हैं। वैसे धार्मिक-मान्यता के अनुसार मृत व्यक्ति स्वर्ग में जाता है। किन्तु लोकगात में पितरों का निवास स्थान पाताल में होने की कल्पना की गई है[३]।

रोग से छुटकारा पाने की कामना लेकर स्वास्थ्य-विज्ञान के अभाव में मनुष्य विभिन्न रोगों को भी देवता मान बैठा। ज्वर एवं शीतला जैसे भयंकर रोग भी देवता के रूप में पूजे जाते हैं। भूत और प्रेतों की कल्पना भी यहीं से सजग होती है। किसी कष्ट-दायक रोग से ग्रसित होकर मनुष्य जब काँपने लगता है, तब जंगली जातियों में यह मान लिया जाता है कि किसी प्रेत की छाया पीड़ित व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट हो गई है। हिस्टीरिया या उन्माद से ग्रसित किसी रोगी को भूत या चुड़ैल से अभिभूत मान लेना तो सहज ही है। ईसा से १२०० वर्ष पूर्व इस तरह की अन्ध-मान्यताओं का मिश्र की आदिम जातियों में प्रचलन था [४]। शीतला और ज्वर से भयभीत होकर भारत की अधिकांश जातियाँ आज भी इनका पूजन करती हैं। मालव में विषम ज्वर को 'ओझा बावजी' एवं शीतला को 'सीतला माता' कह कर पूजा जाता है, पूजा के गीत गाये जाते हैं। सीतला को पुत्रप्रदायिनी देवी भी मान लिया गया है।

मृत पूर्वजों के प्रति श्रद्धा की भावना रखने में वीर-पूजा के साथ भय की प्रवृत्ति भी कार्य करती है [५]। भारतीय संस्कृति में पूर्वजों का श्रद्धा के साथ स्मरण एवं कृतज्ञता-प्रदर्शन श्राद्ध की धार्मिक क्रिया के रूप में विद्यमान है। किन्तु लौकिक मान्यता में पूर्वजों, पितरों की कृपा से सन्तान की प्राप्ति होती है। इसी तरह देवी-देवताओं की कृपा के स्पर्श से पुत्र उत्पन्न हो जाता है। भैरव किसी स्त्री के मस्तक पर पालना बाँध देता है और बावन-वीर की अंगुली

---

१. क. पीपल पूजन में गई अपना कुल की लाज —२।१५५

ख. कुंवारी रई जाती ने पीपल पूजती
परणी ने लगायो दाग — जोगिड़ा गीत २।१२३

२. क. आँवल में भेरुजी को बासो रे, कई बिन पत्तर पे बैठी चौसठ जोगनी
भेरुजी ने बोकड़ा चढ़ई दूं रे
कई चौसठ जोगनी ने चढ़ाऊ मदनी धार—तेज्या धोल्या कथा गीत की पंक्तियां

२. म्हारा पिछवाड़े पूर्वजा री पिपली, डालियाँ डालियाँ भो दिवा बले

३. पितर पातालाँ रमी रया, म्हारी गोरी कामद मेल्यो — १।६०

४. Taylor, Anthropology, vol. II pp. 95. ff.

५. वही, पृष्ठ ९०।९१।

के स्पर्श मात्र से नारी की सन्तान कामना पूर्ण हो जाती है [1]। देवी देवता सम्बन्धी अन्ध-धारणा के अतिरिक्त लोक-जीवन में टोने-टोटके के प्रति दृढ़ आस्था आज भी विद्यमान है। सुन्दर बालक एवं रूपवती स्त्री को किसी की कुदृष्टि से अनिष्ट हो जाने का भय सामान्य नारी के मानस पर छाया रहता है। माता तो अपने शिशु को इस अनिष्ट से बचाने के लिये सदैव सावधान रहती है। बच्चे को आँख में काजल लगाते समय कपाल पर भी काजल की बिन्दिया लगा दी जाती है, उस काजल के प्रभाव से बच्चे पर किसी की नजर का बुरा असर नहीं होता है। पर किसी की नजर लगने की आशंका होने पर 'लूण मिरच' करने का टोना भी किया जाता है [2]। सुन्दर स्त्री को सौत की नजर भी लग जाती है [3]। नजर, डाकन चूड़ेल आदि के प्रभाव को दूर करने के लिये जन्तर-मन्तर का प्रयोग भी काम में लिया जाता है। जादू-मंतर से भूत-प्रेत आदि की छाया उतारने वाले को मालवी में 'जाण' कहते हैं। एक गीत में शरीर से डाकन को निकालने के लिये 'जाण' को बुलाने का उल्लेख आया है [4]।

टोने और टोटके का शास्त्रीय रूप मारण उच्चाटण, (अनुचित आकर्षण) सम्मोहन एवं वशीकरण आदि के रूप में प्राप्त होता है। इसमें जहां एक ओर स्वयं के लिये मंगल कामना एवं अनिष्ट-निवारण की भावना रहती है वहां दूसरी ओर अन्य लोगों की हानि करने का भाव भी निहित है। स्त्रियों द्वारा जो टोने-टोटके किये जाते हैं उनमें आत्मीय जनों के प्रति मंगल-कामना के अतिरिक्त दूसरा का अनिष्ट सोचने का भाव नहीं रहता है। विवाह के अवसर पर लोकाचारो के अन्तर्गत अनेक टोटको का आयोजन होता है। वर-वधु को किसी संभावित अमंगल से बचाने के लिये तेल चढ़ने एवं हल्दी लगने के पश्चात् एक हाथ में कंगन बांधा जाता है। जिसमें कोड़ी, लाख और लोहे की अंगूठी तथा एक सूखा मेंढल का फल रहता है। इस कंगन से दुरात्मा का प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा विश्वास है कि सुन्दर वर को परियाँ उड़ा ले जाती हैं। और वधू पर भूत-चुड़ेल आदि की छाया पड़ने का डर रहता है। इसलिये वर-वधू के लिये अपने साथ कटार रखना आवश्यक रहता है। लोहे के शस्त्र से भूत-चुड़ेल डरते हैं। उक्कड़ी (घूरा) पूजन भी इसी दृष्टि से किया जाता है। भूतों का भोजन बाकला (उबाला हुआ धान्य) होता है। घूरा-पूजन की सामग्री में बाकला का समावेश रहता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण टोना वर का वधू के वश मे करने के लिये कन्या-पक्ष

---

१. क. माथे बंधावां त्हारे पालनो, आँगल्या लगावां लोक्योवीर —१।६१।

ख. जो तु हलारलिया को सावलो ए गूजरनी

माथे बंधावां त्हारे पालनो, आंगली लगावा लोक्योवीर —१।६३।

२. चिड़ी ओ चिड़ी त्हारो ब्याव करुं, छः मण चोखा त्यार करुं

म्हारा नाना ऊपर लूण करुं —२।१६।

३. घाट कसूमल ओढ़ीने मरवण मेलां बैठी, सोकड़ ने नजर लगाई म्हारा मारुजी

४. उज्जण नगरी से मारु जी 'जाण' बुलावो, हेड़ाओ बैरन की नजर हेड़ावरे—१।४१।

की स्त्रियों द्वारा किया जाता है। 'कामण' के गीतों के अन्तर्गत इसका विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। मालवी में जादू-टोने के लिये कामण शब्द प्रचलित है और जादू करने वाली स्त्री को 'कामण-गारी' कहते हैं। प्रियतम को वश में करने वाली नारी भी कामण-गारी कहलाती है। ढोला-मारु के दोहों में इस लोक-मान्यता का उल्लेख हुआ है[1]।

मालवी लोकगीतों में वर्णित वर्षा से सम्बन्धित टोनों का उल्लेख किया जा चुका है। यह एक आश्चर्य की बात है कि वर्षा के जादू-टोनों में संसार की सभी जातियों ने मेंढक को अधिक महत्व दिया है। मालव में मेंढक को वर्षा का प्रदाता माना जाता है और 'डेंडक-माता' का आह्वान करने में यही दृष्टिकोण छिपा हुआ है। मेंढकों को लेकर वर्षा के लिये किये जाने वाले टोने-टोटके बड़े ही रोचकता लिये हुए है। अयमारा द्वीप के आदि निवासी तो पहाड़ी के शिखर पर मेंढक की मूर्ति प्रस्थापित कर उसका पूजन करते है। ब्रिटिश कोलम्बिया की आदिम जातियाँ वर्षा के लिये मेंढक को मारकर उसकी बलि चढ़ा देती हैं। भारत में मध्यप्रदेश की कुछ जातियाँ मेंढक को एक डंडे से नीम की हरी पत्तियों के साथ बांध कर द्वार-द्वार पर घुमाती है[2]। वर्षा के लिये ईश्वर-प्रार्थना, यज्ञ एवं जल समारोह का आयोजन करना तो एक सामान्य बात है। जल पृथ्वी के समस्त जीवधारी एवं वनस्पति जगत के जीवन का आधार है। मनुष्य ने प्रकृति के इस सहज-प्राप्य पदार्थ को प्राप्त करने के लिये न जाने कितने क्रूर-अभिचारों की सृष्टि कर डाली। जल-देवता को प्रसन्न करने के लिये मनुष्य की बलि देने तक की घटनाओं का इतिहास लोकगीतों में सुरक्षित है।

मालवी एवं गुजराती लोक-साहित्य में ऐसी अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। जिसमें युवक-दम्पति के बलिदान से 'सूखे सरवर' के तरंगित होवे का विवरण रहता है। मालवी और गुजराती के एक लोकगीत में एक राजा के पुत्र और पुत्रवधू की जल-समाधि के रूप में दी गई बलि का बड़ा ही मर्म-स्पर्शी एवं हृदय-द्रावक प्रसंग है, जहां वात्सल्य और दाम्पत्य-भाव की बलिवेदी पर समाज-सुख की भावना का प्रतिष्ठापन किया है। मालवी में उक्त गीत 'वालावठ' के नाम से प्रसिद्ध है। 'जल देवता ने बलिदान' शीर्षक से एक ऐसा ही गुजराती लोकगीत मेघाणी जी द्वारा सम्पादित किया गया है[3]। मालवी गीत राजा ओड़ की कथा से प्रारम्भ होता है—

राजा काँ से आया दोई ओड़ ओड़नी
गढ़ ओ मथुरा से आया ओढ़नी
राजा मालवा से आया जी ओड़
काँ उतारा राजा ओड़ ने
ओ काँ उतारां रानो ओड़नी

---

१. प्रीतम कामण-गारियाँ थल् थल् बादलियांह —ढोला मारु रा दूहा २८१।
२. Dr. Frazer, Golden Bough, page 74.
३. देखें, रढियाली रात, भाग ३, पृष्ठ १९।

मेलाँ उतारां राजा ओढ़ने
राजा कचेरयां उतारां रानी ओढ़नी ।

राजा-रानी के आगमन पर स्वागत-सत्कार एवं विभिन्न प्रकार के मिष्ट पदार्थ द्वारा भोजन करवाने के विस्तृत उल्लेख के साथ गीत-कथा आगे चलती है—

जी सा खोदाड्या कुआ बावड़ी रे
राजा, सुसरा खंणाया समन्द तलाब
कुआ ने बावड़ी राजा सूका पड्या
तेड़ो तेड़ो रे बामण को डावड़ो
अणाँ सरवर को मोरत देखाड़
पोथी बांची हो बामण माथो ठोके
राजा कहूँ तो कयो नी जाय
राजा नैणा में आया ढलढल नीर
को तो साँची कई दो रे बामण
कहूँ तो साँची राजा कयो नी जाय
राजा बड़ा बेटा बउ को सरवर मांगे भोग

राजा ने कुआ-बावड़ी खुदवाया किन्तु जल के अभाव में वे सूखे ही रहे। राजा ने ज्योतिषी ब्राह्मण को बुलाया। ब्राह्मण ने बड़े संकोच के साथ कहा कि सरोवर तो राजा के पुत्र और पुत्र-वधू का भोग (बलिदान) मांगता है। राजा अपने पुत्र से प्रश्न करता है—

हूं तमने पूछूं म्हारा हंस कुंवर लाड़ला
सरवर मांगे तमारो भोग
हूँ या नी जाणू म्हारा दादाजी
जी पूछो बालावउ ने जाय
धोळा घोड़ा ओ सुसरा जी जीण कस्या
राजा दन तो उग्यो बालावउ का देस
ताता रे पाणी बालावउ मेलियो
सुसरा जी हुई तमारी न्हावारी बेल
ऊनारे भोजन सुसरा जी ठंडा हुआ
होय तमारी जीमवारी बेल
हूं तो नी जीमुं म्हारी बालावउ
के हूं तो क्यो नी जाय
बालावउ सरवर मांगे तमारो भोग
हूँ यानी जाणूं म्हारा सुसरा जी
तमारा बेटा से पूछो जाय

पांचवीं पेड़ी ओ दोई ने पग धरया
राजा छाती पे आयो नीर
छट्ठी पेड़ी ओ बालावड हंस कुंवर पग धरया
राजा खान्दां पे आयो नीर
सातमी पेड़ी ओ बालावड हंस कुंवर पग धरया
राजा चोटी पे आयो नीर
पीठ फेरी ने सुसरा जी कई हाथ जोड़ो
पाछी फरी नें सुसरा जी देख जो
सुसरा जी सरवर को हिलोरा खाय
हाथ सकेलो म्हारी बालावड
बालावड चुड़ला से लामो नीर
खाजो पीजो ओ सुसरा जी राज कर जो
सुसरा जी जीव जो लाख पचास

बालावड का गीत एवं गुजरात में प्रचलित लोकगीतों की शैली, वर्णन-क्रम एवं भावों की समानता लिये हुये हैं। गुजराती गीत में भावों को उदीप्त करने वाले एक-दो प्रसंग अधिक हैं। पुत्रवधू अपने महाप्रयाण की तैयारी करने के लिये ससुर, देवर, ननंद, देवराणी, जेठाणी आदि को उत्साह के साथ प्रेरित करती है[1]। संसार को छोड़ते समय माता के हृदय में

---

१. ऊठो ने रे मारां, समरथ जेठाणी
ऊंना पाणी मेलो जी रे
ऊठो ने रे मारां समरथ देराणी
माथां अमारा गूंथो जी रे
ऊठो ने रे मारां समरथ देरी
बेलड़ियुं शणगारो जी रे
ऊठो ने रे मारां समरथ नणदी
छेड़ा छेडी बांधो जी रे
ऊठो ने रे मारां समरथ ससरा
त्रंगीना (ढोल) वगडावो जी रे
आवो आवो मारां मानसंग डीकरा
छेल्ला धावण धावो जी रे
पूतर जई ने पारणे पोढ़ाड्यो
बेणले आंसुडांनी धार जी रे —वही पृष्ठ २०।२१

अपने पुत्र के लिये जो ममत्व एवं उसके सुख की निश्चिन्तता की जो आशंका रहती है, उक्त गीत में मार्मिकता से प्रकट हुई।

अन्ध-विश्वासों की परम्परा में गृह छोड़ते समय अथवा यात्रा के लिये प्रस्थान करते समय शुभ-तिथि, वार एवं नक्षत्र का भी विचार रखा जाता है। ज्योतिषियों के पंचांग में यात्रा एवं स्थान आदि के लिये मुहूर्त-विधान में दिशा शूल का बड़ा ध्यान रखा जाता है। सामान्य जनता बुधवार को बड़ा अशुभ मानती है। इस दिन घर के बाहर अन्यत्र प्रस्थान करना वर्जित माना जाता है। एक गीत में बुधवार के दिन यात्रा करने के दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। माता, पिता आदि आत्मीय जनों के मना करने पर भी एक युवक दुस्साहस करके अपनी पत्नी को लेने के लिये बुधवार के दिन प्रस्थान करता है और बुधवार के दिन वधू को लेकर अपने घर लौटता है तो मार्ग में सर्प के काटने से वधू की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के प्रसंग को लेकर बुधवार के दिन यात्रा करने के वर्जन की भावना करुणा-पूर्ण वातावरण उत्पन्न कर प्रदर्शित की गई है :—

मांजी बी पूछे ऊंका दाजी बा पूछे
मती जावो उज्जैण देस जी
और तो बरजे छोटी बैन
म्हारा बीरा मती जाजो बुधवार

ने पूछे राधा नार
बालम क्यों आया बुधवार

चल्या चल्या कोस पचास
आ गया मथरा का देस
आम्बा में से नागण उतरी
डस खई गी राधा नार
पति म्हारा क्यों आया बुधवार ?

चन्दन काट के सळो रच्यो
दूत जाई घरे आया
माजी पूछे बाजी बी पूछे
म्हारी कां मेली राधा नार
अपनी बिद्रावन में रास रची है
वां मेली राधा नार
माता का बरज्यां बेट्यां का बरज्या
कां मेली राधा नार
तम क्यों गया बुधवार —३।८१।

अपने पुत्र के लिये जो ममत्व एवं उसके सुख की निश्चिन्तता की जो आशंका रहती है, उक्त गीत में मार्मिकता से प्रकट हुई।

अन्ध-विश्वासों की परम्परा में गृह छोड़ते समय अथवा यात्रा के लिये प्रस्थान करते समय शुभ-तिथि, वार एवं नक्षत्र का भी विचार रखा जाता है। ज्योतिषियों के पंचांग में यात्रा एवं स्थान आदि के लिये मुहूर्त-विधान में दिशा शूल का बड़ा ध्यान रखा जाता है। सामान्य जनता बुधवार को बड़ा अशुभ मानती है। इस दिन घर के बाहर अन्यत्र प्रस्थान करना वर्जित माना जाता है। एक गीत में बुधवार के दिन यात्रा करने के दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। माता, पिता आदि आत्मीय जनों के मना करने पर भी एक युवक दुस्साहस करके अपनी पत्नी को लेने के लिये बुधवार के दिन प्रस्थान करता है और बुधवार के दिन वधू को लेकर अपने घर लौटता है तो मार्ग में सर्प के काटने से वधू की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के प्रसंग को लेकर बुधवार के दिन यात्रा करने के वर्जन की भावना करुणा-पूर्ण वातावरण उत्पन्न कर प्रदर्शित की गई है :—

मांजी बी पूछे ऊंका दाजी बा पूछे
मती जावो उज्जैण देस जी
और तो बरजे छोटी बैन
म्हारा बीरा मती जाजो बुधवार

ने पूछे राधा नार
बालम क्यों आया बुधवार

चल्या चल्या कोस पचास
आ गया मथरा का देस
आम्बा में से नागण उतरी
डस खई गी राधा नार
पति म्हारा क्यों आया बुधवार ?

चन्दन काट के सळो रच्यो
दूत जाई घरे आया
माजी पूछे बाजी बी पूछे
म्हारी कां मेली राधा नार
अपनी बिद्रावन में रास रची है
वां मेली राधा नार
माता का बरज्यां बेट्यां का बरज्या
कां मेली राधा नार
तम क्यों गया बुधवार —३।८१।

आज की वैज्ञानिक पद्धति के दृष्टिकोण को लेकर विज्ञान का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिये जन-सामान्य की ये अन्ध-धारणाएं चाहे कुछ भी अर्थ न रखती हों किन्तु मानव जाति के उस अडिग विश्वास और आस्था की परिचायक अवश्य है, जिससे अपार मानवता का जीवन आन्दोलित होता रहता है।

प्रश्नोत्तर-शैली (संवादात्मक प्रवृत्ति)

लोकगीतों मे संवादात्मक पद्धति का बड़ा महत्व है। संसार के सभी लोकगीतों में यह प्रवृत्ति व्यापक रूप से पाई जाती है। वैसे किसी महाकाव्य, नाटक, उपन्यास अथवा कहानी के लिये संवादों को आयोजना आवश्यक मानी जा सकती है किन्तु किसी एक भाव की स्फुट अभिव्यक्ति के लिये मुक्तक शैली में, संवाद-शैली के प्रयोग का कोई महत्व नहीं रखता। संवाद-शैली में अभिव्यक्ति का सरल रूप रहता है। प्रश्न और उत्तर के माध्यम से विषय अथवा मनोगत भाव को प्रकट करने की चेष्टा की जाती है। लोकगीतों में किसी भाव को प्रकट करने के लिये प्रश्नोत्तर-शैली को ग्रहण किया जाता है। गीत-कथाओं के अतिरिक्त स्फुट गीतों में भी इस शैली अपनाया गया है। इससे वांछित विषय का विवेचन एवं विस्तार बड़ी सरलता के साथ किया जाता है।

मालवी लोकगीतों में प्रश्नोत्तर के द्वारा छोटे एवं बड़े सभी गीतों का सृजन हुआ है। बड़ी से बड़ी गीत-कथाएँ केवल संवाद-शैली में प्रकट हुई है। सीधा वर्णन प्रस्तुत करने की अपेक्षा प्रश्न और उत्तर के माध्यम से कथा-प्रसंग को आगे बढ़ाया जाता है। जिस प्रकार कहानी और उपन्यास आदि में संवादों के द्वारा पात्रों का चरित्र चित्रण होता है। घटनाओं का क्रम आगे बढ़ता है, वातावरण का सजीव चित्र उपस्थित किया जाता है। लोकगीतों में प्रश्नोत्तर-प्रणाली द्वारा कथा एवं गीत का विस्तार होता है। मालवी लोक-नाटक 'मांच' तो पूर्णतः इसी संवाद-शैली में लिखे गये हैं। मालवी लोकगीतों में संवाद के तीन स्वरूप मिलते हैं।

१. स्फुट भावों की व्यंजना में संवाद-पद्धति का प्रयोग।

२. जीवन की किसी एक घटना या प्रसंग को प्रस्तुत करने में संवादों का प्रयोग।

३. दीर्घ-कथाओं में प्रश्नोत्तर प्रणाली।

बालिकाओं एवं स्त्रियों के द्वारा संवादात्मक शैली में स्फुट भावों की व्यंजना अधिक हुई है। इनमें संजा के गीत एवं ऋतुओ के कुछ गीत उल्लेखनीय हैं। भावनाओं का तीव्रतम

स्वरूप कुछ कथा गीतों में प्रकट हुआ है। गूजरी का गीत, सती का गीत एवं नाथ-पंथी जोगिड़ा मालवी लोकगीतों में प्रश्नोत्तर शैली के सुन्दरतम उदाहरण हैं [1]।

---

१. * कुण वीरो चाल्यो चाकरी
कुण वीरो गढ़ गुजरात —१।२०३।

* भंवर म्हारा बागां आजोजी —१।१६४।

* ओ पिया जावो तो लीपूं आंगणा
रे वो तो मांडू चन्नन चौक —१।२१८।

(आ)

मालवी गीतों की विशेष प्रवृत्तियाँ (क्रमशः)

चरित्र-वर्णन

१. मालवी लोकगीतों में वर्णित विशिष्ट चरित्र
२. लोकगीतों की नारी
३. नण्दळ......एक विचित्र पात्र
४. सास-ससुर
५. देवर-जेठ
६. मायड़ी जायो वीर......एवं बहिन
७. सती एवं सौत
८. भायली (प्रेयसी)
९. राजन साजन

लोकगीतों में वर्णित विशिष्ट चरित्र

महापुरुषों के लोकोत्तम चरित्रों को लेकर कथा प्रबन्ध, नाटक एवं काव्य रचने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। मानव की महत्ता एवं उसके अस्तित्व का गौरव उसके चरित्र में है। संस्कृत साहित्य में देव, राक्षस एवं मनुष्य के रूप में तीन प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की गई है। देव एवं देवत्व के प्रतिनिधि राजा के विशिष्ट गुणों को लेकर जन-सामान्य के हृदय में राम—कृष्ण आदि महापुरुषों के चरित्रों के प्रति एक आदर्शमयी प्रतिष्ठा बनी हुई है। धार्मिक महाकाव्यों के विशिष्ट चरित्रों का लोकगीतों के क्षेत्र में साधारणीकरण हो गया है। हृदय की उच्चता और विशालता, व्यक्ति-विशेष या अभिजात्य वर्ग की वस्तु बन कर ही सीमित नहीं रह सकती। झोपड़ी में रहने वाली नारी भी अपने आपको किसी रानी से कम नहीं समझती। उसके यहां भी पुत्र-जन्म के अवसर पर केसर से आंगन लीपे जाते हैं एवं चन्दन-चौक में गज-मोती बिखेरे जाते हैं। नारी हृदय की आकांक्षाएँ, भाव-सम्पत्ति इतनी विपुल है कि वहां दरिद्र एवं धनकुबेर, भिखारिन एवं राजरानी के बीच समाजगत भेद नहीं रह पाता। एक सामान्य नारी भी राम या कृष्ण जैसे व्यक्तित्व से अपने पति का साम्य स्थापित करती है। ससुर के लिये दशरथ, सास के लिये यशोदा एवं कौशल्या, देवर के लिये लक्ष्मण, सुशील कुल-वधू के लिये सीता रूकमणि, प्रेम की अनन्यता के लिये 'राधा नार' एवं दाम्पत्य जीवन की मधुरता के लिये राम-कृष्ण आदि परिवार का प्रतिनिधित्व करते हैं। पौराणिक महिमा के इन चरित्रों का वर्णन करते समय लोक-जीवन में आदर्श और मर्यादा की सीमारेखा संकोच का कारण बन सकती है। सास-ससुर के द्वारा किये गये अन्याया के प्रतिरोध में वहां कुछ भी कहना वर्जित हो सकता है किन्तु वधू-वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली लोकगीतों की सीता अपने पति की माता" सास को कोसने में संकोच नहीं करती कि जिसने देश निकाला (बनवास) दिया। इसके साथ ही जनक पिता की अदूरदर्शिता के प्रति भी वह भावना प्रकट कर देती है कि कर्कशा सास के परिवार में विवाह करने की अपेक्षा जन्म लेते समय ही उसका गला क्यों न घोट दिया।[1]।

भारतीय नारी का सम्पूर्ण जीवन परिवार की परिधि में ही पलता है। कुमार्यावस्था तक पिता के घर एवं विवाहोपरान्त पति के यहाँ उसका जीवन व्यतीत होता है।

---

१. धीरे चलो मैं हारी ओ सियावर
रात दिनो का चलना बुरा है, कंकर लगे अति भारी.......
पांव की पींजन तप गई लक्ष्मण, धूप पड़े अतिभारी, ओ सियावर
सासू के कँई कों, कई रे बिगाड्यो ? दुखड़ो दियो ओ अति भारी, ओ सियावर
राजा जनक घरे जनम लियो है, जन्मता से क्यों नी मारी —१।२३३

नारी के जीवन और जगत का क्षेत्र घर और आंगन तक ही सीमित रहा है। अतः लोकगीतों में अधिकतः पारिवारिक व्यक्तियों के चरित्रों का ही मार्मिक चित्रण हुआ है। नारी के लिये मातृपक्ष की ओर से माता-पिता, काका-बाबा, भाई-भावज आदि का बड़ा ही महत्व रहता है किन्तु सबसे अधिक महत्व भाई-भावज के चरित्र को ही दिया गया है। ससुराल के पक्ष के लोगों में सास-ससुर, देवर-जेठ, देवरानी-जेठानी, ननंद एवं सौत आदि का चरित्र यत्र-तत्र अंकित किया गया है। ससुराल पक्ष के व्यक्तियों के प्रति नारी-मानस ने एक अटल धारणा सी बना ली है। सामान्यतः क्रूरता, नृशंसता, अनुदारता, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों का सम्बन्ध पति-पक्ष के स्त्री-पुरुषों पर लाद कर उनके व्यक्तित्व एवं स्वभाव का एक सार्वकालिक स्वरूप मानो निश्चित कर लिया है। बालिका के सन्मुख जीवन के शैशव में ही ससुराल की भयंकर कठोरता, अप्रिय वातावरण एवं दुःखप्रद स्थिति को प्रस्तुत कर दिया जाता है। साँझी के गीतों में भाई के गुणगान के साथ ही ससुराल के व्यक्तियों के प्रति दुर्भावना का अंकन अवश्य मिलेगा। मातृपक्ष के प्रति अधिक ममत्व एवं पक्षपात तथा पतिपक्ष के प्रति राग-विराग एवं संघर्ष-पूर्ण धारणाओं का बन जाना अस्वाभाविक भी नहीं है। इसके मूल में सामाजिक प्रथाओं के साथ मनोवैज्ञानिक आधार भी है।

हिन्दुओं में विशेषकर मध्यम एवं अभिजात्य वर्ग के हिन्दुओं में दहेज की प्रथा कभी-कभी नारी जीवन के लिये घोर अभिशाप एवं नारकीय जीवन का कारण बन जाती है। निर्धन परिवार की कन्या को अपने पिता के यहाँ से दहेज में वांछित धन-आभूषण आदि प्राप्त न होने की स्थिति में जीवन भर सास-ननंद, देवरानी-जेठानी आदि के अहं-पोषित व्यंग्य-बाणों का प्रहार सहन करना पड़ता है। दुर्भाग्य से निर्धन परिवार की कोई सुशील कन्या धनी परिवार में वधू बन कर पहुँच गई तो एक क्रीत-दासी से अधिक उसको सम्मान नहीं मिल पाता। इसकी प्रतिक्रिया उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल की स्थिति का निर्माण करती है और सामान्यतः ससुराल-पक्ष के सभी नारी पात्रों के सम्बन्ध में उनके नृशंस एवं अमानवीय व्यवहार की अमिट छाप सदा के लिये अंकित हो जाती है। लोकगीतों में सास और ननन्द को क्रूर-कठोर पात्र के रूप में अंकित किया गया है। ससुराल पक्ष के सभी व्यक्तियों की ओर से विरोध की स्थिति उत्पन्न किये जाने पर भी नारी उसको सहन करने की क्षमता रख सकती है यदि उसके पति की स्नेहिल छाया उसका साथ नहीं छोड़े। किन्तु कभी कभी वंश-गर्व से उद्धत होकर पति भी अपने ही पक्ष के लोगों का समर्थन कर पत्नी पक्ष के लोगों की दीनता, हीनता को प्रदर्शित करने के लिये पत्नी पर ही व्यंग्य-बाण छोड़ने की चेष्टा करता है, तब अभागिन कुलवधू अपमान की मर्मान्तिक वेदना से तिलमिला कर स्वयं की दयनीय स्थिति को ठीक तरह से समझने के लिये प्रियतम से विनम्र आग्रह भी करती है [1]।

---

१. सोटा खेलतां बाई रा तोड़ाबन्द पूछे
पीयर गया था गोरी.... कँईं कँईं लाया ? ओ सासू री जाई ॐ

मातृपक्ष की ओर नारी का अधिक झुकाव होने का कारण सम्बन्ध-भावना है। जन्म लेते ही माता की ममतामयी गोद में पलकर पितृगृह के आंगन में हँस-खेलकर शैशव एवं कुमार्यावस्था को जहाँ व्यतीत किया जाता है वह स्थान जीवन के एक अपरिचित वातावरण में आ जाने के पश्चात्[1] रमणीय स्मृतियों का प्रेरक बन जाता है। माता-पिता, भाई-बहिन एवं मायके के अन्य प्रिय व्यक्तियों की याद अधिक आकर्षक बनकर आती है। मायके में भी नारी का अधिक प्रेम 'माड़ी जाये वीर' भाई पर ही अधिक प्रकट हुआ है। भावज तो पराये घर से आई है, वह भाई के समान आत्मीय हो भी नहीं सकती। भाई और बहिन के प्रेम के बीच में व्यवधान बन सकती है। इस कारण ननन्द की तरह भौजाई भी लोकगीतों में एक अप्रिय पात्र है। नारी के हृदय की आस्था, विश्वास और प्रेम मातृपक्ष के सम्बन्धियों में केवल भाई पर ही केन्द्रित होने का व्यवहारिक कारण लिये हुये है। मायके के अन्य लोगों से जीवन में उतना सम्पर्क एवं कार्य-व्यवहार का अवसर ही नहीं आता। भाई ही उसे ससुराल से लिवाने के लिये आता है। मांगलिक अवसरों पर भाई के द्वारा प्रदान की गई 'चूनर' ही उसके हर्ष और उल्लास को बढ़ावा देती है। ससुराल पक्ष के लोगों के सन्मुख बहिन की प्रतिष्ठा एवं उल्लास-भावना की रक्षा करने वाला ऐकमेव भाई ही हो सकता है[2]। काका, बाबा एवं पितृपक्ष के अन्य सम्बन्धी सभी लोग प्रायः निर्मोही एवं स्वार्थी होते हैं। वे ग्राम की सीमा के पास से निकल जाते हैं किन्तु बहिन या बेटी से मिलने के लिये नही आते[3]। जीवन की इस कठोर सत्य-स्थिति के कारण मायके के अन्य लोगों का गीतों में नामोल्लेख भर हुआ है। भाई एवं भावज के चरित्र ही विस्तार के साथ स्थान प्राप्त कर सके हैं।

पुरुष के चरित्र की विशेषताओं के सम्बन्ध में भाई की तरह देवर भी लोकगीतों में वर्णित एक विशेष आकर्षण का केन्द्र है। ससुर-जेठ आदि गुरुजनों के चरित्र के आंशिक चित्र ही प्राप्त होते हैं। इसी तरह सास की अपेक्षा ननंद के चरित्र को अधिक व्यापकता प्रदान की गई है। नारी के कल्पना-लोक के प्रियतम की मधुर झांकी यथार्थ जीवन में अधिक सचाई के साथ प्रस्तुत की गई है। अपनी आशा और आकांक्षाओं के आधार-केन्द्र पति का, प्रियतम का सम्यक् एवं निश्छलता-पूर्ण चरित्र अङ्कित किया गया है, वहाँ पुरुष के व्यक्तित्व को उसकी स्वभावगत कमजोरियां को छिपाने की किंचित मात्र भी चेष्टा नहीं की गई है। प्रियतम के साथ ही नारी के प्रणयपूर्ण जीवन पर कुठाराघात करने वाली सौत भी लोकगीतों

---

* वीरा रे घरे हुआ बधावणा...बलतीखे हो म्हारा तोड़ाबन्द
कँई तम बी बोलो, याँ को दांतण याँज् करिया हो, ओ सासूरा जाया –१।३६

१. विवाह के पश्चात् ससुराल में रहने से तात्पर्य है।

२. माड़ी जायो वीरो एक घणो, म्हारा बरद उजालिया जाय, —१।८२

३. काका बाबा अत घणा म्हारा गोयरा से निकसा जाय, —१।८२

की एक मनोरंजक चरित्र-सृष्टि है। लोकगीतों में देव एवं असुर कोटि के पात्रों की अपेक्षा मनुष्य कोटि के चरित्रों को ही अधिक महत्व प्राप्त हुआ है। वैसे प्रत्येक पात्र एक साधारण मनुष्य होता है। बाहरी परिस्थिति के प्रति उसकी संवेदन-शीलता, उसके राग-विराग, उसके अन्ध-विश्वास, पक्षपात, मानसिक संघर्ष, दया-ममता, करुणा-अनुदारता एवं प्रेम आदि मानवीय गुण अथवा नृशंसता, क्रूरता, अनुदारता आदि अनेक दुर्गुणों का भी उसमें समावेश रहता है। पात्र अपनी सबलता एवं दुर्बलता के साथ समाज में आता है। अतः उसके चरित्र-चित्रण में दोनों पक्षों का उद्‌घाटन होना स्वाभाविक है[1]। लोकगीतों में वर्णित चरित्रों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। लोकगीतो के पात्र अपनी वर्गगत विशेषता लिये हुये होते हैं। उनका चरित्र हमारे पारिवारिक जीवन की सत्यता से परिपूर्ण होता है। सास, ननद, देवर, जेठ, भाई, बहिन, प्रेमी, प्रेमिका (भायला-भायली) एवं सौत आदि पात्र कल्पना-जगत की वस्तु नहीं है। उनकी सजीवता हमारे लिये इतनी सुपरिचित है कि नारी की स्वयं की अनुभूति के साथ हमें उन चरित्रों की वास्तविकता को स्वीकार करना पड़ता है। नाटक, काव्य एवं उपन्यासों में व्यक्तित्व प्रधान एवं वर्गगत विशिष्ट श्रेणी के दो प्रकार के चरित्र होते हैं। किन्तु लोकगीतों में वर्गगत पात्रों का अधिक वर्णन हुआ है। यहां विशिष्ट श्रेणी अथवा वर्गभेद का आधार पारिवारिक सम्बन्ध के व्यक्तियों को लेकर ही माना जावेगा। सास, ननंद अथवा वधू सम्पूर्ण सास, ननंद एवं वधू वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। सम्पन्न, निर्धन, व्यापारी, श्रमिक, जमींदार एवं सामन्त आदि विशिष्ट वर्गों की भावना से यहां कोई प्रयोजन नहीं। लोकगीतों का भावना-क्षेत्र समाज एवं अर्थ-नीति के अस्वाभाविक एवं कृत्रिम विभेदों से प्रायः दूर ही रहा है। विशेषतः नारी का सरल मानस तो इससे अछूता ही रह सका है।

व्यक्तित्व प्रधान चरित्रों में देवी-देवता एवं धार्मिक पुरुषों के चरित्रों की गणना कर सकते हैं। इनमें रामदेवजी, घोल्या आदि महापुरुषों के कुछ अलौकिक कृत्यों का श्रद्धा एवं भक्ति के साथ उल्लेख हुआ है। जीवन के साथ घुला-मिला उनका व्यापक व्यक्तित्व इतना महत्वपूर्ण नहीं है कि उनके चरित्र की महानता का सांगोपांग एवं सम्पूर्ण चरित्र हमें प्राप्त हो सके। चारित्रिक विशेषताओं की दृष्टि से जन-जीवन में उनका प्रभाव नगण्य है। स्फुट गीतों में उनके पुण्य कार्य एवं मानवता की सेवा के लिये किये गये प्रयास का अतिरंजित एवं अन्ध-श्रद्धापूर्ण विवरण मात्र ही प्राप्त होता है।

लोकगीतों में नारी

नारी की प्रशंसा में अनेक सभ्यता एवं संस्कृतियों के द्वारा गुणगान हुआ है। नारी का आदिरूप मां है। उसकी मातृत्व शक्ति के सम्मुख युग-युगों से पुरुष यदि नत मस्तक

---

1. गुलाब राय, काव्य के रूप; पृष्ठ—१७४।

होकर आदर-भाव भी प्रकट करे तो उसका ऊर्जस्वित एवं दिव्य स्वरूप निखरता ही है। भारतीय आर्यो ने संस्कृति के महत्तम निर्माण में नारी के अस्तित्व की सार्थकता को स्वीकार कर जन की धात्री, जननी को उसके वास्तविक गौरव से विभूषित किया था। मानवता का निर्माण करने में जिस नारी की अथक एवं चिरन्तन साधना का स्रोत काल की चुनौती को भी स्वीकार नहीं करता उसे दिव्य गुणों से युक्त देवी के रूप में पूजित भी किया जाय तो वह पुरुष-हृदय की कृतज्ञता का ही परिचायक है। कविवर पंत ने हमारे सांस्कृतिक दृष्टि–कोण से नारी को विभिन्न चार स्वरूपों में देखा है....देवी, मां, चिरसहचरी और प्राण! हमारे पारिवारिक एवं गृहस्थ जीवन में भी नारी अपने वयः क्रम के विकास की दृष्टि से कन्या (बेटी), वधू एवं माता के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। नारी का जीवन एवं उसके शील-सौन्दर्य को महानताओं का उद्घाटन होता है पुरुषों के द्वारा परखे गये नारी जीवन की अपेक्षा स्वयं नारी के द्वारा प्रकट की गई भावनाएं अधिक तथ्यपूर्ण हैं, इससे कोई संदेह नहीं हो सकता। लोकगीतों में नारी मानस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यहाँ सद् और असद् का निर्णय नीर–क्षीर विवेकी हंस की तरह निःसंकोच एवं निर्भीक होकर किया गया है। जन-मानस ने अपनी अनुभूतियों को प्रच्छन्न न रखते हुये सचाई के साथ व्यक्त किया है। इसमें एक ओर जहाँ पारिवारिक क्रूर-कठोर चरित्रों का उद्घाटन हुआ है, वहाँ सरस-सरल एवं मम-त्वपूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को भी नहीं भुलाया गया है। सास की क्रूरताओं का हृदय-द्रावक चित्र मिलता है तो उसे सुपुत्र उत्पन्न करने के कारण गौरवमयी माता के अधिकार से भी वंचित नहीं किया गया है। इसी तरह ननंद की ईर्ष्या-पूर्ण चुगल-खोर प्रवृत्ति होते हुये भी भाई के प्रति उसके सहज एवं अनुपम प्रेम की महत्ता को स्वीकार किया है। मालवी नारी ने अनेक स्थलों पर प्रियतम को 'बाई जी के वीर' नाम से संबोधित किया है। वास्तव में नारी सुखमय स्थिति में अपने हृदय की उदार प्रवृत्तियों को कभी भी छिपाने की चेष्टा नहीं करती। सास की ओर से यदि वधू को जरा भी सहानुभूति पूर्ण व्यवहार प्राप्त हुआ कि वह गीतों में अंकित हो जाता है—

> सपूत केवाया रे नव रंग ढोला, ए राजा तमारी मांजी तो गंगा बउ
> सुरज दुबारिया पालने हिन्दाया, आंचला धवाया रे नवरंगिया ढोला
> ए राजा तमारी बेन्या सम्पत बई, आरती संजोड़े मोतीड़ा संवारे
> तमारे तिलक करे रे नवरंगिया ढोला —१।८४।

यहाँ सास के लिये गंगा बउ, काकी-सास के लिये इन्दा बउ एवं ननंद के लिये सम्पत बाई आदि नाम संज्ञा के साथ विशेषण का भाव भी प्रकट करते हैं जिसमें हृदय की श्रद्धा एवं पारिवारिक सुख का गर्व छिपा हुआ है। परिवार के व्यक्ति किसको प्रिय नहीं होते। ससुराल पक्ष के व्यक्तियों की ओर से उत्पीड़क व्यवहार होते हुये भी मालवी नारी उनके अभाव को सहन नहीं कर सकती है। पारिवारिक जीवन की चेतनता के लिये सास-ससुर, देवर-जेठ, देरानी-जेठानी आदि सभी आत्मीयजनों की आवश्यकता होती है। सौत का होना

भी आवश्यक है, ताकि उससे झगड़ने का आनन्द भी लिया जा सके। यदि भरा-पूरा परिवार हो तो वधू को भी अपने अस्तित्व का महत्व एवं कुलवधू के कर्तव्य की वास्तविकता का अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है। परिवार-विहीन पति के साथ रह कर नारी को गार्हस्थ जीवन के सम्पूर्ण सुख की कामना पूरी नहीं हो पाती। भरे-पूरे परिवार की महिला का समाज में सम्मान भी होता है। इस पारिवारिक सुख एवं गर्वोन्मुख शान्ति के अभाव में त्रस्त नारी अपना जीवन धारण करना भी निरर्थक समझती है। यदि घर में उसे जहर प्राप्त हो जावे तो उसे खाकर अथवा घर में कुंआ हो तो उसमें डूब मरना उसे स्वीकार है किन्तु उसे परिवार-शून्य एकाकी जीवन व्यतीत करना असह्य एवं भार-स्वरूप है[1]।

भारत की गृह-लक्ष्मी नारी का यह शाश्वत चित्र है। भारतीय नारी को आभूषणों से शृङ्गार करना जितना प्रिय है, उससे अधिक भाव-पूर्ण एवं मंगलमय विराट-शृङ्गार की कल्पना उसका पति एवं सम्पन्न परिवार है। उसके जीवन का मनोरथ एवं लोक-यात्रा के उद्देश्य की पूर्ति का रहस्य उसकी उदार और स्नेह से पोषित भावना में निहित है। वह अपने परिवार के व्यक्तियो को ही जीवन का वास्तविक शृङ्गार मानती है। स्वर्णादि के आभूषणों से तो उसके शारीरिक सौन्दर्य की क्षणिक झांकी ही प्रस्तुत होगी। किन्तु उसके हृदय की भावनाओं का दिव्य सौन्दर्य अमिट रहेगा। उदात्तमना नारी ने सम्पूर्ण परिवार को ही आभूषण माना है —

ससुर	रावजी (घर के राजा)
सास	रतन भण्डार
जेठ	बाजूबन्द
जेठानी	बाजूबन्द की लूंब (झूमक)
देवर	दांत (हाथीदांत) का चूड़ा
देराणी	चूड़े पर मजीठ (लाल रंग)
पुत्र	कुल का दीपक
वधू	दीपक की लौ
बेटी	हाथ की अंगूठी

---

१. सुख की नद्दी में पिया नीर नइ है
कुमलाया फूलन में बास नइ है
घर में सुसरा होता तो पिया छेड़ो काड़ता
घर में सासूजी होता तो पिया काम पूछता
घर में जेठानी होती तो पिया छेड़ो काढ़ता
घर में देवर होता तो पिया हांसी हो करता
घर में देरानी होती तो पिया काम छोड़ता
पेट में छोरो हो तो पिया बउवड़ लावता

जमई	चमेली का फूल
ननंद	कसूमल कांचली
नन्दोई	गजमोती का हार
सायब (प्रियतम)	सिर का सेवरा
सायवाणी (वधू)	सेजा री सिणगार [1]

हमारे गृहस्थाश्रम को सुखी सम्पन्न एवं स्वर्ग तुल्य बनाने का सम्पूर्ण श्रेय कुलवधू को ही दिया जावेगा। पराये घर जाकर भी आत्मसमर्पण एवं आत्मदान की अनंत ज्योति से भावना के स्वर्ग को प्रत्यक्ष जीवन में उतारने की वह चेष्टा करती है और उसमें सफल भी होती है, तो उसे इस लोक की महिमामयी देवी कह देना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा। भारतीय नारी का यह शाश्वत रूप बड़ा व्यापक है। एक आदर्श वधू की इससे बढ़कर और क्या कल्पना की जा सकती है जब उसके अन्तर से यह भावना उमड़ती है········

'ससुर मेरा अगले जन्म का पिता है, सास भी अगले जन्म की माता है।
जेठ मेरा आषाढ़ी मेघ है, जेठानी बादलों में चमकती हुई बिजली है' [2]।

भावना-प्रधान नारी का यही रूप भारतीय संस्कृति एवं परिवार की आधार-शिला है। साध्वी एवं सुशील वधू के रूप मे वह आदरणीय गुरुजनों के द्वारा भी श्रद्धा और आदर की भावना से देखी जाती है। किन्तु यह तो भारतीय नारी के जीवन का एक पक्ष है। इसमें वह ममता एवं वात्सल्यमयी माता, कुल और समाज की प्रतिष्ठा को ज्वाल्यमान करने वाली गृहिणी एवं प्रियतम के हृदय की राजरानी के रूप में प्रकट हुई है। सामान्य वधू के जीवन का जहाँ तक प्रश्न है उसमें सुख के क्षणों का स्थान नगण्य ही है। उसके जीवन का अधिकांश भाग अभिशाप की छाया में ही व्यतीत होता है। लोकगीतो के वधू-वर्ग ने अपनी वेदना के चित्रों को भी प्रस्तुत किया है। ससुराल और मायके के बीच पारिवारिक जीवन की शृङ्खला की कड़ी को जोड़ने वाली वधू भारतीय सामाजिक व्यवस्था की सम्पूर्ण सृष्टि है। किन्तु मनोविज्ञान की दृष्टि से वह एक गूढ़ पहेली भी है। अपने प्रियतम को पाकर वह सुखी जीवन बिता सकती है। किन्तु सास के कठोर व्यवहार एवं कटुतापूर्ण स्थिति के कारण वह अपने मायके को भुला भी नही पाती।

नारी के जीवन का भावना से कुछ हटा हुआ निम्न स्तर उतना अप्रिय तो है किन्तु उसके द्वारा नारी की विभिन्न मनःस्थिति के साथ समाज में प्राप्त नारी के नाना रूप प्रकट

---

* पेट में छोरी होती तो पिया सासरे मेलता
कोठी में डब्बी होती तो पिया खाय मरां
घर में कुओ होय तो पिया डूब मरां —१।२२४

१. राजस्थान के लोकगीत —पृष्ठ ११२-११३
२. रढियाली रात, भाग ३ —पृष्ठ ४५-४६

हो जाते हैं। कठोर सास, ईर्ष्यालु ननंद, गुणहीना पत्नी आदि के चित्रों के अतिरिक्त मालवी नारी ने नारी के लिये ही कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिसमें मानव-स्वभाव के साथ ही समाज की हीन भावना के कुछ स्तर का रहस्य प्रकट हो जाता है। बांगड़, दारी और जेळू ये तीन शब्द अपने आप में नारी के आंशिक चरित्र एवं व्यक्तित्व को छिपाये हुये हैं। इन तीनों शब्दों का प्रयोग गालियों के गीतों में हुआ है [1]। दारी शब्द तो स्पष्ट ही संस्कृत भाषा का है किन्तु यहाँ दार का अर्थ पत्नी अथवा स्त्री नहीं होता उसमें सख्यत्व एवं निकटता का भाव निहित है। एक नारी दूसरी नारी को 'दारी' शब्द से सम्बोधित करती है। 'बांगड़' शब्द में हृष्ट-पुष्ट शरीर को नारी का व्यक्तित्व सामने आता है, जहाँ कोमलता, माधुर्य एवं वचन-चातुर्य आदि विशेषताओं की अपेक्षा शारीरिक शक्ति का बाहुल्य रहता है। (जेळू) ईर्ष्यालु स्त्री का कहते हैं, जो स्वयं के अतिरिक्त अन्य नारी की सुख-समृद्धि को नहीं देख सकती और उसके हृदय में ईर्ष्या की जलन उत्पन्न हो जाती है। संतान-विहीन नारी जब दूसरे के बच्चे को देखकर ईर्ष्या करने लगती है उसे भी जेळू कहकर तिरस्कृत किया जाता है [2]। नारी के लिये 'मालजादी' शब्द का प्रयोग भी हुआ है। यह शब्द नारी के लिये बड़ा ही अप्रतिष्ठामय है। माँ-बाप की मूर्खता एवं पाप का प्रायश्चित बेचारी विवश नारी को समाज के व्यंग्य-प्रहार सहते हुये करना पड़ता है। मालवी में 'माल' जंगल को कहते हैं। जंगल में उत्पन्न नारी के प्रति घृणा-भाव का कारण है, उसकी माता की कामुकतापूर्ण नीच वृत्ति! किसी भी गृहिणी को खेत-खलिहान या जंगल ढूँढ़ने की आवश्यकता ही क्योंकर उत्पन्न हो सकती है। इसलिये 'मालजादी' शब्द मालवी में एक भयंकर गाली के रूप में प्रयुक्त होता है। गीतों में भी उक्त भाव को प्रकट करने के लिये मालजादी शब्द का प्रयोग हुआ है।

नणदल (एक विचित्र पात्र)

भारतवर्ष के पारिवारिक जीवन में सास की तरह ननंद को एक निर्दयी पात्र माना गया है। ननंद और भावज के बीच प्रतिदिन होने वाले कलह, ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना लोक-साहित्य की चिरन्तर वर्णित सामग्री है। सामाजिक जीवन में कुल-वधू लोक-लज्जा के कारण ननंद के अवांछनीय व्यवहार एवं अत्याचारों का स्पष्ट रूप से विरोध भले ही न करे किन्तु लोकगीतों में कुल-वधू की पीड़ित आत्मा मुखर हो उठती है। ननंद के रूप में नारी की दयनीय स्थिति होती है। एक ओर जहां वह अपने 'माड़ी जाये वीर'...भाई के जन्मसिद्ध प्रेम की आकांक्षा रखती है, वहां दूसरी ओर भाई एवं भतीजे की मंगलकामना के लिये भी उसके हृदय का अनन्त भाव-भंडार कभी भी रिक्त नहीं होता। किन्तु भाई की लाड़ली बहिन

---

१. क. दारी बांगड़ सरीकी नार, बालम छोटा सा.......
   ख. घोड़ो हिस्यो रे बांगड़ बढ़ ड़े चढ़ी—

२. सीतलजी की जेलू पूछे रे दादा कीं को घोड़ो ?

के प्रति भावज का व्यवहार अत्यन्त ही क्रूर एवं आत्मीयता से विहीन होता है। भौजाई द्वारा ननंद के अपमान की अनेक काल्पनिक घटनाओं के चित्रों को लोकगीतो में उतारा गया है [1]। इसमें भावज द्वारा ननंद को पानी मंगाने पर भी नही दिया जाता, भोजन आदि के द्वारा सत्कार करना तो दूर रहा। घर आया दुश्मन (शत्रु) भी पावणां (अतिथि) होता है किन्तु मालवी नारी अपनी ननंद के प्रति जरा भी दया का भाव नहीं रखती। ननंद के लिये भावज की भावना अपमान तक ही सीमित नहीं रहती। वह उसके अपंग होने की कल्पना भी करती है। ननंद का अनिष्ट एवं अमंगल होने की कल्पना में भावज को बड़ा आनन्द आता है। कभी उसे होली में दिया जाता है तो कभी उसके लंगड़ी होने की कल्पना की जाती है।

ननन्द की अप्रियता का कारण उसका उग्र स्वभाव माना गया है [2]। ननंद के दो अवगुणों की ओर मालवी लोकगीतों में विशेष कटाक्ष किया गया है...

१. चुगली-खोर [3] २. झगड़ालू [4]

भावज से वांछनीय-अवांछनीय सभी प्रसंगों पर ननंद का झगड़ना एवं भाई से उसकी शिकायत करना उसकी अप्रियता का प्रमुख कारण बन गया है। इसलिये ननन्द अच्छी होने पर भी किसी वधू की प्रियपात्र नहीं बन सकती। उसे 'खारी सेव' की उपमा दी गई है [5]। भावज से तीखे एवं तेज स्वरों से बोलने के कारण उसको कड़कती हुई, चमकती हुई बिजली भी कहा गया है (३।१४७)। भावज के इस दुर्व्यवहार की प्रतिक्रिया ननंद पर भी होती है और वह भी अपनी ननंद के प्रति कोई श्रद्धा-भावना नहीं रखती। भाई को सम्मान दिया जाता है किन्तु भावज को कुतिया कह कर गाली भी दी जाती है [6]। भावज को कुतिया एवं पानी की मेंढ़की कह कर पुकारने में ननंद के रोष की चरमता के साथ ही स्वयं के प्रति किये गये अपमान के प्रतिकार की भावना है। ननंद को भावज का रूप और शृङ्गार कभी नहीं सुहाता। ननंद के झगड़ालू होने का कारण भी आभूषण ही होते हैं। वह अपनी भावज

---

१. देखें, वीरा रे घरे हुआ वधावणा, —शीर्षक गीत १।३९

२. क. सुई जा रे नाना झोली में, त्हारी भुआ गई होली में —१।२१, लोरियां
ख. लाल चूड़ो नान्यां की मासी को, पग टूटो नान्यां की भुवा को... वही

३. थें बाई जी चुगली खोरा
चुगली करता रीजो जी —१।२३७

४. नणदल घोली घर में राड़ —१।१८९

५. लाडू म्हारा सुसरा पेड़ा देवर-जेठ
घेवर मोती सायबा, नणदल खारी सेव —मालवी दोहे १३०

६. वीरो म्हारो मन्दर रो देव, भावज सेर्‌यां कूतरी
वीरो म्हारो सेर्‌या में कीं बैल, भावज पानी मांयकी डेंडकी —३।५

के गहने एवं सुन्दर वस्त्रों को देखकर ईर्ष्या-पूर्ण हो जाती है। व्यवहारिक जीवन में भाई एवं पति के द्वारा आभूषण सम्बन्धी लालसा अपूर्ण रहने के कारण ननंद अपनी भावज के झूमके (कर्ण का आभूषण) चुरा लेती है। भावज को झूमके अत्यन्त ही प्रिय थे। वह ननन्द को प्रलोभन देती है कि शीशफूल आदि बहुमूल्य एवं महत्व के आभूषण भले ही लें ले किन्तु उसका झूमका लौटा दे·······

जदे मिजानन भम्मर पैर ले, जदे मिजानन झाला पैर ले
झूमका में मन मोह्यो, ह्नने म्हारो गेणो चुरायो
बागा बी ढूंढ्या, कुअला बी ढूंढ्या
कई बी नजर नी आयो, मिजानन म्हारो गेणो चुरायो —३।१४९।

कुल-वधू ने ननंद को 'मिजानन' शब्द से सम्बोधित कर व्यंग्य का प्रयोग किया है कि मिजाज एवं अकड़ तो बहुत है किन्तु पहिनने के लिये आभूषण भी नहीं मिलता और चोरी करने में भी नहीं हिचकती।

ननंद की एक दुष्ट पात्र के रूप में कल्पना करने के कुछ कारण भी हैं वह हमेशा कुलवधू को कष्ट पहुँचाने का षड़यंत्र रचती है। कुलवधू यदि अपने मायके जाना चाहती है तो व्यर्थ की एवं अनावश्यक झंझटें उत्पन्न करती रहती है। ननंद के दुष्ट-प्रपंच के कारण कुल-वधू अपने मायके जाने में असमर्थ रहती है [1]। नारी का नारी के प्रति इस प्रकार का विचित्र व्यवहार हमारे पारिवारिक जीवन के एक कटु किन्तु सत्य से पूर्ण पक्ष को प्रस्तुत करता है। मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से यदि हम देखे तो सास, बहू एवं ननंद, भौजाई का यह व्यवहार बड़ा ही विचित्र एवं उलझनमय लगता है। जो नारी बहिन बन कर अपने भाई के प्रति अनन्य प्रेम को प्रकट करती है। वही ननंद के रूप में भावज के प्रति अनुदार एवं दुष्टता-पूर्ण भावना रखती है। कुलवधू भी तो किसी वर की बहिन एवं किसी नारी की ननंद होती है। स्वयं पर किये गये अत्याचार का बदला वह किसी और से लेने का प्रयास करती है। इस प्रकार ननंद और भौजाई का यह मनोमालिन्यपूर्ण एवं द्वेष से भरा हुआ व्यवहार लोकगीतों के वर्णन का शाश्वत विषय-सा बना हुआ है। किन्तु नवनीत सी कोमल कुलवधू को पत्थर के समान कठोर बना देने वाली ननंद जब बहिन के रूप में अपने भाई से प्रेम करने लगती है और उसके शिशु (भतीजे) को लोरियों की मीठी घुटीं का रस देकर अपने शुद्ध एवं स्नेहपूर्ण नारी-हृदय का उद्घाटन करती है तब उसके वियोग में कुलवधुओं के नेत्रों से अश्रुओं के रूप में आत्म-भाव एवं वेदना भी प्रकट होती है [2]। छोटी अर्थात्

१. नणदल सपूती यों बोली, पीपल रा पान इत्ती करी जाव
कोठी भर गऊड़ा पीसी जाव, सगळा कुआ को पानी भरी जाव
जद जाव तमारा पीयर, नणद की टूटी टांग
तम तो वीरा जी घरे जाव

२. नणदल चाली सासरे, भौजायां रोवे रे, म्हारी जोड़ी बिछड़ी रे —२।७९।

अविवाहित ननन्द तो कुलवधू को प्रिय होती ही है किन्तु उसके विवाहित हो जाने पर भी स्नेह-भावना में कोई अन्तर नहीं आ पाता [१]।

सास और ससुर

सास और ससुर इन दोनों में से वधू के लिये सास ही अधिक निकट का पात्र है जिसके अनुशासन की क्रूर-कठोर छाया में उसे अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। ससुर तो कुछ समय के लिये भोजन करने के समय रसोईघर में आता है जहाँ उसकी अल्पकालिक उपस्थिति वधू के लिये असह्य बन जाती है। मालवा के सम्पूर्ण गीतों में केवल बधावे के दो-चार गीतों को छोड़ कर ससुर का जहाँ कभी भी वर्णन हुआ है उसके प्रति अश्रद्धा ही प्रकट की गई है। वैसे मालवी नारी ने अपने श्वसुर के प्रति कोई उपेक्षमय विचार प्रकट नहीं किये। बालिकाओं के समक्ष ही ससुर का एक काल्पनिक चित्र है कि वह खूब खाता है, डाकी जैसा [२] और बेचारी वधू रोटी बनाते हुये थक जाती है। किन्तु हास्य-भावनाओं से पूरित उच्छृङ्खल जीवन में व्यक्त किये गये ये विचार ही हो सकते हैं; जीवन के यथार्थ से एकदम विपरीत! एक गीत में श्वसुर को शत्रु भी मान लिया गया है। शत्रु के द्वारा हानि पहुँचाई जाती है और ससुर के द्वारा लगाई गई बागर का काँटा वधू के कोमल पैर में चुभ जाता है। उसकी आंखों में आंसू आ जाते हैं। इस कष्ट के कारण श्वसुर को शत्रु मान बैठना भी बालोचित बुद्धि का परिचायक है[३]। निम्न जातियों की लड़कियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों में श्वसुर की अप्रतिष्ठा हो सकती है किन्तु सामान्य नारी ने उसे अपने पिता के समान ही सम्मान दिया है [४]। मालवी, गुजराती एवं राजस्थानी वधू ने अपने प्रियतम के पिता को आदर देकर कुल-वधू के धर्म को अवश्य ही निभाया है [५]।

हमारे पारिवारिक जीवन में सास की बड़ी दयनीय एवं दायित्वपूर्ण स्थिति है। पराये घर से आई हुई कन्या को वधू के रूप में स्वीकार कर उसे अभिभावक का कार्य भी करना पड़ता है। यदि वधू के द्वारा किसी कार्य अथवा व्यवहार में भूल-चूक हो जाती है तो सास का दायित्व होता है कि वधू के त्रुटिपूर्ण कार्य का परिमार्जन कर उससे ठीक कार्य लेने की चेष्टा करे। पति तो केवल अपनी माता की छाया में परिणीता नारी को छोड़कर दाम्पत्य

---

१. छोटी नणन्द म्हारी लाड़ली, वा मेंदी चूटन जाय —३।७२
२. सुसरो डाकी जीमण बैठ्यो, नइ परण्डे पाणी जी —१।४
३. ससुरा बैरी बागड़ गाड़ी, बागर को म्हाने कांटो लाग्यो
   कांटा से म्हाने आंसू आया —१।१०
४. सुसरा जी थें म्हारा बाप हो —१।१२१
५. क. मारे सासरिए मारो ससरो जी प्यारा
   जणसुं सवाई मारो सासु मालवणी —चूंदड़ी भाग २, पृष्ठ ७२।
   ख. राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ ११२।

के चरम सुख की प्राप्ति का अपने को अधिकारी समझ बैठता है। अपरिपक्व बुद्धि को लेकर एवं अनुभवहीन अवस्था में गार्हस्थ्य की देहरी में प्रवेश करने वाली नव आयु की वधू के लिये अवांछनीय व्यवहार के प्रति यदि सास सद्भावना के साथ दोष-परिमार्जन एवं सुधार का दृष्टिकोण भी रखे तब भी अप्रिय बन जाना स्वाभाविक ही है। सास का अभिभावक के रूप में किया गया यह कार्य पारिवारिक जीवन में इतना उग्रतम स्वरूप धारण कर लेता है कि सास-बहू का द्वन्द्व लोकगीतों की नारी का एक शाश्वत सत्य बन जाता है। यहां बेचारी सास की बड़ी दयनीय दशा हो जाती है। यदि वधू के आपत्तिजनक व्यवहार पर अपने पुत्र से कुछ कहती है तो उसे दूती और चुगलखोर कहा जाता है और वह वधू के लिये इतनी हेय एवं घृणा की पात्र बन जाती है कि घर में उसका अस्तित्व भी क्षण-मात्र के लिये पसन्द नहीं किया जाता। उसको फटकार बतलाने, कुत्तों के दुत्कारने के समान-ही उसका अनादर करने की प्रवृत्ति सामान्य वधू के हृदय में प्रतिहिंसा के रूप में जाग्रत हो जाती है[1]। 'मोर-मुरगड़ो' के द्वारा सासू का अपहरण करवाने, घर से उसको निष्कासित करने की काल्पनिक स्थिति में बालिकाओं को भी बड़ा आनन्द आता है[2]।

सास और ननँद इन दो पात्रों का लोकगीतों में सबसे अधिक घृणापूर्ण एवं निन्दनीय पात्रों के रूप में चित्रण हुआ है। वधू वर्ग की सम्पूर्ण प्रतिशोधात्मक एवं आक्रोशपूर्ण भावनाएँ सास के प्रति उग्रतम रूप से फूट पड़ी है। सास के लिये रांड (विधवा) दुताड़ी आदि अपमानजनक शब्दों का प्रयोग कर देने से ही वधू को संतोष नहीं होता वह तो सास को चमगीदड़ बना कर उसके कठोर कर्म का फल भुगतने के लिये बट वृक्ष पर उल्टे सिर लटका देना चाहती है[3]। यह सास द्वारा किये गये कठोर व्यवहार की प्रतिक्रिया की चरम स्थिति है। यदि कोई पति अपनी माता को अधिक प्रिय होता है और माता के बिना भोजन आदि नहीं करता तो वह बेचारा भी उपहास का पात्र बन जाता है।[4] माता को सम्मान देना भी नवेली पत्नी के लिये ईर्ष्या करने का एक कारण हो जाता है।

सामान्य पारिवारिक जीवन में वधू के प्रति सभी सास इतनी क्रूर, निर्दयतापूर्ण एवं नृशंस आचरण करती होगी यह असम्भव है, वह स्वयं माता है। मातृत्व की अथक साधना के प्रतिफलन में ही उसे वधू के, गृह की शुभ-लक्ष्मी के, श्री-मुख के दर्शन करने का अवसर प्राप्त होता है। वह अपना दायित्व एवं मातृत्व का गौरव वधू में देखने के लिये लालायित रहती है। पौत्र-जन्म के अवसर पर सबसे अधिक प्रसन्नता उसे ही होती है। वह केसर का लीपण

---

१. सासू है दुताड़ी, दुताड़ी के घुरे करो, अपणी बउ के घरे करो —१।१२।

२. मोर मुरगड़ा उड़ो गया, सासू रांड के लई उड़्या —१।७।

३. थे सासू जी बड़ का बागल, सिदनाथ में उंदे माथे झूलोजी —१।२३७।

४. माँ सुगली का सायबा, मां देख्या अन्न खाय —मा० दो० १२१।

घोल कर आँगण को चर्चित करना चाहती है [१]। वधू के प्रजनन की प्रतिष्ठा के कारण सास को आनन्द ही होता है। अप्रसन्नता या रोष की स्थिति तो उस समय उत्पन्न होती है जब वधू के मायके से उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल लोकाचार की पूर्ति नहीं होती। दहेज, पेरावणी, मायरा आदि वस्तुओं की कमी-बेशी को लेकर सास-बहू में जीवन भर कहा-सुनी होती रहती है। किन्तु सामाजिकता के अहं एवं कुल-गौरव के दम्भ में कुछ सासुओं का व्यवहार अत्याचार की उस चरम सीमा पर पहुंच जाता है जहां वधुओं का जीवन संकट में पड़ जाता है। मार-पीट तो सामान्य बात है। सास के द्वारा आग से जलाये हुये कुल-वधुओं के कोमल अङ्गों को भी देखने का अवसर मिला है, सास द्वारा वधू को जहर देकर मार डालने की घटनायें भी आज के सामाजिक जीवन की विषमताओं को प्रकट करती हैं। कभी-कभी अत्याचारों से तंग आकर असह्य स्थिति में कई वधुयें स्वयं ही आत्म-हत्या कर छुटकारा पा लेती हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्तीय जीवन में सास को निर्दयी माना गया है और प्रायः बहू को सास की शिकायत करते सुना गया है। लड़ना-झगड़ना एवं निरपराध बहू को लांछित कर कष्ट देने की प्रवृत्ति सामान्य भारतीय सास का एक लक्षण बन गई है। यदि सास दैवयोग से अच्छी भी मिल जाती है तो वधू वर्ग को उसके अच्छेपन पर विश्वास नहीं होता। सास द्वारा किये गये युग-युगों के अत्याचार के कारण बहुओं की यह अमिट धारणा बन गई है कि सास में क्रूरता और कठोरता के अतिरिक्त सीधा, सच्चापन होता ही नहीं। झगड़ना तो मानो सास का जन्मसिद्ध अधिकार है। सास सीधी एवं सरल स्वभाव की होने पर भी लड़ना नहीं छोड़ेगी [२]। मालवी लोकगीतों की सास झगड़ालू होने के साथ ईर्ष्यालु भी है। वह वधू को शृङ्गार एवं अच्छे वस्त्रों का उपयोग करने में बाधा देती है [३]। पारिवारिक जीवन की ऐसी अनेक छोटी छोटी घटनाओं की अभिव्यक्ति विवश एवं पशुवत् मूक वधुओं के अभिशापमय जीवन का चित्र अङ्कित करती है।

देवर जेठ

भारतीय परिवार में वधू के लिये देवर और जेठ पति के अनुज एवं अग्रज होने की दृष्टि से वात्सल्य एवं श्रद्धा के पात्र होते हैं। वधू के प्रति देवर भी माता जैसी भावना रखता है एवं जेठ उसे कन्या के समान मानता है। यह एक आदर्श भावना है और पारिवारिक सुख-शान्ति एवं वैभव-समृद्धि की दृष्टि से उपरोक्त सम्बन्ध को एक धर्ममय कर्तव्य-

---

१. सासू ने घोल्यो केसर लीपणो —१।१८९।

२. 'फोगि आलोई बले सासू सीधी इ लड़े'... फोग यदि गीली हो तो भी जलने लगती है और सास सीधी होने पर भी लड़ती है। —राजस्थान के ग्रामगीत; पृष्ठ २६।

३. मांय मंगायो पोमचो नानी बन्द बन्धाय
सासू जी ओढ़न दे नईं हठ लागा भरतार —३।६३।

निष्ठा का स्वरूप प्रदान किया गया है। मर्यादावादी महाकवि तुलसी ने भी इस आदर्श के प्रतिष्ठा पर विशेष बल दिया है [१]। किन्तु व्यवहारिक जीवन में जन-मानस आदर्श की अपेक्षा अपनी प्रकृत भावनाओं से ही अधिक प्रेरित होता है। भारतीय नारी के लिये देवर पति से कम आयु का होने के कारण अधिक आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। यह आकर्षण भी एकांगी नहीं है। देवर के लिये भावज भी लोक-जीवन में मनोरंजन की एक निर्बाध वस्तु बन जाती है। राम-कथा में लक्ष्मण-भरत का आदर्श होते हुये भी महाभारत के दुर्योधन एवं दुःशासन का अपनी पांचाली भावज के प्रति जो व्यवहार वर्णित किया गया है उसमें राज-नैतिक शठता की अपेक्षा मानव की सहज वृत्ति से प्रेरित नारी के प्रति आकर्षण की प्रच्छन्न भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वैसे राम-कथा में ही आदर्श और यथार्थ का विरोध स्पष्ट हो जाता है। सुग्रीव की पत्नी के प्रति कुदृष्टि रखने वाले बाली का हनन करने में तो राम ने पुण्य-कार्य समझ लिया किन्तु सुग्रीव ने बाली की पत्नी तारा को पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया था। इस व्यवहार के पीछे सामाजिक विधान की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि है। पति के पश्चात् भाभी पर देवर का समाज-मान्य अधिकार है। वैदिक काल में देवृकामा नारियों की कमी नहीं थी। प्राचीनकाल की यह सामाजिक भावना प्रथा के रूप में आज भी विद्यमान है। ब्राह्मण एवं वैश्य वर्ग को छोड़कर मालव की अनेक जातियों में भाई की मृत्यु के पश्चात् भाभी को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। प्राचीन काल में देवर-भौजाई का जो सम्बन्ध उप-पति एवं उप-पत्नी के रूप में विद्यमान था उसकी छाया लोक-गीतों में अङ्कित है।

> देवरियो म्हारो, रुमाल कालो रे, के थाने देवरिया बिन्दली में राखूं
> झूमका बेच करुं रे न्यारो, म्हारो देवरियो[२]।

कभी-कभी अनाड़ी पति की अरसिकता एवं अनाड़ीपन के कारण नारी के लिये देवर ही आकर्षण का विषय बन जाता है। देवर के नादान होने पर उसे यह अभाव अखरता भी है...

> सीसी भरी गुलाब की, भेजू किसके हाथ......
> भेजन वाला है नइ, देवरियो नादान......

कुरु प्रदेश के लोकगीत मल्होर में भी इसी प्रकार की भावना प्रकट की गई है। यौवन की उमंगों से भरे हुये हृदय की पिपासा को शान्त करने वाले पति के अभाव में देवर

---

१. अनुज बधू भगिनी सुत नारी
सुन सठ ये कन्या सम चारी —रामचरित मानस, किष्किन्धा कांड

२. मालवी फाग का एक अ

के नादान होने की स्थिति नारी के कुण्ठित भावों को प्रकट कर देती है [१]। गुजराती लोक-गीतों में भी देवर की कुचेष्टाओं का खुलकर वर्णन हुआ है। देवर अपनी भावज को सौभाग्य-शृङ्गार दिखाने के लिये बाध्य करता है।

आवी आवी सासरिआंनी सीम, जासे ने देरे (देवर) झगड़ो मांडिओ रे
देखाड़ तारा कंकु ने काजल, देखाड़ चम्पावरणी चूंदरी रे
देखाड़ तारा नवरङ्गा चीर, देखाड़ पुलम केरी ओढ़नी रे
देखाड़ तारी सोपारी एलचड़ी, देखाड़ लीलेरा लवींगड़ां रे [२]

कभी-कभी यह कुचेष्टा इतनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है कि नारी का पति भी वस्तु स्थिति से अवगत होकर मन मारकर बैठ जाता है। सगा भाई होने के कारण उसका क्रोध उभर नहीं पाता। अपने छोटे भाई की जगह यदि कोई अन्य व्यक्ति होता तो उसका सिर काटकर गेंद के समान उछाल देता [३]।

देवर के प्रति प्रेम एवं सहज आकर्षण की जो भावना है वह जेठ के लिये सम्भव नहीं हो सकती। एकाध स्थल पर जेठ के प्रति सद्भावना भले ही प्रकट की गई हो [४]। किन्तु जेठ की रसिकता एवं दुष्ट आचरण पर लोकगीतो में व्यंग्य ही किये गये हैं। पारिवारिक जीवन में लोक-लज्जा के कारण जेठ अपने छोटे भाई की पत्नी के प्रति स्वयं की भावनाओं को प्रकट करने में देवर के समान स्वतन्त्र नहीं होता फिर भी संभ्रान्त एवं उच्च जाति के परिवारों में यदा-कदा 'जेठ का पेट' रह जाने की प्रवाद एवं आलोचनामयी घटनायें सुनने एवं देखने में आ ही जाती है। देवर को छोड़कर जेठ के साथ सम्बन्ध स्थापन करना व्यंग्य एवं कटुक्तियों का विषय बन जाता है। एक मालवी पहेली में यह कटाक्ष अधिक उभर गया है :—

---

१. कोठी भरी कसूम की रे, कोई कर लेगा पिहान
खोलन वाला है नहीं, कोई देवरिया नादान —जनपद, खंड १, पृष्ठ ८५।

२. रढियाली रात, भाग ४, पृष्ठ ४७।

३. शु करुं तमारा सगा वीरानी वात जो
तरजाती देरीड़ो आगे आवीओ रे लोल
आवी आवी सासरीआंनी सीम जो
तरजाती देरीड़ो तम्बू ताणिआ रे लोल
पेराव्या मने नवरंगा चीर जो
तेदुनी रातु तो अमे तियां रियां रे लोल
शु करुं मारो माडी जायो वीर जो
माथडीआं वाढीनै तो दडे रमुं रे लोल —वही पृष्ठ ४६।४७।

घाघरो ऊंको घेरदार, चोली ऊंकी तंग
सोला देवर छोड़के, गई जेठ के संग

मालवी लोकगीतों की नारी के लिये जेठ एक शंकास्पद पात्र है । कुदृष्टि से देखने वाले जेठ की पिटाई करने में बड़ा आनन्द आता है। दोपहर के समय में जेठ अपने छोटे भाई के यहां जलेबी आदि लेकर चला जाता है। गृह स्वामिनी को शंका हो जाती है कि घर में लड़की भी नहीं है, लड़का भी नहीं है फिर जेठ ने दोपहर के समय मिठाई लाने की धृष्ठता क्यों की ?

जेठ दुफेरे क्यों आया, सवेरे स्यालो दुफेरे उन्हालो
जेठ दुसाला क्यों लाया, छोरो बी नी है, छोरा बी नी है
जेठ जलेबी क्यों लाया, जेठ मिठाई क्यों लाया······

वह सावधान हो जाती है और जेठ के आतिथ्य के लिये भोजन बनाने की तैयारी करती है। रोटी बनाते समय भी जेठ उसके यौवन की ओर कुदृष्टि से ताकता है। वधू प्रतिकार के लिये रसोई घर में प्राप्त कड़छी, भरत्या, बटलोई आदि बर्तनों से जेठ की खूब मरम्मत कर आत्म-रक्षा कर लेती है।

बाड़ी माय का बेंगन छमक्या, लूण मिरच नी चाख्यो
रोटी करता मुआ जोबन निरख्यो, फिर बोले तो कड़छी की····
फिर बोले तो भरत्या की ··· फिर बोले तो बटलोई की —१।१५५।

उक्त प्रकार के गीतों को विनोद गीतों की श्रेणी में रखकर भी अभिव्यक्त भावनाओं में यथार्थता का छिपना सम्भव नहीं है। वस्तुतः जीवन की यथातथ्य स्थिति का स्थूल चित्रण जेठ के असली स्वरूप को प्रकट कर समाज के मनोविज्ञान और उसके नैतिक दम्भ के प्रति सोचने को बाध्य करता है।

माड़ी-जायो वीर एवं बहिन

वीर शब्द भाई का समानार्थी अवश्य है किन्तु भाई शब्द में वह गूढ़ता एवं भाव सौन्दर्य नहीं है जो वीर में निहित है। बहिन की आशा आकांक्षाओं का सम्मान करते हुये उसके गौरव, सतीत्व एवं मर्यादा की रक्षा के लिये सन्नद्ध होकर अपनी सुदृढ़ कलाई पर 'राखी' रक्षासूत्र बँधवा कर कर्तव्य के बन्धन की रक्षा का दायित्व ग्रहण करने वाले पुरुषों को 'वीर' शब्द से सम्बोधित कर सकते हैं। 'वीर' शब्द अपने आप में बहिन के लिये भी एक

---

४. जेठजी म्हारा बाग का चम्पा रे —३।८६।

गम्भीर सार्थकता रखता है। पंजाबी, ब्रज, राजस्थानी एवं गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं में भी उपरोक्त भावना के कारण वीर अथवा वीरा शब्द भाई के लिये प्रयुक्त होता है। मालव की परिसीमा में आकर इस शब्द में अधिक मिठास आ गई है [1]।

मालव की बहिन के लिये माता के पश्चात् यदि किसी के प्रति अधिक महत्व एवं ममत्व है तो वह है माता की कोख से उत्पन्न भाई······'माड़ी जायो वीर···'। लोकगीतों में मायके की प्रतिष्ठा का सम्पूर्ण दायित्व केवल भाई पर ही आधारित कर मालवी बहिन ने अपने हृदय की अटल आस्था और प्रेम की अजस्र भाव-धारायें प्रवाहित की हैं। भाई का लोकगीतों की नारी के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक स्थलों पर 'माड़ी-जायो-वीर' के विशेषण से भाई को सम्बोधित किया गया है। इसमें पारिवारिक जीवन के साथ ही सामाजिक प्रथाओं से उत्पन्न कटुता का अनुभव भी छिपा हुआ है। मायरे की प्रथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। मालवी बहिन यह अनुभव करती है कि मायके के सम्बन्धियों में काका, बाबा (पिता के बड़े भाई) एवं अन्य सम्बन्धी होते है किन्तु बहिन को मायके के पुरुष-वर्ग की ओर से जो निश्छल एवं स्वार्थ-विहीन प्रेम मिलता है वह केवल अपने सहोदर से ही। काका—बाबा आदि तो उसके ग्राम की सीमा पर आकर भी उससे मिलने नहीं आते। इसलिये बहिन को अपने एकमेव सहोदर पर ही गर्व रहता है कि वह किसी भी स्थिति में उसके सम्मान, आनन्दमय मांगलिक प्रसंगों पर आकर उसके घर—आंगण की शोभा बढ़ाने के लिये पर्याप्त है [2]।

भाई के प्रति प्रेम एवं आत्मभाव के संस्कार नारी के जीवन में शैशव से ही गीतों के द्वारा जाग्रत हो जाते हैं। बालिकाओं के घुड़ल्या, संजा एवं खेल के गीतों में भाई के प्रति आत्मीयता एवं ममत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है। भाई यदि बाग लगाता है तो बहिन उसको सींचती है। बहिन के ससुराल चले जाने के पश्चात् भाई के जीवन का उद्यान बहिन के स्नेह-सिंचन के अभाव में प्रायः सूख जाता है [3]। बचपन से ही बहिन हृदय में भाई की महत्ता का अंकुरित होना प्रारम्भ हो जाता है। भाई के द्वारा देय चूनड़ी का मूल्य उस समय से ही अंकित होने लगता है। भाई की ओर से प्रदान की जाने वाली चूनड़ी का सामाजिक एवं लौकिक महत्त्व भी अपरिहार्य है। विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर भाई के द्वारा प्रदत्त चूनड़ का बहिन की भावना के लोक में महत्व तो देखिये कि विश्व की अनमोल सम्पत्ति

---

१. क. माड़ी जायो वीर चूनर लायो रेशमी
   ख. बीरा गिरधरलाल, बीरा मदनगोपाल —१।७८
   ग. नाना कावड़िया रे वीर —१।२७८

२. काका बाबा अत घणा रे, म्हारे गोयरा से निकस्या जाय
   माड़ी जायो वीर एक घणो रे, म्हारे बरद उजाल्या जाय —१।८२।

३. संजा के गीत —१।२७३

भी उसके आगे तुच्छ है। जब वह माड़ी-जाये-वीर द्वारा दी गई चूनड़ को पहिनती है तो उसमें हीरे और मोती बिखरते हैं [१]। बहिन की यही कामना रहती है कि उसका भाई देश-विदेश में व्यवसाय अथवा नौकरी के लिये यदि जाता है तो उसके लिये चूनड़ एवं 'दखणी को चीर' अवश्य लायेगा [२]। इस चूनड़ से बहिन अपने दुःख के आंसू पोंछकर जीवन में आत्मीयता के आश्वासन को सुरक्षित भी रख सकती है [३]।

भाई और बहिन के इस निश्छल एवं शान्त प्रेम में बहिन के ससुराल का पक्ष प्रायः व्यवधान बनकर आता है। सावन के महिने में प्रत्येक भाई बहिन को लेने के लिये उसके ससुराल में जाता है तो भाई के स्वागत-सत्कार का भव्य आयोजन करने की लालसा उसके मन में जाग्रत हो उठती है। चम्पा बाग में भाई का आवास होना चाहिये। अनेक पकवान एवं मीठे पदार्थों को भाई के लिये भोजन में प्रस्तुत करना चाहिये। किन्तु भाई का स्वागत-सत्कार करने में बहिन स्वतन्त्र नहीं होती। सास का भय बना रहता है। वह भाई को शीघ्र ही भोजन करा देना चाहती है अन्यथा ईर्ष्यालु सास की कुदृष्टि उस पर पड़ जावेगी और रस में वह विष घोल देगी।[४]।

लोकगीतों का भाई एक तरह से मौन पात्र रहा है। भाई की सम्पूर्ण विशेषताओं का उद्घाटन केवल बहिन के भावों के द्वारा प्रकट हो पाया है। एकाध स्थल पर भाई ने बहिन के यहां मांगलिक अवसर पर उपस्थित न होने का स्पष्टीकरण अवश्य किया है किन्तु उसमें भी उसके द्वारा उदात्त चरित्र का विश्लेषण हुआ है।[५] कोई भी भाई अपनी बहिन के प्रति निर्मोही एवं कठोर नहीं बन सकता। मायके में भाई और बहिन के बीच में भावज ही एक बाधा बनकर आती है किन्तु बहिन को अपने भाई पर पूर्ण विश्वास रहता है। वास्तव में बहिन का जीवन भाई के बिना शून्य ही रहता है। भाई के अभाव में बहिन के जीवन का

---

१. माड़ी जायो वीर चूनड़ लायो रेसमी
ओढू तो हीरा बिखरे, मेलु तो थाल भराय —३।७

२. कुण बीरो चाल्यो चाकरी, कुण बीरो चाल्यो गढ़ गुजरात
छोटो बीरो चाल्यो चाकरी, मोटो बीरो गढ़ गुजरात
छोटो बीरो लायो चूनड़ी, मोटो बीरो दखणी को चीर —१।२०३

३. म्हारा बीरा जी चूनड़ करी, चूनड़ ओढ़ पानी चाली
सुसरा बैरी ने बागड़ थाड़ी, बागड़ को म्हने कांटो लाग्यो
कांटा से म्हके आसू आया, आंसू म्हने चूनड़ से पोछयाँ —१।१०

४. बेगी बेगी जिमाडू म्हारा माड़ी जाया वीर, सासू दुतारी

५. मायरे का गीत १।७६

आनन्द उल्लास त्योहार एवं मंगलमय अवसर फीके ही रहते हैं।[1] मालव की बहिन का भाई एक विशेष आकर्षक व्यक्तित्व भी रहता है। वह भाई को कामदेव के समान सुन्दर एवं आकर्षक व्यक्तित्व रखने वाले श्रीकृष्ण के समान मानती है जो संकटों के पहाड़ को उठाकर भी बहिन के हर्षोल्लास को प्रेरित करने की क्षमता रखता है। और बहिन उस क्षण के लिये ही भाई का आह्वान भी करती है। कृष्ण को भाई के रूप में देखने की उक्त अनूठी कल्पना है। यह मालवी लोकगीतों को नारी की देन है।[2] भारतीय काव्य एवं कथाओं में कृष्ण को रसिया, छलिया एवं प्रियतम के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। प्रेम एवं दाम्पत्य जीवन के अनुपम आदर्श कृष्ण को भाई के रूप में देखने का उदाहरण मालवी बहिन के भाव-कोष में ही मिलेगा। यह सम्भव है कि दयनीय एवं विवश स्थिति में विशेषकर मायरा, जैसी प्रथा के सम्पन्न करने के अवसर पर कृष्ण जैसा भाई ही संकट से विमुक्त कर सकता है। बीरा के लिये गिरधरलाल या गोपाल का विशेषण भी यही सार्थकता प्रकट करता है।

सती एवं सौत

मरण को अपने जीवन का पुण्यतम त्योहार समझकर अग्नि की प्रचण्ड एवं भीषण ज्वाला में अपने आपको स्वेच्छा से समर्पित कर देने वाली सम्पन्न नारी को भारतीय संस्कृति में यदि श्रद्धा और पूज्य-भाव से स्मरण किया जाता है तो वह स्वाभाविक है। जीवन की कठोरता में स्वार्थ और प्रलोभनों से सामान्य जन पग-पग पर डिग जाता है एवं असत्य का आचरण करने से भी नहीं हिचकता, वहाँ यदि भौतिक शरीर एवं सांसारिक सुख-वैभव के साथ आशा-आकांक्षा की बलि देकर संभावित अनिष्ट से बचने के लिये प्रेम के सत्य-शाश्वत एवं काम–वासना–विहीन स्वरूप को चिर-जीवित बनाने के लिये सौभाग्यवती नारी का आत्म-दान सत्य को साकार कर पशु-प्रवृत्ति के कामुक मनुष्यों को चुनौती देता है। सती के नाम से पूजित होकर भारतीय नारी स्वयं के कुल एवं समाज की प्रतिष्ठा को गौरवान्वित करती है। जो कुल–वधू जीवित रहकर अपने प्रियतम को इस लोक का आराध्य मानती है, उसकी लोक-यात्रा पति के अभाव में कैसे संभव हो सकती है? यहां भावनाओं की पवित्रता एवं पतंगों की तरह स्वयं के प्राणों का विसर्जन करने की दृढ़ता का प्रश्न है। बलात् आत्म-हनन के लिये किंचित भी गुंजाइश नहीं है। जहाँ स्त्री को उसकी इच्छा के विपरीत अग्नि की चिता में धकेला जाता है वहाँ सत् की प्रेरणा नहीं वरन् विवश नारी की हत्या का अभिचार है। किन्तु अग्नि-रथ पर आरूढ़ होकर भौतिक संसार को त्याग देने वाली नारी अपने प्रियतम का चिर-मिलन में सहयोगिनी होकर शोक-विमर्ष की वेदना से ऊपर उठती है, वहाँ उसके सुदृढ़ एवं अडिग निश्चय को कौन टाल सकता है? कानून की कठोर कृपाण सती

---

१. तम बिन सूनी बरद अलूणी, थारी बेन अलूणी
   अलूणों बई को मांडवो —३।१२

२. बीरा गिरधरलाल, बीरा मदनगोपाल
   इन अवसर नई आया, कदे आवसी —१।७८

के भाव-लोक पर विजयी होने में असमर्थ हो रही है। यही कारण है कि सती के लिये भारतीय नारी के हृदय में श्रद्धा के साथ विस्मय की भावना बनी हुई है।

राजस्थान, मालवा एवं गुजरात की भूमि ने अनेक नारियों को सती के रूप में जन्म दिया है। वीर भूमि चितौड़ की रक्त-स्त्रोतस्विनी में मृत्युञ्जयी परम्परा को साकार करने वाली इन्दीवरा''''पद्मिनी का यश तो इतिहास के पृष्ठों पर अङ्कित हो गया किन्तु उसके साथ अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाली वीरांगनाओं को आज तक कौन जान सका है? मालवी लोकगीतों की नारी ने सती के प्रति भावना के पुष्प अर्पण कर कुछ सतियों के महत्व को काल की अनन्तता में विलीन होने से बचा लिया है। हेमा, लोजा एवं चांला नाम की सतियों का उल्लेख एक गीत में मिलता है (१।८६४)। कुल-देवी एवं अन्य देवताओं का अस्तित्व अन्ध-विश्वास एवं लोक मान्यताओं पर आधारित है परन्तु सती का अस्तित्व सामाजिक जीवन की क्रूर-कठोर पृष्ठ-भूमि में भावनाओं के उभार पर टिका हुआ है। वहाँ अन्ध-विश्वास के लिये कोई स्थान नहीं।

सती की तरह मृत सौत, 'बड़ी' के प्रति भी नारी-समाज में पूजा-भाव विद्यमान है किन्तु मृत-सौत को पूजने में श्रद्धा की अपेक्षा भय की भावना अधिक है। भारतीय नारी के लिये सौत एक विचित्र पात्र है। सौत चाहे जीवित हो या मृत, किन्तु नारी के दाम्पत्य जीवन में बड़ा महत्व रखती है। यहाँ जीवित सौत पर विचार करना ही वांछनीय है। वैसे पति से सम्बन्ध रखने वाली किसी भी स्त्री को सपत्नी की संज्ञा दी जा सकती है किन्तु लोकगीतों में पति की प्रेमिका के लिये 'भायली' शब्द का प्रयोग किया गया है। सौत विवाहित पत्नियों में किसी एक नारी को ही कहा जायगा। मालव की अनेक जातियों में बहुपत्नी रखने की प्रथा आज भी विद्यमान है। यदि किसी पुरुष के दो पत्नियाँ हैं तो प्रथम पत्नी को 'बड़ी' कहते हैं और दूसरी को लोंडी अर्थात् छोटी। किसी भी पुरुष के द्वारा दोनों पत्नियों के साथ समान व्यवहार करना प्रायः असम्भव हो जाता है। स्नेह के आकर्षण की मात्रा में घटा-बढ़ी होने के कारण स्त्रियों में ईर्ष्या और जलन-भाव का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही है। लोकगीतों में प्रथम पत्नी की ओर से ही प्रायः शिकायत की गई है क्योंकि दूसरी पत्नी की सुन्दरता एवं आकर्षण बड़ी को पति प्रेम से वंचित रखता है। वह पति से आग्रह भी करती है कि दोनों पत्नियों से समान व्यवहार करें क्योंकि दोनों के अस्तित्व एवं अधिकार में कोई अन्तर नहीं है।[१] परन्तु पुरुष तो छोटी पत्नी की ओर ही अधिक आकर्षित होता है।[२] इसी कारण नारी ने सौत के रूप-दर्प एवं आकर्षण पर प्रहार करना प्रारम्भ किया। सौत को मिजाजन, रूपगर्विता कहकर उसके अनिष्ट की अनेक कल्पनाएं की गई हैं।[३] इसके साथ ही

१. एक चणा केरी दोय दाल, दोयां ने राखो सारखी जी म्हारा राज !

२. मेलां बीच जाता लोंडी सौत भुरमाया, कँई रे जुबाब करूं रसिया से''''

३. क. सोकड़ बई तो सुई स्या नादान रानी
सोकड़ बई तो मरी म्या नादान रानी। मिजाजन कां चाली —२।८६।

ख. सोकड़ लेटी सादड़ी उपर वासग नाग
सोकड़ तो मरी गई म्हाने काड्या दांत —२।१२।

पति का ध्यान सौत की ओर से हटाने के लिये उसके फूहड़पन का वर्णन एवं अपने गुणों का उल्लेख करने पर भी कुलवधू पति का हृदय जीतने में असमर्थ रहती है।[१] नवेली वधू तो सर्वदा ही पति के लिये आकर्षण का विषय है और नारी के लिये सौत के रूप में प्रणयी-जीवन का एक अमंगलमय धूमकेतु !

भायली (प्रेयसी)

भारतीय काव्य-शास्त्रों में नायिका की अवस्था, रूप, गुण आदि को लेकर अनेक भेदों-उपभेदों की सृष्टि की गई है, जिसमें स्वकीया एवं परकीया का विशेष महत्व है। काव्यों में परकीया के चित्रण में पुरुष-वृत्ति अधिक रमी हुई दिखाई देती है। किन्तु गार्हस्थ्य जीवन के सुख एवं दाम्पत्य की साधना के लिये सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में स्वकीया का, पत्नी का ही महत्वपूर्ण स्थान है। लोकगीतों में पत्नी को कुल-वधू की गरिमा से विभूषित किया जाता है और परकीया के लिये भायली शब्द का प्रयोग मिलता है। वैसे 'भावली' शब्द का सामान्य अर्थ सखी, सहेली या मित्र होता है। मालवी में पत्नी के अतिरिक्त पुरुषसे सम्बन्धित नारी के लिये भायली एवं 'जोड़ायत' शब्द का प्रयोग मिलता है।[२] पर-स्त्री की ओर पुरुष के आकर्षित होने की प्रवृत्ति को नारी-मानस अच्छी तरह समझ सकता है। पुरुष का पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री के प्रति अमर्यादित लगाव एवं प्रेम-व्यवहार का लोकगीतों में स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है। गालू-गीतों में पर-स्त्री-सम्बन्ध का वर्णन खुलकर किया जाता है।[३] किन्तु विवाहित स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्री से सम्पर्क साधना लोक-मर्यादा के विपरीत भी माना गया है और ऐसे पुरुष की हँसी उड़ाई गई है जो प्रेयसी के प्रेम के कारण आजन्म कुंवारा ही रह गया एवं उसे दाम्पत्य-सुख से वंचित रहना पड़ा।[४]

विवाहित पत्नी एवं सामान्य प्रेमिका, जिसमें पत्नी को सम्मिलित किया जा सकता है, उसके लिये गोरी, कामणी (कामिनी) आदि शब्द हैं। गोरी अथवा गोरड़ी शब्द नारी के रूप लावण्य के सूचक है। कामणी में प्रेम की लालसा एवं वासना की अतृप्त स्थिति का

---

१. राजाजी सोकड़ का नीचा नीचा नेण, हमारा सुरमा सार्‌याजी म्हारा राज
राजाजी सोकड़ के या टूटी टापरी, म्हारे तो बंगलो बन्दयो जी म्हारा राज
राजाजी म्हे तो करांगा पतली रोटी, सोकड़ तो जाड़ा पोवे जी म्हारा राज
गोरी ए हम नी जीमा थारा थाल
हम जीमांगा जाड़ा रोटी जी म्हारा राज —२।८०।

२. भायली म्हारी तु ई मर जाजे
जोड़ायत म्हारी तुई मर जा रे, परणी वंश बढ़ावे —१।१६४।

३. भायली करे तो छैला.......वाली ने करजे रे

४. जूनी भायली, हां, जूनी भायली का कारणे कुंवारो रे ग्यो रे....

आवेग छलकता है। स्वकीया के लिये गोरी, कामनी शब्दों के अतिरिक्त बउवड़ (कुलवधु), लाड़ी एवं बेगमबाई शब्द भी मिलते हैं।[1] प्रथम दो शब्द सास और ससुर आदि वयोवृद्ध व्यक्तियों द्वारा कुल-वधू के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। लाड़ी शब्द में भी लाड़-प्यार एवं वात्सल्य की भावना निहित है। बेगम शब्द का मालवीकरण बेगमबाई भी कितना मनोरम है, जहाँ वधू के राजसी स्वभाव का परिचय मिलता है। बेगमबाई शब्द जीवित अथवा मृत सौत के लिये प्रयुक्त किया जाता है जहाँ आदर का भाव ही व्यक्त होता है। पति अपनी पत्नी के लिये सामान्यतः गोरी शब्द का ही प्रयोग करता है।

राजन-साजन

प्रियतम को लेकर लोकगीतों में शृङ्गार रस की अनुपम प्रतिष्ठा हुई है। पुरुषों के द्वारा रचित काव्यों में पर-पुरुष-प्रसंग को लेकर, उसे आलम्बन मानकर संयोग एवं वियोग शृङ्गार के उद्दाम दृश्य अङ्कित किये गये हैं। केवल रामकथा से सम्बन्धित काव्य को छोड़कर कृष्ण-काव्यों में पति एवं प्रेमी दो भिन्न व्यक्ति हैं। यहाँ उपपति का पक्ष भी बड़ा सबल दिखाई पड़ता है। लोकगीतों की नारी इस दिशा में अधिक सजग है। पर-पुरुष की कल्पना उसके व्यवहारिक एवं मर्यादा से आबद्ध जीवन में सम्भव ही नहीं हो सकती। नारी ने दाम्पत्य जीवन का सब सुख एवं प्रेम का अनन्त वैभव अपने पति के सौन्दर्य पर ही निछावर किया है। मालवी लोकगीतों की नारी के लिये पति और प्रेमी दो भिन्न व्यक्ति नहीं हैं। पति के प्रेम को न पाकर भी उसने अपने हृदय की उदारता और दृढ़ता को विचलित नहीं होने दिया है। मालवी लोकगीतों में पति के लिये अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। प्रत्येक शब्द में नारी-हृदय के भाव-सौन्दर्य को परखा जा सकता है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में विशेषकर प्रेम एवं दाम्पत्य के क्षेत्र में पति का इतना विविध एवं मनोरम स्वरूप अन्यत्र नहीं मिल सकेगा। पति के लिये प्रयुक्त निम्नलिखित शब्द विचारणीय हैं, जो अपने आप में अर्थगाम्भीर्य के साथ ही नारी की कलात्मक एवं रसपूर्ण अनुभूति को छिपाये हुए हैं :—

भंवर	छैल-भंवर	बालम	बालम-रसिया
सजन	साजन	ढोला	मारुजी
सायब	सायबा	पिया, पिउजी	चतर
राजन	राजन्द	रूपाला	बादिला
राजाजी	राजकुमार	आलीजा	कन्ता
रसिया			

---

१. क. सुन्दर गोरी म्हारी हिवड़ा को हार —३।६३
ख. पीयर गया था गोरी कँई कँई लाया —१।२६
ग. ठाड़ी कामणी अरज करे —२।२०
घ. बउवड़ मोय ले चालो जी, रामनाम सिरी क्रस्न जी……

प्रत्येक शब्द में नारी का अपने पति के प्रति दृष्टिकोण प्रकट होता है। इसमें रूप एवं शारीरिक सौन्दर्य के आकर्षण का उतना महत्व नहीं है जितना कि प्रेम के व्यवहार एवं आंतरिक गुणों का। शारीरिक रूप-सौन्दर्य से सम्बन्धित केवल दो विशेषण ही प्राप्त होते हैं—

१. रुपाला   २. बादिला।[1]

रुपाला शब्द का सामान्य अर्थ वर्ण-सौन्दर्य लिया जा सकता है किन्तु नारी का आकर्षण गौर वर्ण की अपेक्षा श्याम वर्ण की ओर ही अधिक है। बादिला शब्द में मेघ जैसे श्याम वर्ण की सौन्दर्य-भावना निहित है। इस आकर्षण के पीछे राम एवं कृष्ण के घनश्याम अथवा मेघवर्णी रूप की परम्परागत मान्यता भी है।

हृदय पर प्रेम-सत्ता की स्वीकृति को प्रकट करने वाले निम्नलिखित शब्द भी विचारणीय हैं।

राजन्द[2]   राजन   सायब   सायबा
राजाजी   राजकुमार   आलीजा

राजन शब्द प्रियतम एवं पति दोनों का ही पर्यायवाची बन जाता है। इसमें प्रिय की सत्ता के साथ हृदय के साम्राज्य पर उसका एकाकी प्रभुत्व स्वीकार करने की भावना है। प्रेम के राजपक्ष में समर्पण का यह स्वरूप अद्वितीय है जहाँ आतंक या भय से झुकने का प्रश्न ही नही उठता। राजा और साहब के समान ही वैभव-विलास के आकर्षण से युक्त व्यक्तित्व को अपने पति पर आरोपित करने में नारी को गर्व का अनुभव होता है। सायबा शब्द में आत्मीयता की भावना का आधिक्य है जबकि 'आलीजा' के सन्मुख नारी समर्पण सेवा-भावना के अतिरिक्त समानता का अधिकार भी नहीं चाहती।[3]

साजन अथवा सजन शब्द पति की सज्जनता एवं सरल स्वभाव को ध्वनित करता है। भँवर एवं छैल-भंवर शब्दों में नायक की आयु एवं उसकी शृंगार-प्रियता प्रकट की गई है। पिता के जीवित रहने की अवस्था में विवाहित युवक कंवर (कुंवर) कहलायेगा। किन्तु उसके यहां एक पुत्र हो जाने के पश्चात् उसे भंवरजी कहकर सम्बोधित किया जावेगा। रजवाड़ी प्रथा का यह शब्द नायक के उस चरित्र का उद्घाटन करता है कि एक-दो पुत्रों का

---

१. क. रुपाला माने एक घड़ी, ये तो ढोला बैरणियां बिलमाया जी —२।२३
   ख. म्हारा बादिला घणी छै उमेद —२।१०
२. क. राजन्द फेरी दे गया कर जोगी को भेस —मा० दो० ९३
   ख. सासूजी अरखावणा राजन आगे न्याव —वही, १०५
   ग. राजाजी जाजो रे देस पचास —३।८ सा०
३. ऊंचा ओ आलीजा तमारा ओवरा, नीची बंधावा पड़साल

पिता हो जाने के पश्चात् भी स्वयं को खूब सजाता है, सुन्दर वस्त्र धारण कर आकर्षण का केन्द्र बनना चाहता है। पत्नी के लिये पति का यह स्वरूप भी आकर्षक ही होता है।[1]

भंवर, बालम, रसिया एवं बालम-रसिया आदि शब्दों में पति की रसिकता एवं हृदय का निश्छल प्रेम प्रकट होता है। रसिया शब्द रमणी की रमणशील कामना के साथ ही स्त्री और पुरुष दोनों की विलासी एवं कामुक प्रवृत्ति की सूचना देता है।[2] पिया, पियु एवं कन्त शब्द सामान्यतः प्रियतम के अभिधेयार्थ से युक्त है।[3] ढोला एवं मारुजी राजस्थानी प्रेममूलक कथा-काव्य के नायकों के प्रेमपूर्ण चरित्र एवं आदर्श की कामना को लेकर चलते हैं। साधारणतः इन दोनों शब्दों का प्रयोग भी प्रेमी अथवा पति के सन्दर्भ में हुआ है।[4]

सम्पूर्ण मालवी गीतों में पति के अतिरिक्त अन्य प्रेमी-पुरुष का उल्लेख भी एक दो स्थलों पर मिल जाता है। इसके लिये 'भायला' शब्द का प्रयोग हुआ है। पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री, प्रेमिका के लिये भायली शब्द का उल्लेख हो चुका है। किन्तु भावना एवं लोक-मर्यादा की दृष्टि से पर-पुरुष पर आसक्त नारी की भर्त्सना ही की गई है एवं पुरुष के द्वारा कुलवधू के महत्व एवं प्रतिष्ठा को प्रदर्शित करने की दृष्टि से भायला शब्द अपनाया गया है।

---

१. क. छैल भंवर की आंख्या दुखे, हू तो सुरमो सारु रे —२।८२
   ख. ओ म्हारा छैल भंवर जी, होली तापे रे —२।८३
   ग. म्हारा भंवर जी इत्ता रसीला दो-दो गोरयाँ राखे रे —३ फा० ४

२. क. ढप कायकूँ बजावे बालम रसिया —२।४१
   ख. ढोल्यो काय कूँ मंगायो रसिया गोरी पोढ़न कूँ तरसे —३।५६
   ग. दल बादल बीच चमके तारो, तो साँझ पड़े पियुँ लागेजी प्यारो
      कँई रे जुवाब करूँ रसिया से ? —२।१६
   घ, त्हने म्हारा बालम क्यों मोया री —१।३७

३. क. सांझ पड़े पियु लागेजी प्यारो
   ख. ओ पिया रेवो तो मांडू चन्दन चौक —१।२१८
   ग. धरती का जाम्बू पिया परत नी भावे —१।२१६

४. क. ये तो ढोला बैरणियाँ बिलमाया रे —२।२३
   ख. ढोला मारूणी आम-अलूँबा झाड़ियाजी,
      ढोला मारूणी चौपड़ खेलिया जी —१।११४

उपरोक्त विविध शब्दों के अतिरिक्त मालवी नारी ने अपने प्रियतम के चरित्र को आंशिक रूप से उद्घाटित कर अपने हृदय की विभिन्न भावनाओं को प्रदर्शित किया है। पति के लिये निम्नलिखित उपमामयी अभिव्यक्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

१. सासूरा जाया ——— २. बाई जी रा वीर
३. सेजां रा सरदार ——— ४. ढोल्या रा उमराव
५. निंदालू बालमा ——— ६. कन्ता सूरज ....[1]

'सासूरा-जाया' एवं 'नणदल का बीर' आदि विशेषताओं से अपने प्रियतम को सम्बोधित कर मालवी नारी अपनी आकर्षण-विहीन एवं विवश परिस्थिति में पति को मां और बहिन के पुनीत सम्बन्ध की याद दिलाकर विलग न होने की कामना प्रकट करती है। निंदालू बालमा का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है। वह पत्नी की प्रेम भरी भावनाओं की ओर ध्यान न देते हुये वह निन्द्रागस्त हो जाता है। कन्त को सूरज की उपमा देना भी स्पष्ट है। प्रियतम के अभाव में नारी का जीवन अंधकारमय हो जाता है। प्रिय को सेज का सरदार बना देना नारी-मानस की काम-तृप्ति की स्वीकारोचित है। सौन्दर्य एवं प्रेम की सुवास से आपूर्ण पति के लिये दिये गये दो उपमान विशेष उल्लेखनीय हैं।

१. हरिया बागां का केवड़ा ——— २. सायब मेरा बाग का चम्पा...[2]

---

१. क. हो सासूरा जाया, बाई जी रा बीरा, मुखड़े बोलो क्यों नी रे ? —३।६२
ख. सेजां रा सरदार, ढोल्या रा उमराव, छज्जा उप्पर मोर नाचे —३।७८
ग. यांज् रेवो म्हारा कंता सूरज, त्हाकी मिरगाणैनी झूरेजी —३।७६

२. क. ओ पिया......जी म्हारा हरिया बागां का केवड़ा
सायबा जावां नी देवांजी राज —१।२१८
ख. — ३।६८

(३)

मालवी लोक-गीतों में रस-प्रतिष्ठा

- लोकगीत एवं लोक-संगीत
- लोकगीतों में भावों का शास्त्रीय पक्ष
- वात्सल्य, मातृ-हृदय की एक अभिव्यक्ति
- संयोग और वियोग शृंगार की झांकी
- करुण एवं हास्य के प्रसंग

लोकगीत एवं लोक-संगीत

लोकगीतों में शब्द एवं भाव-सौन्दर्य की अपेक्षा कण्ठ से निसृत स्वर एवं भाव-ध्वनियों का विशेष महत्व है। लोकगीतों की मौखिक परम्परा में जिन गीतों का अस्तित्व आज विद्यमान है उसका कारण है श्रवण-रुचिर स्वर-लहरियों का आकर्षण। जिन गीतों की गायन शैली अधिक सरल एवं मधुर होती है उनका प्रभाव जन-मानस पर निरन्तर बना रहता है। संवेदनशील मानव-हृदय के भाव सहजतः जब मुख से अभिव्यंजित होते हैं, स्वर एवं लयबद्ध हो जाने के पश्चात् एक निश्चित 'धुन'.....गेय-पद्धति में प्रकट होते हैं। इन लोक-धुनों की संख्या अनन्त है। भारत के प्रत्येक जनपद में जितने भी लोकगीत प्रचलित हैं उनकी विशेष धुन हैं। ये लोकधुनें निसर्ग-सिद्ध हैं। इन्हीं लोकधुनों में भारतीय संगीत के अनेक राग छिपे हुए हैं। शास्त्रीय संगीत एवं विभिन्न राग-रागनियों का विकास लोक-धुनों में व्याप्त स्वरों पर आधारित है। मालवी एवं राजस्थानी लोकधुनों को लेकर शास्त्रीय संगीत के क्रमिक विकास का अध्ययन करने में कुमार गन्धर्व ने विशेष प्रयास किया है। उनकी खोज के आधार पर अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत का विकास लोकधुनों में व्याप्त है। लोकधुनों में शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होता है। कुछ नई धुनें ऐसी भी हैं जिनके द्वारा नवीन रागों का निर्माण किया जा सकता है।[1] लोकधुनों में से राग के मूल स्वरों को लेकर राग-रागनियों का निर्माण कर प्रदेश एवं जनपद विशेष की गान-पद्धति पर उनका

---

१ देखें, कुमार गन्धर्व का लेख, भारतीय संगीत का मूलाधार लोक-संगीत, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक —पृष्ठ ३१२।

नामकरण करना भी इस बात को सिद्ध करता है कि शास्त्रीय संगीत का आधार लोक-संगीत ही है। आधुनिक समय में प्रचलित राग-रागनियों में सोरठ, गान्धारी, भोपाली, मुल्तानी, बंग-भैरवी, सिन्ध-भैरवी एवं गौड़-सारंग आदि जनपदीय लोकधुनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुमार गन्धर्व ने लोकधुनों की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई हैं —

१. चार पांच स्वरों में सीमित (साधारणतः)
२. लयबद्धता,
३. लय के अनेक प्रकार इन धुनों में प्राप्त होते हैं
४. लोक-धुन के स्वर समय के अनुरूप होते हैं
५. सरलता
६. धुन-रचना प्रसंगानुकूल होती है
७. एक धुन में अनेक गीत गाये जा सकते हैं।[1]

मालव जनपद के लोक-संगीत में भी प्रेम, भक्ति, अनुराग, करुणा एवं उल्लास आदि मानव-जीवन की अनेक भावनाएँ तरंगित हुई हैं। मालव की लोक-धुनों का प्रतिनिधित्व करने वाला 'मालव-राग' यद्यपि आज प्रचलित नहीं है फिर भी इस राग के अस्तित्व का इतिहास मालव के लोक-संगीत की स्मृति को उभार देता है। तेरहवी शताब्दी में मालव राग का प्रचलन था। जयदेव के गीत गोविन्द में इसका संकेत मिलता है।[2] दक्षिणात्य संगीत के विवेचक पाल्कुरि के सोमनाथ ने १११ जानपदीय रागों की सूची में मालवी (५१) और मालव (६१) का उल्लेख किया है।[3] आज मालव में प्रचलित लोकगीतों में संगीत की जो अभिव्याप्ति है, वह भावनाओं के उद्रेक के साथ रस की सृष्टि करने के लिये पर्याप्त है। सुख-दुःख-एवं आनन्द-उल्लास के भावों को प्रकट करने वाले लोकगीतों के शब्द संगीत की स्वर-माधुरी के सहारे रस उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। मालवी लोकगीतों की निम्नलिखित धुनें विशेष आकर्षक हैं —

गीत की प्रथम पंक्ति	प्रसंग	भाव-सृष्टि
१. नाना कावड़िया रे बीर जल भर लायो सोरम घाट को।	तीर्थ-यात्रा, गंगोज	हर्ष, प्रियजन के पुनः मिलन का उल्लास,
२. झारी झलकती आवे जम्बू उबरातो आवे।	,, ,,	प्रतिष्ठा का गर्व, धर्म-भावना

१. वहीं; पृष्ठ, ११२।१४

२. मालव रागयतितालाभ्यां गीयते—सर्ग ७, प्रबन्ध १३।

३. देखें. डा० श्रीकण्ठ शास्त्री का लेख, तेरहवीं शताब्दि का दाक्षिणात्य संगीत, सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति अंक) पृष्ठ ३३०।

३. म्हाने लादी ह्वै तो दीजो हो नन्दलाल कुवर न्हावता झूमर म्हारी गम गई।	प्रभाती, तीर्थ–स्नान के लिये जाते समय गेय	धर्म भावना
४. ले लोट्यो बउ न्हावा चाली सासु मुं मचकोड्योजी राम नाम सिरी कृष्ण जी।	"	"
५. ननन्द बाई बरजो मती म्है तो बंसीवाला से खेलूंगी फाग।	फाग	माधुर्य-भावना
६. उदियापुर से सायबा भांग मंगाय अब थे घोटो हो केसरिया सायबा भांगड़ी हो राज........।	उद्यान गीत	दाम्पत्य जीवन का सौख्य, प्रेमभाव की उद्दामता।
७. जी सायबा खेलन गई गणगौर अबोलो म्हां से नी सरे जी म्हारा राज।	गणगौर का गीत	वियोग-जन्य भावना, मिलन की आकांक्षा
८. कईं रे जुबाब करुं रसिया से दल बादल बीच चमके तारो सांझ पड़े पिउ लागे जी प्यारो!	उद्यान गीत	प्रणय का आकर्षण, सौन्दर्य गर्व का स्खलन
९. चालो गजानन जोसी क्यां चालां।	विवाह, विनायक-पूजा	मंगल–भावना एवं मांगलिक आयोजन का उल्लास।
१०. म्हारी राजल बेटी क्यों हारया ?	विवाह (वाग्दान)	वात्सल्य एवं करुण, उल्लास एवं निराशा का मिश्रण।
११. वीरा गिरधरलाल वीरा मदन गोपाल!	विवाह (मायरा)	पारिवारिक- गर्व
१२. बीरा रमा झमा से म्हारे आजो।	"	"
१३. गाड़ो तो रड़क्यो रेत में रे गगना उड़े रे गुलाल!	"	"
१४. कृष्णजी घुड़लो पलानिया बई रुक्मण हुआ असवार।	विवाह (विदाई)	अवसाद एवं करुण भाव।
१५. ओ सासू गाल मति दीजे।	"	वात्सल्य एवं करुण
१६. धरम तमारा ए नार पति की सेवा करना।	विवाह (गालगीत)	नवीन धुन

१७. गाड़ी भरी चंगेरड़ी ग्रो बउ थे कठे चाल्या ग्राज।	शीतला-पूजन	पुत्र-कामना, बन्धयत्व की लांछना से उत्पन्न क्षोभ, ग्लानि एवं करुणा
१८. गौरी का ढोला फेर मिलांगा रे मनड़ो हालरियो !	ऋतु-गीत	उल्लास ग्रौर छेड़छाड़

लोकगीतों में भावों का शास्त्रीय पक्ष

भारतीय साहित्य-शास्त्र के ग्राचार्यों ने मानव-जीवन की विभिन्न ग्रनुभूतियों के ग्राधार पर हृदय की ग्रनन्त भावोर्मियों का मन्थन कर सार रूप में स्थायी भावों की व्यापक एवं चिरन्तन सत्ता को स्वीकार किया है। इन स्थायी भावों से ही विभिन्न रसों की ग्रसंख्य भाव-लहरियों में तरंगित होकर मानव-हृदय उद्वेलित होता रहता है। किन्तु वासना रूप में जो भाव हमारे ग्रन्तःकरण में निहित हैं वे ही प्रदीप्त होकर रसमग्न करते हैं। यह रस ग्रानन्द की ग्रभिव्यक्ति है ग्रौर उसका पहिला विकार ग्रहंकार है। उससे ममता या ग्रभिमान पैदा होता है एवं इसी ममता या ग्रभिमान से रति ग्रर्थात् प्रेम प्रकट होता है। वही रतिभाव पुष्ट होकर शृंगार रस की स्थिति धारण करता है। हास्य ग्रादि उसी के ग्रनेक भेद हैं। रतिभाव सत्वादि गुणों के विस्तार से राग, तीक्ष्णता, गर्व ग्रौर संकोच इन चार रूपो में परिणित होता है। राग से शृंगार, तीक्ष्णता से रौद्र, गर्व से वीर एवं संकोच से बीभत्स रस की उत्पति होती है [1]। इस प्रकार मानव हृदय में ग्रनेक भावों की सत्ता को स्वीकार करते हुये भी शृंगार के स्थायी भाव रति को भारतीय ग्राचार्यों ने मुख्य एवं ग्रादि–भाव माना है ग्रौर इसी से उत्पन्न ग्रन्य विकार विभिन्न भावों का स्वरूप धारण करते हैं। काव्य एवं लोकजीवन का मूलाधार रति भाव ही ठहरता है। पश्चिम के मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने भी जीवन की मूल प्रेरक शक्ति सेक्स को ही माना है। स्त्री ग्रौर पुरुष की सहज ग्राकर्षण-शील चित्तवृत्ति रति, जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में ग्रभिव्यक्ति होकर मनुष्य को जीवित रखने, स्वयं का ग्रस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देती रहती है। मनुष्य के सामाजिक जीवन में बँध जाने के पश्चात् दाम्पत्य के रूप में रति भाव के विकसित एवं ग्रभिव्यक्ति होने में ग्रनेक ग्रनुभूतियो से युक्त मनोदशाग्रो का स्फुरण ग्रौर लोप होता रहता है। लहर के समान

---

१. ग्रानन्दः सहजस्य व्यज्यते सकदाचन
ग्राद्यस्तस्य विकारो योऽहंकार इति स्मृतः
ततोऽभिमानस्तत्रैदं समाप्तं भुवन त्रयम्
ग्रभिमानदरितः साच परिपोषमुपेयुषी
तदभेदा कामभितरे हास्याया ग्रप्यनेकशः
रागात्भवति शृंगारो रौद्रस्तैक्ष्णयात्प्रजापते।

उठने और एक दूसरे में विलीन हो जाने वाले भावों को संचारी की संज्ञा दी गई है। उनकी संख्या यद्यपि ३३ निर्धारित की गई है किन्तु जीवन की विशाल एवं आदि-अंत से परे की शाश्वत सत्ता में मानव-हृदय की उर्मिल वृत्तियो की संख्या एवं उनके स्वरूप को निश्चित रूप से जान लेना किसी भी मानस-शास्त्री के लिये सम्भव नहीं हो सकता।

लोकगीतो में जीवन की अनन्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का व्यापक स्वरूप मिलना कठिन है। काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने नव रस के विभिन्न उपांगों का विस्तृत विवेचन कर जो सूक्ष्म विभेद एवं विविध मनोदशाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया है उसके आधार पर लोकमानस के भाव-सौन्दर्य को परखने का प्रयास भी नहीं किया जा सकता। साहित्याचार्यों द्वारा शृंगार आदि क वर्णन के लिये जिन सीमारेखाओं का निर्धारण किया गया है वह काव्य की परम्परा में रूढ़ हो गया है। फिर नारी-हृदय के भाव, आवेग आदि पुरुष कवियों के द्वारा प्रस्तुत किये गये है। उनमें स्वाभाविकता का समावेश होना भी सम्भव नही। केवल बाह्य चेष्टाओं को देखकर ही नारो के अन्तस में उद्वेलित होने वाली भावनाओं का अंकन कर लेना पुरुषों की मनोरम कल्पना का परिचायक अवश्य हो जाता है। किन्तु इसमें नारी-मानस के सहज-सौन्दर्य की अनुभूतियो का यथार्थ चित्र नही मिल सकता। स्त्रियों की अतृप्त वासनाएँ एवं कुचली हुई मनोकांक्षाओ का आवेग लोकगीतों में खुलकर प्रकट हुआ है। इसी तरह यौवन की उमंगो में डूबते-इतराते नारी-हृदय की विरहजन्य व्यंजनाएँ भी बड़ी चुभती हुई हैं। जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण काव्य-ग्रन्थों में सम्भव नहीं, वह लोकगीतों की अपनी वस्तु है।

लोकगीतों में शृंगार एवं इसके सहयोगी हास्य और वीर रस से आपूर्ण चित्रो का ही आधिक्य है। रौद्र, वीभत्स एवं भयानक रसों के आविर्भाव के लिये लोकमंगल की भावभूमि में कोई स्थान नही है। अद्भुत रस केवल बाल-प्रवृत्ति का सूचक है। अतः बालको के गीतों में दो-चार स्थलों पर विस्मय-पूरित अद्भुत रस के हल्के छींटे देखने को मिल जावेगे।[1] शान्त एवं करुण रस को लोकगीतो में अधिक महत्व नही दिया गया है। भक्तिभावना के गीतों में शान्त रस के दर्शन अवश्य हो सकते हैं किन्तु स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषों द्वारा गेय निर्गुणी एवं पंथीड़ा के गीतों में ही इसका प्रभाव अधिक परिलक्षित होगा। स्त्रियों के गीतों से व्यक्त भावना का शृंगार के अन्तर्गत ही समावेश होगा क्योंकि वहाँ सौभाग्य कामना ही अधिक प्रबल है। शृंगार के अन्तर्गत वियोग की पूर्वानुराग एवं करुण (मरण) की स्थितियों का चित्रण भी सम्भव नही है। लोक-लज्जा एव सामाजिक नियमों की बाध्यता के कारण पूर्वानुराग की स्थिति उत्पन्न हो ही नही सकती। पति का सदा के लिये वियोग होना वैधव्य की स्थिति का सूचक है और लोकगीतों के मांगलिक पक्ष को प्रकट करने वाली सौभाग्य की

१. क. आम्बा में ताम्बो रे, केरिया में खजूर —१।६।३

ख. आम्बो चाल्यो लाम्बो रे, डाल पड़ी गुजरात — १।६।२

आराधिका नारी के हृदय में ऐसी भयावह एवं अमंगलसूचक भावना निसृत भी कैसे हो सकती है ? केवल सती के गीतों के प्रसंग में एवं पारिवारिक कलह के कारण किसी गृहिणी की मृत्यु की घटना को लेकर करुण भावों की यत्र-तत्र अभिव्यंजना हुई है।[1]

शास्त्रीय दृष्टि से श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति का आंशिक स्वरूप मालवी लोकगीतों में देखने को अवश्य मिल सकेगा। प्रकृति, कर्म एवं अवस्था की दृष्टि से भारतीय काव्यशास्त्र में नायिका के अनेक भेद एवं उपभेद मान लिये गये हैं। वयःभेद की दृष्टि से लोकगीतों की नायिका का उल्लेख नहीं हो सकता। रति-प्रगल्भा नायिका का एकाध उदाहरण अवश्य मिल जाता है।[2] दशानुसार प्रस्तुत की गई नायिका के चारों स्वरूप''अन्य संभोग दुःखिता, मानवती, प्रेम-गर्विता एवं सौन्दर्य-गर्विता के चित्र की छाया भी इन गीतों में देखी जा सकती है।[3] प्रकृति के अनुसार मालवी लोकगीतों के नायिका का बड़ा ही विचित्र स्वरूप है। स्त्री की प्रकृति का परिचय देने वाले शब्दों के उल्लेख से ही उनके भेद माने जा सकते हैं। बांगड़, जेलू, मालवी नायिका के विशेष भेद हैं।[4] इसी तरह भावों की अभिव्यक्ति के आधार पर लोकगीतों की नायिका का एक भेद 'देवृकामा' भी हो सकता है। स्वकीया के स्वरूप की अभिव्यक्ति ही में देवृकाया को छोड़कर परकीया नायिका का उल्लेख नहीं मिलेगा। सौत भी स्वकीया ही मानी जावेगी। संयोग एवं वियोग श्रृंगार के प्रसंग में भावों की मार्मिकता पर विस्तार के साथ विचार किया गया है। नारी के मातृरूप का विवेचन वात्सल्य के अन्तर्गत आ जाता है।

वात्सल्य....'मातृ-हृदय की एक अभिव्यक्ति'

माता के हृदय की उमड़ती हुई ममता और वात्सल्य का सच्चा स्वरूप लोरियों में प्राप्त होता है। झोपड़ी से लेकर राजमहलों में जन्म लेने वाले मानव को शिशु के रूप में माता की गोद में, उसके हिय के पालने में आशा-उमंगों की मृदुल-लहरियों से दौलित हो झूलना ही पड़ता है। संगीत-माधुर्य से सिक्त मातृ-कण्ठ द्वारा उच्चारित लोरियों के स्वरों

---

१. क. नाग के डसने से बधू की मृत्यु का वर्णन —३।८१
 ख. गृह कलह के कारण नववधू के विष खा लेने का उल्लेख —१।१८६

२. एक 'झकोरो' दीजो सायबा, जापा भरियो डील —२।३२

३. कँई रे गुमान करूँ रसिया पे —२।१६
 सभी साँझ का गया साजन आवे आधी रात —मा० दोहे-१२७
 दोयाँ की जोड़ी भली झक् मारे संसार —मा० दोहे-१३१
 भँवर म्हारी एड़ी निरखो तो पनघट आजो म्हारा रे —३।२४

४. घोड़ो हिंस्यो रे बाँगड़ बड़्ड़े चढ़ी —१।१५४
 सीतळजी (नाम विशेष) की जेळ पूछे
 रे दादा कीको घोड़ो ? —वही,

को कानों से पीकर ही तो शिशु सुख की नींद सोता है। सृष्टि के प्रारम्भ में परिब्रह्म भी वट-पत्रशायी शिशु के रूप में महा-अनन्त की आन्दोलित लहरियों के झूले पर झूले थे एवं मीठी लोरियों का पान करने के लिये ही कौशल्या और यशोदा की गोद में उन्हे आना पड़ा था। मालवी लोकगीतों में वात्सल्य, माता के हृदय में उठने वाली विभिन्न भाव-तरंगों के द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। शिशु के प्रति जो सहज स्नेह है, विशेषकर पुत्र के प्रति वह लोरियों में प्रकट हुआ है। वात्सल्य की अभिव्यक्ति निम्नलिखित भावनाओं पर आधारित है :–

१. शिशु के प्रति मंगल की कामना [1]
२. शिशु की वेषभूशा के प्रति आकर्षण [2]
३. शिशु के पोषण में निःस्वार्थ भावना का उल्लास [3]

पुत्र के साथ ही कन्या के सम्बन्ध को लेकर वात्सल्य की उद्भावनाएं हुई हैं। विवाहित कन्या के पति (जमाई) का जो स्वागत-सत्कार किया जाता है एवं विशेष ममता प्रदर्शित की जाती है वहाँ भी वात्सल्य-भावना की प्रधानता है। जमाई के लिये जो स्नेह व्यक्त होता है वह पुत्री के प्रति ममत्व का परिचायक है। जमाई की प्रतीक्षा में माता के हृदय का उल्लास वात्सल्य का स्वरूप ले लेता है।[4] कुछ गीतों में वात्सल्य, शृंगार-भावना को साथ लेकर चलता है। बालक की उपस्थिति एवं बाल-क्रीड़ा के आकर्षण में नारी एक बार विदेश गये अपने पति के वियोग का दुःख भी भूल जाती है। सुहावनी रात में पति की स्मृति अवश्य ही जागृत होती है किन्तु शिशु के स्नेह में प्रिय-वियोग की वेदना उभरने नहीं पाती।[5] वात्सल्य में प्रणय का गर्व भी मिश्रित है। पति का वैभव नारी के गर्व को उभारने के साथ ही मातृ-हृदय में शिशु के सुख और सौभाग्य के प्रति उल्लास और आत्म-संतोष की भावना प्रेरित करता है।[6] वास्तव में मातृत्व का एक ऐसा ऋण है जिसे मनुष्य कभी भी

---

१. गुड़ली गुड़ली पानी भरुं, म्हारा नाना ऊपर लूण करुं
लूण करो ने रई रे भई —१।१९

२. नाना की टोपी नित नवी, या टोपी फुन्दावली
या टोपी मोत्यांवाली, नाना का माथे सोवे
मायड़ मन हरखे, नाना की टोपी गोटा की
गले खुंगाली चार सो की —१।२३

३. क. हुल रे नाना हुल रे, दूध पतासा पीले रे नाना —१।१७
ख. नानो तो म्हारो रायों को, दूध पीये दस गायाँ को —१।१९

४. ऊंची चढ़ूं ने नीची उतरुं......जोऊं म्हारा जमईजी री वाट —१।११

५. नाना का काकाजी देसावरिया गढ़ गुजरात, मांझल रात
नाना की टोपी नित नवी —१।२२

६. नाना भई नाना भई करती थी, रस में पोळी पोती थी
नाना का बाप ठाकरिया, ठाकरिया करे ठकुराई
नाना भई ऊपर चंवर ढुले —१।२५

नहीं चुका सकता। नारी के महिमामय स्वरूप''''मां के आंचल की छाया में पोषित शिशु युवा होकर जब अपनी प्रियतमा नारी के प्रति कुछ हृदयहीन एवं कठोर हो उठता है तब वात्सल्य के आँचल की दुहाई देकर नारी उसे सचेत करती है ।'

संयोग और वियोग श्रृंगार की झाँकी

संयोग श्रृंगार में नायक एवं नायिका के मिलन से उत्पन्न दाम्पत्य सुख की विविध मनोदशाओं के चित्र मालवी लोकगीतों में प्राप्त होते हैं। श्रृंगार से मिलन पक्ष तक के चुम्बन, आलिंगन एवं प्रणय-क्रीड़ाओं का वर्णन स्त्रियों के लोकगीतों में नहीं पाया जाता। इस प्रकार के वर्णन में पुरुषों को ही अधिक रस मिलता है । संकोचशीला एवं लज्जा की गरिमा से विभूषित लोकगीतों की नारी अपने हृदय के वैभव को सस्ती कामुकता पर बिखेरने के लिये कभी तैयार नहीं होगी। यह तो पुरुष ही है जिसने प्रेम एवं विरह की वेदना को स्त्रियों के सिर पर मढ़ कर उसे विलासिता की पुतली एवं काम-क्रीड़ा का एक खिलौना मात्र समझा । रतिभाव की अभिव्यक्तियों में स्त्रियों ने धृष्ठता अथवा वाणी के असंयम का बहुत कम परिचय दिया है । मिलन श्रृंगार के अन्तर्गत युग्म की सुन्दरता पर गर्व, रूप-सौन्दर्य का अहं, प्रिय-दर्शन की लालसा एवं हृदय से लगने की कामना के साथ जीवन के व्यवहारिक पक्ष की उपेक्षा भी नही की गई है। प्रिय-मिलन की आकांक्षा 'पी बिन रियो नी जाय' स्थान-स्थान पर प्रकट हुई है। संयोग श्रृंगार की भावना में रूप-सौन्दर्य का आकर्षण प्रमुख है। नायक और नायिका के मिलन की स्थिति में प्रेम-भरे अनेक रमणीय भावचित्रों का सृजन करती है। वियोग के बाद मिलन की आकांक्षा और भी तीव्र हो जाती है। मिलन की प्रतीक्षा के क्षण समाप्त होते ही प्रियतम का सामीप्य वियोग-तप्ता नारी को प्रिय से आलिंगन करने के लिये अधीर कर देते है।

राजन्द आया दूर से सतरंज देऊँ बिछाय
सुख-दुख पाछे पूछ जो हिरदा लोनी लगाय

प्रियतम बड़ी दूर से आये हैं सतरंज तो बिछाये देती हूं किन्तु सुख-दुःख आदि के समाचार बाद में पूछना, पहिले हृदय से लगा लीजिये न ! प्रेम-भरे इस आग्रह में मिलन की प्यास के साथ विरह की कसक भी छिपी हुई है। यह तो मिलन की उत्कण्ठा से आतुर नारी का चित्र है। किन्तु अपने सौन्दर्य के दर्प से गर्वित नारी तो प्रियतम के सन्मुख मिलन की शर्त प्रस्तुत करती है कि धरती का लहंगा, आसमान की साड़ी और तारो की कंचुकी यदि ला सकते हो तो मिलने के लिये आना अन्यथा अपने डेरे पर ही रहना।

---

१. सूरज दुवारचा, पालने हिन्दाया आंचला धवाया
रे नव रंगिया ढोला --१.८४

धरती को लेंगो, आसमान को लुगड़ो, तारा रो पोलखो सिलावो जी बना
इत्तो होय तो आवो प्यारा बनड़ा, नी तो रेवो अपने डेरे जी बना [1]

दाम्पत्य जीवन को स्वर्ग बनाने में नारी की भावना के ऐसे अनेक शाश्वत चित्र मिलेंगे जहाँ आकर्षण और अनुरक्ति इन चित्रों के सुदृढ़ आधार–भित्ति हैं। विशिष्ट का विशेष से संगम होना गर्व करने की वस्तु है। उपयुक्त पति मिलने पर नारी का यह गर्व और भी द्विगुणित हो जाता है। उस समय संसार के अन्य आकर्षण उसे स्खलित नहीं कर सकते।

थाँके कसूमल पागड़ी म्हाके कसूमल घाट
दोयां की जोड़ी भली झक मारे संसार[2]

यदि प्रेमी और प्रेमिका, पति एवं पत्नी आपस में ही एक-दूसरे के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं तो विश्व के अन्य सुन्दर एवं आकर्षण प्रलोभन फीके पड़ जाते हैं और नारी का रूप-गर्व एवं यौवन का दर्प आत्मशक्ति के विश्वास के साथ विश्व की कुप्रवृत्तियों को चुनौती भी दे सकता है।

एड़ी म्हारी चीकणी जैसे सतवां सूंठ
ऐसी चालू झूमती रंडवां छाती कूट [3]

सतवा सौंठ के समान चिकनी एड़ी से नायिका झूमती हुई ऐसी मस्ती भरी चाल से चलती है कि रंडवे····पत्नि-विहीन लोग छाती कूट कर रह जाते हैं। नायिका को अपने सौन्दर्य का गर्व है और सुन्दरता की ओर कुदृष्टि से घूर–घूर कर देखने वालों की प्रवृत्ति के प्रति भी वह सजग है।

नारी मिलन-आकांक्षा लेकर शयन-कक्ष में प्रियतम की प्रतीक्षा करती है। उस समय भी शृंगार-सजा और सौन्दर्य से प्रियतम को आकर्षित करती है।[4] लोकगीतों की नायिका अधिक चतुर है। सामाजिक बन्धनों के कारण निर्बाध मिलन का अवसर अप्राप्त होने की स्थिति में प्रियतम को बुलाने के लिये वह जो युक्ति प्रस्तुत करती है उसमें भी उसका बुद्धि–चातुर्य प्रकट होता है। द्वार के निकट ताम्बूल की लता एवं आंगन में इलायची के पौधे इस आशा से लगाती है कि ताम्बूल ग्रहण करने के बहाने ही उसको अपने प्रियतम की झलक

१. दोहे, क्रमांक ८९
२. मालवी दोहे, क्रमांक ८७
३. वही, दोहा क्रमांक ९६
४. क. घाट कसूमल ओढ़ी ने, मरवंण मेलां बैठी —१।४१
   ख. पेंचा में रंगलाल लिये, कद की खड़ी रे बना —१।९३
   ग. भंवर जी काजल निरखो तो, पलंग पर आजो रे —३।२४

मिल जावेगी ।[1] नायिका प्रणय के व्यवहार में भी अधिक कुशल है । प्रियतम के पास दूत भेजने में चतुराई से काम लेती है । वृद्ध व्यक्ति को प्रणय-संदेश के लिये इसलिये नहीं भेजती कि उसे खाँसी आ जाती है, यदि बालक को भेजती है तो प्रणय-क्षेत्र के अज्ञान एवं कौतूहल के कारण उसे हंसी आ जावेगी । इसलिये प्रेम-कला में प्रवीण कृष्ण को ही प्रणय-संदेश का वाहक बनाने की आकांक्षा प्रकट करती है ।[2] प्रेम का पथ वास्तव में कण्टकाकीर्ण है । प्रेम की आग से खेलना सहज नही है । किन्तु उच्चकोटि के प्रेम में एवं सुदृढ़ रहने वाली नारी मिलन के अवसर को व्यर्थ ही छोड़ देना उचित नहीं समझती । वह प्रियतम को सचेत करती है कि प्रेम का संसार निश्चित ही अग्निमय है । परन्तु प्रणय-पुष्प की दिव्य सुगन्ध इसी उद्यान में प्राप्त हो सकती है । यौवन की मस्ती में इतराती हुई प्रेमिका अपने प्रियतम को स्पष्ट संकेत दे देती है कि मिलन का अवसर जीवन में बार-बार नहीं आ सकेगा ।[3] मालवी लोक-गीतो में मिलन, क्रीड़ा, रति एवं छेड़छाड़ के प्रसंगों का सांकेतिक एवं स्पष्ट दोनों प्रकार का वर्णन हुआ है ।[4] प्रिय के समागम की इच्छा, अभिलाषा, शृंगार-सामग्री एवं पर्यङ्क (शय्या) आदि का उल्लेख भी गीतों में प्राप्त होता है ।[5] सम्भोगानन्द की अनुभूति आसमान के तारे टूटने का संकेत देकर व्यक्त की गई है ।[6] बांछड़ियों (ग्राम की नर्तकी) द्वारा गेय दोहों में एकाध स्थल पर सम्भोग एवं उसके पश्चात् की स्थिति का चित्र भी मिल जाता है ।[7] प्रसूति

---

१. आंगण बोवूं एलची कंवळे नागर बेल
बोड़ा में मिस आवजो ... —मालवी दोहे ९२

२. मेरा दिल चावे बना, आपसे मिलने के लिये
कहो तो छोरा भेजूं कहो तो बुड्ढा भेजूं
भेजूं म्है कृष्ण मुरार —१।८५

३. अगन बाग में मगन बगीचा, दाख तले घर मेराजी
नौ सो कलियाँ लूम गई, नारंगी नीचे डेराजी
आवोगा पछतावोगा फिर नईं मिलन का मौका जी —१।१९६

४. क. काली काँचली में लींबूड़ा झक-झोर खाये रसियो —३।७७
ख. ढोला मारुनी दोईं मिल सूता
हेलो किने कईं दुश्मन पाड्यो हो राज —१।२१५

५. बीड़ा काय को मगाया चाबो रसिया
ढोल्या काय को मंगाया पोढ़ो रसिया —३।५०

६. बना थाने केसर बरसाई, आसमान का तारा टूट्या
म्हारी तबियत घबरावे —१।१०४

७. ढोल्या रा पाया उजला, ढीली पड़ी रे निवार
साळ ने सलवट पड्या रम्या रे राजकुमार —२।३१

के पश्चात् नारी हृदय में प्रदीप्त संगभेच्छा [1], अतृप्ति से उत्पन्न खीज [2] एवं खण्डता नायिका का ईर्ष्या-मिश्रित विशाद आदि भावों की सांकेतिक अभिव्यंजना भी स्पष्ट रूप से की गई है।[3]

श्रृंगारी कविताओं में प्रेमभाव का विस्तार दिखाने के लिये सौत अथवा किसी स्त्री मित्र की कल्पना की जाती है किन्तु लोकगीतों में पति से संबंधित पर–स्त्री अथवा सौत को लेकर नारी हृदय की ईर्ष्या भावना का सहज एंव यथातथ्य चित्रण हुआ है सौत के प्रति ईर्ष्या भावना में घृणा एंव क्रोध जैसी भावना नहीं है। समाज में एक से अधिक पत्नियाँ रखने के कारण नारी के हृदय में क्रोध की अपेक्षा स्वयं की आकर्षणविहीन स्थिति पर क्षोभ भी उत्पन्न होता है। कहीं–कहीं पर तो नायक के दो पत्नी एंव अनेक पत्नियाँ रखने के उल्लास का वर्णन किया है। [4] यहाँ नायक की रसिकता की ओर संकेत करने के साथ ही नारी-हृदय की उदारताका परिचय भी मिलता है। इस उदारता की भावना में विवशता छिपी हुई है। एक से अधिक पत्नियाँ रखने की प्रथा पर तो नारी कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकती इसलिये सौत एंव स्वयं के प्रति समान व्यवहार करने का निवेदन अवश्य कर सकती है। [5]

प्रेम के संयोग एंव वियोग के पक्ष में नारी का त्याग एंव आत्मसमर्पण सर्वोपरि है। स्वयं की दयनीय स्थिति में भी वह प्रयितम के प्रति दुर्भावना नहीं रखती. पति के सम्मान के प्रति मालवी नारी सजग रहती है। [6] पति के लिये सुख के उपादान प्रस्तुत करने के साथ ही उसको किसी भी प्रकार की आपत्ति अथवा कष्ट से मुक्त रखने के लिये वह सदैव तत्पर रहती है। समर्पण-मयी नारी के हृदय की विशालता यही है कि पति को वह हर संकट से

---

१. पांच करण की पिया बावड़ी पेड्या पेड्या लील
   एक भकारो दीजो सायबा जापा भरियो डील —२।३१

२. नईं ओढूं रे तेरा दुसाला

३. क. कँई रे जुबाब करूँ रसिया से
   मेंमद को रस रखड़ी ने लीदो, मेंमद को रस साजन ने लीदो

   ख. कई रे गुमान करुं रसिया पै
   क्यों रसिया जी था ने किन बिलमाया
   तो लोड़ी का जाता बड़ी बिलमाया —२।१९

४. मनड़ो हालरियो……गोरी का ढोला फेर मिलागा रे, मनड़ो हालरियो….
   म्हारा भँवर जी इत्ता रसीला, दो-दो गोर्‌याँ राखे रे
   म्हारा भँवर जी इत्ता रसीला, तीन-तीन राखे रंगीली रे —३।१५४

५. एक चणा केरी दोय दाल
   दोयां ने राखो सारखी जी म्हारा राज

६. साजन कचेरियां छोड़ दो ने बसाओ नन्द गाँव
   लोग लुगायां निन्द्या करे ले ले म्हांको नाम —मा० दोहे १२५

बचाने की चेष्टा करे और उसके प्रेम की अनन्यता उस समय चरम सीमा पर पहुंच जाति है जब वह अपने प्रियतम को सूर्य की प्रचंड धूपसे बचाने के लिये मेघ-माला (बादली) बनकर गगन में छा जाने की कामना करती है।[1] वास्तव में मालव की नारी के प्रेम का प्रकृत स्वरूप श्रद्धा, विश्वास एंव उदारता की छाया मे ही निखर उठा है, जहाँ स्नेह की निश्छल प्रतिष्ठा मे नारी और पुरूष के हृदय की एकात्मक स्थिति दाम्पत्य रस का संचार करती हैं।

सायब म्हारा बाग का चम्पा रे
गोरी तो म्हारी बागाँ की कोयलड़ी –३।६८

लोकगीतों में विरह का पक्ष भी अधिक मार्मिक एंव गंभीर है। वियोग के लिये साहित्य-दर्पणकार ने लिखा है कि अनुराग के उत्कट होने पर भी प्रिय के संयोग का अभाव विप्रलम्भ कहलाता है।[2] विप्रलम्भ के चार कारणों का निर्धारण भी महत्वपूर्ण है। पूर्वानुराग, मान प्रवास और करुण (मरण) ये चार स्थियाँ वियोग का कारण बन जाती है। लोगगीतों में प्रिय के संयोग या अभाव से उत्पन्न अनेक मनोदशाओ का स्वरूप देखने को मिलता है। वियोग की स्थिति का निर्माण निम्नलिखित अभाव-मय कारणो से निहित है।

लोकगीतों की नारी के लिये पति के वियोग का कारण किसी दुर्वासा का श्राप नहीं हो सकता। व्यापार, नौकरी अथवा पढ़ाई के लिये पति का दिसावर (विदेश) जाना ही वियोग का प्रमुख कारण है। नायिका का पति कंधे पर बन्दूक धारण कर नौकरी के लिये जैसे ही प्रस्थान करने को उद्यत होता है, सैनिक की पत्नी का हृदय वियोग की वेदना से व्याकुल हो उठता है और वह हठ कर बैठती है कि या तो उसका राजन प्रियतम उसको साथ में ले जावे अथवा उसके शरीर के टूकड़े टुकड़े कर सदा के लिये समाप्त कर दे ताकि विरह की असह्य वेदना से वह मुक्त होजावे,[3] एक मालवी दोहे में कुल-वधू अपने सास से शिकायत करती है कि घर में सम्पन्नता होते हुए भी सास का सुपुत्र अर्थात् नायिका का पति व्यापार के लिये

---

१. धूप तपे धरती तपे रे बना चन्द्र बदन कुमलाय
जो म्है होती बादली, सूरज लेती छिपाय —मा० दोहे ९९

२. यन्तु रति प्रकृष्टानामाष्टिमुपैति विप्रलम्भोसौ

३. रायचन्द चाल्या चाकरी, खांदे धरी बन्दूक
के साथे म्हाने ले चलो, के कर डालो टूक —मालवी दोहे ८६

'छोटे-दक्खन' जाने की तैयारी कर रहा है।[1] इसी तरह विद्यार्थी की नव-यौवना पत्नी की शिकायत-भरी आकांक्षा भी बड़ी मार्मिक है.......

मेंदी भरियो बाटको, लिख-लिख मांडू हाथ
पढ़नो लिखनो छोड़ दो, निरखो गोरी को हाथ [2]

नायिका मेंहदी से अपने हाथों का शृंगार करती है किन्तु अध्ययन-रत पति उसकी शृंगार-प्रियता एंव लहराती हुई यौवन की उमंगों के प्रति उदासीन ही रहता है।

वैधव्य की स्थिति का आभास एकाध स्थल पर ही मिलता है। नव-यौवना की आशा-आकांक्षाओं का हनन वैधव्य की स्थिति में वियोग शृंगार की अपेक्षा करुणा का हल्का आभास लिये हुए हैं।[3] नारी के यौवन का शृंगार विधवा होने पर एक विडम्बना की वस्तु बन जाता है। नारी इस विवश स्थिति में भाग्य को दोष देकर ही रह जाती है। किन्तु उसके मानस की दयनीय एवं करुण स्थिति 'सायब को सारो नहीं' में प्रकट हो जाती हैं इसी तरह प्रियतम के चिर-अभाव की भावना शृंगार-सामग्री के लक्षित होने से और भी तीव्र हो उठती हैं।[4]

मान की स्थिति में लोकगीतो की नारी को प्रेम से परिपूर्ण बनावटी कोप करने का अनुभव ही नहीं हो पाता। प्रिय की अकृपा अथवा उपेक्षित वृत्तिको वह भाग्य का दोष मानकर रह जाती हैं लोकगीतों में नारी नहीं, पुरुष रूठता है। शृंगार काव्य की नायिका स्वाधीन-पति का मान कर सकती है,किन्तु लोकगीतों की खण्डिता नायिका को मान करने का सौभाग्य ही कहाँ मिल पाता है।[5] उसका पति तो अन्य स्त्री पर आसक्त है। रूपगर्विता नारी को मान करने का, रूठने का अवसर ही नहीं मिल पाता।[6] पति के समीप रहने की स्थिति में मान किया जा सकता है किन्तु पति तो दूकान पर जाकर सो जाता

---

१. दूध कढ़ाया उकले, दही दिसावर जाय
सासूजी तमारा डीकरा छोटा दक्खण जाय —वही ९०

२. मालवी दोहे —१०३

३. टीकीं दे मेलां चढ़ी बिच काजल की रेख
सायबा को सारो नइ लिख्या विधाता लेख —वही १०२

४. चाँदनिया का चौक में गेरो बिके रे रुमाल
साजन होय तो मोलवे किन पे करुं गुमान —वही ९१

५. रायचन्द तो रुस्या फिरे परालब्ध की बात —वही ८८

६. कँई रे जुबाब करुं रसिया से
क्यों रसिया जी त्हाने किन बिलमायां
तो लोंडी का जाता बड़ी बिलमाया
कँई रे मिजाज करुं रसिया से —२।१९

आतुर हैं किन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिल पाता और एक-दूसरे की छबि को नेत्रों में बसाकर मिलन की काल्पनिक स्थिति का आनन्द प्राप्त करने को विवश होना पड़ता है।[१] भरे-पूरे परिवार में आदरणीय गुरुजनों की उपस्थिति भी शील-संकोच से कारण पति-पत्नी के मिलन की अभिलाषा में बाधक होती है।[२] पारिवारिक जीवन की कठोरता एवं मान्यताओं के कारण प्रेमीयुग्म को विवश हो वियोग की घड़ियाँ बितानी पड़ती हैं। मायके में रहने वाली युवती के लिए प्रियतम का विरह बड़ा खटकने वाला होता है। माता-पिता के वात्सल्य एवं अत्यधिक स्नेह का आदर करते हुये भी नायिका प्रिय के अभाव की कसक को स्पष्ट कर देती है........

डेढ़ चावल की खिचड़ी घी बिन खई नी जाय
म्हारा बाप की लाड़ली पी बिन रयो नी जाय[३]

जिस प्रकार से चावल से बनी हुई खिचड़ी घी के बिना नहीं खाई जा सकती है उसी प्रकार अपने माता-पिता की लाड़ली होते हुये भी वह प्रियतम के बिना नहीं रह सकती। जीवन के आनन्दमय क्षणों का आस्वादन करने में ही यौवन की सार्थकता है। प्रिय के अभाव मे जीवन के सब रस फीके रहते है। इस मृदुल भाव को संकोच-शीला नारी ने सांकेतिक ढंग से व्यक्त किया है.......

दूधाँ भरियो बाटको थर बिन कसो रे सवाद
म्है प्यारी म्हारा बाप की पी बिन रयोनी जाय[४]

दूध से भरा हुआ कटोरा है किन्तु मलाई के थर के बिना दूध का स्वाद किस काम का ? मैं अपने पिता की प्रियपात्र अवश्य हूं किन्तु प्रियतम के बिना के रह सकती हूं ? इसी तरह जाति-गत दम्भ एवं प्रतिष्ठा के कारण राजपूत रमणी पीयर में ही वृद्ध हो जाती है किन्तु प्रिय का सामीप्य प्राप्त करने के क्षण उसे प्राप्त नहीं होते।[५]

प्रियतम के अभाव में एकाकी क्षणों से उत्पन्न मार्मिक व्यथा की अभिव्यक्ति के साथ ही विरहिणी की मनोदशा के सुन्दर चित्र भी लोकगीतों में व्यापक रूप से मिलते हैं। चन्द्र की रजत-ज्योत्सना में पलंग बिछाकर शयन करने वाली नायिका जब कभी भी रात्रि में

---

१. गली रे तुमारी सांकड़ी नइ मिलन का जोग
नैनाँ सूरत मान जो चुगलीखोरा लोग —मालवी दोहे ११२

२. थाल भरियो खोपरो, चटक नी बाँटी जाय
मेलाँ विराज्या सायबा नजर नी मेली जाय —वही ११९

३. वही —११०

४. वही पृष्ठ, —१११

५. रजपूतां की डावड़ी पीयर बूढ़ी होय,

जागती है तो स्वयं को अकेली पाती है। प्रियतम पास नहीं है। इस विरहमयी असह्य स्थिति से तो वह हृदय में कटारी मार कर अपने अस्तित्व को समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर समझती है।[1] वियोग के क्षणों की भयावह कल्पना से ही नारी का हृदय काँप उठता है। प्रवास के लिये उद्यत प्रियतम को रोक लेने की कामना में वियोगिन नारी का हृदय उभर आता है.......

> याँज् रेवो जी, बाई जी रा वीरा
> म्हारी सासू रा पूत, याँज् रे वो जी
> याँज् रे वो म्हारा कन्ता सूरज, रहाकी मिरगानैणी झूरेजी –३।७६

स्त्रियों के लोकगीतों में पुरुष के हृदय में वियोग की आशंका से उत्पन्न त्रस्त एवं खिन्न भावना का चित्रण भी मिलता है। यौवन की भावना से उदीप्त प्रेमी-युगल का क्षण मात्र के लिये बिछुड़ना अवांछनीय होता है। नव-युवक अपनी पत्नी की अनुपस्थिति को सह्य होते हुये भी टालने में तो असमर्थ ही रहता है क्योंकि सामाजिक जीवन के व्यवहार में पत्नी को उसके मायके तो भेजना ही पड़ता है। पूर्ण-यौवना पत्नी का मायके जाना उसे अखर जाता है और वह मन ही मन तरसता रहता है।[2] वियोग के चित्रण में किसी कल्पित प्रसंग-विधान की अपेक्षा जीवन की मार्मिक अनुभूतियों के कारण नारी-मानस की विरह-व्यथा सजीव हो उठी है। मालवी लोकगीतों की विरहदग्धा नायिका की यह व्यथा, सृष्टि के उन सब उपादानों को अभिशाप देती है जिनके आकर्षण में उलझ कर उसका प्रियतम विलग हो गया है।

> आम्बा निरफल जाजो रे, कोयल रीजो बांझ
> बालम बिछड़्या बाग में, ढूंढ़त पड़ गई सांझ –२।६९

करुण एवं हास्य के प्रसंग

लोकगीतों में करुण भावना का प्रसार व्यापक रूप में हुआ है। जीवन की आर्द्रता एवं विशिष्ट रस को लेकर प्रभावित होने वाली इस भाव-धारा में निमग्न मानव-हृदय बुद्धि की उस भावना-हीन अवस्था को छोड़ देता है, जहां अनात्म-भाव के कारण क्रूर-कठोर पाषाण की चिनगारियां चटकती रहती हैं। हृदय को स्निग्ध, कोमल एवं द्रवणशील तादात्म्य की दशा में ले आने की क्षमता के कारण करुण भाव का अधिक महत्व है। मानव जीवन में प्रेम और सुख की अपेक्षा करुण की व्यापक सत्ता और प्रभाव की प्रधानता देखने में आती

---

१. चन्दा रहारी चान्दनी सूती पलंग बिछाय
जद जागूं जद एकली मरूं कटारी खाय —वही ९८

२. सीरो भरियो बाटको, टपकन लागो घी
गोरी चाली बाप के तरसन लागो जी —मालवी दोहे.९४

है। काव्य की तरह लोकगीतों में भी अनेक मार्मिक प्रसंगों को लेकर करुणापूर्ण भावों की व्यंजना हुई है। किन्तु लोकगीतों नें करुणा को उत्पन्न करने के लिये किसी मार्मिक प्रसंग या घटना को भावोद्धवेलन के लिये ग्रहण करने की आवश्यकता नही रहती। नारी-मानस जीवन की अनुभूतियों से आप्लावित होकर अन्य मनोदशाओं की तरह कारूणिक भावों को भी स्व-भावतः गीतों में व्यक्त कर देता है। करुण की इस अभिव्यंजना का आधार हृदय की शोकमयी चित्त-वृत्ति है। जो किसी अभाव की पीड़ा एवं असह्य व्याकुलता के कारण शोक की चरम अनुभूति के रूप में करुण को जन्म देती है। मालवी लोकगीतो में नारी-हृदय की करुणापूर्ण स्थिति को उभारने में अभाव की तीन दशाएँ हैं।

१. पुत्र के अभाव में उत्पीड़न देनेवाली बाह्य एवं आभ्यन्तर दशा।
२. पति का अभाव, मरण के पश्चात् की चिर-वियोगजन्य दशा।
३. पारिवारिक जीवन में सुख के अभाव की स्थिति।

पुत्र के अभाव को लेकर इन लोकगीतों में नारी हृदय की मार्मिक व्यथा के शाश्वत चित्र अंकित हुये हैं। अभागिन नारी मातृत्व की चरम साधना के सुफल को प्राप्त करने में असफल रहती है तब समाज के द्वारा बांझ जैसे घृणित शब्दों से लांछित और निन्दित होने की दुर्वह स्थिति को टालना उसके लिए असम्भव हो जाता है। परिजनों के व्यंग्य-बाणों से मर्माहत होने के कारण भी लोकगीतों में करुण का उद्वेलन हुआ है। करुण के उद्वेलित करने की बाध्य स्थिति लोक-निन्दा एवं नारीत्व के अपमान से उत्पन्न होती है। आभ्यन्तर स्थिति में उसको स्वयं के जीवन के प्रति ग्लानि हो जाती है। नारी जीवन की यह बड़ी दयनीय स्थिति है कि उसके अस्तित्व की सार्थकता को चुनौती देकर पुरुष अन्य रमणी को सौत के रूप में लाकर उसके गृहिणी पद को समाप्त कर देता है। पुत्र के अभाव के लिये केवल नारी को ही दोष नहीं दिया जा सकता। किन्तु समाज तो सारा लांछन उसी पर थोपता है। उसकी इस दयनीय, असहाय एवं विवश स्थिति में करुणा उमड़ पड़ती है जो गीतों में एक प्रार्थना के रूप में प्रकट होती है।[१] इस प्रकार के विडम्बनामय जीवन धारण करने की अपेक्षा कुल-वधुओं के हृदय में डूब कर मर जाने की इच्छा भी जाग्रत हो उठती है।[२] किन्तु इस प्रकार के भावों का अङ्कन मालवी लोकगीतों में प्राप्त नहीं होता।

पुत्र के अभाव के अतिरिक्त कन्या की विदाई का प्रसंग भी करुण भाव को उद्वेलित करता है। कन्या के वियोग की कल्पना की स्थिति सगाई ''वाग्दान से प्रारम्भ होती है।

---

१. माई एक बालूड़ो दे
एक बालूड़ा का कारणे, म्हारा ससुरा जी बोले बोल
एक बालूड़ा का कारणे, सायब लावे लोढ़ी सौक
माई एक बालूड़ो दे·········१।१९६

२. गंगा ना मोरे सासु ससुर दुःख नाहीं नेहर दूरि बसै
गंगा ना मोरे हरि परदेस कोखि दुःख डूबब हो —कविता कौमुदी भाग ५ पृ. ४

यहां माता का हृदय सम्भावित विदाई के दृश्य से द्रवित होकर करुणामय हो जाता है उसके दुःख की अभिव्यक्ति में वात्सल्य और करुणा का मिश्रण हो गया है।[1] सैगाई के गीतों के अतिरिक्त विदाई के गीतों के भाव एवं स्वर सभी आंसुओं से भीगे हुए हैं।[2] मृत्यु का प्रसंग भी करुणा को जाग्रत करता है। पति अथवा अपने प्रियजनों की मृत्यु शोक-वेदना को उभारती है। वैसे लोकगीतों में प्रियतम की मृत्यु का अमंगल प्रसंग प्राप्त नहीं होता। एकाध स्थल पर यौवनमयी विधवा अपने भाग्य को कोसती हुई जीवन से त्रस्त अवश्य है।[3] सती के गीतों में प्रियतम की महान यात्रा ...शव की अर्थी का दृश्य भी हृदय को करुणा से द्रवित कर देता है।

सायब को डोलो,
सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो
चन्दन नीचे ऊबो चमेली नीचे ऊबो
सायब से छेटो मति पड़ो हो सेवग म्हारा [4]

पारिवारिक जीवन में सुख और सौख्य के अभाव का कारण आपसी मनोमालिन्य एवं गृह-कलह होता है। पति एवं सास-ननंद के कठोर व्यवहार की चरम स्थिति में नारी-हृदय की व्यथा अत्यधिक मार्मिक एवं असह्य हो उठती है। उसका हृदय फटने लगता है और रह-रह कर एक 'टीस' उठती है। नारी के जीवन की इस अनुभूति का चित्रण भी करुणापूर्ण है।[5] गृह-कलह से अधिक व्यथित होने के कारण कुल-वधूओं की विष-पान द्वारा आत्म-हत्या का वर्णन भी रोम-हर्षक होने के साथ की करुणाजनक है।[6] सर्पदंश के कारण वधू की मृत्यु का प्रसंग भी हृदयद्रावक है (३।८१)।

---

१. म्हारी राजल बेटी क्यों हारया – १।७४

२. कृष्ण जी घुड़लो पलाणिया – १।१७१
घड़ी एक घुड़लो थोबजे रे सायर बनड़ा – १।१७२
म्हारा हरिया बन की कोयलड़ी – १।७६ आदि, विदाई के गीत

३. टीको दे मेलां चढ़ो बिच काजळ की रेख
सायब को सारो नइ लिख्या विधाता लेख —मा० दो० १०२

४. श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य —पृष्ठ १२१

५. म्हारी छाती फाटे हिवड़ो उलरे —३।९३

६. सासू ने घोल्यो केसर लीमणो, नणदल ने घोली घर में राड़
इ दण आफ रा······
क्यों खई ए आफ बिजरी, कई खाती तो म्हाने केवती
ए मारवणी त्हांरी आफू देता उतार —१।१८६

हास्य

हास्य रस श्रृंगार का पोषक एवं सहयोगी बनकर प्रकट होता है। हास्य के स्थायी भाव....हास को प्रीति का एक विशेष रूप ही कहा गया है। इसमें चित्तवृत्ति विकसित होकर अनुरंजन का कारण बनती है।[1] हास यद्यपि श्रृंगार का संचारी भाव रहकर रति का सहायक भाव अवश्य रहता है किन्तु रति के विपरीत हास की भावना अधिकाधिक वस्तु-परक एवं समिष्ट-निष्ठ होती है। हमारी संस्कृति की आदर्श भावना के कारण भारतीय साहित्य में हास्य भावना की प्रायः उपेक्षा ही रहती है। क्योंकि हास की भावना और जीवन के गांभीर्य में सहज विरोध है। लोकगीतो में भी हास्य के आयोजन के लिये जिन प्रसंगों की उद्भावनाएं की गई है वहां जीवन की असामान्य, विकृत एवं अह पोषित भावनाओं का उभार ही अधिक हुआ है। साहित्य-शास्त्रियो ने विकृत आकार, वचन, वेशविन्यास एवं चेष्टा आदि को हास्य का उत्पादक बतलाया है।[2] लोकगीतों में हास्य की विभिन्न दशाओं के पूर्ण चित्र अङ्कित हुये है। हास्य के उद्रेक मे निम्नलिखित तीन परिस्थितियाँ काम करती हैं :—

१. असंगति २. विषमता ३. विपरीतता

असंगत आचरण करने अथवा सामान्य जीवन से विलग किसी अप्रत्याशित घटना से हास की भावना उत्पन्न होती है। किसी व्यक्ति का पैर फिसल जाने के कारण यदि वह गिर पड़ता है तो लोगों के लिये हास्य का एक कारण बन जाता है। मालवी लोकगीतों में गाल गीत में व्याई के रपट पड़ने की कल्पना कर हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है।[3] बालिकाओं को देवर-जेठ की मूंछे कतरने एवं उनकी टांगे टूटने की कल्पना में हास्य का आनन्द मिलता है।[4] बनिये विवाह करने के लिये जाते हैं किन्तु खाली हाथ लौटने के कारण हँसी एवं मखौल के पात्र बन जाते है।[5] यदि रास्ते चलती कोई साधारण स्त्री बिच्छू के काटने पर उछल पड़ती है तो उसमे भी लोगों का मन खिलखिला उठता है।[6]

---

१. प्रीतिविशेष चित्तस्य विकासो हास उच्यते —भाव-प्रकाश

२. क. विकृताकार वाग्वेश चेष्टादें कुहकादवदेत्
हास्योहास्यस्थायी भावो —साहित्य दर्पण

ख. विकृताकृति वागवेशैरात्मनीय परस्यवा – दश-रूपक

३. रामचन्दरजी (नाम विशेष) —जी रपट पड्या
इतो दौड़ी आवता रपट पड़या
घणी खम्भा हो व्याईजी क्यों रपट्या ? —३।४५

४. छोटा जेठ की टांग तोडी बड़ा जेठ की मूंछें कतरी —१।४

५. बाण्या परणवा चाल्या रे नई मिली रे लाड़ी —१।६।१२

६. लिप्यो चुप्यो आंगणो रे तरे बिच्छुड़ो जाय
लोंडी के बटको भरयो रे बड़ी उछाला खाय —१।६।१३

जीवन की असामान्य विषमताएं भी हास्य का उद्रेक करती हैं। अनमेल जोड़ी, छोटा पति एवं हृष्ट-पुष्ट पत्नी की जोड़ी भी समाज में हँसी और मखौल का कारण बनती है। पांच बरस के बालम और पूर्ण यौवना रतिप्रगल्भा नारी की कल्पना में लोकगीतों का नारी-मानस हास्य के तन्तु बटोरता रहता है।[1] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो हास की पृष्ठ-भूमि में प्रच्छन्न घृणा का भाव परिलक्षित होता है। जिसका मजाक उड़ाया जाता है, उपहास किया जाता है, उससे उपहास करनेवाला व्यक्ति अपने को श्रेष्ठ एवं अच्छा समझता है। लोक-प्रचलित व्यवहार के विपरीत आचारण करने वाला व्यक्ति भी विशेषतः हास्य, घृणा एवं व्यंग्य का शिकार बन जाता है। आधुनिक शृंगार प्रिय एवं सुशिक्षित नारी को रूढ़िग्रस्त महिलाएं अच्छी निगाह से नहीं देखती लोक-व्यवहार एवं मान्यता के विपरीत जाने के कारण फैशल-परस्त नारी के प्रति सामान्य स्त्रियाँ घृणा का भाव रखती है। गुप्त रूप से व्याप्त घृणा का यह भाव गीतों में हास्य के रूप प्रकट हुआ है। 'जन्टरमेन' नारी में भारतीय नारीत्व के आदर्श के पतन की आशंका भी प्रकट की गई है।[2] यहाँ हास्य की भावना में विरोध का मृदुल रूप है। कुछ गीतों में सामान्य एवं प्रकृत व्यवहार के विरुद्ध कुछ चेष्टाओं की कल्पना के द्वारा हास्य का विधान किया गया है।[3] कभी-कभी पति-पत्नी की आपसी तकरार भी लोगो के लिये हास्य का कारण बन जाती है। मालवी के एक लोकगीत में ऊंदरा-ऊंदरी (चूहा-चुहिया) के आपसी झगड़े का सुन्दर हास्यमय दृश्य अङ्कित हुआ है। अनाड़ी दम्पति जिस प्रकार आपस में झगड़ पड़ते है और मार-पीट की स्थिति आ जाते है, उसी तरह चूहा-दम्पति की लड़ाई भी बड़ी रोचक है। पति-पत्नी में झगड़ा होने पर चूहा अपनी श्रीमती जी का दिमाग ठीक करने के लिये लठ्ठ का आश्रय ग्रहण करता है और चुहिया देवी अपने बचाव के लिये झाड़ू ग्रहण करती है। उनका झगड़ा इस स्थिति तक पहुँचता है कि स्वर्ग में जाकर धरमरायजी के द्वारा ही न्याय हो पाता है।[4] शृंगार एवं भक्ति से युक्त ऐसा सोद्देश्य हास्य किसी परिष्कृत मस्तिष्क की उपज ही हो सकता है।

---

१. दारी बांगड़ सरी की नार, बालम छोटा सा
मरी जावे त्हारा माय ने बाप
म्हने लाजां मती मारो भरतार, बालम छोटा सा — १।१५२

२. वा तो हो गई जन्टरमेन, रसोई कौन बनावेगा
वा तो हो गई बी. ए. पास, रसोई कौन बनावेगा

३. चुन चुन कलियां सेज बिछाई पोढ़न कूं तैयार
पोढ़न वाली एकली पोढ़ाने वाले चार — १।१४७
दारी झुमक धमक करती आई, माथा में दो चोपड़ लाई
माथा में दो केरिया लाई, बातां में चुगल्या लाई — १।१५०

४. वारी रे उन्दरा वारी तेरी गजानन्द अस्वारी
उंदरा उंदरी के राड़ हुई है जुद्ध मच्यो अति भारी
उंदरा ने लीदी लाकड़ी ने उंदरी ने लीदी बुआरी — १।२४४

छठा अध्याय

मालवी लोकगीतों में प्रकृति

१. प्रकृति एवं जन-मानस का तादात्म्य
२. गोयरा-कांकड़-गाम
३. खेती बाड़ी, खेत-खलिहान
४. नदी-उद्यान-सरोवर
५. वृक्ष-लता
६. लोकगीतों के पशु-पक्षी
७. बारहमासी

प्रकृति एवं जन-मानस का तादात्म्य

प्रकृति मनुष्य के लिये सदा से एक रहस्य की वस्तु बनी हुई है। यहां प्रकृति शब्द का तात्पर्य दृश्य-जगत से है। अंग्रेजी का 'नेचर' शब्द प्रकृति के पर्यायवाची रूप में ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु भारतीय दृष्टिकोण में प्रकृति का बड़ा व्यापक अर्थ लिया गया है। समस्त बाह्य जगत को उसके गोचर....इन्द्रिय प्रत्यक्ष की रूपात्मकता और उसमें निहित चेतना को प्रकृति माना गया है।[1] यह एक व्यापक परिभाषा है। प्राचीन काल से ही दार्शनिक एवं वैज्ञानिक मान्यताओं का मूलाधार रही है। कतिपय यूनानी मान्यताओं के आधार पर यूरोप के दार्शनिकों ने दृश्य-जगत, (भौतिक प्रकृति) को अधिक महत्व दिया। भारत ने उसे एक चेतनामय तत्व एवं विराट पुरुष की प्रतिकृति माना है। सम्पूर्ण बाह्य जगत की दृश्यात्मक सत्ता का कारण है भावमय चेतन प्रकृति, जो विश्व की सृजनात्मक शक्ति एवं अनन्त पुरुष की चिर-सहचरी है। भारतीय दृष्टिकोण से मनुष्य भी उसी व्यापक, विराट चेतना का एक अंश-मात्र है।

प्रकृति एवं जन-मानस की एकात्मक स्थिति का अध्ययन करने के लिये वैज्ञानिकों के विकास-सिद्धान्त एवं भारतीय तथा अन्य आस्तिकों की अपौरुषेय सृष्टि-कल्पना एवं सर्वात्मवाद की मान्यताओं के प्रकाश में यथातथ्य विश्लेषण करना चाहिये। प्रकृति की सत्ता मानव के पंच-भौतिक शरीर में आकर एक चैतन्य स्वरूप धारण कर लेती है जहां मन, बुद्धि और अहंकार की आधार-शिला पर मानव के अन्र्तजगत का निर्माण होकर एक ऐसा अमूर्त लोक प्रतिष्ठित होता है, जो चर्म-चक्षुओ से अग्राह्य होकर भी नश्वर शरीर से परे अपनी शाश्वत सत्ता रखता है। भारतीय दार्शनिकों के विचार-मन्थन का यह सार तत्व कहा जा सकता है। किन्तु भौतिक जगत के साथ मानव के मस्तिष्क का विकास-क्रम भी विचारणीय है। अज्ञान की स्थिति में मनुष्य के लिये प्रकृति का वही स्वरूप नहीं रह सकता जो उसे ज्ञान की स्थिति में अनुभूत होता है। ज्ञान की विकसित अवस्था में मनुष्य प्रकृति के सहज-शाश्वत एवं प्रकृत तत्वों को अच्छी तरह पहचान सकता है। प्रकृति के आँगन में माता की गोद के समान ही जब आदि-मानव ने जन्म लेकर अपने चर्म-चक्षुओं से प्रकृति को देखा होगा, दृश्य जगत के साथ स्वयं के अस्तित्व के सम्बन्ध में सोचने का प्रथम विचार उसके मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ होगा। उस मनोस्थिति का यदि विश्लेषण किया जावे तो मानव के चेतन मस्तिष्क की प्रारम्भिक स्थिति का किंचित् आभास मिल जाता है। मनुष्य ने प्रकृति के सौम्य, सुखद एवं मानव-जीवन के अस्तित्व में बाधा नहीं पहुंचाने वाले स्वरूप के साथ ही उसके संहारकारी, भयावह एवं रौद्र रूप को देखकर स्वयं की स्थिति का कुछ आभास प्राप्त किया होगा। उसके अन्तःकरण में विराट प्रकृति को देखकर भय-मिश्रित कौतूहल भावना ने प्रकृति की सर्वशक्तिमान सत्ता के सन्मुख स्वयं की सामर्थहीन सत्ता पर सोचने के लिये विवश किया होगा।

---

१. डा० रघुवंश, प्रकृति और हिन्दी काव्य; पृष्ठ ४।

प्रकृति के अनेक परिवर्तन-शील स्वरूप में मनुष्य ने देवत्व की कल्पना कर अपनी आत्म-रक्षा के लिये विविध स्तवन एवं पूजोपचार का विधान भी रच दिया है। इस प्रकार अपनी चेतना के अनुभव-जन्य आधार पर मनुष्य ने प्रकृति को समझने की चेष्टा की है और प्रकृति के विभिन्न व्यापार, क्रियाकलाप एवं नाना रूपों को अपने ही समान देखने और समझने की चेष्टा में ईश्वर को मानवी रूप में स्वीकार करने एवं अवतारवाद की कल्पना भी इसी आधार पर विकसित हुई।

भारतीय दार्शनिकों ने विश्व को जड़ और चेतन रूप में विभक्त कर पंच भौतिक तत्वों की व्यापकता को स्वीकार किया। काव्यकारों ने भी परम्परागत उक्त दार्शनिक धारा को प्रवाहित किया किन्तु आज का वैज्ञानिक भाव-जगत के इस तत्व-चिन्तन को तर्क एवं सत्य की कसौटी पर उतार कर विश्लेषण करने को तैयार नहीं है। प्राचीन एवं मध्य युग का सृष्टि के सम्बन्ध में जो द्वित्व-चिन्तन है, वह विज्ञान के प्रकाश में अब अन्ध-विश्वास-सा प्रतीत होने लगा है। वैसे मायावादियो के अनुसार पल-पल में परिवर्तित होने वाली नश्वर विश्व की मान्यता में पदार्थवादी वैज्ञानिकों के द्वारा सिद्ध इस सत्य का स्थूल रूप देखा जा सकता है कि प्राकृतिक शक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित की जा सकती है। पदार्थ के सिद्धान्त [१] एवं रसायन-शास्त्र के चरम-विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि यांत्रिक एवं रसायनिक शक्ति ध्वनि एवं ताप, प्रकाश एवं विद्युत एक-दूसरे के स्वरूप में परिवर्तित किये जा सकते हैं। ये प्रत्यक्षतः विभिन्न रूपों में दिखाई भी पड़ सकते हैं किन्तु ये सब एक ही शक्ति, प्रकृति की सर्व-व्यापक शक्ति के अंश हैं। प्राकृतिक तत्वों का स्वरूप बदल सकता है किन्तु शाश्वत गुण नहीं बदल सकते।[२] परिवर्तन तो सृष्टि विकास का एक चिर-जीवित सत्य है। हमारे चर्म-चक्षुओं से दृष्टव्य विश्व में परिवर्तन तो होता ही रहता है। हिम को हम पिघलते हुए देख सकते हैं, लकड़ी भी अपना स्वरूप बदल सकती है, पानी ग्रीष्म के चरम उत्ताप में भाप और बादल बन सकता है, लकड़ी और कोयला जलकर राख हो जाते हैं। परिवर्तन की इन गतिविधियों को हम अपनी स्थूल दृष्टि से देख सकते हैं। किन्तु कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जिन्हें हम चर्म-चक्षुओं से देख नहीं पाते किन्तु उनमें परिवर्तन तो प्रतिक्षण होता ही रहता है। पृथ्वी और वायु के पदार्थ, हरी-हरी दूर्वा बन जाते हैं। हमारे चारों ओर दृष्टिगत होने वाली प्रकृति में निरन्तर, कभी न रुकने वाला परिवर्तन होकर नवीन स्वरूप का निर्माण तो होता ही रहता है।[3] इस प्रकार संसार के परिवर्तनशील एवं विकासमय स्वरूप का सही ज्ञान हो जाने के पश्चात् प्रकृति के परे किसी अन्य सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता। जीव-विज्ञान एवं डार्विन के विकास-सिद्धान्त ने सावययी जगत सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाकर पुरातन दार्शनिकों के द्वारा उत्पन्न वास्तविकता एवं आभास, मनस् एवं शरीर, अन्तः एवं बाह्य, वस्तु एवं गुण, अनन्त एवं शान्त, ईश्वर एवं जगत आदि के द्वैतभाव का उन्मूलन कर दिया है। उक्त द्वैत भावना अब काल्पनिक जगत की

---

१. Law of Substence से तात्पर्य है।
२. The Riddle of the universe, pp. 208. ff.
३. Price and Bruce, Chemistry and Human Affairs, p–13.

वस्तु बनकर रह गई। प्रकृति में व्याप्त बाह्य अनेकात्मकता होते हुये भी उसकी एकात्मकता विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुकी है। आधुनिक युग की यह विशेषता है कि उसने द्वैतभाव को विज्ञान की विभिन्न कसौटियों पर परख कर यह सिद्ध कर दिया है कि वस्तु-जगत एवं चेतना-शक्ति एक ही शाश्वत प्रणाली के दो विभिन्न पहलू हैं। सावयवी सृष्टि का विकास निरा-वयवी सृष्टि से हुआ है। यह अवश्य है कि पशु-जगत, वनस्पति और पेड़-पौधों में विविध, नाना रूपात्मकता एवं वर्ण-वैचित्र्य दृष्टिगत होता है, किन्तु यह प्रकृति की विभिन्न परि-स्थितियों का परिणाम है कि विभिन्न रसायनिक पदार्थों का मिश्रण पेड़-पौधे एंव जीव-जन्तुओं की भिन्न-भिन्न रंग-वैचित्र्य-पूर्ण सृष्टि का निर्माण कर सके।

विकास सिद्धान्त की कसौटी पर सृष्टि-सम्बन्धी चिन्तन करते समय यहाँ भारतीय पुराणकारा को कल्पना की शाश्वत सत्यता पर सहसा आश्चर्य होने लगता है। हिन्दू यह मानते हैं कि चौरासी लाख योनियो में भटकने के पश्चात् ही जीव को मानव शरीर प्राप्त होता है। बौद्ध जातक कथाओं में भी इस मत की पुष्टि की गई है विकासवाद ने हमें यह बत-लाया है कि सृष्टि की निम्नतम जीव(Species)की साधना एवं अस्तित्व प्रस्थापन के दुर्धर्ष संघर्ष का चरम प्रतिफलन ही तो मनुष्य है। पौराणिक कल्पना एंव विकास-सिद्धान्त का सत्य यहाँ एकाकार होजाता है। यह बात अवश्य हैं कि आज का वैज्ञानिक चौरासी लाख जीवों की संख्या की जानकारी तक नहीं पहुँच सका और कुछ लाख तक पहुँच कर ही सीमित रह गया।

स्थूल एवं गोचर जगत को सत्ता के पश्चात् आन्तरिक तत्व एवं मस्तिष्क की विभिन्न विचार धाराओं के विकास–प्रवाह पर सोचना भी आवश्यक है। इस अन्तः सत्ता अथवा चेतन शक्ति को लेकर आस्तिक दर्शनकारों, धर्मगुरुओ और विज्ञानिकों में विरोध उत्पन्न होता है। आस्तिक दर्शनकार किसी अनन्त शक्ति–विश्वेतर शक्ति की कल्पना कर उसके अस्तित्व में विश्वास करते है, किन्तु भौतिक शरीर की तरह मानव का मस्तिष्क एवं चेतना शक्ति का आधार भी विकास-सिद्धान्त पर परखा जा सकता है। जिस प्रकार भौतिक प्रकृति गतिशील है उसी प्रकार मन-मस्तिष्क की विचारधारा भी प्रवाह मान एवं विकासमय है। विकास का यह क्रम एवं अन्तर वनस्पति जगत, प्राणी जगत एवं मनुष्य में स्पष्ट देखा जा सकता है। मानव मस्तिष्क की बनावट ही ऐसी है, उसका सेरेब्रम इतना विकसित है, आजका मनुष्य ही नहीं,क्रोमेग्नन् और 'ने-अन्डर्थल'का भी कि वह सोच सकता है,विश्लेषण कर सकता है,नवीन रास्ता निकाल सकता है और अनुभवों से शिक्षा ग्रहण कर सकता है, और भविष्य को अनि-श्चित छोड़ना अपने उसी मस्तिष्क की बनावट के कारण उसके लिये मुश्किल है। मानव मस्तिष्क के विकास में उसके शरीर के दूसरे अंगों ने भी पूरी सहायता की है।[1] मनुष्य के मस्तिष्क का विकास पशु एवं वन–मानुस और कुत्ते आदि समझदार के मस्तिष्क विकास के आगे की उच्चतर स्थिति है। वन-मानुस एवं कुत्ते आदि सामने की वस्तु के प्रतिबिम्ब को देखकर मस्तिष्क से कुछ सोचने की क्षमता अवश्य रखते हैं किन्तु उनका सोचना वर्तमान के प्रकाश में ही होता है। मनुष्य त्रिकाल-चिन्तक होता है। पशु प्रकृति के साथ संघर्ष अपने

---

1 राहुल सांकृत्यायन, मानव समाज; पृष्ठ २५।

वर्तमान केवल वर्तमान अस्तित्व को कायम रखने के लिये करता है और उसके जन्म-जात साधनों का इस्तेमाल करता है, किन्तु मनुष्य वर्तमान स्थिति के साथ ही अनुभव-जन्य ज्ञान के कारण भविष्य के लिये भी उपाय सोच लेता है।[1] मानव-मस्तिष्क आविष्कारों का अनन्त स्रोत है। उसमें से न जाने कितनी ही वस्तुएं निकली होंगी जो आज की दुनियां में तुलनात्मक दृष्टि से नगण्य भले ही प्रतीत हों किन्तु मानव के मस्तिष्क-विकास के इतिहास में उनका महत्व है। आदि-मानव के मस्तिष्क से ही आज के अणु-युग के मानव का मस्तिष्क विकसित हुआ है। आज का मानव यद्यपि आदिमानव तो नहीं है किन्तु उसकी आकांक्षाएं आज के मानव में अभिव्यक्त हो चुकी है, जिसका बीज आदि मानव के मस्तिष्क में विद्यमान था,[2] और आज भी मानव मस्तिष्क के विकास की यह चरम स्थिति नहीं कही जा सकती। भविष्य की कल्पना हम वर्तमान के आधार पर अवश्य कर सकते है। मानव की आकांक्षाओं का स्रोत कहाँ जाकर समाप्त होगा यह कहना कठिन है।

विकास में निम्नस्तर की आकांक्षाओं का पूर्णत्व ही तो ऊपर की सीढ़ी माना जावेगा। निम्नस्तर जीवों (Lower Species) की निहित भावना उच्च स्तर के जीवों में जाकर अभिव्यक्त होती है। मानव का विकास पशु-जगत से हुआ है, अतएव पशुजगत एवं मानव की भावना और प्रवृत्तियों में साम्य एवं तादात्म्य होना स्वाभाविक ही है।[3] इस कल्पना को यदि और आगे बढ़ाया जावे तो विकास-सिद्धान्त के अनुसार अचेतन, जड़ सृष्टि से ही वनस्पति पेड़-पौधे, जीव-जन्तु पशु-पक्षी एवं मानव की सृष्टि का विकास हुआ है। अतः मानव अपनी भावनाओं का उद्रेक करने वाली वस्तुओं को फूल, पेड़-पौधे एवं पशु-पक्षी आदि में जहाँ कहीं भी देखेगा, उनकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि उसकी भावनाओं का उस आकार-प्रकारमयी ध्वनि-नादों से समन्वित गतिमान सृष्टि से, प्रकृति से परम्परा प्राप्त एवं वंशानुगत वासना के रूप में सम्बन्ध निहित है। प्रकृति की ओर जन-मानस का आकर्षित होना सहज-वृत्ति ही कहा जा सकता है। जन-मानस का प्रकृति से तादात्म्य होता है इसका यही तात्पर्य है कि प्रकृति जहाँ कहीं अपनी उच्चतम आकांक्षाओं को साधना के उच्चतम सौन्दर्यमय रूप में प्राप्त कर रही होगी वहीं जन-मानस का तादात्म्य होगा ही। मनुष्य अपने मानस की भावनाओं का प्रस्फुटन जब प्रकृति में देखता है तब उससे एकात्मकता का अनुभव

---

१. राहुल, विश्व की रूपरेखा; पृष्ठ ३२८-३३१ तक।

२. "The result of earlier stages of development determine development in its later stages..."
—हिगेल के द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद के विवेचन के आधार पर।
देखें, History of Modern Philosophy, by Hoffding vol II pp. 180 ff.

३. "The Pulses of existence itself beat in our thinking with the same rhytham, more over as every where else...."
वही पृष्ठ १८१।

कर लेना उसके लिये स्वाभाविक हो उठता है। किसी हरी-भरी लता की क्रोड़ में खिलते हुए, मुस्कराते हुए पुष्प की ओर मनुष्य एकदम आकर्षित हो जाता है। यहाँ नयनाभिराम वर्ण-सौन्दर्य अथवा घ्राणेन्द्रिय को तृप्त करनेवाली सुरभि ही केवल आकर्षण का कारण नहीं है। पुष्प का अस्तित्व ही स्वयं आकर्षण का विषय बन जाता है। मानवका मन सुमन से एकात्म हो जाता हैं, मानव मन का भावसुमन बन जाता है। सुमन अथवा पुष्प से तात्पर्य क्या हो सकता है? पुष्प, वृक्ष अथवा लता की जीवन-साधना का सुन्दर सुगन्धित स्वरूप ही तो है जिसमें फल के रूप में ही उसका विकास अभिव्यक्त होकर बीज के रूप मे अपनी शाश्वत सत्ता एवं वंश-विस्तार का रहस्य छिपाये बैठा है।

मानव की मानसिक प्रवृत्तियो के विकास का आभास मिथ युग में स्पष्ट हो जाता है। उस समय की मानवीय चेतना प्रकृति के सचेतन क्रोड़ के मनस् की रुचेतन स्थिति में प्रवेश कर चुकी थी [१] और धीरे धीरे प्रकृति के रहस्यों को समझने की ओर जागरुक हुई। इन्द्रिय-प्रत्यक्ष अनुभूति के आधार पर पंच-ज्ञानेन्द्रियों से निसर्ग-सिद्ध रूप रंग, रस-गंध, ध्वनि-प्रकाश एवं स्पर्श आदि पंच भौतिक तत्वों की ओर आर्कषण हुआ। इन्द्रिय-वेदन की सहज एवं एकांगी वृत्ति का स्वरूप कीटपतंग, भ्रमर एवं मृग आदि जीवधारियों में देखा जा सकता है। कीट-पतंगों का ज्योति ज्वाल के प्रति, भ्रमर का सौरभ एवं मकरन्द के प्रति, सर्प एवं हरिण का ध्वनि-नाद के प्रति और मछली का स्पर्श ज्ञान मनुष्य की सहज वृत्तियों की तरह है। अन्तर केवल इतना ही है कि मनुष्य में उक्त सभी वृतियाँ एक साथ सजग रहती है और मानवेतर प्राणियो में उसका एकांगी रूप ही देखा जा सकता है। आदिमानव की प्रवृत्तियाँ किसी बाह्य प्रेरणा से प्रवाहित होकर ही संवेदनात्मक स्थिति मे आई होगी। वह उन्ही प्रेरणाओं को ग्रहण करता होगा जिनके द्वारा उसके जीवन के स्वार्थ बंधे हुए थे। मनुष्य जैसे अधिक विचारशील होता गया, उसकी चिर-सहचरी प्रकृति के विविध रूपो ने उसके मानस में आर्कषण की एक अमिट छाप अंकित कर दी। झरनों का कलकलनाद, पक्षियों का कलरव, चातक एवं कोकिल के कण्ठ की मधुरवाणी, मयूर का रूप-सौन्दर्यमय आकर्षण एवं नृत्य आदि मनुष्य के लिये प्रेरणा के विषय बन गये। विवाह के पूर्व (Court-ship) का प्रणय-आकर्षण एवं सहगमन की प्रवृत्ति मानवेतर प्राणियो में पाई जाती है। मयूर की वाणी वर्षा के समय मानव के हृदय में कवि-परम्परा के अनुसार रागात्मक भावना उत्पन्न कर सकती है किन्तु मयूर स्वर-सौन्दर्य का प्राणी नहीं है, अपितु रूप-सौन्दर्य की अनुपम सृष्टि है। वह अपनी मयूरी को गीत अथवा स्वर-माधुरी के द्वारा नही वरन् वर्ण-सौन्दर्य एवं नृत्य के द्वारा आर्कषित करता है।[२] कौन जाने मयूर के नृत्य से ही मनुष्य ने आत्म-विभोर हो नृत्य करने की प्रेरणा प्राप्त की हो। वैसे केकड़ा और मकड़ी भी अपने स्त्री-साथी को आर्कषित करने के लिये नृत्य करते हैं।[3] किन्तु मनुष्य का ध्यान उनके प्रणय नृत्य की ओर न जाकर

---

१. डा० रघुवंश, प्रकृति और हिन्दी काव्य।
२. L. R. Brigh well, The miracles of Life, page 130.
३. वही, पृष्ठ १३७।

मकड़ी द्वारा जाला बुनने एवं गृह निर्माण की विचित्रता पर ही आकर्षित हुआ । इसी तरह चन्द्र एवं चकोर, दीप एवं पतंग, मेघ एवं चातक अनन्य अनुराग एवं प्रेम के प्रतीक बन गये ।

मनुष्य ने अपनी साधना के उच्चतम स्वरूप को तीन प्रकार से अभिव्यक्त किया है। सत्यं शिवं सुन्दरम् ! चाहे काव्य और दर्शन के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो किन्तु प्रकृति में मनुष्य को जहां भी इनका आभास मिल जाता है, वह उसकी ओर बरबस खिंच जाता है । सत्यं वैज्ञानिकों एवं दार्शनिको के लिये आकर्षण की वस्तु हो सकता है किन्तु शिवं और सुन्दरम् से जन-सामान्य का सम्बन्ध है । रागात्मक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर मनुष्य प्रकृति के सुन्दर स्वरूप की ओर आकर्षित अवश्य होता है किन्तु शिवं का तत्व आज तक सौन्दर्य की भावना को दबाता चला जा रहा है । शिवं····हितकरं की भावना धार्मिक रूढ़ि बन कर रह गई और मनुष्य ने अपने हित के लिये प्रकृति के सौन्दर्य को विनष्ट करने में कभी संकोच नही किया । बुद्धि एवं ज्ञान के वैभवमय चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाने के पश्चात् अपने सुख और आराम के लिये मनुष्य, पशु-पक्षी एवं प्रकृति के इत्तर सौन्दर्य के प्रति अधिक विनाशक एवं शोषणपूर्ण प्रवृत्तियों की ओर झुक रहा है । आदि-मानव की तरह मनुष्य की क्रूरता और कठोरता में किसी तरह का अन्तर नहीं आ सका है । प्रकृति के अन्य जीवों के साथ उसका आकर्षण भोग-वाद--उपयोगितवाद पर आधारित है । वैज्ञानिक युग का मानव यन्त्रों का दास होने पर भी भोजन, वस्त्र, शृंगार एवं स्वास्थ्य-प्रसाधनो के लिये पशु-पक्षी पर निर्भर रहता है । भावनाओ के स्पन्दन की चरमतामे जब कभी भी मनुष्य के हृदय में सुन्दरम् के प्रति सात्विक आकर्षण जाग जाता है तब पशु-पक्षी एवं प्रकृति के अन्य उपादानों के प्रति कला-त्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता है । उसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप हमें दर्शन, धर्म, चित्रकला एवं लोक-साहित्य में यत्र--तत्र देखने को मिल सकता है । परन्तु मनुष्य अपनी स्वार्थमय भावना को त्याग नहीं सका है । एक ओर वह दूध देती गाय की माता के रूप में वन्दना करता है, उसके सुपुत्रों के द्वारा कृषि उद्योग में लक्ष्मी को प्राप्त करता है, तो दूसरी ओर मांस--भक्षण एवं चमड़े की आवश्यकता के लिये गोवध करने में भी संकोच नही करता है। प्राचीन काल के अश्वमेध एवं गौमेध यज्ञ इस हिंसात्मक क्रूरता के उदाहरण के लिये पर्याप्त है। किन्तु मानव मस्तिष्क की यह शाश्वत स्थिति नहीं है । आत्म-संरक्षण के लिये क्रूरता की सहज वृत्ति जागृत होती है, वहां वासना के रूप में मृदुल-भावों की व्यंजना के लिये भी स्थान है। प्रकृति के साथ साहचर्य जन्य वासना को वह दबा नहीं सकता । प्रकृति का व्यापक विस्तार और उसका नाना रूपात्मक सौन्दर्य मनुष्य की सहानुभूति का विषय बन जाता है। परिवर्तन और गति की अनन्त चेतना में मग्न प्रकृति युगों से मानव-जीवन से हिलमिल गई है। मानव उसकी क्रोड़ में विकसित हुआ है । प्रकृति के युग-युग के परिचय का संस्कार उसमें साहचर्य भाव के कारण सुरक्षित है ।[1] इसी मूल संस्कार अथवा वासना के कारण

१. डा० रघुवंश, प्रकृति और हिन्दी काव्य —पृष्ठ १०८।

मनुष्य प्रकृति के समक्ष अनुभूतिमय होकर भावों का तादात्म्य स्थापित करता है । प्रकृति में मानव सौन्दर्य प्रदान करने की प्रवृत्ति मनुष्य की शेष सृष्टि के साथ रागात्मक तादात्म्य की स्थिति कही जा सकती है । मनुष्य जड़-चेतन में आदान-प्रदान कर प्रकृति को सुख-दुःख में अपने साथ हंसाता व रुलाता भी है । तल्लीनता की इस भावना का प्रारम्भिक एवं स्थूल रूप हमें लोकगीतों में प्राप्त होता है ।

गोयरा - कांकड़ - गाम

कृषि-प्रधान भारत के ग्रामो में प्रकृति के अकृत्रिम रूप के दर्शन होते हैं । भारत के विभिन्न ग्रामों की तरह मालव के ग्रामो में भी सहज आकर्षण प्राप्त होता है । खेत-खलिहान, नदी-नाले, गाड़ी की गडार, पगडण्डियाँ, कच्चे रास्ते, ग्राम की सीमा पर स्थिति कुए-सरोवर-वापी, आम्र-उद्यान आदि का लोकगीतों में यत्र तत्र उल्लेख हुआ है । मालवी भाषा में छोटे-बड़े गांवों के लिये अनेक शब्द प्रचलित हैं, ग्राम, गांव, गांवड़ा, खेड़ा, खेड़ी, एवं गामड़ा-गोठड़ा आदि । नारियों के मानस में ग्राम एवं नगर के लिये भिन्न-भिन्न धारणाएँ नहीं होती । नगरों के लिये सेर (शहर) शब्द उनके लिये पर्याप्त है । बड़ा शहर एवं सामान्य ग्राम उनकी दृष्टि में समान है । उज्जैन जैसे नगर के लिये भी उन्होने 'खेड़ा' शब्द का प्रयोग किया है ।[1] नगर एव ग्राम के बाह्य रूप का उतना महत्व नहीं जितना उसके आन्तरिक स्वरूप का होता है । आवास बनाकर जहां मनुष्य रहता है, वही उसके लिये रमणीय स्थान बन जाता है । झोंपड़ी, साधारण मकान एवं भव्य भवनों की संख्या का उतना महत्व नहीं जितना घर और आंगन के प्रति ममत्व का होता है । घर, आंगन, महल, अटारी आदि के सौन्दर्य के प्रति जन-सामान्य के मन में एक निश्चित-कल्पना है । झोंपड़ी एवं 'टूटे-टापरे' में रहने वाली अभाव-ग्रस्त निर्धन स्त्री की कल्पना का लोक बड़ा ही मनोरम होता है । वह भी अपने जीवन की वास्तविक कठोरता को भूल कर प्रियतम को मेल (महल) एवं ऊँची अटारी (अट्टालिका) में ही आमन्त्रित करती है ।[2] बड़ी हवेली, ऊँचे महल एवं सुन्दर-स्वच्छ मकानों में रहने के लिये प्रायः सभी व्यक्तियों के हृदय में एक लालसा बनी रहती है । प्रियतम के शयन कक्ष के सम्बन्ध में भी लोकगीतों की नारी की एक निश्चित धारणा है । दो मंजिले या इससे भी अधिक खण्ड वाले भवन एवं उच्चस्थ कक्षों का वर्णन अधिक मिलता है ।[3] महल एवं हवेली आदि भव्य एवं विशाल भवनों के सूचक हैं । इनमें छज्जे, गोखड़े आदि गवाक्षों का उल्लेख वायु-संचरण की उपयोगिता को मान्य करने हुये वैभव-प्रदर्शन की

---

१. राजा तम उज्जीण रा खेड़ा म्हारे मेलां आजो —१।८४

२. क. भँवर म्हारा मेला आजोजी, सजन म्हारां बागां आजोजी —१।१९४

ख. समदी । ऊंची अटाड़ी दिवलो बळे —३।४९

३. ऊंचा मेल अलग दरवाजा
आो जठे म्हारां आलीजां की सेजां —१।२१५

प्रवृत्ति को भी प्रकट करता है ।[1] प्रियतम एवं प्रेमिका के महल के सम्बन्ध में भी बड़ी बड़ी विचित्र कल्पनाएँ हैं । शयन-कक्ष का दरवाजा 'बजर-किवाड़' एवं सुदृढ़ अर्गला अथवा लोहे की सांकल से युक्त होता है । मिलन-प्रसन्नता एवं हास-विलास की स्थिति में 'बजर-किवाड़ एवं सार की सांकल खुल जाती है और मनमुटाव की स्थिति में इनके बन्द होते भी देर नहीं लगती ।[2] राजाओं के नवखण्डों के महल अथवा बादलों को स्पर्श करने वाले उच्च भवनों की स्मृति भी लोकगीतों की परम्परा में सुरक्षित है । सामन्तों की बिहार-स्थली 'बादल महल' ही हुआ करते थे । राजा भरथरी बादल मेल में जाकर अलख जगाता है ।[3] बादल महल की कल्पना प्राचीन भारत की वास्तु-कला की सौन्दर्यानुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण है । महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित 'मेघ प्रतिच्छन्द भवन' एवं बादल महल एक ही भावना को प्रकट करते हैं ।[4] लोकगीतों की नारी के प्रियतम की हवेली में शयन-कक्ष इतना ऊँचा होता है कि वह कोमलांगी चढ़ते-चढ़ते ही थक जाती हैं । चौंसठ सीढ़ियो की ऊंचाई को पार करने पर ही प्रिय तक पहुँचा जा सकता है ।[5]

नायक और नायिकाओं का आवास-स्थान सामान्यतः रंग-महल ही होता है ।[6] महल और छज्जे पर चढ़कर प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती है ।[7] भव्य भवनों के अतिरिक्त सामान्य कक्ष (ओवरी), ऊंची मेढ़ी, द्वार (ओल) एवं चबूतरा (ओटला) आदि का यथातथ्य वर्णन भी इन लोकगीतों में प्राप्त होता है ।[8] पोळ एवं पटसाल ग्राम के

---

१. गोरी बैठी गोखड़े आड़ा किल्ला कोट —२।७१

२. क. खोल्या खोल्या ओ बजर किवाड़
सांकल खुली सार की जी म्हारा राज —१।२२१
ख. सायब ने लागी बड़ी रीस जुड़ीया बज्जर कवाड़ जी म्हारा राज । वही,

३. कांख झोली हाथे चिमटा, धरली मेलां की बाट
अलख जगाया बादळ मेल में —२।१२३ पृष्ठ ७६

४. मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दायय —अभिज्ञान शाकुन्तल अंक ६

५. बड़ी हवेली का चौंसठ पंगत्या, चढ़तां-उतरतां हारीजी बना —१।६६

६. त्हारा डेरा रंग मेल में जी म्हाका राज —१।११४

७. मेलां चड़ी ने जोवती, छज्जा चड़ी ने जोवती —१।११६

८. क. एक इंदारी (अंधेरी) ओवरी, दूजी बेरण रात —२।२२
ख. ऊंची मेड़ी राव की रे ···२।३८
ग. पूरवज आया म्हारी बऊंवां की ओल —१।५६
घ. ओटला पे ओटलोरे जिपे बैठो मोर —२।६
ङ. ऊंचा हो आलीजां तमारा ओवरा नींची बंधांवा पटसाल, मालवी लोकगीत
च. कणी पत छोड़्या मेड़ी ओवरा कणी पत छोड़ी सूरज पोळ —१।२६४

सम्पन्न व्यक्तियों की बैठक का मुख्य द्वार के निकट एक मंजिला स्थान हो सकता है किन्तु अपने पति के प्रति अनन्यता का भाव रखने वाली सन्नारी टूटे टापरे में भी अपने दिन बिता सकती है। आधुनिक युग की नायिका खिड़कियां से युक्त हवादार बंगले में रहना पसंद करती है।[1] ग्रीष्म दिनों में उसे रहने के लिये बंगला ही चाहिये।[2] अनेक गीतों में बाजार, दुकान, हाट, मोहल्ले, (बाखल, सेरी) कचहरी एवं संकीर्ण पथ (गली) आदि का वर्णन भी शृंगार एवं हास्य के प्रसंग में उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है।[3] मांगलिक अवसर पर गाये जाने वाले गीतो में घर के साथ आंगन को भी महत्व दिया है पुत्र-जन्म आदि के आनन्दमय अवसर पर मालवी नारी अपनी गृह-शोभा के साथ ही आंगन की श्री-वृद्धि का भी ध्यान रखती है। पीली मिट्टी एवं गोमय से सामान्य अवसरों पर आंगण लीपा जाता है। विशेष 'हरख' एवं शुभ प्रसंग पर तो चन्दन एवं केसर से आंगन लीपे जाते हैं। अनमोल मोती उसमें बिखेरे जाते हैं। नारी के भाव-कोष में काल्पनिक वैभव का अभाव नहीं है।[4] दूर से अच्छे दिखाई पड़ने वाले मकानों की सुन्दरता के सम्बन्ध में ग्राम निवासियों की अलग ही धारणा है। लाल रंग के किवाड़ और उस पर जड़े हुये पीतल के लोंग से युक्त-द्वार मकान की रमणीयता का परिचायक है। घर के आंगन में केल के वृक्ष का होना भी आवश्यक है। लोकगीतो में सम्पन्न एवं मनोरम घरो के वर्णन में वायु से आन्दोलित कदली वृक्ष का उल्लेख एक परम्परा की वस्तु बन गया है।[5] सूनी बाखल का नीम का वृक्ष एवं किसी गली में स्थित नीम के पेड़ के पास का घर भी एकान्त सौन्दर्य की अनुभूति का एक विषय है:—

---

१. स्याळे स्याळे चौबारो, उन्हाळे बंगलो
चौमासा में झूलो घलई दोजी – १।२०६

२. बंगलो बंदईने खिड़की रखाविया, तोई अणबोल्यां सासु रा पूत

३. क. काला पीपल को लम्बो बजार, जाओ ओ
दारी म्हारा काकाजी मांडी दुकान

ख. गुड़ल्यो म्हारो लाड़लो सेरी भग्गो जायरे भाई – १।८

ग. कचेरी में बैठा त्हारा कांई लागे, सेरी रमन्ता त्हारा कांई लागे – ३।७७

घ. गली रे तमारी सांकड़ी नई मिलन का जोग

ङ. तेरे साजन गली में ठाड़े, लटकाले बिन्दियां गालन पे —३।७१

४. क आज म्हारे लिपणा पोतन्या हो राज
चन्दन चौक पुरावो के वां म्हारी गोतनियां —मालवी लोकगीत, पृष्ठ १३

ख. सासु ने घोल्यो केसर लिपणो —१।१८६

५. ऊंची मेढ़ो लाल किवाड़, केल झबूके रजरे ओवरे …१।४७
सूरज सामे वाकी पोल लोंगा जड़त किवाड़ कईये
केल झबका खाय … —२।१२४ पृष्ठ ८४

१. सूनी बाखल को नीम केसो हले
ऊँकी (नायिका विशेष) सासू गई हाट-बजार —३।५१

२. बेन ए कलालन ये, गलियारे घर थारो
गलियारे घर थारो ए, नीम तले घर म्हारो ये —१।६२

ग्राम-धाम के साथ ही गांव से संलग्न सीमाओं का उल्लेख करना भी आवश्यक है। मालवी में गाव को चारों दिशाओं से घेरने वाली सीमा को 'गोयरा' कहते हैं एवं ग्राम के खेतों के क्षेत्र-विस्तार को किसी अन्य ग्राम के खेतों से अलग करने वाली सीमा-रेखा अथवा हद् को 'कांकड़' कहते हैं। अतिथियों का ग्राम के कांकड़ एवं गोयरे के निकट आने का उल्लासपूर्ण सम्मान-भावना के साथ वर्णन किया गया है। बहिन का भाई जैसे ही गांव के कांकड़ में प्रवेश करता है, बहिन स्वागत के उपादान व्यवस्थित करने लगती है[1] और पिता के छोटे-बड़े भाई काका-बाबा आदि गांव-गोयरे से निकल जाते हैं और मिलने नहीं आते तब उसे अपने मां-जाये भाई की एकमात्र आत्मीयता पर ही गर्व करना ही पड़ता है।[2] ग्राम की संलग्न-सीमा गोयरे शब्द का कुछ धार्मिक गीतों में व्यापक दृष्टिकोण लेकर प्रयोग किया है वहां भी उक्त शब्द का अर्थ तट वर्तीय-क्षेत्र ही होगा।[3] ग्राम और गोयरा-कांकड़ के साथ ही ग्राम से बाहर निकलने वाले पथ एवं पगडण्डियों का दृश्य भी बड़ा सुन्दर लगता है। ग्रामों में जाने के लिये पक्की सड़कें तो अब बन रही हैं किन्तु गाड़ी के पहियों के निरन्तर चलते रहने से समानान्तर दो मार्ग-रेखाएं भूमि पर अङ्कित हो जाती हैं वही ग्राम का पथ है। इस पथ को सामान्यतः 'वाट' या बाट कहते हैं एवं गाड़ी के चक्रों द्वारा निर्मित मार्ग-रेखाओं को 'गडार' कहा जाता है। इन ग्राम-पथों से गाड़ियों का आना-जाना बड़ा ही रोचक लगता है। गाड़ियों में जुते हुये बैल जब द्रुतिगति से दौड़ते हैं तब उसमें बैठने वाले एवं सुदूर से देखने वाले व्यक्तियों को यह दृश्य रमणीक मालूम पड़ता है। बैलों के पदाघातों से धरती की धूल उड़कर गगन की ललाई से जा मिलती है।[4] ग्राम-मार्गों पर दौड़ती हुई गाड़ियां, विशेष कर घाटियों पर से रड़गती हुई गाड़ियों एवं उड़ती धूल के मनोरम सौन्दर्य को नारियों ने अपने गीतों में उतारा है। मायके की ओर लाने और ले जाने वाले पथ की धूल को मालवी नारी

---

१. जद राजा बीरा कांकड़ आया, बागां री दूब हरीयाई ओ राज
जद म्हारा राजा बीरा दुआरे आया द्वार कलश धराया ओ राज – १।२१०

२. काका बाबा म्हारे अतघणा रे, गोयरा से निकस्या जाय
मांडी जाय्यो बीर एक घणो रे, म्हारा बरद उजाल्या जाय – १।५४

३. भव सागर का गोयरे रे सड़ला पेड़ खजूर – २।८०

४. गाड़ो तो रड़क्यो रेत में रे बीरा, गगना उड़े रे गुलाल
चालो उतावल धोरड़ी रे, म्हारी बेन्या बाई जोवे बाट – १।८२

धूल के रूप में स्वीकार नहीं करती जिससे शरीर एवं वस्त्रों के अस्वच्छ हो जाने का भय बना रहता है। वह पीयर के मार्ग की धूल को केसर मानकर मातृभूमि के रजकणों के प्रति अथाह श्रद्धा एवं स्नेह के उभार को प्रकट करती है।[1] ग्राम पथों के दृश्यों का चित्रात्मक एवं हृदय-स्पर्शी वर्णन हुआ है। दो टेकड़ी अथवा छोटी पहाड़ियों के बीच में से निकलता हुआ मार्ग भी किसी ऊंचे स्थान से देखने पर बड़ा मनोरम जान पड़ता है। ऐसे पथ पर चलने में भी हर्ष होता है। गणगौर के ˜ ˜ में एकान्त पथ के सौन्दर्य की ओर भी नारी-मानस आकर्षित हुआ है।[2]

खेती-बाड़ी, खेत-खलिहान

भारत के अन्य ग्रामों की तरह मालवा में भी प्रायः दो फसलें काटी जाती हैं। ग्राम की निकट की भूमि में कुए अथवा तालाब से सिंचाई कर शाक-भाजी भी ऊगाई जाती है। फसलों को काट कर खलिहानों में रखा जाता है और बैलों के द्वारा दामण चलाकर धान्य के कणों को अलग किया जाता है। यह एक आश्चर्य की बात है कि मालवी लोकगीतों में भूमि के जोतने, हल चलाने, अनाज बोने अथवा फसल काटने का यथा-तथ्य उल्लेख नहीं हुआ है। जीवन के प्रत्यक्ष-कठोर कर्म का सत्य कदाचित श्रम-बिन्दुओं के साथ ही सूख-सा गया है। एकाध स्थल पर बाड़ी की बागर एवं खेत की रखवाली का नाम भर आ गया है। सिंचाई द्वारा किये गये कृषि कर्म की भूमि को बाड़ी कहते हैं। मालव में शाक-भाजी एवं गन्ने की उपज सिंचन द्वारा प्राप्त होती है। जुवार, बाजरा, मक्का एवं गेहूं आदि की व्यापक खेती वर्षा पर ही आधारित होती है। अतः प्राकृतिक वर्षा के द्वारा प्राप्त अनाज के लिये जोती गई भूमि को खेत कहेंगे और सिंचन से प्राप्त गन्ने की उपज के लिये सांटा की बाड़ी अथवा बाड़ तो प्रसिद्ध ही है। बाड़ी की रखवाली के सम्बन्ध में मालवी किसान बड़ा भावुक बन जाता है और उसकी रखवाली (सुरक्षा) का भार भगवान (राम और लक्ष्मण) पर छोड़ देता है।[3] कृषि-कर्म को कष्ट-साध्य मान लिया गया है। किसान के घर में व्याही जानेवाली स्त्री को खेत नींदते समय कष्ट का अनुभव होता है।[4] पुरुषों के अपेक्षा स्त्रियों ने दो-चार गीतों

---

१. म्हारा पीयर बाट केसर उड़े गाड़ो तो आयो रड़कतो
दादाजी हो माताजी हो आया — मालवी गीत पृष्ठ ८५

२. दोय डूंगर बीच बाट, रणुबई कां चाल्या हरकता जी – १।१९८

३. कूण करेगा बाड़ी की बागर, कूण करेगा रखवाली
राम करेगा बाड़ी की बागर, लछमन करेगा रखवाली
मोर मुरगड़ा चुग गया हर बाड़ी – २।८१

४. मांजी म्हारे किरसाण्या घरे मति दीजे, हूं तो खेत नींदता हारी
टंकारयो रंगरूडो म्हारो – १।२२७

में बीज बोने और सिंचन करने की ओर संकेत अवश्य किया है किन्तु यह खेती अनाज की नहीं वरन् मादक द्रव्यों की है। वसन्त-कालीन त्यौहार होली पर मालवी नारी अपने प्रियतम को भंग के बीज एवं कलालन को मदिरा प्राप्ति के लिये महुआ बोने के लिये आग्रह करती है।[1] किन्तु यह भावना-जगत की वस्तु है। लहलहाते हरे-भरे खेतों के सौन्दर्य की अनुभूति एवं फसलों के खलिहान में आ जाने से परिश्रम की सफलता के परिणाम स्वरूप अर्थसिद्धि का उल्लास एवं कर्म करने का गर्व और आत्मतोष की भावना यहां ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलती। यह स्थिति व्यस्त जीवन की चरमता की द्योतक है।

बाड़ी में उगने वाली शाक-सब्जियों का उल्लेख एक प्रभाती के गीत में प्राप्त होता है। यहां भी कल्पनावैचित्र्य एवं कौतूहल की भावना को प्रगट करता है। मूली और मेथी के विवाह की कल्पना है और उसमें साग के सिरदार बाड़ी के बथुए के साथ ही करेला, कन्दोरी अदरख, मिर्च, गाजर, तूमड़ा, चन्दलोई आदि कुछ सब्जियों के नाम आये हैं।[2] बालिकाओं के एक गीत में जीरा बोने का उल्लेख भी है। वह केवल कौतूहलगत भावना को प्रकट करता है कि गाड़ी के नीचे जीरा बोया गया।[3] स्त्रियों के कुछ गीतों में मक्का, जुवार एवं चावल आदि मालव की प्रमुख उपज के धान्यों के नाम भी उल्लेखनीय हैं। वैसे मालव की उर्वरा भूमि में गेहूं की उपज अधिक होती है किन्तु सामान्य कृषकों एवं श्रमिकों का भोजन जुआर और मक्का ही रहा है। अधिक मूल्य-प्राप्ति की आकांक्षा के कारण गेहूं बेच कर मोटे अनाज पर ही अपना निर्वाह कर लेता है। गेहूं तो मध्यम एवं उच्च वर्ग के लोगों के भोजन की वस्तु है। दैनिक भोजन में मक्का और जुआर की रोटी-राबड़ी ही मालव के अर्थ-पीड़ित किसान के उदर-पोषण का साधन है। विशेष त्यौहार एवं अतिथियों के आगमन पर ही उसे गेहूं

---

१. क. उदयापुर से सायबा बीज मंगाय
अब थे बोवो हो केसरिया सायबा, भांगड़ी हो राज —१।१९३

ख. मउड़ी बोवोरी कलालन, म्हारा केसरिया भरतार
दारूड़ी तोड़ीखाजो – १।१९२

२. मेथी का लगन लिखाड़ीया, थावर खोटे वार
बाड़ी नो बाथरो सब सागनो सिरदार
काकों करेलो जाने चालसी काकी कन्दोरी साथ
आदो तो दादो जाने चालियो
मिरच भावी साथ, गाजर गाड़ा जोतिया
तूंबो तो घरे बैठो जाय
मूली ने मेथी परणसी करेंजी हित-चीत बात – १।२२६

३. गाड़ा तले जीरो बोयो सात सहेलियां हो
गाड़ी रड़क्यो कूंपल भांगी – १।१०

के उपयोग करने का अवसर मिलता है। मालवी लोकगीतों में भी गेहूं जैसे मालव के प्रमुख धान्य का उल्लेख अतिथि के आगमन एवं पुत्र-जन्मोत्सव आदि के सन्दर्भ में ही प्राप्त होता है।[1] बहिन अपने मायके के लिये गेहूं के लड्डू भेजती है। गेहूं के लड्डू तैयार करने के उल्लास का कारण भाई के यहां से प्राप्त चुनरी का पुरस्कार ही हो सकता है।[2]

मालवा के किसान अपने दैनिक भोजन में जुआर का उपयोग अधिक करते हैं और मक्का का अपेक्षाकृत कम, किन्तु लोकगीतो में मालव का प्यारा भोजन मक्का को ही स्वीकार किया है।[3] इसमें मक्का के अन्न को माता के समान मानकर सन्मान भावना प्रगट की गई है किन्तु मक्का जैसे कठोर अनाज को पीसने में ग्राम वधू को कष्ट तो अवश्य हुआ है और फिर मक्का की रोटी बनाना भी उतना सरल नही है।[4] अतः कोमलांगी कृषक बाला मक्का को यदि झुँझलाहट में गाली देकर गेहूं कीं रोटी बनाने की कामना प्रगट कर बैठती है तो वह भी स्वाभाविक है। इससे मक्का की महत्ता किसी प्रकार कम नहीं होती क्योंकि गेहूं के आटे की बनी गांकर (बाटी) खाने वाली ग्रामीण स्त्री की गीतों में मखौल भी उड़ाई गई है। स्वाद के सुख में गेहूं की ज्यादा गांकर खाने वाली स्त्री की परेशानी का मनोरंजक चित्र

---

१. क. बईओ दूधां केरां आदण देवाव म्हारा गाठ्या गऊ कि घूघरी
बीरा रे हेडू म्हारा गंगा जमनी खेत हूं नत की रांदू घूघरी
—मालवी लोकगीत पृष्ठ १७

ख. नाना के पालने रेशम डोर
नाना ने हुलरावे ऊँके घुगरी ने गोळ – १।१

२. म्हने आंगनिया लिपाया था
उज् आंगन भलो थो म्हने गऊंड़ा सुखाया था
वीज् गऊंड़ा भल्ला था म्हने घट्टी में धमकाया था
वाज् घट्टी भली थी म्हने लाडूला बधाया था
वीज् लाडू भला था म्हने पीयर ए पोंचाया था
उज् पीयर भल्लो थो म्हने ओढ़नी ओढ़ाया था – १।६

३. मालवा ना प्यारा भोजन, धन धन म्हारी मक्कड़ माता
धन धन मक्का नी राबड़ी –२।११

४. मक्का कायकू लाये बालम रसिया
गऊंड़ा तो हूं झट-झट पीसूं, जुआर चोटी-चोटी जाय
मक्का रांडने पीसन बैठी, सारो जगायो सेर
गऊं का हूं चार चार पोऊं, ज्वार की दो मोटी
मक्का रांड की एकज् पोऊं, चूलो बुझ बुझ जाय —२।१२

भी एक गीत में प्राप्त होता है।[1] वैसे चाँवल का उल्लेख भी देवता अथवा अतिथि सत्कार के सन्दर्भ में प्राप्त होता है।[2] चाँवल जैसे मंहगे धान का उपयोग करना मालव की सामान्य, अर्थपीड़ित ग्रामीण जनता के लिये सम्भव भी नहीं हो सकता।

नदी-उद्यान-सरोवर (सरवर पाल)

मालव का प्राकृतिक सौन्दर्य अपने विस्तृत मैदानों में बिखरा हुआ है। जहाँ श्याम-हरित आभा से मण्डित खेत बिछे हुये होते हैं। शिप्रा, चम्बल, पार्वती एवं कालीसिन्ध आदि नदियों के अतिरिक्त छोटी-बड़ी अनेक धाराएँ भी प्रवाहित हुई हैं जिनके किनारे की लम्बी एवं ऊबड़-खाबड़ घाटियों में सदा-सुहागिन, झड़बेरियाँ, बबूल, खेजड़ी और खजूर के वृक्षो का सघन झुरमुट बन जाता है। खुले मैदानों में सरोवर एवं ताल-तलैया का व्यापक सौन्दर्य तो नहीं मिलता किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में कुए-बावड़ी (वापी) और नदी-नालों से आपूर्ण जल के किनारे का सामाजिक आकर्षण पनघट के दृश्यों का एकदम अभाव भी नहीं है। उद्यान और वाटिका का सौन्दर्य ग्राम की वस्तु न रह कर नगर के आकर्षण का साधन बन गया है। फिर भी ग्रामों में स्थित अमराइयों की सघन छाया, नीम, इमली और कबीट (कैथ) के वृक्षों का बाहुल्य उद्यान जैसी छटा को प्रस्तुत कर ही देता है। मालव की प्रकृति का यह शाश्वत स्वरूप लोकगीतों में निखरा अवश्य है किन्तु उसमें सम्पूर्ण चित्र की अपेक्षा विविध रेखाओं के अङ्कन से ही हम जन-मानस की सौन्दर्यनुभूति को परख सकेंगे।

मालव की विविध नदियो के कल-कल निनाद को कोई कवि ही समझ सकता है, जन-साधारण नहीं। शिप्रा नदी का धार्मिक महत्व अवश्य है किन्तु उसका इस दृष्टिकोण से कोई उल्लेख नहीं मिलता। सावन के महीने में घनघोर वर्षा के कारण शिप्रा में बाढ़ आ जाती है और वह ग्राम-पथों को अवरुद्ध कर देती है। इस कष्ट की अनुभूति एक बहिन को होती है कि मायके नही जा सकी। उसका भाई विवश था क्योंकि वह अपनी बहिन को जब लेने आया, शिप्रा की उत्ताल तरंगों ने उसका पथ रोक दिया।[3] शिप्रा के अतिरिक्त एक-दो स्थल पर नर्मदा नदी का भी उल्लेख मिलता है। दक्षिण मालव से संलग्न होने के कारण नर्मदा-तट के ओंकारेश्वर एवं मान्धाता तीर्थों से यहाँ का जन-मानस अपरिचित नहीं है किन्तु फागके गीतों में नर्मदा के जल में घोटे हुये रंग की पिचकारी का संकेतमात्र प्राप्त होता है।[4]

---

१. कोठी में का गऊंड़ा हेड्या, चुन चुन बीनी कांकरिया
हाय रंगीली गांकरिया —२।११

२. चोखा रंदाडू ओ इन्दर राजा उजरा, हरिया घोरा नी ओ मूग —१।२६०

३. राखी दिवासो आयो, लेवा ने आव म्हारा वीर
हूँ कैसे आऊं बेन्या बई, सिपरा नदी माय पूर

४. नरबदा के रंग से भरी पिचकारी, बंसीवाला से खेलांगा फाग —१।१८१

यह एक आश्चर्य की बात है कि चम्बल जैसी महत्वपूर्ण नदी का लोकगीतों में कहीं भी स्मरण नहीं किया गया। यह सम्भव है कि ऐसे गीत प्राप्त नहीं हो सके जिनमें चम्बल के सम्बन्ध में जन-सामान्य ने अपनी भावना अभिव्यक्त की हो किन्तु अभी तक की संकलित सामग्री में हमें चम्बल के सन्दर्भ में कोई गीत प्राप्त नहीं हुआ।

नदी के अतिरिक्त एक-दो गीतो में तटवर्तीय सौन्दर्य एवं जल से प्रवाहित होने के कलनिनाद की ओर स्त्रियों का ध्यान गया है । यह तटवर्तीय सौन्दर्य काल्पनिक जगत में निखरकर प्रकट हुआ । नदी के किनारे वायु से आन्दोलित होने वाली केतकी के दृश्य को यौवन-सम्पन्न नारी के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है ।[१] पुरुषों का ध्यान नदी के किनारे पर बैठे हुये मछली-मार बगुले की ओर आकर्षित हुआ।[२] नदी के दीप के काजल से नायिका अपने नैनों का रंजन कर सौन्दर्य की शोभा द्वारा देखने वाले रसिकों को मूर्ख बनाकर उलझा लेती हैं।[3] तीव्र गति से प्रवाहित होने वाली धारा के ध्वनि-निनाद के लिये 'फलल् फलल्' शब्द का प्रयोग किया गया है।[४]

सरोवर एवं सरोवर की पाल (बाँध) का वर्णन प्रायः रूढ़ हो गया है । पनिहारिन एवं स्नान करती हुई सुन्दर स्त्री के सन्दर्भ में सरोवर का उल्लेख है।[५] सौन्दर्य-दृष्टि में स्थूलता आ गई है और लहरियों की अठखेलियों को कवियों के अतिरिक्त कोई व्यक्ति परख भी नहीं सका। सरवर की पाल पर स्थित आम्र-वृक्ष की डाल हिलाने का उल्लेख एक रतजगे के गीत में अवश्य हुआ है।[६] पंथीड़ा के गीतों में सामान्य सरोवर को मानसरोवर के रूप में देखा गया जहाँ बाँध के बिना भी उसका अस्तित्व कायम रह सकता है । जल एवं मछलियों के अदृश्य रहने पर भी वह लहराता रहता है।[७] सरोवर के अतिरिक्त कुए और बावड़ियों

---

१. नदी किनारे केवड़ो, नम नम झोला खाय
मां सुगली का* सायबा, मां देख्यां अन्न खाय — * पाठान्तर—म्हां सुगनी

२. नदी किनारे बगलो बैठयो चुन चुन मछिया खाय
बड़ी मच्छी को काँटो लाग्यो तलप तलप जी जाय

३. नदी किनारे दिवो बले, कागल् पड़े रे खण्डार
आँजणवाली छैल-छबिली, निरखण वालो गिवाँर

४. फलल् फलल् नद्यां बेवे, पातर घोत्या धोवे हो राज —१।५८

५. क. ऊँची पाल तालाब की रे, गोरी करे अस्नान —१।२४ चम्पा दे ८१
ख. सरवर ऊँची नीची पाल, जा बैठ्या मोट्यार —२।३१

६. सरवर पाल आम्बा रो डाल, कुण हिलावे डाल —१।५८

७. आया अजमल अवतर मान सरवरिया री पाल
बिन पाल सरवर भरिया, नीर नजर नी आवे रे
मछिया वामे दिखे नहीं समदर हिलोरा खावे रे —२।८८

का उल्लेख पनिहारियों के गीतों में मिलता है।[1] ऐकाध स्थल पर बावड़ी का प्रतीक के रूप में भी वर्णन मिल जाता है।[2] जलाशयों के निकट उद्यान और वाटिकाओं की मनोरमता द्विगुणित हो जाती है। उद्यान के प्रति जन-मानस का मोह आज भी विद्यमान है किन्तु स्वच्छन्द विचरण एवं बिहार करने की कामनाएँ प्रायः पूर्ण नहीं हो पाती। नवलख बाग एवं चम्पाबाग में झूला डालकर प्रेमीयुगल की क्रीड़ाएँ वर्तमान युग के लिये केवल पूर्वयुग की स्मृति को सजग करने के लिये ही पर्याप्त है।

वृक्ष-लता

मानव जीवन में वृक्ष-लता एव वनस्पतियों का बड़ा महत्व है। इनसे फल, फूल एवं जड़ी-बूटियों के रूप में मनुष्य के शरीर को पोषण, स्वास्थ्य एवं संरक्षण तो प्राप्त होता ही है, ये घर-आँगन और वन-प्रान्तों की शोभा बढ़ाकर सुन्दरम् और शिवम् की सृष्टि भी करते हैं। मालवी लोकगीतों में वृक्ष-लता एवं पुष्पो का विशद वर्णन मिलता है। इनमें जन-साधारण का प्रकृति के सौन्दर्य को परखने का जो दृष्टिकोण है उसका स्पष्टीकरण भी हो जाता है। लोकगीतों में वृक्ष-लता के वर्णन में प्रमुख तीन भावनाएँ दिखाई पड़ती हैं।

१. स्थूल दृष्टिकोण, उपयोगिता के आधार पर यथातथ्य चित्रण।
२. अन्ध-विश्वास से युक्त धार्मिक दृष्टिकोण, धार्मिक मान्यता के सन्दर्भ में पूजोपचार, उपदेश एवं नीति कथन।
३. कलागत दृष्टिकोण, उद्दीपन के रूप में चित्रण, भावों के प्रकट करने के माध्यम के रूप में।

आम, इमली, नीम, खजूर, खेजड़ी (शमी वृक्ष), सीताफल और केल आदि वृक्षों का स्थूल रूप से वर्णन हुआ है।[4] आम एवं केल के वृक्ष का वर्णन घर की शोभा, सम्पन्नता

---

१. कणी ने खुदाया कुआ बावड़ी, कणी ने खुदाया तलाब —१।२२५
२. क. चार खुण्या चार बावड़ी रे, चारि पिराले पाट
बटउड़ा ने मन मोयो —३।७७
ख. पांच करण की पिया बावड़ी ओ सेली वाला —१।६२
पांच करण की पिया बावड़ी, पेड़्या पेड़्या लील —२।३२
३. डेरा तो दीजे चम्पा बाग में जी —१।२१२
४. आम— सरवर पाल, आम्बा री डाल
क. इमली— म्हारा घर पाछे आमली रे, आये लड़ा लूम – १।६।१० दोहा
ख. भरी बन्दुक म्हारी आमली से टांगी – २।७७
नीम— गलियारे घर थारो ए लीम तले घर म्हारो ए – १।६२
खजूर— बाज खजूर भली थी भई, खोड़्या कटाया था – १।९
खेजड़ी— आकच-कूकच खेजड़ी रे, दादाजी बोया गउँडा – २।८४
सीताफल— सीताफल को रुखड़ो, बदेनी बदवा देय – २।४०

एवं शुभ-शकुन की भावना को लेकर हुआ है। वह घर एवं अट्टालिका बड़ी सुरम्य मानी जाती है जिसके आंगण में केल-वृक्ष के कोमल पत्ते लहराया करते हैं। समृद्ध लोगों के भवनों के वर्णन के साथ ही केल-वृक्ष का उल्लेख अवश्य ही किया जाता है।[१] पुष्प-लताओं को छोड़कर दैनिक भोजन से सम्बन्धित शाक-सब्जी की बेलों का वर्णन इन गीतों में नगण्य सा है। बालिकाओं के एक-दो गीतों में हरी कोंपल की भाजी एवं कड़े तूमड़े की बेल का उल्लेख है।[२] हल्दी का वर्णन विवाह के गीतों के अन्तर्गत हुआ है। मालवी स्त्रियों की कल्पना है कि गाँठ-गठीली एवं रंग-रंगीली हल्दी बालू रेत में ही उत्पन्न होती है।[३] मालव की भूमि में उत्पन्न हल्दी का रंग अधिक निखरता है। राजस्थानी लोकगीतों में मालव देश में उपजने वाली हल्दी को ही महत्व दिया गया है।[४] कुछ वृक्ष एवं लताओं का वर्णन पितर एवं देव-स्थान के संदर्भ में किया गया है। भारतीय संस्कृति में वट और अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का धार्मिक महत्व तो सर्व-मान्य है। मालव की स्त्रियां भी वट-सावित्री का व्रत करती हैं एवं बड़ तथा पीपल के वृक्ष की पूजा करती हैं। पीपल का वर्णन धार्मिक दृष्टिकोण को लेकर हुआ है। इमली, बड़ (वट) एवं पीपल में प्रेत-आत्माओं का निवास रहता है, ऐसी अन्ध धारणा है। देव-योग से उक्त वृक्ष यदि घर के आंगण में फूट आवे तो लोग इसे अशुभ मानते हैं। मालवी स्त्रियों की भी यह मान्यता है कि पीपल के वृक्ष में पूर्वजों, मृतात्माओं का प्रेत रहता है।[५] पीपल के वृक्ष की पूजा करना कुल-वधू का धर्म माना गया है। वंश के गौरव की वृद्धि के साथ ही पीपल-पूजन से भगवान मिल जाते हैं।[६] इस पूजा में सौभाग्य कामना

---

१. क. सहेली यो आम्बो मोरियो, इणके देखवा बीराजी आविया
इणकी सोना केरी जोड़, इंकी डाल पे मोत्या केरी लूम
इकी सात पूता केरी जोड़ – १।१६५
ख. केल झूबूके रजरे आव रे – १।४७
केल झबूका खाय जी – २।१२४
म्हारे आंगणे केल उगी, केल उगी — मालवी लोकगीत पृष्ठ ६५
२. क. म्हारे घर पाछे कड़ो तूमड़ो, तोड़ बगारी भाजी जी —१।४
ख. कोंपल की म्हने भाजी रांदी, भाजी से म्हने बीरा जिमाया —१।१०
३. हळदी गाँठ-गठीली, हळदी भोत रंगीली
निपजे वां बालू रेत में —मालवी लोकगीत पृष्ठ ७६
४. म्हारी हळदी रो रंग सुरंग निपजे मालवे
हळदी मोल पसारी री हाट वनड़ा रे सिर चढ़े
—राजस्थान के लोकगीत पृष्ठ १३६
५. म्हारा पिछवाड़े पूरब जाँ री पीपली
डाल्या ओं डाल्या दिवा बळे —१।५५
६. पीपल पूजने म्है गई अपणा कुल की लाज
पीपल पूजतां हरि मिल्या, एक पंथ दोई काज —२।११

की प्रथाह उमंग रहती है, जो गार्हस्थ जीवन के सुख-दुःख की अनुभूति से परे भोलेपन की सूचक है। राजा भरथरी के जोगी होने पर रानी पिंगला ने भी कैमार्य-जीवन की निर्द्वन्द्वता के प्रति अपनी रुचि प्रकट की है।[१] वट-वृक्ष पर चमगीदड़ों को उल्टे मस्तक लटकते हुये देखकर एक वधू ने अपनी सास को बड़ की बागल की उपमा भी दे डाली। वट-वृक्ष का उल्लेख एक धार्मिक गीत में केवल उक्त प्रसंग में ही आया है।[२]

पंथीड़ा के गीतों में रहस्यात्मक एवं कौतूहलमयी भावना को व्यक्त करने के लिये भी कुछ वृक्ष एवं लताओं के नामों का उल्लेख हुआ है। आम के वृक्ष पर इमली पकती है और अंगूर-लताओं पर अनार के फल लगते हैं।[३]

पुत्र का अभाव एवं सन्तान—विहीनत्व की भावना की अभिव्यंजना में पीपल एवं नागर बेल (ताम्बूल लता) का माध्यम ग्रहण किया गया है।[४] शरीर की सुन्दर वाटिका में मन को मोगरा (बेल) की लता का रूपक देना भी इसी प्रवृत्ति का द्योतक है।[५] देव-स्थान का वर्णन करते समय एवं पूजोपचार के प्रसंग में मोगरे की लता का उल्लेख है। देवी के मन्दिर के आंगन में मोगरे की लता कलियों से लदी हुई है। उसकी डाल कौन हिलाता है और कौन कलियों को लेकर हार गूंथता है।[६] चम्पा का वृक्ष सतियों की गाथा एवं गीतों से अधिक सम्बन्धित है। चम्पा एवं चमेली के पुष्प सतियों को अधिक प्रिय होते हैं। यह उनकी सांसारिक मनोवासनाएं के अपूर्ण रह जाने का प्रतीक भी है। पति की अकाल मृत्यु पर उन्हें अपने यौवन की उमंगों से पूर्ण शृङ्गार-सौभाग्यमय जीवन का विसर्जन करना पड़ता है और जीवन की अनेक लालसाएं अधूरी रह जाती हैं। चम्पा बाग में झूलने, क्रीड़ा एवं

---

१. क. एजी खड़ी पिंगला बोले
कुंवारी रेती तो राजा पीपल पूजती
लेती ईश्वर को नाम —मालवी लोकगीत पृष्ठ ३३

ख. कुंवारी रई जाती राजा पीपल पूजती
परणी ने लगायो यो दाग —२।१२३ —पृष्ठ ७६

२. थें सासूजी बड़ का बागड़, सिद्धनाथ में ऊंदे माथे झूलोजी —२।२३७
(सिद्धवट उज्जैन में क्षिप्रा के तट पर एक तीर्थ है। यहां उक्त वट की पूजा की जाती है)

३. आम्बा पाकी आमली, पाकी दाड़म दाख —२।१११

४. पीना झूरे पीपली फल ने नागर बेल —२।११५

५. तन बाड़ी मन मोगरा, सस्ता अमरत बोल —२।११६

६. माता रे दरबार, मोगरा री डार
कुण हिलावे डार, कुण गूंथे हार —१।६८

बिहार करने की लालसा मन में दबी रह जाती है।[1] चम्पा के वृक्ष एवं पुष्प के साथ 'सतियों के उल्लेख में यही मनोभूमि हो सकती है।[2]

दृश्य प्रकृति हमारे आकर्षण का स्वाभाविक विषय है और इसके आधार पर हमारी कलागत चेतनाओं का विकास हुआ है। वृक्ष-लता एवं पुष्पों को लेकर लोकगीतों में भी भाव-सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। स्वरूप वर्णन में प्रकृति के सौन्दर्य को उपमानों के द्वारा स्वयं के अंग-प्रत्यंगो पर आरोपित भी किया है। मालवी एवं राजस्थानी लोकगीतों में समान रूप से वृक्ष-लता एवं फल सम्बन्धी उपमानों के प्रयोग में जन-मानस की कलागत मौलिक सूझ उल्लेखनीय है :—

उपमान	उपमेय
१. बागड़ियो नारेल	सीस
२. आम्बा री फांक	आंख्या
३. पनवाड्या (ताम्बूल लता)	ओठ
४. दाड़म (अनार) रा बीज	दांत
५. चम्पा की डाल	बाया (बाँह)
६. मूंगफली	आँगली
७. पोयर को पान	पेट

संस्कृत एवं हिन्दी के काव्यकारों ने भुजा के लिये लता का उपमान अवश्य लिया है किन्तु चम्पक-लता जैसा उपमान प्रस्तुत करने में यहां मार्दव, लचक एवं वर्ण-सौन्दर्य तीनों भाव एक साथ व्यंजित हो जाते हैं।[3]

इलायची एवं ताम्बूल की लता नायिकाओं के लिये प्रिय दर्शन करने का एक बहाना अथवा माध्यम बन जाती है। कुशल नायिका अपने आँगन में 'एलची' एवं 'नागर-बेल' इसलिये लगाती हैं कि उसका प्रिय बीड़ा (ताम्बूल) के बहाने आकर प्रेमिका को अपनी झलक दिखा जायगा।[4] अंगूर-लता एवं नारंगी का वृक्ष भी सरस फलों को प्रदान करने के

---

१. झूलो डाल्यो चम्पा बाग में जी म्हारा राज....

२. सायब को डोलो (अर्थी), चम्पा नीचे ऊबो
चम्पा नीचे ऊबो, चमेली नीचे ऊबो
सायब से छेटी मति पाड़ो हो सेवग म्हारा.......

३. कुलदेवी का गीत —१।७१ बइयाँ चम्पा री डाल
— ग्यारस मोहिनी का स्वरूप प्रसंग

४. आँगण बोऊँ एलची, कंवळे जागर बेल
बीड़ा के मिस आवजो, लीजो मुजरो झेल

कारण प्रणयाकांक्षी नायिका के लिये प्रेमी का आह्वान एवं रस-बोध कराने का एक प्रतीक बन गया है।[1] नायिका को रसयुक्त नारंगी एवं नीबू से अधिक आसक्ति है। नीबू के वृक्ष के नीचे ही भम्मर जैसे आभूषण को धारण कर वह प्रेमी की प्रतीक्षा करती है।[2]

'मरवो-मोगरो ए मालनी'

वृक्ष एवं लताओं की तरह मनुष्य के भावोद्दीपन के लिये पुष्प भी विशेष महत्व रखते हैं। भारत की वनश्री का वैभव पुष्पों से ही निखरता है। वसन्त में प्रकृति भी पुष्पों से ही अपने यौवन का शृङ्गार करती है। प्रकृति की भाँति भारतीय नारी भी युग-युगों से अपने को फूलों से सजाती आ रही है। पुष्पों के मण्डन मणि-काँचन के आभूषणों से कम शोभावान नहीं होते। शरीर की शोभावृद्धि के साथ ही पुष्पों से सुगन्ध भी प्राप्त होती है जो रत्नाभरणों की बोझिल कठोरता में अलभ्य है। स्वयं के शृङ्गार के साथ ही मानव पुष्पों के द्वारा अर्चना के निमित्त श्रद्धा के सुमन भी अर्पित करता है। वृक्ष एवं लताएं भारत की पुष्प-सम्पत्ति के अनन्त स्त्रोत हैं। आज के युग में प्राचीन भारत के वसन्तकालीन पुष्पोत्सव एवं क्रीड़ाएं जो आज विद्यमान नहीं है किन्तु फूलों के प्रति आकर्षण की धूमिल रेखायें जन-मानस पर अवश्य ही अङ्कित हैं।

मालव की भूमि में जूही, चम्पा, चमेली, मरवा, मोगरा, गुलदावदी, हरसिंगार, कुन्द, मधु-मालती, मौलश्री, गुलाब, कनेर एवं गुलगट्टा (गेंदा) आदि पुष्प-लता और वृक्षों की शोभा के साथ ही घर-आँगन एवं वन-सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते रहते हैं किन्तु मालवी लोकगीतों में उपरोक्त सभी पुष्पों का वर्णन प्राप्त नहीं होता। वसन्त एवं ग्रीष्म में पुष्पित होने वाला पलाश एवं शीतकाल में अफीम का पुष्प भी ग्राम्य-जीवन से विशेष सम्बन्धित है। अफीम के पुष्पों का रंग-वैचित्र्य खेतों में एक अनुपम दृश्य को उपस्थित कर देता है, किन्तु इस सहज सौन्दर्य की ओर जन-मानस की रुचि आकर्षित नहीं हुई, केवल विवाह के एक गीत में आफू की क्यारी का उल्लेख मात्र हुआ है और वह भी कल्पना-वैचित्र्य की दृष्टि से। सड़क पर आफू और केसर की क्यारी होने की कल्पना केवल कौतूहल उत्पन्न कर सकती है, खेत में खिले आफू-पुष्पों के प्रति रसात्मक भावना का संचार नहीं हो पाता।[3]

---

१. अगन बाग में मगन बगीचा, दाख तले घर मेरा जी,
आवोगा पछतावोगा फेर नईं मिलन का मोकाजी
नारंगी नीचे डेरा जी —१।६६

२. भम्मर पैर्‌या नींबू तले —१।२६

३. सड़कँ पर आफू की क्यारी रे, सड़क पर केसर की क्यारी.......
नवल बनोजो का रथ सिन्गारियाँ, हवा करो प्यारी.......

पुरुषों की अपेक्षा नारी में पुष्पों के प्रति आकर्षण का भाव अधिक मिलता है। फूलों की सुवास के अतिरिक्त उनके वर्ण-सौन्दर्य से वह उपमान ग्रहण करती है, और प्राकृतिक सौन्दर्य को निहारती भी है। प्रभात में केवड़े (केतकी) के वर्ण की समता करने वाला सूरज भी उसी पुष्प वाटिका की छाया में उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है।[1] केवड़ा वर्ण-सौन्दर्य एव सुवास दोनों दृष्टि से ही प्रिय पुष्प रहा है। रघुवंश में सीता की मुख-श्री का अभिनन्दन करने के लिये वायु केतकी के रेणु कणों को लेकर अग्रसर होती हैं।[2] केतकी के सौरभ-सौन्दर्य की यह अनुभूति मेघ-श्याम पुरुष राम को ही हो सकती है। किन्तु मालवी नारी केवड़े के वर्ण में अपने गौर वर्ण के पति के सौन्दर्य को देखती है। नारी के हरे-भरे उद्यान में प्रेम की सुरभि से मन को प्रफुल्लित करने वाले पति को केवड़े का रूपक प्रदान करती है।[3] केवड़े के अतिरिक्त गुलाब का फूल भी रूप-सौन्दर्य एवं सुवास का प्रदाता है। फूलपाति (फूल पत्ती) के गीतों में इसे शोर्ष स्थान प्राप्त हुआ है। गुलाब प्रेम-रस की गहराई एवं अनुराग की लाली से परिपूर्ण है। प्रेम की गहन सुवास से पूर्ण गुलाब एवं पति दोनों एक ही तो है।[4] लोकगीतो की नायिका अपनी 'ननंद के बीर' एवं गुलाब में तादात्म्य स्थापित करती है। गुलाब जैसा खिला प्रफुल्ल सुन्दर गौर-वर्ण की हल्की सी ललाई लिया हुआ पति का मुख किस नारी को प्रमुदित नही करता ? मायरे के एक गीत की पंक्ति में गुलाब को लेकर नारी-हृदय की इस शाश्वत भावना का उद्रेक हुआ है।[5]

विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले सेवरे के एक गीत में निम्नलिखित पुष्पों के नाम गिनाये गये हैं :—

१ चम्पा   २ चमेली   ३ मरवा   ४ मोगरा   ५ गुलदावदी

उक्त पुष्प मालव भूमि की प्रकृति के सर्वाधिक प्रिय पुष्प हैं। गुलाब के पुष्प का विवाह जैसे मांगलिक अवसर पुष्पों की सूची में न आना विचारणीय है। मोगरे के फूल के साथ मरवे का उल्लेख कुछ सार्थकता लिये हुये हैं। रंग-सौन्दर्य एवं वर्ण-वैचित्र्य की दृष्टि से मरवे के फूल को मोगरे की कलियो के साथ हार में गूंथा जा सकता है*। मोगरे के पुष्पों

---

१. सूरज उगो केवड़ा की परछे
   केवाणो ल्यामलं उगिया —प्रभाती का गीत २।१६
२. वेलानिलः केतकिरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायताक्षि —रघु० १३।१६
३. जी म्हारा हरिया बागाँ का केवड़ा
   सायब जावा नी देवा जी राज —१।२१८
४. इ तो बाईजी रा बीरा बालम रसिया
   गेरो जी फूल गुलाब को —बालिकाओं के गीत की पंक्ति
५. बीरा माँथाने मेमद लावजो
   ......फूल जा रे फूल गुलाब को —१।७९

की सुवास सर्प को आकर्षित कर सकती है। इसलिये मोगरे के साथ मरवे का होना आवश्यक भी है। मरवे की गंध बड़ी तीव्र होती है। इसमें सुवास का अभाव हो सकता है किन्तु उसके पास सर्प नहीं जाते हैं। मरवे के पुष्प की इस विशेषता के कारण लोग अपने घर के आँगन में तुलसी के पौधे के साथ मरवा भी लगाते हैं। गीत में प्रयुक्त टेक की पंक्ति भी कितनी सुन्दर है।

'चम्पो, चमेली, मरबो, मोगरो ए मालनी'...[1]

विवाह के समय वर के शिरो-मुकुट सेवरे के लिये मालिन से आग्रह किया जाता है कि मरवा एवं मोगरे की कलियों का ग्रन्थन एक साथ होना ही चाहिये। वैसे चम्पा और चमेली के सुवासित पुष्पों के अतिरिक्त गुलदावदी जैसे वर्ण-सौन्दर्य से युक्त किन्तु सुवास-विहीन, निर्गन्ध कुसुम को भी गीत में स्थान अवश्य मिला है। मालवा में गुलदावदी के दो प्रकार के रंग के पुष्प उत्पन्न होते है। पीला एवं श्वेत (सफेद) गुलदावदी की अपेक्षा पीली गुलदावदी का कंचन जैसा वर्ण अधिक आकर्षक होता है। किन्तु मालवी लोकगीतों में इस सौन्दर्य के प्रति कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। केवल फूल के नाम का उल्लेख मात्र किया गया है। 'चम्पा, चमेली, मरवो ए मालनी' इस गीत को वास्तव में मालव का 'पुष्प-गीत' कहा जा सकता है। मेरा अनुमान है कि उक्त गीत के आविर्भाव का श्रेय उज्जैन नगरी को ही है। उज्जैन एक धार्मिक तीर्थ होने के कारण देवपूजा के निमित्त अधिक मात्रा में पुष्पों को उत्पन्न करता है। यहाँ के माली पुष्पों की खेती की कला में अधिक प्रवीण होते हैं। इसके साथ ही माला-ग्रन्थन के नैपुण्य में इनका अपना स्थान है। उज्जैन के मालाकारों ने मोगरे की कलियों की माला गूँथने में विशेष प्रवीणता प्राप्त की है। मोगरे की कलियों के जीवन को परखने में उनकी अनुभूति एवं अन्तःदृष्टि कितने कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति हुई है।

रूप रंग में रस भरी, किरपा करजो मोय
अैसी नारी भेजियो, भोर भये नर होय[2]

मोगरे की कलियों के सम्बन्ध में यह एक 'पारसी', गेय पहेली है। मोगरे की कलियाँ रूप रंग और सुवास से किन रसिकों को आनन्द-मत्त नहीं बनाती। रात को वह नारी अर्थात्

---

१. जोसिड़ा री गलियाँ होय निसरिया ए मालनी
कर गया लगनां रो चाव
हाँ वो गेंदा मालनी, हाँ वो फूलां मालनी
सेवरा में चार रंग लावजे ए मालनी
चम्पो चमेली मरवो मोगरो ए मालनी
चोथो गुलदावदी रो फूल —३।१३९

२. देखें, 'मालवी ग्राम-साहित्य की पहेलियाँ' शीर्षक लेख, विक्रम, भाद्रपद अंक २००७

कलिका ही रहती है और प्रभात होते ही वह नर अर्थात् पूर्ण विकसित पुष्प के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

उपरोक्त गीत में पुष्प-संचयन के लिये जिन दो मालिनों के नामों का उल्लेख हुआ है, वह भी पुष्पमय हैं.......गेंदा मालिन और फूलाँ मालिन.......गेंदीबाई अथवा गेंदाबाई, फूलां, फूलकुंवर, फूलांदे, फूलदेवी आदि नारियों के नाम भी जन-मानस की सुरुचि के साथ ही पुष्पों के प्रति आकर्षण की भावना को प्रकट करते हैं।

चम्पा एवं चमेली का उल्लेख भी उक्त गीतो में है किन्तु चमेली के पुष्पो की मालायें बहुत शीघ्र ही मुरझा जाती हैं। अतः हार गुन्थन में इनका उपयोग प्रायः नहीं होता है। सुवर्ण एवं सौरभ के कारण चम्पा और केवड़े के पुष्प लोकगीतों मे अधिक मान्य हुये हैं।[1] चम्पा, मोगरा एवं केतकी के पुष्प एवं कलियों में मानव के वर्ण-सौन्दर्य से सादृश्य स्थापित करने की रगीन क्षमता अवश्य है किन्तु मालवी नारी को चम्पक-गौर-वर्ण ही अधिक प्रिय है। उसका प्रियतम मोगरे एवं केवड़े के उद्यान में प्रियतमा से छिपने की चेष्टा करता है किन्तु वर्ण-सादृश्य के अभाव में वह उघड़ (प्रत्यक्ष) जाता है किन्तु प्रिय का चम्पक वर्ण होने के कारण वह चम्पा की छाया में अपने को प्रच्छन्न रख सकता है।[2] नारी का वर्ण भी चम्पक-सा होकर ही निखरता है। राजस्थानी एवं मालवी लोकगीतों में गौर वर्ण की स्त्री के लिये 'चम्पक-वरणी नार' शब्दावली का प्रयोग हुआ है। चम्पा के प्रति भारतीय जन-मानस का यह व्यापक दृष्टिकोण है। लोक साहित्य की इस सुन्दर भावना को महाकवियो ने भी अपनाया है। तुलसी ने सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते समय उक्त भाव को प्रकट किया है। सीता की अङ्ग-कान्ति भी चम्पक-वर्ण की होकर निखरती है।[3] मालवी लोकगीतो की नारी स्वयं के रूप-लावण्य एवं छलकते हुये यौवन-रस के प्रतीक के रूप में चम्पे को ही प्रस्तुत करती है।[4]

---

१. * जी म्हारा हरिया बागां का केवड़ा —१।२१८
   * बँइय्या चम्पा री डाल;
   * मरवो मोगरो ए मालनी —३।१३
   * डेरा तो दीजो चम्पा बाग में जी —१।२१२

२. कद की खड़ी रे बना ! तम कां गया था
   चम्पा की कलियां में छिप गया था
   केवड़ा की कलियां में उघड़ गया था —१।६३

३. चम्पक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाई।
   जानि परै सीय हियरे जब कुम्हिलाई ॥ —बरवै रामायण, ५
   सिय तुव रंग अंग मिलि अधिक उदोत।
   हार-बेलि पहरावौ चम्पक होत ॥ —वही, ६

४. घर चम्पो घर मोगरो पर घर सींचण जाय —मा० दोहे, १०६

लोकगीतों में पशु-पक्षी

पशु और पक्षियों का मानव जीवन के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। मनुष्य आदिम काल से ही पशु-पक्षियों की स्वयं के लिये सेवाएँ लेता आ रहा है। उपयोगिता की दृष्टि से मनुष्य-जीवन से सम्बन्ध रखने वाले पशु-पक्षियों की एक विस्तृत सूची बनाई जा सकती है। स्थूल रूप में निम्नलिखित वर्गीकरण विचारणीय है :—

(१) शिकार के पशु-पक्षी	सिंह, व्याघ्र, शूकर, रींछ, भालू, हरिण आदि। चिड़िया, सारस, बटेर, तीतर, कबूतर आदि।
(२) शिकार में सहयोग देने वाले पशु-पक्षी	अश्व, श्वान, बाज आदि।
(३) परिवहन के पशु	हाथी, घोड़ा, बैल, उँट, कुत्ता और गधा आदि
(४) दुधारू पशु	गाय-भैंस, भेड़, बकरी आदि।
(५) मांस के लिये उपयोगी पशु-पक्षी	बकरा, गाय, मुर्गा हरिण आदि।
(६) संवाद-दाता पक्षी	हंस, कुञ्जर, कपोत, शुक आदि।
(७) मधुर-भाषी पक्षी	शुक, सारिका, कोयल, पपीहा, मयूर आदि।
(८) शरीराच्छदन के लिए सामग्री प्रदान करने वाले पशु-पक्षी	भेड़, गाय, बकरी, हरिण, परवाली अनेक चिड़ियाँ।
(९) बलि के पशु	भैंसा, बकरा, मुर्गा, अश्व आदि।
(१०) विषैले एवं प्राणघाती अन्य जन्तु	सर्प, बिच्छु आदि।

मालवी लोकगीतों में उपरोक्त दृष्टिकोण के आधार पर अनेक पशु-पक्षियों का समावेश पाते हैं। भारतीय वातावरण के अनुकूल पशु-पक्षियों के प्रति जन सामान्य का विशेष ममत्व रहा है। इनमें बैल एवं अश्व को अधिक महत्व दिया गया है। स्त्री और पुरुषों के लोकगीतों में अश्व एवं बैल को समान रूप से स्थान मिला है। घुमन्तु एवं आवास-विहीन समाज के मनोरंजन के दो प्रमुख साधन थे :—

१. युद्ध २. आखेट

इन दोनों में अश्व का बड़ा महत्व रहा है। आखेट तो सभ्यता के विकास के साथ ही सामन्तों की वस्तु बन गई और आज भी जन-जीवन से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं आता। अतः लोकगीतों में सिंह, व्याघ्र आदि आखेट के पशुओं का उल्लेख प्राप्त नही होता। अश्व का उल्लेख अनेक स्थानों पर आया है। अश्व प्राचीन काल से ही परिवहन का एक प्रमुख साधन है। युद्ध में अश्व एवं कृषि में बैल ये दोनों पशु बड़े महत्व के माने गये हैं। मालवी लोकगीतों में इन दोनों की जननियों की वन्दना की गई है कि कलियुग में उसने दो बड़े जोधा (योद्धा)

उत्पन्न किये ।[1] युद्ध के लिये भी अश्व अधिक उपयोगी पशु है । अतः वीर पूजा से सम्बन्धित अश्वारोहण का अनेक बार उल्लेख मिलता है। रामदेवजी के गीत प्रमाण में प्रस्तुत किये जा सकते हैं । युद्ध के अतिरिक्त युग की सामान्य स्थिति में भी अश्व का उपयोग होता है। अश्व तेजी से चलने वाला पशु है । किसी निश्चित स्थान पर शीघ्र एवं यथासमय पहुँचने के लिये अश्व पर विश्वास ही किया जाता था । सवारी के लिये घोड़ी को अधिक महत्व दिया जाता है । रंग के अनुसार घोड़ी के लीलड़ी, धोली आदि नामकरण भी किये गये हैं। सावन के महीने में बहिन को ससुराल से लाने के लिये भाई को लीलड़ी पर प्रस्थान करने के लिये प्रेरित किया गया है ।[2] विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर भी वर-यात्रा के लिये अश्व का होना आवश्यक है । घोड़े अथवा घोड़ी के बिना हिन्दुओं में विवाह का सम्पन्न होना सम्भव ही नहीं । वधू के घर के लिये प्रस्थान करने के पूर्व घुडचड़ी की आवश्यक रूढ़ि का निर्वाह किया जाता है । वर की माता घोड़ी का पूजन करती है । सेवरे के गीतों में घोड़ी के नाचने-कूदने एवं नगर में भ्रमण करने का विशद वर्णन किया गया है ।[3] विवाह के अन्य गीतों में भी अश्व का परिवहन के पशु के रूप में उल्लेख हुआ है । वधू विवाह के पश्चात् पति के घर की ओर प्रस्थान करने के लिये अश्व पर आरूढ़ होती है । [4] प्रस्थान के लिये उद्यत वर को विदाई के समय कुछ क्षण अश्व को रोकने का आग्रह करती है ।[5] कभी-कभी व्यक्ति-विशेष का अश्व होने का कारण उसका सम्मान भी बढ़ जाता है । प्रियतम का अश्व सबसे अधिक आकर्षण की वस्तु बन जाता है । उसे सप्तरंगी लगाम लगाई जाती है । श्वेत अश्व के साथ सप्तरंगी लगाम की कल्पना बड़ी मनोहर है । बड़े एवं साहब लोगों के घोड़े को भाई, भाई

---

१. धरती पै दो जोधा बड़ा
 एक है सूर्या नो जायो, दूजो है घोड़ी नो जायो
 एक तो पाले संसार, दूजो जाय रण में अस्वार —हीड़ का प्रारम्भिक अंश

२. क. घोली घोड़ी ने कुंवर रामदेव चढ़िया —२।८८
 ख. लीले घोड़े जीन मांडी रामदेव असवार —२।६४
 ग. धौले घोड़े असवार पीरजी मुलक चढ़यो थो तवरा को २।११०
 घ. होकर घोड़ा का असवार, रामदेवजी आया जी
 ङ. आवो नी म्हारा बाला वीरा, (उठो हो; पाठान्तर)
 लीड़लो पलानो जी —मालवी लोकगीत, श्याम परमार, पृष्ठ २०

३. घोड़ी नाचत कूदत नगर गई
 गई रे बजाजी के हाट, बछेड़ी लूम रई – ३।१४०

४. कृस्न जी घुड़लो पलानिया बई रुकमण हुआ असवार – १।१७१

५. घड़ी एक घुडलो थो बजे रे सायब बनड़ा—मालवी लोकगीत, पृष्ठ ८७

भी कहना पड़ता है ।[1] एकाध गीत में अश्व की सुन्दरता का चित्र भी मिल जाता है।[2]

घोड़े के साथ ही हाथी का वर्णन भी किया गया है। अश्व तो सामान्य व्यक्ति को भी प्राप्त हो सकता है। किन्तु हाथी की सवारी तो सामान्य लोग ही कर सकते हैं। अतः वैभव एवं सम्पन्नता का प्रदर्शन करने के संदर्भ में ही हाथी का उल्लेख किया गया है। संजा एवं विवाह के अन्तर्गत जमई और बंधावे के गीतों में वर की सम्पन्नता एवं ठाठ-बाठ का अस्तित्व हाथी की सवारी से सूचित किया जाता है। [3]

यातायात के लिये ग्रामीण जीवन में बैल की सार्व-भौम महत्ता है। कृषिकर्म एवं समाज की सम्पन्नता का भार हलधरों के कन्धों पर ही आधारित है। इनके द्वारा खेती होती है और खेती से प्राप्त अन्न के द्वारा उदर-पोषण हो जाने की स्थिति में धर्म की रक्षा भी होती है। वास्तव में गौमाता के ये जाये अनमोल रतन हैं, जो खेतों में 'चांस' खींचने के साथ ही धरम की खेती के लिये भी चाँस खींचते हैं।

'धन धन ओ गउतरी माता, त्हने रतन उघाड्या दुनिया माय
त्हारा जाया मातेसरी हल चले, खेंचे धरम की चाँस'

—ग्यारस गीत प्रबन्ध का प्रारम्भिक अंश

गाय की प्रशंसा के साथ उसके सुपुत्रों की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। केवल हल चलाने में ही उनका सहयोग नहीं मिलता वरन् गाड़ी में जोत कर भारवाहन का कार्य भी बैलों से लिया जाता है। विशेष अवसरों पर बैलों के सींग एवं शरीर को रंग कर उन्हें सजाया जाता है। बहिन के यहां मांगलिक अवसरों पर उपस्थित होने के लिये भाई सुन्दर

---

१. घोड़ो हिंस्यो रे बांगड़ बड्ढे चढ़ी, धोलो घोड़ो सतरंगी लगाम
सीतलजी (नाम विशेष) को जेलू पूछे रे दादा कीको घोड़ो
थारा यार को घोड़ो, सूबा साब को घोड़ो
जागीरदार को घोड़ो, थानेदार को घोड़ो
दाना दऊ रे घोड़ा पानी पाऊं रे घोड़ा
चारो नीरु रे घोड़ा थई थ ई रे घोड़ा
भाई·········भाई रे घोड़ा —१।१५४

२. धोलो घोड़ो मुख हांसलो रे, गबूर्‌यो सो असवार जी —२।१२४ पृष्ठ ८५

३. क. संजा बई का सासरा से हाथी आया
घोड़ा बी आया, पालकी आई
जाओ संजनबाई सासरे —मालवी लोकगीत पृष्ठ ६७
ख. छोटी सी हथनी ओ राज, सूड़ सुंडाली ओ राज —१।५४
ग. हत्तीड़ा झुकावा गढ़ कांगड़ाजो म्हाका राज —१।११४

स्वस्थ बैलों की जोड़ी को गाड़ी में जोतता है। गाड़ी को लेकर दौड़ते हुये बैल के सौन्दर्य का वर्णन मायरे के एक गीत में प्राप्त होता है।[1] सुन्दर बैलों की जोड़ी के लिये मालवी में धोरी, धोरड़ी आदि शब्दों का उपयोग मिलता है। श्वेत वर्ण के पुष्ट बैलों की जोड़ी बड़ी मनोरम होती है। बणजारों के लिये सामान ढोने का काम भी बैल ही करते आये हैं, किन्तु आज के यांत्रिक युग में तो वणजारों की बालद का स्थान मोटर-ट्रकों ने ले लिया है। रेल-मार्ग एवं सड़क से सुदूर के ग्रामीण क्षेत्र में बाळद के दर्शन हो जाते हैं। ग्राम की मालवी बहिन तो अपने भाई को बणजारे के रूपमें देखती है और अपने घर पर आये भाई के स्वागत, सत्कार एवं आवास-व्यवस्था की उसे चिन्ता होती है कि वह अपने भाई को और उसकी बाळद को कहां स्थान देगी।[2]

भार-वाहन के सन्दर्भ में बैलों के अतिरिक्त एक गीत में सांडनी (सांडड़ी पाठान्तर) का वर्णन किया गया है। वैसे सांड गाय का जाया अवश्य होता है। किन्तु शिव का वाहन नन्दी होने के कारण वह धार्मिक श्रद्धा का पात्र है। अतः उससे भार-वहन का कार्य नहीं लिया जा सकता है। विवाह के अवसर गणेश और सूरज बीरा को सांडड़ी पर रुपये एवं आभूषण आदि लाने के लिये कहा गया है।[3] किन्तु यह सांडड़ी शब्द सांड का स्त्री-वाचक न होते हुये शीघ्र-गामिनी....ऊँटनी के लिये प्रयुक्त किया गया है। ऊँट को रेगिस्तान का जहाज भले ही कह दिया जाय किन्तु मध्य-युग में बणजारो की बालद की तरह ऊँट भी यातायात एवं भार-वहन का प्रमुख साधन रहा है और आज भी मालवा के अनेक ग्रामों में शीघ्रगामी वाहन के रूप में उसका उपयाग होता है। मोटर आदि यांत्रिक वाहनों के प्रचलन के पूर्व मालवी ग्रामो में जागीरदार एवं जमींदारों के यहां सांडनी का रखना सम्पन्नता का द्योतक समझा जाता था। सांडनी का स्थान आजकल मोटर-कार ने ले लिया है।

कृषी जीवन से सम्बन्धित पालतू पशुओं के प्रति चिर-सहचर्य के कारण आत्मीयता की भावना का जागृत होना स्वाभाविक ही है। दुधारू पशुओं की उपयोगिता से परिचित हो जाने के कारण लोक-मानस में अपनी वंश-वृद्धि के साथ पशु-वंश के वर्द्धन की कामना भी प्रकट हुई है। रतजगा के अन्तर्गत पूर्वजों के गीतों में पुत्र-जन्म के साथ ही गाय, भैंस एवं घोड़ी आदि मादा-पशुओं द्वारा बच्चे उत्पन्न करने का उल्लेख पशु-संवर्धन की उल्लास-भावना

---

१. गाड़ो तो रडक्यो रेत मे रे बीरा, गगना उड़ रही गेर
चालो उतावल धोरड़ी रे, म्हारा बेन्या बई जोवे बाट
धोरी रा चक्कया सींगड़ा रे —मालवी लोकगीत, पृष्ठ ८३

२. बीरा म्हारा बणजारा, कडे ओ उतारा बीराजो की बाळदां ? —२।१५

३. अणी माण्डे रिध सिध रो चाव, पलाणो गजानन की सांडड़ी
अणी माण्डे गेणा रो चाव, पलाणो सूरज बीरा सांडड़ी – २।१५

के रूप व्यक्त हुआ है।[1] दूधारू पशुओं में गाय की अपेक्षा भैंस को अधिक महत्व देना नगर के ग्वालों की लोभी वृत्ति का परिचायक है। अधिक दूध प्राप्त करने एवं आर्थिक लाभ की दृष्टि से लोग भैंस को ही अधिक पालते हैं। गाय का महत्व तो बछड़े, कृषि के लिये बैल उत्पन्न करने के कारण स्वीकार किया जाता है। अर्थ-लोभ में ग्रामीण जन भी कभी-कभी अपनी परम्परा, धार्मिक भावना को तिलांजलि देकर, घर के आभूषण आदि बेंचकर दूध के लिये भैंस लाते हैं। यदि भैंस ने पाड़ी उत्पन्न न कर पाड़ा पैदा कर दिया तो वह गम्भीर निराशा और पश्चात्ताप का कारण बन जाता है।[2]

कुत्ता, बिल्ली एवं चूहे भी ऐसे प्राणी हैं, जो मनुष्य के गृह-जीवन के साथ लगे हुये हैं। ये अवसर पाते ही खाने-पीने की वस्तुओं में से अपना हिस्सा बरबस प्राप्त कर ही लेते हैं। कुत्ता घर में खाने-पीने की वस्तुओं को उजाड़ कर देता है। कुत्ते के द्वारा स्पर्श की गई जूठी वस्तुएं अपवित्र हो जाती हैं और उपयोगिता की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता है। कुत्ते का वर्णन उजाड़ू पशु के रूप में ही हुआ है।[3] मिनकी (बिल्ली) तो म्याऊ-म्याऊ करने के कारण हास्य एवं मखौल की वस्तु बन गई। ब्याईन (समधिन) को मिनकी की उपमा देकर मनोरंजन का प्रसंग उत्पन्न कर लिया गया पुत्र-जन्म के गीतों में। मिनकी एक प्रकार का हास्य-गीत है (१।२९९)। मिनकी की तरह तालूड़ी (गिलहरी) भी गाल-गीत एवं हास्य का विषय है[4] चूहा जैसा तुच्छ प्राणी कृषि के लिये कितना ही हानिकारक बन जावे किन्तु गणेशजी का प्रिय वाहन होने के कारण वह क्षम्य ही नहीं अभिनन्दन का पात्र भी बन जाता है। चुहिया कभी-कभी हरि नाम का स्मरण करने की माला (सुमरणी) कतर डालती है। किन्तु वह भी हास्य के आवरण में गृह-जीवन के द्वन्द्व की रोचक कथा का विषय बन जाती है। एक चुहिया ने हरि-भक्त चूहें की माला कतर डाली। भक्ति में विघ्न आ जाने के कारण चूहा बड़ा क्रोधित हुआ और दोनों में झगड़ा इतना बढ़ा कि पति-पत्नी के इस द्वन्द्व में आत्म-रक्षा के लिये चुहिया ने झाडू हाथ में ले ली और चूहे ने प्रहार के लिये

---

१. पूर्वज आया म्हारी घोड्याँ के ठाने, घोड्याँ ने बछड़ा जाया हो.
पूर्वज आया म्हारी भैंस्याँ के ठाने, भैंस्या भूरी पाड़ी जाई ओ – १।५९

२. हँसली बेच के भैंस आणी
भैंस बियाणी पाड़ो रे, चलती को नाम गाड़ो रे – २।१०७

३. नाना की माँ तो पानी गई, घर में कुतरा घर गई
कुतरा ने कर्‌यो उजाड़ रे भई – १।२०

४. बड़ पर से उतरी तालूड़ी, म्हारी सूनी तो सेज ए तालूड़ी
त्हारा नौरा कर्‌याँ ए म्हारी तालूड़ी —१।१५७

ंडा उठा लिया। इस लोक में चूहा-दम्पत्ति का झगड़ा न सुलझ सका और अन्त में स्वर्ग के धर्मराज को यह झगड़ा निपटाना पड़ा।[1]

श्वापदो मे अपनी वाणी का विशेष आकर्षक रखने वाले बेचारे माधव नन्दन की और किसी वस्यक का ध्यान आकर्षित नहीं हो पाया। बालकों ने अवश्य ही गर्दभ-दम्पत्ति की पीड़ा को पहिचानने की चेष्टा के साथ ही सहानुभूति प्रकट की। अनावृष्टि के कारण जब तृण-घास नही उग पाता तब भूख-प्यास की विकलता से गर्दभ एवं गर्दभी चीख-पुकार मचाते हैं।[2] गर्दभ के अतिरिक्त प्रकृति के प्रांगण में विचरण करने वाला एक सुरम्य प्राणी और बच गया है. जिसका स्थान मालवी लोकगीतों में नहीं के बराबर है। सुन्दरियों के चंचल नेत्रों से होड़ लेने वाले मृग-मृगियों की ओर जन-मानस की उपेक्षा का कारण अनुभूति का अभाव ही कहा जा सकता है। वैसे मालव मे संलग्न वन-प्रान्तर में मृगों के दर्शन यत्र-तत्र हो जाते है। किन्तु गीतो में एक-दो स्थान पर ही उनका उल्लेख मिल पाता है। राजा भरथरी के कथानक से सम्बन्धित जोगिडा के एक गीत में शिकार के प्रसंग पर मृग-मृगी का उल्लेख हुआ है। लोक-साहित्य की परम्परा के अनुसार ये पशु भी वाणी से युक्त है और दुःख-सुख, वियोग-संयोग एवं स्वधर्म-पालन की प्रेरणा से ओतप्रोत हैं। मृग का सम्पूर्ण शरीर मानव के लिये कितना उपयोगी एवं परोपकार के लिये प्रेरक हो सकता है इसकी काव्य-माधुर्य से सिक्त अभिव्यक्ति जोगिड़ा के उक्त सर्व-प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय गीत में देखी जा सकती है।[3]

---

१. वारी ए उन्दरा वारी, त्हारी गजानंद असवारी
उंदरा ऊंदरी के राड़ हुई है जुद्ध मच्यो अति भारी
उदरा ने लीदी लाकड़ी ने उंदरी लीदी बुआरी····धरमरायजी न्याव करयो है
चुरमो बण्यो अति भारी, वारी – १।२४४

२. म्हारा बीरा की आल सूखे पाल सूखे
गद्दो भूके गद्दी भूके·······भौ-भौं······भठ्ट – १।३

३. सींग दीजो गोरखनाथ ने, घर-घर अलख जगाय
खाल देना साधु सन्त ने, लेगा म्हनें बिछाय
नैनाँ देना चंचल नार कूं राखे घूंघटा में छिपाय
आँख देना भल-घर नार कूं, लेगा अबी नी फड़काय
पाँव देना काला चोर ने, झट से भागी जाय
खुरया देना सुर्या गाय ने
लेगा अंग लगाय जिनसे पवित्तर हुई जावां
आंत देना सिरी गौड़ (श्री गौड़ ब्राह्मण) ने
जारी जनोई बनाय जिनसे पवित्तर हुई जावां
माँटी दीजो पारदी ने, देगा दुनिया में बपराय —२।१८३; पृष्ठ ७५

हंस का मोती चुगना भी लोकोक्ति-साहित्य के उदाहरण के रूप मे अपना लिया गया है।[1] कपोत-युग्म नायक एवं नायिका के प्रतीकार्थ को सूचित करते हैं।[2] मयूर-मयूरी के नृत्य-संकेत से प्रेमी युगल के बिहार का दृश्य भी अङ्कित किया गया है।[3] पक्षियों के अतिरिक्त सुन्दर स्त्री के लिये भी हरिणी का प्रतीक मिलता है।[4]

सन्देश-वाहक पक्षियों में कबूतर का उपयोग होता रहा है। किन्तु भारतीय लोक-साहित्य में हस और शुक दोनो पक्षियों का नायक-नायिका के प्रेम-सन्देश-वाहक के रूप में चित्रण हुआ है। दमयन्ती का सन्देश-वाहक हंस, पद्मावती का सन्देश ले जाने वाला शुक तो प्रसिद्ध ही है। लोक-कथाओ में मान्य इन सन्देश-वाहको को भारतीय महाकाव्यों मे भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। लोकगीतों में हंस अथवा कपोत का वर्णन सन्देश-वाहक के रूप में प्राप्त नही होता। प्रकृति के इन मनोहर प्राणियों को छोड़कर 'काक' जैसे अशुभ एवं सौन्दर्य-विहीन प्राणी को प्रियतम तक सन्देश पहुँचाने का कार्य सौपा गया। राजस्थानी एवं मालवी लोकगीतो में 'काग' ही विरह-दग्धा नायिकाओं का सन्देश ले जाने वाला पक्षी है।[5] वर्षा की एकान्त भयावनी रात मे विरह से व्याकुल कामिनी को जब बिजली की चमक कटार के समान प्रतीत होती है तब वह एकाकिनी भयाकुल होकर अपने प्रियतम के पास सन्देश भेजने के लिये काग पक्षी को उड़ाती है।[6] शुक जैसे मधुर-भाषी पक्षी को छोड़कर लोकगीतों की नायिकाओं ने काग को ही प्रेम-सन्देश पहुँचाने का कार्य सौपा, यह एक आश्चर्य की बात हो सकती है किन्तु विरहियों के मन की स्थिति पर यदि विचार किया जाय

---

१. के हंसा मोती चुगे....नइं तो करे उपास —२।७३

२. साजापुर का सेर में चार कबूतर जाय
पड़ोसन मार्‌यो काकरो म्हारी न जोड़ी बिछड़ी जाय — मालवी दोहे क्रमांक ४०

२. क. ओटला पै ओटला रे जिसमें बैठो मोर
मोर बिचारो कई करे रे घर को देवर चोर — मालवी दोहे क्रमांक २०

ख. छज्जा ऊपर मोर नाचै खेले कुंवर दोय —३।७८

४. कावो हरणी क्यों दूबली चाल हमारा देस
खाटा गऊँ की घुगरी ने रामतली को तेल — मालवी दोहे क्रमांक १

५. गोखां बैठी काग उड़ाऊँ
उड़ उड़ काग निमाणा भंवर जी कद आसी — राजस्थानी के लोकगीत
क्रमांक १०५ पृष्ठ २४

६. बिरह से व्याकुल कामणी जी
ए जी कई बिजली कड़के कटार
मारुणी त्हारी रातां डर मरे जी
नित नित ढोला काग उड़ावती —मालवी लोकगीत, पृष्ठ २७

तो इसमें मनोविज्ञान-सम्मत कारण लक्षित होता है। विरह से त्रस्त व्यक्ति का मन ठिकाने नहीं रहता, संसार के प्रत्येक प्राणी से वह सहानुभूति प्राप्त करने की आकांक्षा करता है। वहां शुक और काग में अन्तर स्पष्ट करने की दृष्टि भी सजग नहीं रह पाती। विवेक से शून्य इस स्थिति को उन्माद कहा जा सकता है। जायसी की नागमती भी भ्रमर और काग के द्वारा अपना सन्देश पहुँचाना चाहती है।[1] जायसी ने उक्त भावना सम्भवतः लोकगीतों एवं लोक-कथाओ से ग्रहण की है।

काग की बोली अप्रिय होती है। कर्कश स्वर में बोलने वाले अशुभ पक्षी के रूप मे भी इसका वर्णन मिलता है।[2] प्रेम-सन्देशा पहुँचाने के अतिरिक्त विवाह आदि अन्य मांगलिक अवसरों पर भी निमन्त्रण एवं सन्देश भेजने की आवश्यकता पड़ती है। लोकगीतो की नारी यह कार्य भी पक्षियों के द्वारा ही साधती है। मांगलिक एवं शुभ प्रसंगों पर काग जैसे अशुभ पक्षी को महत्व न देने में नारी-समाज सजग दिखाई पड़ता है। पुत्र-जन्म के अवसर पर बहिन अपने भाई के यहां बधाई सन्देश प्रेषित करने के लिये जिस पक्षी का उपयोग लेना चाहती है, उसका नाम विशेष न देकर 'लाल-परेवा' शब्द से सम्बोधित किया है।[3] कुरजा एवं श्याम पक्षी को स्वर्ग मे सन्देशा भेजने का कार्य सौंपा गया। इन पक्षियों को गगन मे ऊंचाई से उड़ता देख, इनके स्वर्ग तक पहुँचने की क्षमता में विश्वास कर लिया गया है। विवाह के अवसर पर स्वर्ग में निवास करने वाले पूर्वजों को श्यामा पक्षी के द्वारा निमन्त्रण प्रेषित किया जाता है और पूर्वजो का प्रत्युत्तर भी श्यामा के द्वारा उसी गीत मे प्राप्त हो जाता है।[4] निमाड़ी लोकगीतो में भी एक पक्षी के द्वारा स्वर्ग में निमन्त्रण भेजा जाता है। यहां सांवळी (श्यामा) की जगह गिरधरनी शब्द का प्रयोग किया गया है। गीत का सम्पूर्ण भाव मालवी गीत से मिलता हुआ है। उसे मालवी का पाठान्तर कहा जा सकता है।[5]

---

१. पिय सो कहेऊ सन्देसड़ा है भौंरा, है काग
सोधीनि बिरहे जरि मुई हिय धुंवा हम लाग —जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १५४

२. मगरे बैठो कागलो, कुर-कुर कुरखे कागलो —१।३१

३. उड़ उड़ रे म्हारा लाल परेवा नगर बधावो दीजे रे
गांव नी जाणूं नाम भी नी जाणू किना घरे दूं बधावो जी
—मालवी लोकगीत, पृष्ठ १४

४. सरग भवन्ती सावली एक संदेसो लेती जा
जइ बूढ़ा गल्ला से यूं कीजै, तम घर बरदोड़ी हो······
ताला जड़या लोह का ने जड़या बजर किवाड़
काचा सूतका पालणा बांध्या है सरग दुआर
बरद करो बरदावणा हमारो तो आवणो नी होय —वही पृष्ठ ८६

५. सरग भवन्ती हो गिरधरणी, एक संदेसो लई जाव
सुरग···दाजी खयो कहे जो, तुम घर···को ब्याव
जेम सरे हो सार जो, हमारो तो आवणो नी होय
जड़ी दिया बजर किवाड़, अग्गल जड़ी लुहाकी जी
—निमाड़ी लोकगीत, भूमिका पृष्ठ १३, रामनारायण उपाध्याय

राजस्थान के एक लोक गीत में कुरंज पक्षी स्वर्ग से सिद्ध पुरुषों का सन्देश भी लाता है।[1]

कोयल-मयूर आदि मधुर-भाषी पक्षियों का वर्णन ऋतुओं के गीतों में हुआ है। इन पक्षियों का उल्लेख उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है। वसन्त के समय पपीहे की पुकार नायिका के हृदय में प्रिय-सामीप्य की भावना उत्पन्न कर देती है, और वह अपने प्रियतम को बाग, उद्यान एवं महलों में आकर मिलने का आमन्त्रण देती है।[2] कोयल अमराइयों में बोलती है। शुक की वह बहिन है। शुक की चोंच में दाना चुगा भी भरती है।[3] वर्षा-कालीन गीतों में दादुर, मोर एवं पपीहे का उल्लेख मात्र हुआ है।[4] वह अनुकरण की प्रवृत्ति का द्योतक है। बालिकाओं ने संजा के गीतो में भी पपीहे का नाम लिया है।[5] इसी तरह घर की दीवार पर बैठी हुई चिड़ियों का वर्णन कर कन्या से उसका साम्य स्थापित किया है कि दोनों अवसर आने पर घर से उड़ा दी जाती हैं।[6]

मालव के जन-सामान्य का, विशेषकर नारियों का जीवन-क्षेत्र अत्यन्त ही सीमित है। विद्वानो के समान शास्त्र का गहन अध्ययन, देशाटन एवं प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने से उनका जीवन कोसों दूर है। अतः काव्य के शाश्वत स्वरूप से परिचित न रहते हुए भी स्वयं की अनुभूति के आधार पर पशु-पक्षी, वृक्ष-पुष्प आदि का जो सहज एवं आकर्षक वर्णन किया है, वह परम्परा की वस्तु बन कर कवियों की अमर वाणी की तरह अनन्त सौन्दर्य की सत्ता अपने आप में छिपाये हुये हैं।

बारहमासी

भारतीय काव्यों में प्रकृति का चित्रण प्रायः उद्दीपन के रूप में ही प्राप्त होता है। सूर आदि हिन्दी के कवियों ने संयोग और वियोग श्रृङ्गार के वर्णन के अन्तर्गत षट्ऋतु

---

१. गिगन भवन यूं कुरजां उतरी
   कई यब लाई बात ओ —गोगाजी का गीत २२०, राजस्थानी लोकगीत पृष्ठ ५३।
२. भंवर म्हारा मेलां आजो जी, चतर म्हारा बागां आजो जी
   म्है बागां फिरुं अकेली पपइयो बोल्योजी —१।६४
३. हूँ तम से पूछूं म्हारा बाड़ी का सुआ, किने तमारी चोंच चुगा भरी
   आम्बा की डार म्हारी बैन कोयलड़ी, उने म्हारी चोंच चुगा भरी – १।४२
४. रिमझिम रिमझिम मेवलो बरसे
   दादुर मोर पपइयो बोले, कोयलड़ी कूक सुणावे —१।२१३
५. म्हारा पिछवाड़े केल उगी, केल उगी
   हूं जाणूं पपइयो बोल्यो
   म्हारा बीराजी चढ़वा लाग्या —मालवी लोकगीत पृष्ठ ६४।६५
६. चांदे बैठी चिड़कली उड़ाव म्हारा दादाजी
   संजा बई चाल्या सासरे मनाव म्हारा दादाजी

वर्णन एवं बारहमासा की प्रकृति का वर्णन करने में भेद उत्पन्न नहीं किया है । जायसी ने नागमती के विरह वर्णन में बारहमासे को ही माध्यम बनाकर वेदना का अत्यन्त ही निर्मल एवं कोमल स्वरूप प्रदर्शित किया है । इसमें हिन्दू दाम्पत्य जीवन का माधुर्य अपने चारों ओर प्रकृति के नाना व्यापारों के साथ भारतीय नारी की वेदना-मिश्रित सरलता में देखा जा सकता है । इसमें हृदय के वेग की व्यंजना अत्यन्त ही स्वाभाविक रीति से होने पर भी भाव उत्कर्ष दशा को पहुँचे दिखाये गये हैं ।[1] ऋतु वर्णन एवं बारहमासा की परम्परा का आधार विचारणीय अवश्य है । प्रकृति का संश्लिष्ट अथवा यथातथ्य-चित्रण आदि-कवि के काव्य में भी प्राप्त हो सकता है । किन्तु बारहमासा की परम्परा का मूल-स्रोत लोकगीत ही हैं । जन-मानस की इस परम्परा को साहित्य में अपनाया गया और इसका चरम विकास हमें जायसी के पद्मावत में प्राप्त होता है । रीतिकाल में चलकर तो बारहमासा का रूप रूढ़िवादी हो गया और ईश्वर-प्रेम एवं भक्ति-भावना को प्रकट करने के लिये बारहमासा की रचनाएं की गई, किन्तु इनकी संख्या नगण्य-सी है । रीतिकाल में चार-पांच कवियों की बारहमासा सम्बन्धी रचनाएं प्राप्त होती हैं । कबीर ने लोकगीतों की प्रचलित पद्धति पर ज्ञान एवं भक्ति-भावना को अभिव्यक्त करने के लिये बारहमासे को माध्यम बनाया और उसी परम्परा के अन्य कवियों ने भी अपनाया ।[2] आज भी मालवी लोकगीतों में कुछ बारहमासे इस प्रकार के सुनने को मिल जाते हैं जहां केवल बारह महिनों के नाम परिगणन के साथ ही धार्मिक एवं भक्ति सम्बन्धी कथाओं की धारा चलती रहती है । द्रौपदी-चीर-हरण की कथा से सम्बन्धित 'द्रौपदी को बारहमासो' मालवी लोकगीत में प्रसिद्ध है ।[3] किन्तु इस प्रकार के गीतों में कथा-प्रवाह की तीव्रता ही के अतिरिक्त प्रकृति द्वारा उद्दीप्त भाव सौन्दर्य की मृदुल अभिव्यक्ति का रूप देखने को नहीं मिलेगा । बारहमासा में प्रकृति का मानव-हृदय के भावों से अधिक ही स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त सम्बन्ध स्थापित होता है । हिन्दी की काव्य परम्परा में प्रकृति का स्वतन्त्र महत्व नहीं रह गया था फिर भी कुछ कवियों ने लोक-मान्यताओं और गीतो की भावनाओं को अपने काव्य में अवश्य ही उतारा है । लोकगीतों के बारहमासा के समान ही सर्वप्रथम नरपति नाल्ह ने बीसलदेव रासा में राजमती के वियोग का वर्णन करने में बारहमासी को माध्यम

---

१. क. जायसी ग्रन्थावली के आधार पर, पृष्ठ ४४, ४६
   ख. कबीर....बारहमासा....५० पद्य, विषय ज्ञान, पृष्ठ ३६३

२. क. गुलाल साहब (सं० १७५०) ने बारहमासा लिखा । देखें, डा० रामकुमार वर्मा कृत हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ४०४
   ख. सर्वसुख शरण (सं. १८५७) बारहमासा विनय ,, पृ. ६८६
   ग. रामरूप (सं. १८०७) बारहमासा ,, पृ. ४१३
   घ. बख्शी हंसराज (१८११) बारहमासी, हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ ३५३
   ङ. सुन्दर (१६८६ ,, ,, ,, २२६

३. म्हाराज क्रस्न जी, राखो हो परतंज्ञा अबला नार की
   राखो हो परतंज्ञा (प्रतिज्ञा) द्रोपदां नार की —२।२५७

बनाया । वैसे बीसलदेव रासो काव्य ग्रंथ नहीं है, वह गाने के लिये रचा गया था[1] । बीसलदेव रासो ही हिन्दी साहित्य में एक ऐसा सर्वप्रथम ग्रन्थ है जिसमें लोकजीवन से सम्बन्धित तत्वों का समावेश प्राप्त होता है । ग्रन्थ के प्रारम्भ में हमें विवाह के गीत देखने को मिलते हैं । बीसलदेव रासो के रचयिता नाल्ह ने बारहमासा को भी अन्य लोकगीतों की तरह प्रचलित सामान्य जनता में प्रचलित गीत शैली के रूप में ही ग्रहण किया होगा, इसमें कोई सन्देह नही । अपभ्रंश की जिस रचना में बारहमासा मिलता है वह विनयचन्द्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चउपई' जो तेरहवी शताब्दी ईस्वी के पूर्व की रचना नहीं है ।[2] मालवी लोकगीतों में प्रचलित जो बारहमासे प्राप्त होते हैं उनका प्रारम्भ प्रायः आषाढ़ मास से होता है ।[3] किन्तु बीसलदेव रासो के कवि ने बारहमासा का प्रारम्भ कार्तिक मास से किया है जबकि लोक-परम्परा के अनुकूल कुछ स्वतन्त्रता से काम लिया । प्राचीनकाल में वर्षा के समय प्रवास करना कठिन था । लोग चौमासे में अपना स्थान छोड़कर नहीं जाया करते थे । बीसलदेव भी वर्षा के पश्चात् अर्थात् कार्तिक मास मे प्रवास के लिये निकलता है । अतः उसकी राजरानी राजमति की वियोग वेदना का आश्विन मास के पश्चात् कार्तिक से प्रारम्भ होना स्वाभाविक है । जायसी ने पद्मावत में बारहमासा का आरम्भ लोक-प्रचलित परम्परा के अनुसार आषाढ़ मास से ही किया है ।[4] लोकगीतों में बारहमासा आषाड़ से प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति का कारण स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है । आषाढ़ मास में हमारे देश में मेघों की ओर सामान्य जनता की दृष्टि लगी रहती है और हमारे कोटि-कोटि कृषक धरती माता को हरी-भरी देखने के लिये विकल हो उठते हैं तब जन-मानस को अपने प्रिय व्यक्ति का वियोग कैसे सह्य हो सकता है ? वर्षाकाल में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले गगन-बिहारी पक्षी भी अपने नीड़ों में विश्राम करते है । प्रकृति स्वयं भी उल्लासमयी होकर ग्रीष्म की तपन को भुला देना चाहती है । तब कोई भी मानव-हृदय एकाकी रहने की स्थिति कैसे स्वीकार करेगा । आषाढ़ वर्षा के प्रारम्भ होने का प्रथम मास माना जाता है । वर्षा में सामीप्य-भावना तीव्रतम हो उठती है । विरह-वेदना के उभार के लिये आषाढ़ का प्रथम बादल ही पर्याप्त है । भावनाओं से स्पन्दित होने वाले कवि-हृदय में मेघदूत जैसे विरह-काव्य के सृजन की प्रेरणा देने वाला तो आषाढ़ मास और उसका मेघ ही तो है ।

प्रकृति में अपनी अन्तर्वृत्तियों का सामञ्जस्य प्राप्त करने की चेष्टा का जहां तक प्रश्न जन-मानस में इसका उद्वेलन होना स्वाभाविक है किन्तु भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३६

२. नामवरसिंह —हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृष्ठ २७६

३. क. अषाड़ आसाकरी हमारी अन्न पाणी नइ भावेजी
जाय मिले कुब्जा से श्याम जो भंग पिलावे रे – १।२२६
ख. असाड़ मास सुरसती सुमरुं, सुदबुद देत जुवाला
म्हाराज क्रस्न जी राखो परतंज्ञा अबला नार की – २।२५७

४. चढ़ा असाड़ गगन घन गाजा ।
साजा बिरह दुन्द दल बाजा ॥ – नागमती वियोग खण्ड, पृष्ठ १५२

दृष्टि से विचार किया जाय तो लोक-हृदय की स्थूल एवं अस्फुट भावनाओं का विकास काव्य-कारों की रचनाओं में स्पष्टतः दृष्टिगत होगा। लोकगीतों में बारहमासे के भावों की मार्मिक व्यंजना एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म विवेचन नहीं मिलेगा। लोकजीवन से सम्बन्धित त्योहार, उत्सव आदि उल्लासप्रद प्रसंगों के उल्लेख के साथ प्रत्येक मास में प्रियतम के अभाव का स्मरण मात्र रहेगा। लोक-भावना के इस आधार पर नाल्ह एवं जायसी आदि अन्य सूफी कवियों ने विप्रलम्भ शृङ्गार की अभिव्यक्ति के लिये भावों को उद्दीप्त करने वाली प्रकृति को बारहमासा में माध्यम बनाया। यहाँ मालवी लोकगीत के एक बारहमासे का उदाहरण ही पर्याप्त होगा—

असाढ़ मास करी हमारी, अन्न पानी नइ भावेजी
जाय मिले कुब्जा से श्याम जो भंग पिलावेरे, बिरज कुल हाय लजावे रे
सावन आवन के गये सजनि, सब सखि तीज मनावे रे
नखसिख गैणों पेरी सब कंकू उड़ावे रे, बिरज कुल……
भादव महिने रैन अन्धेरी गरज-गरज डरावे रे
दादुर मोर पपैय्या बोलै कोयल शब्द सुनावे रे, बिरज कुल……
कुंआर महिने देवी अम्बिका राधा पूजन जावे रे
भली करो म्हाराज क्रिस्नजो थारे उरा बुलावे रे, बिरज कुल……
कार्तिक मइनो उत्तम आयो सब सखी कार्तिक न्हावे रे
राधा से प्रभु उध्यो नो जावे प्राण गमावे रे, बिरज कुल……
अगहन मइनो उधोपति से आवे रे
कहो श्याम ने उधो राधा घरे बुलावे रे, बिरज कुल……
पोस मइनो उत्तम कइये ठण्डी रेन सतावे रे
व्याकुल हूँ दिन रात नाथ तखे दया नो आवे रे, बिरज कुल……
माह मइनो बसन्त पञ्चमी घर घर वसन्त छावे रे,
राधा उभी दुआर उधो अगिन जलावे रे, बिरज कुल……
फागन मइने बन गये रसिया घर घर फाग मनावे रे,
राधा को तन सूख्यो उधो जल भर पिचकारी लावे रे, बिरज कुल……
चैत मइनो तड़को क्रिस्न मधुवन आवे रे
राधा उभी धूप जलावे तोय क्यों तरस नो आवे रे, बिरज कुल……
वैसाख मइनो उत्तम कइये राधा बावरी बन में
भागी हाय कां बाग में जावे रे, बिरज कुल……
जेठ मइने बड़ सावित्री पूजे राधा मन में स्याम समावे रे
आंसु बेतां नयणां पण मुखड़े क्यों मुस्कावे रे, बिरज कुल – १।२२६

सप्तम अध्याय

उपसंहार

१. मालवी लोकगीतों का महत्व
२. मालवी गुजराती एवं राजस्थानी लोकगीत
३. बदलते युग का इतिहास
४. सिनेमा पर लोकगीतों का प्रभाव

मालवी लोकगीतों का महत्व

लोक-भाषा का माधुर्य साहित्य के मर्मज्ञ एवं प्रकाण्ड विद्वानों के लिये भी आकर्षण का विषय बन जाता है। जब जनता की वाणी, हृदय के रस से सिक्त होकर स्वाभाविक सरसता को अपना अन्तर्निहित गुण बना लेती है तब सभी लोगो का ध्यान सहजतयः आकर्षित हो जाता है। मैथिल-कोकिल विद्यापति ने लोक-भाषा के सौन्दर्य एवं माधुर्य पर अभिमत प्रगट करते हुये कहा है कि लोक-वाणी अपनी मिठास के कारण सभी लोगो को प्रिय लगती है।[1] वास्तव में लोक-भाषा की वंदना का यह एक प्रसंशात्मक स्वरूप है। भारत जैसे महा-देश की भिन्न-भिन्न भाषा और बोलियो में प्रवाहित होकर जन-हृदय का प्रकृत एवं मधुर रूप लोक-संस्कृति का संस्कार करता है। लोकगीतो में आकर जन-मानस का उर्मिल-स्वरूप अधिक निखरता है और गीतों के सौम्य एवं आर्द्र स्वरो में घुलमिल कर एक अनन्त रस-लोक की सृष्टि करता है।

अन्य भारतीय भाषाओं की तरह मालवी एवं उसके लोकगीतों का प्रकृत स्वरूप भी आकर्षण के कुछ तत्व अपने में छुपाये हुये है। मालवी भाषा अपनी सहोदरा गुजराती एवं राजस्थानी के स्निग्ध-कोमल रूप को समेट कर चलती है वहाँ गीतो में शृङ्गार प्रेम की धारा का समानान्तर प्रवाह भी लोक-दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। गुजरात और राजस्थान की भाव-सृष्टि में मालव के सांस्कृतिक हृदय की स्पन्दनशीलता को एकांगी बनाकर अलग से देखना सम्भव भी नहीं है। क्योंकि भाव, भाषा, लोकाचार, संस्कृति और जन-परम्पराओ का अध्ययन करने के लिये उक्त तीनों प्रदेशों के लोकगीतो को तुलनात्मक दृष्टि से परखना आवश्यक है।

मालवी, राजस्थानी और गुजराती-लोकगीत

प्राकृतिक एवं भौगोलिक भिन्नताओ के होते हुये भी लोक-हृदय की भावधारा के शाश्वत स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आ पाता। मालवी, राजस्थानी और गुजराती के लोक-गीतों में सांस्कृतिक एकता के कारण बहुत कुछ समानता पाई जाती है। गीतों के भावसाम्य के अतिरिक्त विवाह आदि के प्रसंगों से सम्बन्धित लोकाचार एवं प्रथाओ में भी बहुत कुछ

---

१. देसिल बअणा सबजन मिट्ठा —कीर्तिलता, १।१६-२२

समानता है । गुजरात में विवाह के अवसर पर चाक-बधावा, मायरा, माण्डवा, पीठी नावण, तोरण आवतां, सामैया (मालवी समेलो), हस्त-मेलाप, चोरी (मालवी चंवरी), गृह-शान्ति; प्रभाती, वर-घोड़ा (वरयात्रा), जान मां (बरात), लग्न आदि प्रसंगो पर गीत गाये जाते हैं ।[1] मालवी में भी विविध लोकाचारों के नाम गुजराती से मिलते-जुलते हैं और विवाह के अवसर पर उनको सम्पन्न किया जाता है । गीतो में प्रसंग, भावना आदि के साम्य के साथ अनेक शब्दावलियों का एक समान पाया जाना, भाषा सम्बन्ध एवं अविच्छिन्न परम्परा का परिचय देता है । मालवी और गुजराती लोकगीतो में भाव और भाषा की समानता का तुलनात्मक दृष्टि से परिचय प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित उदाहरण पर्याप्त हैं—

मालवी

१. लीप्यो चुप्यो म्हारो आंगणो
दूधारा पीवा वालो दोजी !
ढोल्या रा पोढ़नवाला सुआवणा
थाल्या रा जीमन वाला अतघणा
तासकरा जीमनवारा दोजी

२. मेंदी बोई खेत में
उगी बालू रेत में
छोटो देवर लाडलो
उ मेंदी को रखवाल
छोटी ननंद लाडली
वा मेंदी चूंटन जाय
— मालवी लोकगीत, पृष्ठ ४१

३. चटक चांदनी सी रात ओ
गोरी तो रमवा नीसरया जी
""म्हारा राज
रम्यां रम्यां घड़ी दोई रात ओं
सायब तेड़ो माकेल्योजी, म्हारा राज

गुजराती

१. लीप्युं ने गूंप्युं मारु आंगणुं
पगलीनो पाड़नार द्योने रन्ना दे !
दलणां दली ने उभी रही
पगलीनो पाड़नार द्योने रन्ना दे
रोटला घडी ने उभी रही
चानकीगो मागनार द्योने रन्ना दे
वांझियां मेणां माता दोह्याता
— रढ़ि० १. पृष्ठ ८०–८१

२. मेंदी तो वावी माळवे
ऐनो रंग गियो गुजरात
मेंदी रंग लाग्यो रे
नानो देरिडो लाडको ने
कांईं लाव्यो मेंदीनों छोड । मेंदी""
— रढ़ि० १, पृष्ठ १७

३. आवी रूडी अजवाली रात
राते ते रमवा सांचर्या रे माणा राज
रम्यां रम्यां पोर बे पोर
सायबोजी तेड़ां मोकले रे माणा राज
घेरे आवो घरडानी नार

---

१. चूनड़ी, भाग २, भूमिका ।

मानो मानो मोटा घर नी नार ओ
घरें चालो आपना जो, म्हारा राज
– १।२२१

४. बीरा म्हारा लेवा के आया
अच्छा अच्छा सगुन विचारया
हो राज
जद म्हारा वीरा कांकड़ आया
बागांरी दूब हरियाई, हो राज
जद म्हारा वीरा द्वारे आया
द्वार –१।२०

५. ऊँचा हो आलोजा तमारा ओवरा
नीची बंधावां पटसाल
राजारा मेला में सारस रमी रया
– मालवी लोकगीत, पृष्ठ ११

६. बागां में बाजे जंगो ढोल
सेर में बाजे सरनारी
आयो म्हारो माड़ी जायो बोर
चूनड़ लायो रेशमो – ३।७

७. चांद गयो गुजरात
हिरणी उगेगा।

८. गाजोनी गडल्यो रे म्हारी माई
मेवलो नी बरस्यो
म्हारी माई मेवलो नी बरस्यो
आंगण में कीचड़ क्यों मचो –१।५०

९. सन्देश-वाहक लाल परेवा
उड़ उड़ रे म्हारा लाल परेवा
नगर बधावो दीजे रे
गांव नी जाणू नाम नी जाणू
कीना घर दूं बधाओ जी
—मालवी लोकगीत, १४

अमारे जावु चाकरी रे माणा राज
– रढ़ि० १, पृष्ठ ३५

४. दादा धीडी दखीआं
वीर ने आणे मेल्य
मलूगर आंबलीओ।
वीरो आव्यो सीमड़ीए
सीमु लेरे जाय, मलूगर·······
– रढ़ि० १, पृष्ठ ५७

५. ऊंची मेडी ते मारा सायबानी रे
लोल
नीची नीची फूलवाड़ी झुकाझूक
हूँ तो रमवा गई ती रे
मोती बाग मां रे लोल
– रढ़ि० २ भूमिका पृष्ठ १८

६. वाग्यां वाग्यां जंगीना ढोल
शरणायु वागे रे सरवा सादनी,
उडे उडे अबील गुलाल
दारुडो उड़े रे मोंघा मूलनो
– चूंदड़ी भाग २, पृष्ठ २७

७. वीरा चांदलियो उभ्यो
ने हरण्यू आथमीरे।
– चूंदड़ी १, पृष्ठ ५६

८. कांई मेहुलिया नो वरस्यो
कांई वीजलडी नो झबकी रे
कांई वाहोलिया नो वाया रे
कांई आवडलां ने आवडा रे
—चूंदड़ी १, पृष्ठ ४०

९. सन्देश-वाहक भ्रमर
डुंगर कोरी ने नीसर्यो भमरो
जाजे रे भमरा नोत रे
गाम न जाणु बेनी नाम न जाणु
किया बा रायां घेर नोत रे
– चूंदड़ी भाग १, पृष्ठ ३१

गुजराती की तरह राजस्थानी लोकगीतों का भी मालवी गीतो से अधिक निकट का सम्बन्ध है। राजस्थानी और मालवी लोक-परम्परा की एकात्मता का प्रमुख कारण यह भी है कि जो जातियाँ राजस्थान से मालव में आकर बसी थीं, उनके संस्कार और गीतों का प्रभाव यहाँ की गीत-परम्परा को गहराई के साथ स्पर्श कर गया। अनेक राजस्थानी गीत तो ऐसे हैं जो मालवी में शब्दशः प्रचलित है और स्थूल दृष्टि से देखने वालों को इनमें कोई अन्तर दिखाई नहीं देता है किन्तु मालव की सीमा में आकर इन गीतों के बाह्य रूप में कुछ फेर बदल होकर गीत-पद्धति एवं लोक-धुनों में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। राजस्थान का प्रसिद्ध गीत पणिहारी [1] मालवी में आकर "पणिहारो-मिरगानैणी" बन गया। इसी तरह रतजगा के गीतों में भी माता, कुलदेवी, भैरूजी आदि देवी-देवताओं के गीतों ने एक भिन्न स्वरूप धारण कर लिया है। अभिव्यक्ति की शैली, उपमानों की रूढ़-परम्परा और भावनाओं में कोई अन्तर नहीं होते हुये भी मालवी और राजस्थानी लोकगीतों का स्थान-भेद भाषा-भेद एवं रसानुभूति के स्तर की भिन्नता नारी-मानस के कल्पना लोक में स्पष्ट हो जाती है। मालवी और राजस्थानी लोक-गीतों की मार्मिकता और भाषा-माधुर्य परम्परा की एकता में भी अपना विशेष महत्व रखते हैं। निम्नलिखित उद्धरणों में उक्त तथ्य का समर्थन हो जाता है।

मालवी

१. (रतजगा का गीत)

कुल देवी का नखशिख वर्णन

सीस बागड़ीयों नारेल ओ माता
सीस वागड़ीयो नारेल
चोटी माता वासग रमी रया
पाटी चाँद पवासिया ए मांय
आख्यां आम्बारी फांक ओ माता
भाँपण भमरा भमीरया ए मांय
नाक सुवारी चोंच ओ माता
होठ पनवाड्या छई रया ओ मांय
दांत दाड़म रा बीज माता
जीभ कमल की पांखड़ी ए मांय
बायां चम्पा केरी डाल
मूँगफली सी आंगल्या ए मांय
पेट पीपर को पान माता

राजस्थानी

१. (गणगौर का गीत)

गौरी के नख-शिख का वर्णन

है गवरल रूड़ो है नजारो
तीखो है नेणा रो
सीस है नारेला गवरल सारियो
हो जी बै री वेंणी छे वासग नाग
भँवारे हो भँवरो गवरल हे फरे
लिलवट आंगल चार
आंखड़ियां रतने जड़ी
बै री नाक सूआ केरी चूंच
मिसरांया चुनी जड़ी
बै रा दांत दाड़म केरा बीज
हिवड़े संचे ढ़ालियो
बै री छाती बजर किवाड़
मूंमफली सी गवरल आंगली

---

[1] राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ २५४

हिवड़ो सचे ढालिया ए मांय
जांघा देवरा रा थम्भ माता
पींडल्या बेलण बेलिया ए मांय
पांव रूपारी खान माता
एड़ी संचे ढालिया ए मांय
के त्हाने घड़ीया रे सुनार
के त्हाने संचे ढ़ालिया ए मांय
नइँ म्हने घड़ीया सुनार रे सेवग
नइँ म्हने सचे ढ़ालिया रे
रूप दियो करतार रे सेवग
जनम दियो म्हारी मांयड़ी – १।७१

२. प्रसंग बधावा

म्हारा सुसराजी गाँव का गरास्या
म्हारी सासु अलख भण्डार
म्हारा जेठजी बाजू बन्द बेरखाँ
म्हारी जेठानी बेरखाँनी लूम
म्हारो देवर दाँतानो चुड़लो
म्हारी देवरानी चुड़लानी चोंप
म्हारी नणदल कसूमल काँचलो
म्हारा ननदोई कॉचली नी कोर
म्हारो नानो कूकों हाथ की मूंदड़ी
म्हारी कुल बहू हिवड़ो हार
म्हारा सायब लिलवट टिलड़ी
म्हारी सोकड़ पगनी पेजार
वारू बउवड़ तमारी जीबने
बरण्या सोई परिवार
वारू सासूजी तमारी कूंख ने
– (चन्द्रसिंह झाला के लेख से उद्धृत
वीणा, दिसम्बर १६४४)

३. प्रसंग बन्याक (विनायक पूजा)

चालो गजानन्द जोसी क्याँ चालां
तो आछा आछा लगन लिखावां
गजानन जोसी क्याँ चालां
कोठारे छज्जे नोबत बाजै

बै री बांय चम्पा केरी डाल
पिंडलियो रोमालियां
बै री जाँघ देवल केरी थांभ
एड़ो चमकै गवरल आरसी
बरो पंजो सतवा सूंठ
किण तने घड़ी रे सिलावटे
बैने क्या तो लाल लुहार
जनम दियो म्हारी मांयड़ी
बै ने रूप दियो करतार
—राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ ३९–४१

२. प्रसंग बधावा

म्हारो सुसरोजी गढ़वा राजवी
सासुजी म्हारा रतन भण्डार
म्हारां जेठ जी बाजू बंद बाँकड़ा
जेठानी म्हारी बाजूबंद री लंब
म्हारो देवर चुड़लो दाँत रो
देराणो म्हारी चुड़लारी मजीठ
म्हारी नणद कसूमल काँचली
नणदोई म्हारे गजमोत्या रो हार
म्हारो कुंवर घर रो चानणो
कुल बऊ ए दिवले री जोत
म्हारो सायब सिर रो सेवरो
सायबाणी म्हैं तो सेजां रो सिणगार
म्हे तो वारया ए बहूजी थारा बोलणे
लड़ायो म्हारो सो परिवार
–(राजस्थान के लोकगीत पृष्ठ ११२-१३)

३. हालो विनायक आपां,जोसी रे हालां
चौखासा लगन लिखासाँ
हे म्हारो विड़द विनायक
—राजस्थान के लोकगीत पृष्ठ १३३

नोबत बाजे इन्दरगढ़ गाजै
तो भीनी भीनी भालर बाजै

—मालवी गीत, पृष्ठ ७२

४. प्रसंग, मायरा

बीरा म्हारे माथा ने मेमंद लाजो
म्हारी रखड़ी रतन जड़ाजो जी
बीरां रमा झमा से म्हारा आजो
बीरां आप आजो ने भावज लाजो
सरदार भतीजा लारे लाजोजी
बीरां रमा झमा… —१।८०

(५) धूप पड़े धरती तपे रे बना
चन्द्र बदन कुम्लाय
जो मैं होती बादली रे बना
सूरज लेती छिपाय

—मालवी दोहे, क्रमांक ६९

४. प्रसंग, माहेरा या भात

बीरां म्हारे माथाने महमद लाज्यो
म्हारो रखड़ो बैठ घड़ा ज्यों
म्हारा रिमक झिमक भाँती आज्यो
बीरां थे आजोरे भाभी लाज्यो
नन्दलाल भतीजो गोदी लाज्यो
बीरा……………

– राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ २१५

५. धूप पड़े धरती तपे
म्हारो रंग बनड़ो लूळ लूळ जाय
जो मैं होती बादळी
लेती किरण छिपाय जी

– राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ १६५

भाव और भाषा-साम्य के अतिरिक्त मालवी, गुजराती और राजस्थानी लोकगीतों में कुछ रूढ़ पद्धतियों का समावेश मिलता है, जिसमें वस्तु-विशेष के लिये निश्चत शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है।

अश्वारोहण के लिये	पलाण शब्द का प्रयोग
अश्व के लिये	तेजी, लीलड़ी, लाखेणी, घुड़ला, घोड़ला
अश्वारोही एवं उसके सौन्दर्य के लिये	पातलियो अस्वार
वर के लिये	रायवर, रायजादा
सुन्दर स्त्री के लिये	पद्मणी
भाई के लिये	माड़ी जायो बीर, जामण जायो, बीरा
पति के लिये	नणद बाई रा बीर, बाईजी रा बीर
वस्त्र के लिये	चूनड़, चूनड़ी, दखणी को चीर सालू, पोमचो, पोल्यो
दिशाओं के लिये	उगमणा (पूर्व) आथमणा (पश्चिम)
उद्यान के लिये	चम्पा बाग, नवलख बाग

वृक्षों में आम और केल का सर्वाधिक उल्लेख।
पुष्पों में चम्पा, केवड़ा, मरवा, मोगरा का वर्णन।
(जावन्तरी के फूल का वर्णन केवल गुजराती लोकगीतों में प्राप्त होता है)

बदलते युग का इतिहास

लोकगीतों में इतिहास का अङ्कन अवश्य होता है । किन्तु उसके चित्र अस्पष्ट एवं रेखाएँ धुंधली रहती हैं । मालवी लोकगीतों में राजपूतकालीन वीर-गाथाओं का इतिहास अत्यन्त ही धूमिल हो गया है । वीर बगड़ावतों की युद्ध-प्रियता एवं शौर्य का इतिहास गूजरों की हीड़ में समा गया है और तेज्या-धोल्या जैसे अज्ञात वीर नाग-पूजा से सम्बन्धित होकर जाट जाति के परम-पूज्य बन गये हैं । अन्ध-श्रद्धा एवं परम्परा की परतों में उनका इतिहास एवं युग-विशेष की जानकारी प्राप्त करना कठिन अवश्य है, किन्तु सर्वदा दुर्लभ नहीं है । इसी तरह वीर-परम्परा से सम्बन्धित सतियों का इतिहास भी लोकगीतों में सुरक्षित है । जिन अज्ञात वीरांगनाओं के सम्बन्ध में इतिहास मौन है, लोकगीत उनके गौरव-मय बलिदान की कहानी सुनाता है । चोखा, हेमा और नोजा नाम की जिन सतियों का उल्लेख एक लोकगीत में हुआ है, वे केवल कल्पना जगत की पात्र नहीं हो सकतीं । अभी तक के प्राप्त मालवी गीतों में राजपूत एवं मुगलकालीन झांकी इससे अधिक नहीं मिल सकती ।

उन्नीसवीं शताब्दी में विदेशी अंग्रेजों से जूझने में अनेक वीरों ने अपना बलिदान किया होगा । इसके अतिरिक्त आविष्कारों के युग में भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ ही अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन भी उपस्थित हुये हैं । लोकगीतों में यत्र-तत्र उनका संकेत मात्र मिलता है । विगत दो शताब्दियों में इतिहास-प्रसिद्ध केवल दो व्यक्तित्व ही ऐसे हैं जिन्होंने यहां के जन-मानस को प्रभावित किया है । होल्कर वंश की महारानी अहिल्याबाई ने धर्म, दान और उदारता के पुण्यमय कृत्यों से जनता के हृदय में, उनके गीतों में पवित्र स्मृति के रूप में अपना स्थान बनाया और नरसिंहगढ़ के एक राजपूत वीर चैनसिंह ने अंग्रेजों से जूझ-कर अपने वीरत्व की अमिट स्मृति को जन-मानस पर अङ्कित किया है ।[1]

स्त्रियों ने इतिहास की इस महत्वपूर्ण घटना को लोकगीतों के अनुरूप ढाल कर अधिक रसात्मक बना दिया है ।

राजा सोबालसिंग का चैनसिंग मुलक में राज कर्यो
कचेरियाँ बैठन्ता जी साब बरजा, नी हो कुंवर तमारी लड़वा की बेस
भैस्याँ दुवारता भाई बोल्या, नी हो दादा तमारी लड़वा की बेस
पालणा पे बैठन्ता माजी-बाई बोल्या, नी रे बेटा त्हारी लड़वा की बेस

---

१. चैनसिंह मालव की नृसिंहगढ़ रियासत के राजा सौभाग्यसिंह का पुत्र था । अंग्रेजों ने भोपाल के पास सिहोर की छावनी में धोखा देकर चैनसिंह को गिरफ्तार करने की चेष्टा की । हिम्मत खां एवं बहादुर खां नामक अपने दो वीर साथियों के साथ चैनसिंह वीर-गति को प्राप्त हुआ । सिहोर में चैनसिंह की समाधि (छत्री) एवं हिम्मत खां बहादुर खां की कब्रें स्मृति के रूप में आज भी विद्यमान हैं । लोकगीतों में हिम्मत खां और बहादुर खां के नाम हिदर खां और बदर खां के रूप में बदल गये हैं ।

सेज्याँ सवारता गोरी हो बोल्या, नी ओ आलीजा थांकी लड़वा की बेस
हिदर खाँ बिदर खाँ यू कर बोल्या, एकला से पड़ ग्यो है काम
भाई भतीजा घरे रे रया चैनसिग, एकला से पड़ ग्यो रे काम
भाई भतीजा घर है रया चैनसिग, एकला से पड़ ग्यो है काम
सीस कटायो ने घाट बंधायो, मुख पै उड़े रे गुलाल
सीवर में डेरा डाल्या, धड़ से करयो है जुवाब —२।१२२

इतिहास की सामान्य एवं स्थूल घटनाओं के अतिरिक्त युग-विशेष के परिवर्तन से भी जन-जीवन में एक नवीन उत्क्रान्ति होती है और उसका प्रभाव दैनिक जीवन के क्रम पर भी पड़ता है। यान्त्रिक-सभ्यता के विकास ने भारत के नागरिक जीवन पर पर्याप्त असर डाला है। यन्त्र-विशेष का प्रथम दर्शन भारतीयों के लिये कौतूहल का विषय रहा होगा। कुएं और सरोवर से जल लाने वाली नगर की महिलाओं को नल के जल को प्राप्त करने में एक नवीन अनुभव हुआ। नल का पानी सर्दी और जुकाम उत्पन्न करने का कारण भी बन गया। एक मालवी लोकगीत में महिलाएँ फिरङ्गी राजा से नल न लगाने का आग्रह करती है।

फिरङ्गी नल मत लगवा रे, फिरङ्गी नल मत लगवा रे
नल को पानी सीत करे जो, म्हारो जी घबरावे

नल के अतिरिक्त दैनिक जीवन की आवश्यकता और सुविधा के लिये विद्युत् से सम्बन्धित अनेक आविष्कारों ने नागरिक जीवन को प्रभावित अवश्य किया है। परन्तु उनका आकर्षण लोकगीतों में अभी नहीं उतर पाया है। यातायात के साधनों में एक अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है, उसकी ओर नारी-मानस का ध्यान अवश्य आकर्षित हुआ है।

प्राचीन काल में एवं मध्य-युग में यातायात का प्रमुख साधन बैलगाड़ी तथा अश्व रहा है। प्राचीन लोकगीतों में गाड़ी और अश्व का उल्लेख बराबर हुआ है। गाड़ी और अश्व की गति को जिस समय मोटर और रेल ने पीछे ढकेल दिया तब उसकी महत्ता को लोकगीतों ने भी स्वीकार किया कि युग की दौड़ में गाड़ी और छकड़े तो पीछे रह गये और रेल तेजी से दौड़ने लगी।[1] रेल के पश्चात् मोटर एवं उससे भी तेज गति से उड़ने वाले हवाई-जहाज में बैठने की कामना नारी मानस में जागृत हो उठी। आज रेल तो सर्व साधारण के लिये तो सुलभ है किन्तु मोटरकार और वायुयान की सैर करने की कामना जन-मानस में अंकुरित होती रहती है।[2] रेल, मोटर, हवाई जहाज जैसे यांत्रिक आवश्यकारों के

१. लेकोड़ा बाया तुम्बा रे उज्जैन आई बेल।
घोड़ा छकड़ा रई ग्या ने दौड़ी गई रेल॥

२. क. बना चीरा तो तम पेर रेल में बैठो·······रेल में बैठो
खन्डवा से छूटी रेल आगरा देखो – १।१११

ख. बनी म्हारी बैठो उड़ती जहाज में
झाज कलकत्ता से आई, ठोकर बम्बई सेर में पाई
उसमें पंखे की ठंडाई
बनी म्हारी लागे सोई मंगवाय, बैठो उड़ती जहाज में – १।१०२

ग. मोटर धीरे चलने दे रे ड्राइवर, बनड़ी है नादान – ३।३६

प्रति जन-मानस में जो प्रथम कौतूहल उत्पन्न हुआ था उसकी झलक भी लोकगीतो में मिल जाती है। किसी नदी पर बने हुये विशाल पुल पर से गुजरती हुई रेल के दृश्य को भी एक गीत में अङ्कित किया है।[1] परिवहन के साधनों के सम्बन्ध में लोक-मानस में एक निश्चित धारणा है कि मोटर आदि तो सुख और वैभव की वस्तु है और जन-सामान्य के लिये अप्राप्य है। जनता का वाहन तो गाड़ी है, टमटम मे राजा बैठता है, मोटर में बाबू बैठता है और साधारण लोगों के लिये तो बैलगाड़ी ही है।[2] परिवहन के साधनो के अतिरिक्त नागरिक जीवन में नौकरी के रूप में आजीविका-प्राप्ति के साधन से नारी के दाम्पत्य जीवन पर भी असर हुआ। लोकगीतों की नारी का प्रियतम वसन्त और वर्षा ऋतु में मिलन की आकांक्षा रखते हुये भी मिलन योग को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है।[3]

अंग्रेजी शासन से दलित भारतीय राष्ट्र मे अनेक रोमांचकारी घटनाएं होती रही हैं किन्तु उसका प्रभाव उच्च स्तर के शिक्षित लोगों तक ही सीमित रहा। देश-व्यापी एवं जन-जीवन को स्पर्श करने वाली घटनाओं से ही जन-जीवन में हलचल हो सकती है। पिछले पच्चीस वर्षों में केवल दो घटनाएं हुई है जिसने अज्ञान और दासता से पीड़ित जन-मानस की सुप्त चेतना को झकझोर दिया था। महात्मा गांधी द्वारा प्रेरित राष्ट्रीयता के लिये संग्राम एवं खादी का आन्दोलन तथा दो महायुद्धों से प्रभावित मंहगाई ने साधारण जन-जीवन को व्यापक रूप से स्पर्श किया है। गांधीजी जन-मानस के लिए अत्याचार और पाप के विरुद्ध जूझने वाली एक जीवित आदर्श की मूर्ति के रूप में सामने आये। उनकी त्याग-तपस्या और भारतीय धर्म से आवेष्टित साधना के कारण उनका नाम स्मरण कर मनुष्य अपने कुकर्मों का प्रायश्चित करने की चेष्टा भी करते हैं। एक मालवी लोकगीत में इसी तरह की भावना अभिव्यक्त हुई है।

जै बोलो महात्मा गाँधी की
बेटी का पड़ला से पेटी भराई – (पाठान्तर-पईसा)
लग गया चोर साथे जी, जै बोलो महात्मा गाँधी की
बेटी का पइसा से जात जिमाई, कल-बल कीड़ा होय जी, जै बोलो–३।१३८

कन्या के विवाह में वर पक्ष से रुपया लेकर सामाजिक पाप करने वाले व्यक्ति को सावधान किया गया है कि महात्मा गांधी की जय बोलकर अपने पाप का प्रायश्चित कर ले अन्यथा बेटी को बेचकर जो पाप किया है तो तेरे शरीर में मरने तक कीड़े कलबल करेंगे। गांधीजी के नाम के पुण्य-स्मरण के साथ ही जनता ने खादी की महत्ता के गीत भी गाये हैं।

---

१. चन्द्रकोट दरवाजा उपर चले रेल गाड़ी – गीत की एक पंक्ति।

२. राजा की टमटम आवेगी, बाबू की मोटर आवेगी
हमारी गाड़ी आवेगी, काला पीपल की घाटी
चढ़ते म्हारी छाती फाटी —३।४७

३. सरद ऋतु सावन की आई, गरम ऋतु फागण की आई
क्या करूं मेरी जान, नौकरी बंगले की पाई – ३।२०

हाथ से कता हुआ सूत स्वतन्त्रता का प्रतीक होकर लोकगीतो में व्यक्ति को आत्म-निर्भर होने की प्रेरणा भी देता है। पति से प्रताड़ित होने पर मालवी नारी सूत कात कर अपना आजो-विका प्राप्त करने के लिये स्वावलम्बी बनने की घोषणा कर देती है।

रांगा पीयर पड़ोस कातांगा रेट्यो जी म्हाराज
जावाँगा जावरियाँ रे हाट मोंगो करी बेचागां म्हारा राज
रुपया रुपया को म्हारो तार
मोहराँ री म्हारी कूकड़ी जी म्हारा राज [1]

स्वावलम्बी जीवन का आदर्श स्वाभिमान के साथ अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा देता है। भारत के ग्राम-ग्राम में गांधीजी के स्वदेशी आन्दोलन ने धूम मचा रखी थी। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं स्वदेशी के प्रति ममत्व का भाव मालवी लोकगीता की नारी ने उत्साह के साथ प्रकट किया है।

बना लगना रे लगना काँई करो, बना चीरा रे चीरा काँई करो
काँई लगना की लिखत हजार, चलन चल्यो खादी को
किन्ने चलायो लिल्यो रेसमी रे, तो किन्ने दियो उपदेस
चलन चल्यो खादी को, जर्मन चलायो लिल्यो रेसमी रे
गाँधी जी दियो उपदेस, तो बनड़ा ने लियो उपदेस
चलन चल्यो खादी को—१।१०६
चीरा तो तम पैरो बना जी, बना सुदेसी बापरोजी
जी वायल मलमल छोड़ दीजो, जी खादी धर लो पास
सुदेसी बापरो जी – १।१०८

स्वदेशी आन्दोलन के साथ ही महायुद्ध के कारण विश्व-व्यापी मंहगाई ने युद्ध की ज्वाला से भी भयङ्कर विषमताएं उत्पन्न की और दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करना भी कठिन हो गया। भारतीय नारी के लिये अन्न-वस्त्र की अपेक्षा उसके सौभाग्य-श्रृङ्गार के उपकरणों का अधिक महत्व है किन्तु प्रथम महायुद्ध में उत्पन्न मंहगाई ने नारी हृदय को अधिक त्रस्त किया है। सौभाग्य-सिन्दूर, कुंकुम आदि भी मंहगे हो गये और जीवन के इस चरम कष्ट से दुःखी होकर मालवी नारी का हृदय युद्ध-लिप्सु हिटलर के प्रति उबल ही पड़ा।

जर्मन का बादसा मती लड़ रें अङ्गरेज से
जाँ पड़े बिजली गोला बरसे समन्दर झाज में
जी हरो रङ्ग पीलो रङ्ग मोंगो कर दयो, कंकू कर दयो फीको
जी लाल रंग को भाव चडई दयो, लुगड़ा काय से रंगा रे, जर्मन का.... [2]

प्रथम महायुद्ध की बात जाने दीजिये। भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी गिल्ट

---

१. मालवी लोकगीत, पृष्ठ २२
२. मालवी लोकगीत, पृष्ठ १००

की नकली चांदी के चलन और मंहगाई की ओर लक्ष्य कर युग की विषमता के विरुद्ध जन-मानस की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है :—

गिलट की चाँदी चल गई जी
गिलट की चाँदी चल गई जी, बड़ा घरां की नार गिलट में
जग-मग हो गई जी.......आम पर केरी लग रई जी
गुड़ का चड़ गया भाव सकर बी मेंगी हुई गई जी – १।१००

सिनेमा का लोकगीतों पर प्रभाव

मौखिक-परम्परा में किसी भी देश का लोक-साहित्य अनन्त काल तक अपना अस्तित्व कायम रख सकता है, यदि जन-मानस में सामूहिक चेतना के साथ अपनी परम्परा, विश्वास और मान्यताओं के प्रति अटल श्रद्धा (चाहे वह अन्ध-श्रद्धा ही क्यों न हो) बनी रह सके। समय के बहते प्रभाव में लोक-परम्परा की मूल प्रकृति भी चट्टान की तरह अडिग रहने की क्षमता अपने आप में छिपाये हुए है किन्तु विकास के क्रम में मानव मस्तिष्क समय की लहर से एकदम अछूता भी नहीं रह सकता है। सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा के प्रति अपनाये गए भारतीय दृष्टिकोण में लोकाचार के नाम पर पुरातन परम्परा एवं लोकगीतों के अस्तित्व पर आँच आने का उतना भय नहीं है जितना कि पश्चिम की भौतिक एवं यांत्रिक सभ्यता के आकर्षण की मोहिनी माया का! अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव हमारी लोक-परम्परा पर अधिक घातक सिद्ध हुआ है। पढ़े-लिखे लोगों को गीतों में ग्राम के गंवारपन की बू आने लगी है और उन्हें इस क्षेत्र को प्राय: घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। उच्च-शिक्षा-प्राप्त अभिजात्य परम्परा में लोकगीतों का लोप होता जा रहा है। शिक्षा से नारी जाति में भी परम्परागत गीतों के लिए अब संकट उत्पन्न हो गया है। आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों को तो गीत गाने में शर्म आती है और बूढ़ी महिलाओं के जीवन की समाप्ति के साथ ही लोकगीतों का अपना जीवन भी समाप्त होता दिखाई दे रहा है। वास्तव में शिक्षा ने अन्य मौखिक परम्पराओं के साथ लोकगीतों का भी अहित किया है। शिक्षा के इस व्यापक एवं अवश्यम्भावी प्रभाव का अध्ययन और विश्लेषण कर पश्चिमीय लोक-संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वानों ने तो यह धारणा बना ली है कि भौतिक-परम्परा और लोक-संस्कृति का शिक्षा से कोई उपकार नहीं होता। कोई भी जाति जब पढना-लिखना सीख जाती है तो सर्वप्रथम वह अपनी परम्परागत गाथाओं का तिरस्कार करना भी सीख लेती है। उसे इस प्रकार की परम्पराओं से लज्जा का अनुभव होने लगता है और धीरे-धीरे मौखिक साहित्य को स्मृति में रखकर उसको प्रचलित रखने की क्षमता और प्रयास दोनों से ही उसे विहीन होना पड़ता है। इस प्रवृत्ति का अन्तिम परिणाम यह होता है कि एक समय में सामान्य जनता की सामूहिक भाव-सम्पत्ति केवल अपढ़ और गँवार लोगों की पैत्रक धरोहर मात्र रह जाती है।[1]

---

१. प्रो० जेम्स चाइल्ड द्वारा संग्रहीत "दी इंग्लिश एण्ड स्काटिश पाप्युलर बेलड की भूमिका के आधार पर, पृष्ठ ११।१२

विज्ञान के नित नए आविष्कारों के साथ चलचित्रों के व्यापक प्रचार ने भी जन-मानस में व्याप्त विचार-परम्पराओं को झकझोर दिया है। विदेशी वस्तु को अच्छी दृष्टि से नही देखने वाले पुरातनवादी एवं दृढ़ विचारों के असंस्कृतमना व्यक्ति भी सिनेमा के प्रभाव से अछूते नही रह सके। अनुकरण की प्रवृत्ति में तत्पर नगर की स्त्रियों पर तो सिनेमा के गानो का सबसे अधिक असर हुआ है। ग्राम का क्षेत्र अभी अछूता है और वहाँ लोकगीतों की परम्परा के पथभ्रष्ट अथवा लुप्त हो जाने का उतना भय नही है जितना कि नगर में। नगर की स्त्रियाँ सिनेमा के गानों की भद्दी नकल पर अपने परम्परागत गीतों को तिलांजलि देती जा रही है। ऐसे गीतों में जहाँ एक ओर लोक-भाषा के स्वाभाविक सौन्दर्य की हत्या होती है वहाँ दूसरी ओर भावनाओं की शाश्वत धारा भी विकृति की ओर मुड़ जाती है। किन्तु सिनेमा के गीतों की धुनों के आधार पर आज धड़ल्ले से सारहीन गीतों का प्रचार बढ़ता जा रहा है जिसमें नारी-हृदय की प्रकृत रस-धारा अदृष्ट हो रही हैं। मालव के नगरों में प्रचलित सिनेमा से प्रभावित कुछ गीत दिये जा रहे हैं, जिनमें नारी-मानस की रुचि और प्रवृत्ति का मोड़ स्पष्ट हो जाता है।

१. मेरा दिल चावे बना आपसे मिलने के लिए
कहो तो चिट्ठी भेजूं कहो तो कारट भेजूं
भेजूं मोटर कार आपसे मिलने के लिए
कहो तो गाड़ी भेजूं कहो तो मोटर भेजूं....
कहो तो भेजूं हवई झाज वो सन्नाटे आवे
मेरा दिल.................. – १।८५

२. दादा शरबत का प्याला अनार मँगवा दो
एकला नइ पीवाँ बना को बुलवा दो
दादा हीरा की जड़ी अंगूठी मोत्याँ को हार मँगवा दो
एकला नइ पैराँ बना को बुलवा दो

(अन्य वस्तुओं के नाम) —१।८६

३. कैसे खड़ी है बलम नजर धर के, कभी देखते न बना नजर भर के
मैं चूड़िया लाया शोक करके, कभी पैरते न देखा नजर भर के
कैसे खड़ी है बलम अकड़ करके, मैं तो साड़ी लाया सैन्डल भी लाया
कभी पैरते न देखा जी भरके, ऐसी मारुंगी बन्दूक गोली भर के
कैसे....... १।८९

४. बना खड़ा कमरे में हंसे मन मन में, बनी के घर जाना है
सीस पै बना के मोती सोवे, दुपट्टा पैरा के विदा कर दो
फूलों की बरसा कर दो, बनी के घर जाना है —१।९१

५. ढाई हजार से कम नइ चइये, घर में बउ बुलाने कूँ
दो सौ रुपये साड़ी चइये, दस की चैन टकाने कूँ
भर्या बजार में बंगलो चइये, कुर्सी मेज लगाने कूँ
दो सौ रुपये का पोपलीन चइये, ढाई हजार······· –११९२

उपरोक्त गीतों के अतिरिक्त सिनेमा में गाये गये गीतों ने भी विवाह के गीतों में अपना स्थान बना लिया है।[1] इस प्रकार के गीतों के प्रचलन से दो प्रकार के संकट उत्पन्न हो गये हैं :—

१. नारी में गीत-निर्माण की मौलिक प्रवृत्ति में अवरोध उत्पन्न होने से शाश्वत भावना की अपेक्षा अनुकरण करने के कारण लोकगीतों का भावगत एवं भाषा-गत माधुर्य समाप्त हो जाएगा।

२. सिनेमा के गीतों की धुनों को अपनाने के कारण परम्परागत लोकधुनों के अस्तित्व की समाप्ति के साथ ही नवीन धुनों का निर्माण भी रुक जाएगा।

भाव, भाषा और लोक-संगीत इन तीनों पर सिनेमा के गीतों की छाया पड़ रही है और यह असम्भव नहीं है कि कालान्तर में इसका व्यापक कुप्रभाव नगर से ग्रामों की ओर अग्रसर होकर परम्परा-प्राप्त लोकगीतों के अस्तित्व को ही समाप्त कर दे। स्त्रियाँ सिनेमा के गीतों को अपना रही हैं और सिने-जगत के कुछ कला-प्रेमी एवं सांस्कृतिक चेतना से आलोकित मस्तिष्क के कलाकार लोक-कला, लोक-संगीत एवं लोकगीतों को अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ संगीत-निर्देशकों ने लोकगीतों की लय-माधुरी में, लोक-धुनों में सिनेमा के गीतों को ढालकर मनोरंजन के साथ ही जन-जीवन की परम्परा को सजीव एवं स्पन्दनशील बनाने की चेष्टा की है। सचिनदेव बर्मन, अनिल विश्वास, शंकरदास गुप्ता, सलील चौधरी, पं० गोविन्दराम एवं जमालसेन आदि सिने-संसार के संगीत-निर्देशकों ने भारतीय लोक-संगीत के लिये वास्तव में एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। जनता को आकर्षित करने के लिये जनता की कला का आश्रय ही हमारे सांस्कृतिक पुनरुत्थान की दिशा में विशेष महत्व रखता है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि कला के प्रति सुरुचि-पूर्ण भावनाओं को जाग्रत करने के दायित्व को युग की आवश्यकता के अनुकूल ग्रहण किया जा रहा है।

---

१. राजा की आयगी बरात, रंगीली होगी रात
मगन हो मैं नाचूंगी···आदि गीत प्रचलित हैं।

परिशिष्ट-१ (अ) लोरियां

मालवी लोरियां

१. हलो रे हलो रे भई,
नाना के पालने रेसम डोर,
हुलरावे जिने घुगरी ने गोळ,
आवो रे चिड़िया रंगरोल करां,
छः मन चोखा त्यार करां,
नाना भई को व्याव करां।

२. नाना ने राखो एक घड़ी,
उने जिमावां सीरो ने पूड़ी,
नांना के पालना पाट का फूंदा,
झूला दे विने घी का लूंदा,
नाना के आँगणे पाकी बोर,
आओ रे छोरा छोरयाँ,
खाओ रे बोर,
काच्चा काच्चा फेंकी दो,
पाका पाका म्हारा नाना के दो।

३. हलो रे नाना झूलो रे भई,
नाना तो म्हारो अटेरो घणों,
घी खावा को पटेरो घणो,
घुरे रे कुतरा घुरे रे बिलाई।

४. हलो रे नाना झूलो रे नाना,
हुल रे नाना हुल रे,
दूध बतासा पीले रे नाना,
हलो रे नाना हलो रे भई,
नाना का मामाजी झूला दे,
हलो रे नाना झूलो रे नाना।

५. हलो रे नाना हलो रे भई,
सुइजा रे नाना एक घड़ी,[1]
थारे जिमऊँ सीरो ने पूड़ी,
सीरा पूड़ी में घी घणो,
नाना उपर जी घणो,
हलो रे नाना, हलो रे भई

६. नानो तो म्हारो रायाँ को,
दूध पिये दस गांया को,
चिड़ी चिड़ो थारो व्याव करूँ,
छः मन चोखा त्यार करुं,
गुड़ली गुड़ली पानी भरुं,
म्हारा नाना उपर लूण करूँ
लूण करो ने रई रे भई,
नाना की करो सगई रे भई।

७. सुइजा नाना झोली में,
हलो रे नाना हलो रे भई,
नाना की बाई तो पानी गई,
घर में कुतरा बेर गई,
कुतरा ने करयो उजाड़ रे भई,
नाना के पड़ी गया घमका चार,
हलो रे नाना हलो रे भई।

८. हलो रे नाना हलो रे भई,
हालर हुलर हाँसी को,
लाल चूड़ो नानी की माँसी को,
पग टूटो नाना की भूआ को।

---

१. पाठान्तर, हलो रे झुलो रे हाँसी को,

सुइजा रे नाना झोली में,
थारीं भूश्रा गई होली में,
हलो रे नाना हलो रे भई।

नाना का काकाजी देसावरिया,
गड़ गुजरात,
माजळ रात,
नाना की टोपी नित नयी,
टोपी फुन्दा वाली,
वा नाना का माथे सोवे
मायड़ मन हरके
नाना की टोपी नित नयी।

. सुइजा रे नाना झोली में
माथे टोपी मखमल की,
गले खुंगाळी चार सौ की,
माथे टोपी गोटा की,
पाँव में पन्नी कंचन की,
सुइजा रे नाना…………

११. नानो तो नगजी मोटो नाम
उ जाई बोल्यो मामाजी के गाम
मामाजी ने दी छागर गाय
कुण धुवे कुण उचरवाने जाय,
रस दूध तो म्हारो नानो खाय
छोटी बेन्या उचरवांने जाय।

१२. सुइजा रे नाना एक घड़ी
थारी मां खइले चार धड़ी
हांगी भर्यो जो गोदड़ी में
वा तो नद्दी धोवाने जाय
नद्दी का डेंडका मारी मारी खाय।

१३. नाना भाई नाना भई करती थी
रस में पोळी पोती थी
रस में पड़ गई कांकरिया
नाना का बाप ठाकरिया
ठाकरिया ठकराई करे
नाना भई ऊपर चँवर ढुले।

(आ)

मामेरा (वीरा)

१. वीरा रमाझमा से म्हारे आजो
वीरा माथा ने मेंमद लाजो, म्हारे रखड़ी रतन जड़ाजो जी.......
वीरा काना ने झाल घड़ाजो जी, म्हारा झूमका रतन जड़ाजो जी.......
वीरा रमाझमा से म्हारे आजो जी.......
वीरा आप आजो ने भावज लाजो.......
वीरा सरदार भतीजा लारे लाजो जी....... वीरा रमझमा.......
वीरा हीवड़ा ने हंस घड़ाजो म्हारा माला पाट पुवाजो जी.......
वीरा रमाझमा से म्हारे आजो.......
वीरा बईया ने चूड़ला चिराजो, म्हारे गजरे मुजरा लगाओ जी.......
वीरा रमाझमा से म्हारे आजो जी......
वीरा पगल्या ने पाँयल लाजो, म्हारे घुगरा उथल पुवाजो जी.......
वीरा रमाझमा से म्हारे आजो......

२. ओ वीरा जी माथा रा परवाना
ओ वीरा जी कानारा परवाना
भम्मर घडाव रे सतवन्ता, बेसर घडाव रे कुलवन्ता
ओ वीरा जी तमारी जोड़ी का उज्जैण सिधारिया रे कुलवन्ता
पोथी सी बाचे रे सतवन्ता
ओ भावज तमारी जोड़ी की मेवा मिठाई बाँटी रे कुलवन्ती
पानीड़ा सिधारे री कुलवन्ती, मइडो बिलावे री कुलवन्ती
ओ बैठ्या तमारी जोड़ी की आरती सजावे री सतवन्ती....

(ड)

बनड़ा-बनड़ी

१. राजा, रासे तम बंगलो बन्दा जाजो
मैं रउंगा अकेली तम जल्दी आ जाजो
छज्जा गिरी होती ईटडी में मरी होती
राजा रासे तम भूलो बन्दा जाजो
मैं भूलूँ अकेली तम जल्दी आ जाजो
आमली की डाली गिरी होती मैं मरी होती
राजा रासे तम बाग लगा जाजो
हूँ रहूँगी अकेली जल्दी आ जाजो
उपर से फूल गिरा होता, मरी बच गई, मैं मरी होती, राजा.......

२. राजा तम उज्जीण रा खेड़ा, म्हारा मेला आजो
ए राजा, तम रायेरा जोदा, पूत केवाया रे
नव रंगिया ढोला रे, मेला में झोलो दे गई
ए राजा तमारी मां जी तो गंगा बउ
ए राजा तमारी काकी तो इन्दा बउ
सूरज दुवार्या, पालणे हिंदाया आँचला
धवाया रे नवरंगिया ढोला!
ए राजा तमारी बैन्या तो सम्पत बई
आरती संजोड़े मोतीड़ा संवारे तमे तिलक करे
वार्या पानी पिलावे रे नवरंगिया ढोला!
ए राजा तमारी गोरी तो कूरा बई
ए सेज बिछाए फूलड़ा बखेरे
पगल्या से चिब दे पंखो डोले
ए अङ्गाती लगावे पंगाती लगावे
तम पे पंखो ढोले रे नवरंगिया ढोला!

३. मेरा दिल चावे बना
आपसे मिलने के लिये···
कहो तो चिट्ठी भेजूं
कहो तो कारट भेजूं
मैं भेजूं मोटर कार
आपसे मिलने के लिये····
मेरा दिल चाये बना
आपसे मिलने के लिये····
कहो तो गाड़ी भेजूं
कहो तो मोटर भेजूं
कहो तो भेज हवाई जाहज
वो सन्नाटे आवे
मेरा दिल चाये बना···
आपसे मिलने के लिये
कहो तो छोरा भेजूं
कहो तो बुड्ढा भेजूं
भेजूं मैं कृष्ण मुरार
वो खेलने के लिए····
छोरे को हांसी आवें
बुड्ढे को खाँसी आवे
भेजूं कृष्ण मुरार
यों खेलने के लिए····
मेरा दिल चावे बना आपसे
मिलने के लिए····
कहो तो लाडू भेजूं
कहो तो पेड़ा भेजूं
मैं भेजूं बालू साई
वो जिमन के लिए····
मेरा दिल बना आपसे
मिलने के लिए···।

४. दाना सरबत का प्याला
अनार मंगवा दो····
दादा एकला नइ पिवां
बना को बुलवा दो····
दादा का सरबत का प्याला
अनार मंगवा दो
दादा हीरा की जड़ी बींटी
मोत्यां का हार मंगवा दो
एकला नइ पेरा
बनी को बुलवा दो
दादा सरबत का प्याला
अनार मंगवा दो
दादा कड़ा पै पोंची
तोड़ा पै पायल मँगवा दो
दादा सरबत का प्याला,
मँगवा दो, अनार मँगवा दो
एकला नइ पेरा
बना को बुलवा दो
बंगड़ी पर बंगड़ी
सोने की पट्टी जड़वा दो
दादा सरबत का प्याला
अनार मँगवा दो
घेवर उपर घेवर
फिणी मँगवा दो
दादा एकला नइ खावां
बनी को बुलवा दो
सरबत का प्याला
अनार मँगवा दो।

(इ) बनड़ा

५. श्रो जी बना सा सुनो म्हारी बात, कोटा की नौकरी मत कर जो जी
बूंदी का नौकर भले रीजो जी····
श्रो जी बना सा सुनो म्हारी बात, कोटा का नौकर मत रीजो जी
वां तो महीनो साडा तीस को जो, दस का घड़ावा बाजूबन्द
मोहन माला बीस की जी···
श्रो जी बना सा सुनो म्हारी बात, उज्जैन का नौकर मत रीजो जी
इन्दौर का नौकर भले रीजो जो, मईनो तो साड़ा तीस को जी
श्रो जी बना सा·········

६. श्रो जी सासू जी सुनो म्हारी बात, बना सा परणे दूसरी जो
एक छोड़ी ने लावो दोई चार, म्हारा सरीको नइँ मिले जी
श्रो जी सासू जी सुनो म्हारी बात, बना सा परणे दूसरी जो
कोटा की लाजो दोई चार म्हारा सरीकी नइ मिले जी
श्रो जी सासू जी सुनो म्हारी बात, बना सी परणे दूसरी जी
इन्दौर की लाजो सौ ने पचास, म्हारा सरकी नइ मिले जी
श्रो जी सासू जो सुनो म्हारी बात, बना सा परणे दूसरी जी।

(इ) गाल् गीत

१. ऊँची सी नगरी नीची सो नगरी, ········वाली पनिहारी
या तो रमझम पानी चाली, वा तो छमछम चाली, ·······तो श्राड़े मिलो गया
लाडू की मिजवानी श्रो दारी पेडा की मिजवानी
श्रो दारी घेवर की मिजवानो, ऊँची सी········
··········ने जरी को दुपट्टो श्रोढ़ायो
श्रो दारी वायल की मिजवानी, श्रो दारी पोलकाँ की मिजवानी
वा तो रमझम करती पानो चालो, ऊँची सी नगरी······

२. घोड़ो हिंस्यो रे बांगड़ बड्डे चढ़ो, घोलो घोड़ो सतरंगी लगाम
सीतल जी की जेळू पूछे, रे दादा किको घोड़ो
थारा यार को घोड़ो, जागोरदार घोड़ो, थानेदार को घोड़ो
दाणा दउँ रे घोड़ा पानी पाउँ रे घोड़ा, चारो नीरुं रे घोड़ा
थई थई रे घोड़ा भाई भाई रे घोड़ा, घोड़ो हिंस्यो ने बांगड़ बड्ड़े चढ़ी।

(ई)

भैरूजी

१. कोन नगर से आया सेलीवाला, कोन नगर से आया मोतीवाला
कठे रे कठे ओ थारी थापना जो
नगर भरवाड़ा से आया म्हारी गोरी
मण्डोवर ओ थारी थापना जी
एक झडूल्यो दो सेलीवाला, खपरज ओ खपरे भरावां चूट्यां चूरमाजी
दूजो झडूल्यो दो सेलीवाला, खपरज ओ खपरे भरावां खोपरा जी
अगन्यो झडूल्यो दो सेलोवाला, खपरज ओ खपरे भरावां तलवट बाकलाजी
चौथो झडूल्यो दो सेलीवाला, खपरज ओ खपरे भरावां लूची लापसी
पांचमो झडूल्यो दो सेलावाला, मुकटत ओ मुकटो जड़ावां साँचा मोती को जी
पाँच झडूल्या दिया सेलोवाला, पांचा एइ पांचा राखो सजीवता जी।

२. भेरुजी रमझम बाजे तमारा घूगरा
म्हारा आँगन बाज्यो जंगी ढोल
कलियाँ छायो मरबो मोगरो
भेरुजी जो तम बाजोट्या का साबल्या
सुतार्‌या को बेटो हाजर होय, कलियां·······
भेरुजी जो तम कळस्या का साबल्या
कुमार्‌या को बेटो हाजर होय, कलियां·······
भेरुजी जो तम फुलडा का साबल्या
मालो को बेटो हाजर होय, कलियां······
भेरुजी जो तम छत्तर (छत्र) का साबल्या
सुनारिया को बेटो हाजर होय, कलियां········
भेरुजी जो तम नारेला का साबल्या
बाण्या को बेटो हाजर होय, कलियां······
भेरुजी जो तम मदरा का साबल्या
कलाल्या को बेटो हाजर होय, कलियां········
भेरुजी जो तम पूजा का साबल्या
पटेल्या को बेटो हाजर होय, कलियां······

(उ)

प्रभाती

१. मैथी का लगन लिखाड़िया, थावर खोटे वार
बाडी नो बाथरो सब साग नो सिरदार
काको करेलो जाने चालसी, काकी कन्दोरी साथ
आदो तो दादो जाने चालिया मिरच भाभी साथ
बाड़ी नो बाथरो.........
गाजर गाड़ा जोतिया तूंबो तो घर बैठो जाय
लीलरी लटको कर्यो जीजी चन्दलोई साथ
बाडी नो बाथरो..........
थूली ने ठनठन मानियो, माँय मैलावौ दूध
चाँवल चटपट मान्डियो माँय मैलावौ खाँड
मूली ने मैथो दोई परणाजा, करसो तो हितचित बात
बाडी नो..............
थाँके तौ कावा करण सी मैथे तो देसो छणकार
बाडी नो..............

२. आसढ़ महिने तुलसा रोप हो दिया
सावन महिने तुलसा दोई दोई पत्ता, साँवले गुणवंता
भादवा में भर भर आये
कुवार महिने तुलसा सकल कुंवाँरा, साँवले... ...
कार्तिक महिने तुलसा परणे मुरारी
अगहण महिने तुलसा याँज् सिधारिया
पौस महिने तुलसा पौढ़े मुरारी
माह महिने वसन्त हौ पंचमी, साँवले......
फागण होली खेल्या हो मुरारी
चैत महिना बाग में सिधारिया हो
वैसाख धूनी तापी हो मुरारी
जेठ महिना बैकुण्ठ सिधारिया
दुनिया रत-छत हो जाये मुरारी
कुँवारी गावे ने अच्छा अच्छा वर पावे
परणी गावे पुत्र खिलावे
विधवा हो गावे बैकुण्ठ हो सिधारे
कहत कबीरा सुण भई साधू चरण में शीश नवावे हो मुरारी

सन्दर्भ ग्रन्थ

(अ) हिन्दी

१. आर्यभाषा और हिन्दी (डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी)
२. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा (परशुराम चतुर्वेदी)
३. कबीर ग्रन्थावली
४. कबीर वचनावली
५. कबीर बीजक
६. कला और संस्कृति (डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल)
७. कविता कौमुदी (भाग ५ वाँ)
८. काव्य के रूप (गुलाब राय)
९. कीर्तिलता (विद्यापति)
१०. गोरखवाणी
११. चन्द्रसखी के भजन (ठा० रामसिंह)
१२. चन्द्रसखी और उनका काव्य (पद्मावती शबनम)
१३. छत्तीसगढ़ के लोकगीत (श्यामाचरण दुबे)
१४. जायसी ग्रन्थावली
१५. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त (सुधांशु)
१६. ढोला मारू रा दूहा
१७. थेरी गाथाएँ (भरतसिंह उपाध्याय)
१८. धरती गाती है (देवेन्द्र सत्यार्थी)
१९. धीरे बहो गंगा ,,
२०. नाथ-सम्प्रदाय (डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी)
२१. निमाड़ी लोकगीत (रामनारायण उपाध्याय)
२२. पालि साहित्य का इतिहास (भरतसिंह उपाध्याय)
२३. प्राचीन साहित्य (रवीन्द्रनाथ ठाकुर)
२४. प्रकृति और हिन्दी काव्य (डॉ० रघुवंश)
२५. पृथ्वी पुत्र (वासुदेवशरण अग्रवाल)
२६. बरवै रामायण
२७. बाघक्षेत्र के भील-भिलाले (प्रतिभा निकेतन, उज्जैन)
२८. बिहारी सतसई
२९. बीसलदेव रासो
३०. ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन (डॉ० सत्येन्द्र)

३१. भारतीय लोक-साहित्य (श्याम परमार)
३२. मानव समाज (राहुल सांकृत्यायन)
३३. मालवी लोकगीत भाग १, २ एवं ३, (अप्रकाशित)—चिन्तामणि उपाध्याय
३४. मालवी दोहे (अप्रकाशित) —चिन्तामणि उपाध्याय
३५. मालवी लोकगीत (श्याम परमार)
३६. मालवी और उसका साहित्य ''
३७. मिश्र बन्धु विनोद, भाग १ एवं ३
३८. राजस्थानी लोकगीत (सूर्य करण पारीख)
३९. राजस्थान के लोकगीत (सूर्य करण पारीख एवं नरोत्तम स्वामी)
४०. राजस्थानी भाषा और साहित्य (मोतीलाल मेनरिया)
४१. रत्नसार
४२. रामचरित मानस
४३. लहर (प्रसाद)
४४. विवेचनात्मक गद्य (महादेव वर्मा)
४५. विश्व की रूपरेखा (राहुल सांकृत्यायन)
४६. साहित्य-विवेचन (क्षेमचन्द्र सुमन)
४७. हिन्दी काव्य मे प्रकृति चित्रण (डॉ० किरणकुमारी गुप्ता)
४८. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (बड़थ्वाल)
४९. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग (डा० नामवरसिंह)
५०. हिन्दी साहित्य की भूमिका (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी)
५१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल ''
५२. हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल)
५३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा)

माँच की पुस्तकें

१. राजा भरथरी
२. देवर भौजाई
३. नागजी दूदजी
४. सेठ-सेठानी
५. ढोला-मारूनी
६. हीर-राँझा (हस्तलिखित)
७. विक्रमाजीत ''
८. मदनसेन ''

(आ) गुजराती–मराठी

गुजराती

१. चूँदड़ी, भाग १ एवं २ (झवेरचन्द मेघाणी)
२. रढ़ियाली रात, भाग १, २, ३ एवं ४ ”
३. सोरठी गीतकथाओ ”
४. सौराष्ट्र नी रसधार, भाग १, २ एवं ४ ”
५. लोकगीत (रणजीतराय मेंहता)

मराठी

६. अपौरुषेय वाङ्मय (कमलाबाई देशपाण्डे)
७. लोक साहित्याचें लेणें (मालती दाण्डेकर)
८. वर्हाडी लोकगीत्तें (पा. श्र. गोरे)
९. साहित्याचें मूलधन (कालेलकर)

(इ) पत्र-पत्रिकाएं

१. जनपद (त्रैमासिक) खण्ड १, २, ३ एवं ४
२. लोककला (त्रैमासिक)
३. मरुभारती (त्रैमासिक)
४. बुद्धिप्रकाश (गुजराती त्रैमासिक)
५. सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति अङ्क)
६. विक्रम (मासिक) उज्जैन
७. हंस ” ”
८. वीणा ” इन्दौर
. आजकल ” दिल्ली

जयाजी प्रताप (लश्कर), मध्यभारत सन्देश (लश्कर), धर्मयुग, हिन्दुस्तान आदि साप्ताहिक पत्रों के साथ इन्दौर के दैनिक पत्र–नई दुनिया, जागरण, नव प्रभात एवं इन्दौर समाचार आदि के साप्ताहिक परिशिष्ट एवं विशेषांक।

(ई) संस्कृत, प्राकृत ग्रं

१. अग्निपुराण
२. अथर्ववेद
३. अर्थशास्त्र (कौटिल्य)
४. अभिज्ञान शाकुन्तल
५. अभिनव भारती
६. ऋग्वेद
७. कामसूत्र
८. काव्यालंकार
९. काव्य मीमांसा
१०. काव्य-प्रकाश
११. गीत-गोविन्द
१२. थेरी गाथाएँ (पालि)—राहुल सांकृत्यायन आदि द्वारा सम्पादित
१३. दशरूपक
१४. नाट्य शास्त्र (भरत)
१५. प्रतापरुद्रीय
१६. प्रबन्ध-चिन्तामणि
१७. प्राकृत-सर्वस्व
१८. बाल-रामायण
१९. मनुस्मृति
२०. मेघदूत
२१. यजुर्वेद
२२. याज्ञवल्क्य स्मृति
२३. रघुवंश
२४. वाल्मीकि रामायण
२५. वायुपुराण
२६. शतपथ ब्राह्मण
२७. श्रीमद्भगवत्गीता
२८. सिद्धान्त कौमुदी
२९. संगीत-रत्नाकर
३०. साहित्य-दर्पण
३१. हर्षचरित

(उ) अंग्रेजी

1. The age of Imperial Kanauj.
2. Archer, Notes on the Riddle in India.
3. The Age of Imperial Unity.
4. Botkin, A Treasury of Western Folk Lore.
5. Bacon's Essay's.
6. Bacon's (Francis) Selection.
7. C.E.M. Joad, The Mind and its working.
8. Census Report of Central India, Part XVI, 1931.
9. Charles Darwin, The expression of emotions in man and animals.
10. Ernest Hackel, The Riddle of the Universe. (Thinkers Library)
11. Encyclopaedia Britanica Vol. 9.
12. Fleet, C.I.I.
13. Fowler D. Brooks, Child Psychology.
14. Frezer J.G., Golden Bough, (Abridged Edition)
15. Frezer J.G. Totemism Vol. 1.
16. Frezer J.G. Folklore in Old Testament.
17. George Sampson, Cambridge History of English Literature.
18. Hoffding, The Modern History of English Literature.
19. H.L. Chhiber, Physical Basis of Geography of India Vol. I.
20. H.C. Ray, Dynastic History of Northern India Vol. II.
21. Historical Inscriptions of Gujrat Part III.
22. Humour in American Songs. (Arthur Loccessor)
23. J.N. Sarkar, Short History of Aurangzeb.
24. James Chied, The English and Scottish Popular Ballads.
25. K.B. Das, A study in Orrisan Folklore.
26. K.M. Munshi, The Glory that was Gurjardesa, Part III
27. Lomax, Folk songs of U.S.A.
28. L.R. Brighwell, The Miracles of life.
29. Mc Dougall, An introduction to Social psychology.
30. Malcolm, Memoirs of Sir John Malcolm Part II.

31. New History of the Indian People Part II (Bhartiya Itihas Parishad).
32. Price and Bruce, Chemistry and Human Affairs.
33. Randolph, Ozark Folk Songs.
34. Spencer. (Herbert) Literary Style and Musics.
35. Saletore, Life in Gupta Age.
36. Taylor, (E.B.) Anthropology Vol.I & II (Thinkers Library)
37. The History and Culture of the Indian People Vol. I.
38. V. Elvin, The Indian Riddle Book No. 13 and 14.
39. V. Smith, Oxford History of India.